सैंधव पुरालिपि में दिशाबोध

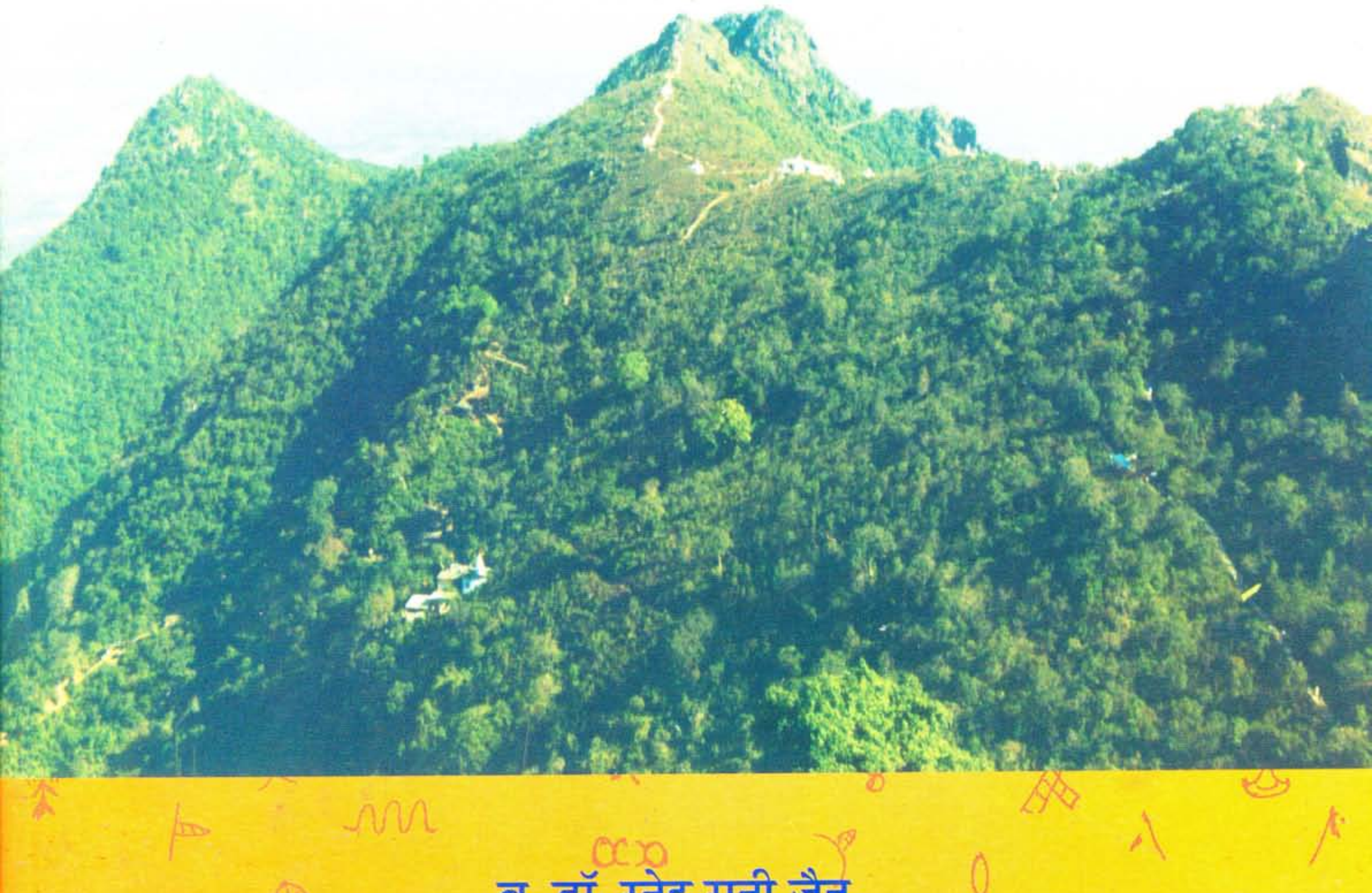

ब्र. डॉ. स्नेह रानी जैन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

❖सैंधव पुरालिपि में दिशाबोध❖

ब्र. डॉ. स्नेह रानी जैन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विन्ध्यगिरि, श्रमण बेलगोला का सैंधव यक्ष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चिरस्मरणीय एवं श्रद्धेय

माता एवं पिता

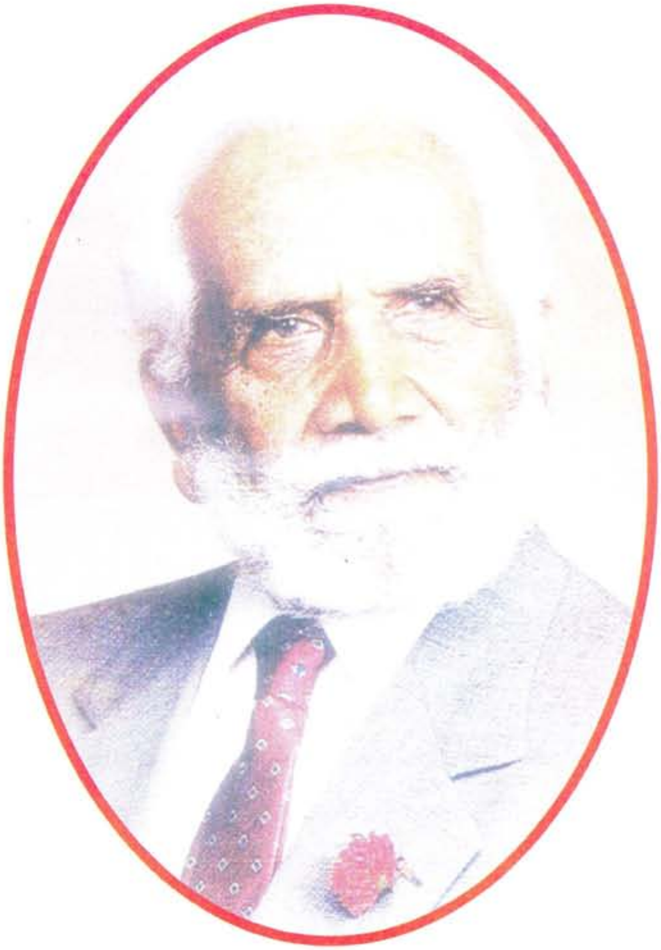

श्राविका

स्व, श्रीमति रमा देवी जैन, साहित्य रत्न

1914 – 1997

स्वर्ण कवि

प्रिं,स्व, श्री बिहारी लाल जैन,एडवो,

1905 – 1992

श्रीमति रमादेवी बिहारी लाल दिगम्बर जैन ट्रस्ट, ब्लूफील्ड; यू, एस, ए
के साभार सहयोग से प्रकाशित
उनकी ही
स्मृति
में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो शब्द

मानव सभ्यता की प्राचीनता के विषय में अनेक मान्यताऐं प्रचलित हैं । लगभग प्रत्येक धर्म ने सृष्टि की रचना से मानव के अस्तित्व को जोड़ते हुए उसे किसी **"सृष्टिकर्ता"** की कृति माना है और वहीं से मानव के विकास और सभ्यता की उत्पत्ति को स्वीकारा है तो डारविन ने मानव का विकास बंदरों से संबंधित **दर्शा** दिया है । कल्पनाऐं अपनी-अपनी तरह से उठी हैं । किसी ने उसे "भगवान्" नामक अज्ञात **शक्ति** की **"विनोद रचना"** माना है तो किसी ने **"ब्रह्मा"** नामक भगवान स्वरूपी दैवी**शक्ति** की कृति माना । किसी ने उसे **"अल्लाह की देन"** और किसी ने **"गॉड"** की रचना माना । बात प्रत्येक बार ऐसे ही बिंदु पर आकर ठहर गई कि मनुष्य उस रचना का एक "खिलौना" मात्र बना रहा किन्तु उस खिलौने ने अपने अस्तित्त्व को उस **"शक्ति**' की **"कृपा"** मानते हुए सब कुछ उसी विधाता पर छोड़ते हुए स्वयं को स्वच्छंद बना लिया । उसके दो चेहरे बन गए। एक वह जो उस **"सृष्टिकर्ता"** विधाता से भयभीत रहते हुए उसे पूजता रहा किंतु दूसरा वह जो संपूर्ण चराचर पर हावी होता रहा क्योंकि उसने उस **"सृष्टिकर्ता"** को अपनी समझ में अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल प्रसन्न कर रखा था । उसी रचेता की अन्य जीवन्त कृतियों पर वह घोर स्वार्थी बनकर अत्याचार करता रहा । यह पाश्विकता उसे खूंख्वार माँसाहारी और दुराचार में प्रवीण बना गई । अपनी प्रवृत्तियों की पूर्ति के लिए उसने धर्म की आड़ में भी हिंसात्मक रवैया अपनाकर निरीह जीवों के हनन की सीमाऐं लांघ दीं । वैसे ही उसे समर्थक भी मिल गए । किंतु उस बर्बरता को कोई "संस्कृति" और "सभ्यता" नहीं पुकार सका । **श्री विन्टरनित्ज** ने इस प्रकार की मान्यताओं पर खुलकर अपने आलोचनात्मक विचार दिए हैं ।

सिंधु घाटी सभ्यता के विषय में विद्वानों एवं पुरातत्त्वज्ञों की यही राय है कि सैंधव **लोग** अहिंसक थे, कृषि निर्भर, गौपालक थे तथा आत्मा और पुनर्जन्म में **विश्वास** रखने वाले स्वतंत्र एवं मौलिक चिंतक थे । उस काल में वेद संबंधित कोई भी प्रमाण न मिलने के कारण उसे "वेद पूर्व कालीन" कहा गया है । सिंधु घाटी पर कार्य करने वाले **विशेषज्ञों** ने अति उपयोगी जानकारी पाठकों के सामने उत्खननों से प्राप्त सामग्री संबंधी. केटालॉगों के रूप में रख छोड़ी है। वास्तव में वे सचित्र केटालॉग ही आज अध्ययन का विषय है। वेब साइटों से भी बहुत सामग्री मिली है। नवोदित कुछ मुझ जैसे पुरातत्त्वज्ञों का ध्यान अधिकतर ऐसे चट्टानी पर्वत खींचते है जहाँ मनुष्य का आवागमन कभी-कभी आने से ही होता हो । टीलों की खुदाई बहुत अधिक सावधानी तथा लागत के साथ-साथ समय और प्रशासनिक औपचारिकताएँ चाहती है जबकि चट्टानों पर अंकित रहस्य अनदेखे अज्ञात रह जाते हैं । ऊँचाई होने से सामान्य जनता की पहुंच से वे दूर होते हैं । इसीलिए बहुधा वे नष्ट होने से बच भी जाते हैं । तभी दूसरी ओर पर्यटकों की पहुँच वाले क्षेत्रों के पुरातत्त्व को अनवांछित गूदागादी से नष्ट होने का खतरा बहुत बढ़ जाता है । **जे. एम. केनोअर** नामक ईरानी पुरातत्त्वज्ञ ने जो वर्तमान में एक अमरीकी स्थित विश्वविद्यालय में कार्यरत हैं. पाषाणों पर अंकित आकृतियों पर अध्ययन करके एक **विशेष** चिन्ह (चतुर्दिक त्रिआवर्त्ति) को सिंधु घाटी सभ्यता का लगभग 3500 वर्ष प्राचीन **अंकन** स्वीकारा है । वह अंकन पर्वतीय जैन क्षेत्रों पर भी दिखा है। अनेक प्राचीन "जिन" बिंबों पर उकरित **प्रशस्तियाँ** प्रतिदिन अभिषेक करने के बाद भी अबूझ बनी हुई हैं । वे सब उस आर्ष लिपि के **अंश** हैं जिन्हें "वेद पूर्व"के साथ-साथ हम इसी पुरालिपि' की **धरोहर** के रूप में भी पुकार सकते हैं । उसे संकेतार्थ उपयोग किया गया है जिसे हमने इस कृति में जैन परिप्रेक्ष्य में पढ़कर ही **"सैंधव पुरालिपि में दिशाबोध"** लिखा है । इसे प्रथम बार हमने सामान्य "स्थिति" के क्रमानुसार पढ़ा था किंतु दुबारा इसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अब ''श्री महादेवन'' जी की पाठन पद्धति से दाहिने से बाऐं पढ़कर तैयार किया है । इसे लिखते हुए लगता है कि इरावथम महादेवन जी पुरालिपि पाठन के विषय में पूर्ण रूप से **''दिशा''** को सही नहीं समझ सके हैं । इस पुरालिपि पाठन की **दिशा** स्वतंत्र है और रहना चाहिए क्योंकि जीवन के घटना क्रम के अनुकूल ही इस लिपि के अक्षरों को वाचन किये जाने में अर्थ **''सशक्त''** होकर उभरता है । जीवन के अंत से घटना क्रम को जन्म तक उल्टा पहुंचाने में वह साहित्य अनेक स्थलों पर बेतुका और फीका पड़ जाता है ।

वास्तव में पुरातात्विक सैंधव सीलों पर अंकित ''पुरुषार्थ'' की कमान की **दिशा** और जीवन क्रम तथा **मूल पशु** के सामने की **''ध्वजा''** इस लिपि के पाठन की **दिशा दर्शाती** है. ऐसा मेरा **विश्वास** है । जो भी सत्य हो इसे पाठकों के हाथ में पहुंचाकर मैं अत्यंत संतुष्टि का अनुभवन करती हूँ कि अपने जीते जी मैं इसे पूर्णता दे सकी । यह **अतिशय पूज्य ''गुरुवर'' के आशीष** और किन्हीं अदृष्ट **''देव''** की सहायता से ही संभव हुआ है । जितने भी अब तक के पुरा अंकन मुझे दिखे हैं उनकी ही यहाँ प्रस्तुति की गई है । जो एकमात्र अपने संकेतों के द्वारा मात्र **जिनशासन** की अभिव्यक्ति **दर्शाते** हैं.– **द्वादश अनुप्रेक्षा** के छंदों के ही अंश मानो मुखरित होते –

''उत्तम **देश, सुसंगति**, दुर्लभ , श्रावक **कुल** पाना
दुर्लभ **सम्यक्**, दुर्लभ **संयम**, **पंचम गुण** ठाणा
दुर्लभ से दुर्लभ है, चेतन **बोधि ज्ञान** पावे
पाकर **केवल ज्ञान**, नहीं फिर इस **भव** में आवे ....।''

–इस लिपि में **शत प्रतिशत** अभिव्यक्ति लेकर उतरे हैं, जो आगामी विवरणों से स्पष्ट हो जाता है । जहाँ–तहाँ से प्राप्त पुराअंकनों को इकट्ठा करके ही उन्हें पढ़ने का प्रयास यहाँ किया गया है । कुछेक छूट गए हैं वो भी जागृत पाठकों को अपनी **विशेष** छवि यदाकदा **दर्शा** देते हैं । ऐसे पाठकों से उपयोगी जानकारी प्राप्त **हो सकती है।**

इस लिपि में चित्रांकन द्वारा ''साधक'' की भावना **शत प्रतिशत** अभिव्यक्ति लेकर उतरती है भले ही उसे रूप कलाकारों ने अपनी क्षमता के अनुसार दिया है जो आगामी क्रमानुक्रमिक अंकन के विवरण से स्पष्ट हो जाता है । जहाँ–जहाँ वे हैं उसे भी **दर्शाने का यहाँ** भरपूर प्रयास किया गया है, वे पुरा अंकन सौभाग्य से सारे ही **जैन मंदिरों** तथा **निर्वाण क्षेत्रों** के आसपास ही उपलब्ध हुए हैं जो हड़प्पा, मोहन्जोदड़ो से प्राप्त प्रतीकों से समानता के कारण हमें उनका सुराग दे गए हैं । उन्हें अब तक भी अथक प्रयासों के बाद भी कोई पढ़ नहीं सका मात्र इसी कारण, कि कोई ''कुंजी'' विद्वानों, पुरातत्वज्ञों को प्राप्त नहीं हो सकी थी। परंपरागत होने से हमें ऐसी लगभग 24 कुंजियों का ज्ञान तो हो ही गया है। उनका उल्लेख भी आगे किया जा रहा है।

''सैंधव पुरालिपि में दिशा बोध'' शीर्षक दो अभिप्रायों से चुना गया है । प्रथम तो पुरालिपि का **दिशा** बोध अर्थात् उस पुरालिपि को किस **विशेष दिशाक्रम** में सही–सही पढ़ा जावे । यह संभावना चित्राक्षरों/अंकाक्षरों की सही जानकारी और पहचान बिना असंभव है । इस हेतु प्रथम तो जैन अध्यात्म परिचय तथा आत्म हित की पहचान **आवश्यक** है । इस पर भी अंकनों का अनुक्रम उस सही अर्थ की सूझ देता है जिससे आरंभ और लक्षित **दिशा का ज्ञान ही लिपि का अनुक्रमिक दिशा** बोध बन जाता है । दूसरे आत्म कल्याण का बोध ही सच्चा **दिशा बोध** है जो हमारे उस काल के मनीषियों के मन्तव्य को सैंधव पुरालिपि **दर्शाती** है । इस प्रकार सैंधव लिपि ने अकथनीय पुरुषार्थ का अवलंबन लेकर आत्म चिंतन के महत्त्व को सहज **निर्देश** दिया है । जैन आगम की भूमिका उसी सूझ से प्रस्तुत होकर उस पुरा सैंधव काल के जैनागम रहस्य और अध्यात्म को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसार की चकाचौंध से परे चारित्र और चिंतन से जोड़कर पाठक के चिंतन को प्रेरित करा साधनापथ पर अग्रसित कराती है। सैंधव अंतहीन गठान भूलभुलैया दर्शाती है। वह जैन दर्शन में मान्य आत्मा की शाश्वतता की बोधक है। जैनागम के सूत्रों और सिध्दांतों की अदभुत अभिव्यक्ति सैंधव पुरा संकेतों में हमें देखने को मिलती है। जैनागम के अधिकांश सूत्र पुरा सकेताक्षरों पर आश्चर्यजनक रूप से सटीक बैठते हैं।

पाठकों की सुविधा के लिए **प्रकाशित सैंधव चित्र सूचियाँ** भी साथ में प्रस्तुत हैं और लिपि को **जैन परिप्रेक्ष्य में पढ़ने की संकेत सूची** जिसे रखकर ही उन संकेताक्षरों का मूल्यांकन किया जा सकता है सो भी संजो दी गई है। अपठ्य इस पुरालिपि को पढ़ने की क्षमता के विषय में अपने गुरु **दिगम्बराचार्य श्री विद्यासागर जी** की मैं हृदय के कण–कण से आभारी हूँ जिन्होंने इसे पढने के लिए मुझे "धर्म" का "मर्म" समझाया और उस भव्यात्मा की भी जिसने **आदेशात्मक स्वर में** मुझे इन संकेताक्षरों से परिचित कराया । हाँ उन समस्त भव्यात्माओं की जिनने मुझे "कुंजी" रूप बिखरे उन संकेताक्षरों के सन्मुख ले ले जाकर खड़ा किया और पुरालिपि अंकनों की ओर मेरा ध्यान खींचा . उलझाया अन्यथा तो लाखों दर्शकों ने मुझसे पूर्व उन–उन स्थलों के दर्शन भी किए हैं और चित्र/फोटो भी खींचे हैं किन्तु किसी ने भी उन्हें पकड़ा नहीं और उजागर भी नहीं किया । माइक्रोबायोलॉजी और पेथोलॅाजी पढ़ते– पढ़ाते आँखों को सूक्ष्मदर्शन यंत्र में देखने की जो दृष्टि विशेष मुझे मिली उससे ही अनायास इस लिपि को सूक्ष्मता से पढ़ने में मुझे अति विशेष सहायता मिली है। इसमें मेरी वैज्ञानिक भूमिका ने भी संबल दिया हैं। यह कृति लंबे दो वर्षों तक समय खोते हिंदी के टाइपिस्टों ब्दारा भी शुद्ध तैयार नहीं की जा सकी । इस समस्या को लेखक बंधु भली भांति जानते होंगे। सुधार किए जाने पर भी भाषा की त्रुटियों की संभावना को नकारा नही जा सकता। और अधिक विलम्ब ना करते हुए इसे अब सुधी पाठकों के हाथों में सौंप रही हूँ । उनसे आलोचना पत्रों की हमें इस विषय में अपेक्षा अवश्य है क्योंकि वही हमारा आगे मार्ग दर्शन करेंगे । आशा है निराश नहीं करेंगे।

यह श्रध्दा प्रसून नव वर्ष में गुरु चरणों की अर्चना में त्रि नमोस्तु सहित समर्पित है।

स्नेह रानी जैन,

सागर, 9,1,2006

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
मुख पृष्ठ	
भीतरी कवर	
आभार ज्ञापन	
विन्ध्यगिरि का सैंधव यक्ष	iv
दो शब्द–	v-vii
विषय अनुक्रमणिका	viii-ix
भूमिका	1-4
सैंधव वर्णमाला	5
श्री माधो सरूप वत्स की हड़प्पा संबंधी संकेताक्षर सूची	6-16
सर जॉन मार्शल की मोहन्जोदड़ो संबंधी संकेताक्षर सूची	17-29
श्री पोसेल की संकेताक्षर सूची	30-36
लेखिका व्दारा अवलोकित मूल संकेताक्षर	37-42
कुछ रोचक संयुक्त संकेताक्षर	43-47
पुरालिपि का विस्तार	48-51
पुरालिपि पाठन	52
श्री माधव स्वरूप वत्स के सील केटेलॉग का पाठन	53-84
श्री मैके के केटेलॉग का सील पाठन	85-119
श्री मार्शल के केटेलॉग का सील पाठन	120-146
पिराक से प्राप्त पुरा अंकन	147
घारो भीरो से प्राप्त पुरा अंकन	147
धोलावीरा से प्राप्त पुरा अंकन	147
अलाहदिनों से प्राप्त पुरा अंकन	147
बालाकोट से प्राप्त पुरा अंकन	147
नौशारो से प्राप्त पुरा अंकन	148
निंदोवारी से प्राप्त पुरा अंकन	148
तरकाई किला से प्राप्त पुरासंकेत	148
(जे. एम. केनोअर) सूसा, ईरान से प्राप्त पुरासंकेत	148
धोलावीरा से प्राप्त अन्य सामग्री	148

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ संख्या
मोहनजोदड़ो के शासकों व्यापारियों से प्राप्त सामग्री	149
चिलास	149
छानुदारों से प्राप्त पुरा लिपि संकेत	150-153
काली बंगन लोथल से प्राप्त पुरा लिपि संदेश	154-155
पश्चिम एशिया से प्राप्त लिपि अंकन	156
बनावली की खुदाई से प्राप्त लिपि अंकन	157
सैंधव लिपि परिचय	158-166
जैन पुरा कथा कोष से साम्य	167-168
जैन अध्यात्म साहित्य और सैंधव संकेतों में साम्य	169-178
सैंधव लिपि की दृष्ट पुरा कुंजियाँ	179-186
तमिल नाडु की नई खोज	187-192
समापन	193-196
अन्य विशेष चित्र कुंजी	197-204
पठनीय संदर्भ सूची	205-208
श्री माधो सरूप वत्स की हड़प्पा संबंधी सीलें	209-226
अभिलेखों का श्रमण पद्धति से आंकन	227-230
सैंधव युगीन पावन तीन शिखरें	231-233
सैंधव यक्ष	234
अभिलेखों का श्रमण पद्धति से आंकन	235-238
श्री मैके व्दारा प्रकाशित मोहन्जोदड़ो की सैंधव सीलें	239-258
अभिलेखों का श्रमण पद्धति से आंकन	259-272
सर जॉन मार्शल व्दारा प्रकाशित मोहन्जोदड़ो की सैंधव सीलें	273-287
सर जॉन मार्शल की सीलों के पुरा **अभिलेख**	288-295
बहुचर्चित बड़े बाबा और पुरातत्व **की सुरक्षा**	296

❖ ❖ ❖

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका

परम्परागत आधारों पर पलती बढ़ती, लंबे काल से अनुभव जन्य ज्ञान से सिंचित अपनी मूल संस्कृति को पहचानकर, अपनी जड़ों को खोजकर उन्हें मजबूत बनाना और उसे सही रूप में आगे बढ़ाना प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है । वह परम्परा **देश, जाति, धर्म, सांप्रदायिकता** और रंग, **लिंग**, भेद से परे है क्योंकि वह संवेदना से जुड़ी ऐसी परंपरा है जिससे प्रत्येक संसारी का जीवन जुड़ा है । "प्रज्ञा आधार" सहित प्रस्तुति ही किसी विषय को पुरातत्त्व के संदर्भ हेतु सार्थक एवं रुचिमय बनाती है । जिस समय हड़प्पा और मोहन्जोदड़ो के टीले पुरातत्त्वज्ञों की दृष्टि में आए तब तक उनकी ईटों का भारी अंबार सहज ही लोगों द्वारा उठा लिया जा चुका था । सतह पर उपलब्ध सिक्के और सामग्री भी **अधिकांशतः** नष्ट किए जा चुके थे । यह तो उस काल के **विदेशी पुरा विशेषज्ञों** का अति दुर्लभ योगदान है कि उन्होंने उन टीलों की सावधानी पूर्वक खुदाई करवाते हुए प्रत्येक प्राप्त सामग्री को सूक्ष्मता से मिलाकर सावधानी पूर्वक उनके चित्रों को न केवल **दर्शकों** के सामने प्रस्तुत किया बल्कि उस सामग्री को भी सावधानी से सुरक्षित कराते हुए संग्रहालयों में अध्ययन हेतु उपलब्ध भी करा दिया ।

हड़प्पा और मोहन्जोदड़ो की दीर्घ उत्खननों से प्राप्त सामग्री "भारत–पाकिस्तान" विभाजन के बाद सहज देखने हेतु सुलभ न होने से व्यापकता से खोजे जाने पर अनेकों स्थानों पर लगभग वैसी ही सामग्री पाई गई है । उन सभी स्थानों को भारत एवं पाकिस्तान के संबंधों में स्थिरता आने पर **दर्शकों** हेतु संभवतः सुरक्षित भी किया जाएगा । उन सभी को "सिंधु घाटी सभ्यता के प्रतीक" होने की पहचान मिली । उनसे प्राप्त मृद सीलों के अलावा धातु के सिक्के और सीलें भी सावधानी से साफ करके सुरक्षित की गई । उनके चित्र लिए गए और अपनी–अपनी खोजों से प्राप्त सामग्री के केटालॉग भी **शोधकर्ताओं** ने प्रस्तुत किए । उन **शोधकर्ताओं** की अति लम्बी सूची है । सभी का अति **विशेष** योगदान रहा है । किन्तु जो खास **शोधकर्ता** उभरकर सामने आए हैं वे **वत्स, मैके, मार्शल, पारपोला, पोसेल, फेयरसर्विस.** हैं जिनका सहारा प्रमुख रूप से मैंने अपने यहाँ प्रस्तुत अध्ययन हेतु चुना है । पुरालिपि पाठकों में भी अनेक नाम हैं जिनमें मैंने अति **विशेष श्री महादेवन** की कानकार्डेंस का सहारा लेकर **श्री राव, श्री मिश्रा** और अन्य को उनके चिंतित विषय में बांधा है । मेरा **उद्देश्य** किसी की समीक्षा करना नहीं किंतु उस अपठ लिपि के रहस्य को सामने लाना रहा है जिसे मैंने "जैन" भूमिका में सहज ही समझ पाया है । पुरालिपि पाठकों का यही कहना है कि उन्हें किसी भी प्रकार से **पुरा "कुंजी"** का संकेत नहीं मिला इसलिए वे पुरालिपि की भारतीय भूमिका को दृष्टिगत रखते हुए **वैदिक** और **माहेश्वर** सूत्र तथा **अनुष्टुप** छंद के सहारे उसे पढ़ने का प्रयास कर पाए हैं । जहाँ उन्हें संकेत और चित्र भी दिखे, उन्होंने उन्हें **"अक्षर"** मानते हुए लिपि को पढ़ने का प्रयास किया है और **रेबस की विधि से** कुछ अनुमानित आधार पर बढ़ते हुए अर्थ निकाला है । इस **दिशा** में श्री महादेवन का कान्कार्डेंस ही **दिशाबोध** हेतु बहुत बड़ी सहायता बनकर सामने आता है । उनकी दृष्टि में "पुरालिपि के संकेत और चित्र मात्र अक्षर नहीं एक–एक **विशेष विषय** की ओर संकेत करते हैं " और अध्ययन करने पर यही तथ्य सामने भी आया है ।

जैन "दैनिक पूजा" में संकेतों का अत्यंत महत्त्व है । प्रत्येक पूजा करने वाला जैन जिन धर्म के मंदिर में उन्हीं संकेतों को आधार बना अपनी भक्ति भावना की अभिव्यक्ति करता है । जैन पूजा में किसी भी क्रिया को **अंधविश्वास** नहीं ठोस आधार पर सार्थक अभिव्यक्ति दी गई है । जिस प्रकार + चारों गतियाँ और **स्वस्तिक,** उन गतियों में संसारी आत्मा का भ्रमण दिखलाते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं उसी प्रकार **तीन बिंदु रत्नत्रय** और **पाँच बिंदु पंच परमेष्ठी दर्शाते** हैं । छह बिंदु अथवा छह लकीरें षट्द्रव्य और सात लकीरें सप्त तत्त्व को **दर्शाते हैं । लेटा अर्द्ध चंद सिध्द शिला. उल्टा चंद्र छत्र** और **खड़ा चंद्र पुरुषार्थ दर्शाता है तथा त्रिशूल रत्नत्रय** की अभिव्यक्ति देता है । ये प्रत्येक विषय स्वयं अपने आप में अपनी विस्तृत भूमिका और **विशाल विषय** रखते हैं । इस संदर्भ में श्री इरावथम महादेवन के विचारों की साम्यता जैन आधार पर खरी उतरती है। पुराविदों ने पुरालिपि को पढ़ते समय यह तो ध्यान रखा कि भारतीय पृष्ठ भूमिका में भारतीय अध्यात्म को ही प्रस्तुत किया जाए और इसी हेतु वैदिक आधार पर पुरालिपि को पढ़ने का **प्रयास** भी किया किंतु उसे सीमित आधार पर ही **वैदिक, माहेश्वर सूत्र** और **अनुष्टुभ छंद** की सहायता से पढ़ा और पढ़ते समय भी जैनधर्म की प्राचीनता को पूर्णरूपेण भुला दिया । बस इसीलिए भटक गए । परम्परागत आधारों पर पलती बढ़ती दीर्घ भूतकाल से अनुभावित और ज्ञान सिंचित अपनी अमूल्य उस "मूल संस्कृति" को सही–सही न पहचान कर आने वाली पीढ़ियों को उनकी धरोहर से परिचित नहीं करा सके। वह परम्परा मानव की कुंठित जाति धर्म भावना तथा साम्प्रदायिकता के घेरों से परे है, क्योंकि वह मात्र अनुभवों पर आधारित है । वह ऐसी परम्परा है जिससे प्रत्येक सांसारिक प्राणी का जीवन जुड़ा हुआ है । उसे हम जो भी नाम देवें, अर्थ में हम उसी एक आत्मा में, ब्रह्म/रूह/सोल को ही महत्ता देते हैं । भारतीय अध्यात्म का रहस्य उसी आत्मा की **शाश्वतता**, पुर्नजन्म और उसकी **शुद्धात्म** स्थिति को प्राप्त करना अर्थात् (मोक्ष प्राप्ति) पर आधारित रहा है । आधुनिक विज्ञान भी इसे नकार नहीं सकता । इसी हेतु भारत की भव्यात्माओं ने अनादि काल से आत्मोन्नति की राह, तप के पथ पर चलना स्वयं प्रेरित होकर स्वीकारी । इसके लिए किसी बाहरी दबाब की **आवश्यकता** नहीं पड़ी न ही समझी गई । उस रहस्य को भुलाकर हम भारत की मूल लिपि को नहीं समझ सकते हैं ।

डारविन ने भले ही अनुमान से मानव का उद्भव बंदर से मान लिया किंतु **जिन शासन** विश्व की **शाश्वतता में विश्वास** करता है । जिन दर्शन में अब भी बंदर की संतति बंदर और मानव की संतति मानव है । इन पर्यायों में "योनि स्थान" की अपनी महत्ता है । चौरासी लाख योनियों के जन्मस्थानों की 9 प्रकार की स्थितियों में रहकर इस **शाश्वत** आत्मा ने अनादि काल से पर्यायें बदली हैं । वे सब कर्माधीन थीं और रहेगीं । जब तक कर्मों से मुक्ति नहीं है तब तक आत्मा अपने **शुद्ध** स्वरूप को नहीं पा सकेगी । नीम बोकर भला आम कभी मिला है ! जीन सिध्दांत भी इसे नहीं नकारता। "निगोद से लेकर सर्व विकसित मनुष्य पर्याय तक इस आत्मा ने अब तक न जाने अनगिनत बार ही भव चक्र में गोते खाए हैं" । इस स्थिति को सिंधु घाटी सभ्यता द्वारा एक सील में "स्वस्तिक से अंतहीन गठान की स्थिति परिवर्तन" को **दर्शाया** गया है । उस सभ्यता में "**आत्मा**" की अदम्य **शक्ति** को पहचाना गया है और पुरुषार्थ का मार्ग भी बतलाया गया है । आत्मा की उसी **शक्ति** की एक अन्य अभिव्यक्ति है **"ॐ"**। उसने उस **"ॐ"** को स्वर में भी पहचाना है और लिपि में भी । "**व्यवहार**" में वह अंतर्यात्रा है और "**निश्चय**" में आत्मस्थता । स्वर और भाषा तो सदैव रहे, लिपि में वह बिंदु से लकीर में बदली और लकीर वक्रता में । तब **शून्य ने जन्म लिया । शून्य**, वक्र, लकीर और बिंदुओं ने मूल लिपि को जन्म दिया और प्रथम तो नैसर्गिक वस्तुओं के आकार बने **पश्चात् उच्चारण** और प्रभाव के आधार पर संकेत अक्षर बने । ऐसे ही एक–एक अक्षर ने रूप पाया है । सैंधव लिपि में खड़ी, आड़ी, छोटी, बड़ी लकीरें **प्रभावशील** अक्षर हैं । ये बहुधा संयुक्ताक्षर बनाती हैं । वक्र **पुरुषार्थबोधक** अक्षर है । यथा इसकी अलग–अलग एकल प्रस्तुति भी संभव है और अनुक्रम भी । ये जब अनुक्रम में उपस्थित होते हैं तब इनकी चरम स्थिति के द्वारा प्रारंभ का ज्ञान होता है कि इन्हें किस क्रम में पढ़ा जावे ठीक वैसे ही जैसे कि बालकपन से किसी के जीवन चक्र को **दर्शाते** हुए उसकी वृद्धावस्था को भी **दर्शाया** जा सकता है अथवा कभी चरम स्थिति को देखकर "भूत.भविष्य" समझा जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम **दशा** में अवलोकन आगे बढ़ता ही है जबकि अन्य स्थितियों में वह आगे बढ़ने वाला तथा पीछे पलटकर देखने वाला भी बन सकता है । श्री महादेवन का लिपि पठन सूत्र ऐसी स्थिति में कभी–कभी अनदेखा होना संभव होता है । कभी–कभी अंत ही प्रमुख होता है और उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता ।

सिंधु घाटी अवशेषों में इसे **फील्डपशु** के द्वारा उसके सिर की ओर से पढ़ा जाता है यथा सीलों में बहुधा **फील्ड चित्र/पशु** पूर्वमुखी हैं । ऐसी स्थिति में लिपि को **पूर्व** से **पश्चिम/ R-L** पढ़ा जाना उचित लगता है । जिन सीलों में वे **पश्चिम** से **पूर्व** खड़े हुऐ हैं तब उन्हें **L-R** पढ़ा जाना उचित होगा। अन्यथा भी आरंभ और अंत तो देखना ही होगा।

अवलोकित सिंधु घाटी लिपि की 20 से भी अधिक कुंजियों के आधार पर इतना तो निर्णय हो चुका है कि सिंधु घाटी का संबंध जैन अध्यात्म से बहुत निकट का और गहरा रहा है । प्राप्त खंडित धड़ों का कायोत्सर्गी साम्य भी इस तरह के निर्णय बनाने में सहयोगी हुआ है । **दिशा सिद्ध होने के बाद संकेतों के अर्थ का ज्ञान भी अत्यंत आवश्यक** है अन्यथा कभी गंभीर त्रुटि हो जाना संभव है। **दिशा** बोध के लिए संकेतों को कभी आड़े–तिरछे अथवा कोनों से भी पढ़ा जाना अथवा कभी ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर पढ़ना भी संभव है । ऐसी स्थिति में वे "अक्षर" अपने आप में संपूर्ण बने रहते हैं । जैन अध्यात्मिक सिद्धांतों का अल्प ज्ञान भी इस लिपि पाठन में बहुत उपयोगी सिध्द हुआ है । लिपि में **अंकित प्रत्येक बिंदु और लकीर को ध्यान देना आवश्यक** हो जाता है । जहाँ कहीं अंकन घने अथवा खंडित और अधूरे हैं वहाँ भी उनका क्रम सहज ही पहचाना जा सकता है । विशेषज्ञों की साइन लिस्टों में इसका ध्यान न रखा जाने के कारण अनेक त्रुटियाँ हमारे अवलोकन में आई हैं यथा अंकित ||'||| छह लकीरों को एक अक्षर मान लिया गया जबकि **मेरे पाठन में** वह 3 अक्षर हैं |. |/. ||| तथा इन्हें पहचानने में छोटी सी भूल भी 'अर्थ' को बहुत भटका देती है । इसलिए सर्वप्रथम सिंधुघाटी की वर्णमाला बनाया जाना अति आवश्यक था । **पश्चात्** उन वर्णो का अर्थ समझा जाना । इस लिपि को मौन भी पढ़ा जा सकता है और उच्चारण की **विशेष आवश्यकता** नही है क्योकि श्रमण **अधिकांशतः** मौन ही रहते हैं/थे इसीलिए **मुनि** कहलाए। महावीर स्वयं केवलज्ञान प्राप्ति के 66 दिन बाद तक मौन रहे । **पश्चात्** उनकी दिव्य ध्वनि **"ॐ"** खिरी । किंतु संघों में संबोधन, उपदेश और प्रवचन का अत्यंत महत्त्व होने से स्वर की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती है ।

लिपि विशेषज्ञों ने सिंधु घाटी के अक्षरों को ब्राह्मी तथा बाद की भाषाओं के स्वर देने का प्रयत्न किया है किंतु ब्राह्मी ने मात्र 27 **संकेताक्षर** ही सिंधु घाटी लिपि से लिए हैं, जबकि ब्राह्मी और सिंधु घाटी के काल के बीच लंबा अंतराल होने से अक्षरों को ब्राह्मी के स्वरों का आधार दे पाना अत्यंत भ्रामक हो जाता है। हमने इन मूल अक्षरों को संकेतों से ही पहचाना है।

एक बालक जिस प्रकार अपनी अभिव्यक्ति को रूप देने का प्रयास करता है ठीक उसी प्रकार सिंधु घाटी लिपिकारों ने मिट्टी, धातु और अस्थि पर अपने **उद्देश्यों को** अति सफलता से अभिव्यक्त किया है । अर्थात् घर/संघ, नदी, छत्र, पर्वत, साँपसीढ़ी खेल आदि का दिखलाया जाना । इतना **अवश्य** है कि वह लिपिकार चित्राक्षर, संकेताक्षर और संयुक्ताक्षर बनाते समय अपने **उद्देश्य** के प्रति अत्यंत सावधान रहे हैं इसीलिए वह सफल भी हुए हैं । चित्रों के अंकन में उन्होंने रेखांकन के साथ–साथ **शेडिंग** की अति सुंदर झलक दी है जो बेजोड़ है । प्रत्येक **पशु** के अंकन में उनने अपनी यह दक्षता **दर्शाई** है । यह उस काल के कलाकारों की कला की ऊँचाई **दर्शाता है** । जितना उत्कृष्ट योगदान उस अंकन में सैंधव कलाकार का रहा है उतना ही सावधान और सफल योगदान हमारे उन पुरातत्ववेत्ताओं का है जिन्होंने सम्पूर्ण भूगर्भित सामग्री को सुरक्षा से बाहर निकलवा कर कण कण भूमि को छनवाकर सूक्ष्मतम प्रतीकों को साफ सुथरा करवाकर उनको अत्यंत सुंदर फोटोग्राफी द्वारा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमरत्व दिलाकर उसे एक एक छांटकर पाठकों के सम्मुख परोस दिया है । सैंधव कलाकारों की भावात्मक अभिव्यक्ति को विद्वानों तक पहुंचाने का कार्य भी बड़ी सफलता से पूरा हुआ है । वह "सीमेंटिक्स" ही वास्तव में सैंधव पुरालिपि का **प्राणाधार** है। रही बात उसे समझने और पहचानने की सो वह तो सीधे बुद्धि से जुड़ा हुआ है, जिसे तपलीन प्रत्येक "जिन श्रमण" ने समझा है। **आवश्यकता** अब इस बात की है कि किस प्रकार उस "सीमेंटिक्स" से लिपि वाचकों को अवगत कराया जावे क्योंकि सैंधव लिपिकार की अभिव्यक्ति और वर्तमान वाचकों की सोच और अर्थ ग्राह्यता में **विशाल** धरातलीय अंतर है जिसे मेटा जाना अत्यंत **आवश्यक** है । अक्षर सदैव संकेत होता है। स्वरों में बांध, उसे **शब्द** बना अर्थवान बनाया गया है।

इतना तो सच है कि मूल पुरा सामग्री का अवलोकन किए बिना मात्र चित्रों के आधार पर रेबस विधि से चिंतन करके उन्हें पठन हेतु उपयोग करना भ्रामक हो सकता है किंतु सूक्ष्म अंकन के अध्ययन हेतु प्राप्त **कुंजियों का आधार हमें दिशा** बोध देने के लिए अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ है । कुंजियों से अब इतना भी **निश्चित** हो चुका है कि सिंधु घाटी वैभव, जैन अध्यात्म का ही परिचायक है अतः उसका सैद्धांतिक ज्ञान पुरा लिपि को पढ़ने में अत्यंत **आवश्यक** है। यह जन सामान्य की लिपि नहीं श्रमणों और साधकों की लिपि होने के कारण सहज रूपेण उनके ज्ञान में झलकी है, और परम्परागत आगे बढ़ी है । **इसी कारण आज भी ये श्रावकों की दैनिक पूजा का अंग है** । कुछेक प्राचीन मूर्तियों पर जो मंत्र अंकित प्राप्त हुए हैं वे संकेत करते हैं कि किसी काल में भाषा हेतु उनका प्रयोग **अवश्य** प्रचलित रहा है । संभवतः ऊँ, ह्री,, अर्हं, ब्लूं, क्लीं, अर्हंलृब्यूं, स्वल्र्व्यूं, भ्म्ल्र्व्यूं, घ्रीं, आदि तथा अन्य अनेक जिन्हें अब हम नहीं उच्चारते। **रेबस** पाठन विधि में **चित्र** को आधार बनाया जाता है जबकि सैंधव लिपि में **भाव** अभिव्यक्ति प्रधान है। यही इस पाठन की विशेषता है।

प्राचीन सिक्कों में भी यह चित्रमय सैंधव लिपि अंकन पूरा--पूरा झलका है । मौर्य कालीन सिक्कों तक अनेक पुरालिपि संकेताक्षर सहज दृष्ट होते हैं भले ही उनका अर्थ और उच्चारण बदल गए हों अथवा कि वे परम्परागत बिना अर्थ जाने ही सहेजे गए हों । जो भी हो उनका होना ही उन्हें भारतीय मूल संस्कृति से जोड़ देता है जिस पर न केवल भारतीयों को बल्कि उन समस्त कौमों, कबीलों को नाज है जहाँ जहाँ वे अपनी उपस्थिति आज **भी दर्शाते** हैं । इस लिपि को पढ़ने की एकमात्र विधि सैंधव संस्कृति को उसके मूल भारतीय परिप्रेक्ष्य में गहरे उतरकर झांकने जानने पर ही मिलेगी अन्यथा नहीं। यह वह शाश्वत संस्कृति है जिसे उत्सर्पिणी अवसर्पिणी जैसे काल सर्प भी ना मेट सके क्योंकि यह आत्मसंस्कृति है।मनुष्य को मानवता का पथ दर्शाती संस्कृति है। इसे भारत में रहकर ही समझना पड़ेगा। कहावत 'बी ए रोमन इन रोम ' की तरह इसे सच्चा भारतीय बनकर देखना होगा। भारतीय उत्तरकालीन संस्कृतियाँ भी उसी की ही चाशनी में पगी हुई स्वयं को **हिंदू** कहती हैं।

इस गुरुतर शोध कार्य एवं प्रकाशन में पूरा पूरा सहयोग ब्लू फील्ड, अमेरिका के **श्रीमति रमा देवी बिहारी लाल दिगंबर जैन ट्रस्ट** का रहा है जिसके लिए **मै ट्रस्टियों** की विशेषकर **डॉ. पुष्पा रानी** एवं **डॉ. श्रीमती छाया जैन** की ह्रदय से आभारी हूँ । हमारी शोधार्थी टीम के सभी सदस्यों, **श्रीमती आशा रानी मलैया, इंजीनियर जिनेन्द्र जैन** एवं फोटोग्राफर श्री **रूडी जन्समा** के आंशिक सहयोग के लिए भी मैं हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने मेरी इस साधना को पूर्णता दिलाई। इस शोध कार्य को वर्तमान स्थिति तक लाने के लिए जिस विशाल राशि और परिश्रम की आवश्यकता रही है पाठकगण उसका अनुमान संभवतः नहीं लगा सकेंगे इसलिए इस अनमोल कृति का कोई मूल्य ना दर्शाते हुए इसको सुधी पाठकों को न्योछावर राशि के सहारे सौंप रही हूँ। वही इसके सही पारखी होंगे।

ब्र. स्नेह रानी जैन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सैंधव वर्णमाला

पुरातत्त्वज्ञों द्वारा दी गई सैंधव वर्णमालाऐं आपस में भिन्नता रखती हैं । वे सब संकेताक्षर और चित्राक्षर हैं । प्रथम तो इन वर्णमालाओं का बिना किसी आधार के बनाया जाना ही बड़ा दूभर कार्य था । दूसरे भिन्न–भिन्न लिपिकों के हाथों से उकेरी जाने के कारण संकेतों में थोड़ी बहुत भिन्नता हमारे पुरातत्त्वज्ञों को बिना मूल अध्यात्म का ज्ञान पाए कर पाना बेहद कठिन बात थी । सौभाग्य से उनके हाथ कम्प्यूटर लगते ही चित्रों/संकेतों का आंकलन ग्राफिक्स से किया गया । उसमें थोड़ी सी भी आकृति की हेर फेर ने सैंधव वर्णमाला को अत्यंत जटिल बना दिया ।

गुत्थी सुलझाने भाषाविद् सामने आ गए तो उनका पूर्वाग्रह उनके परिश्रम को कई गुना बढ़ा गया क्योंकि वे सभी वेदों पुराणों, गायत्री मंत्रों और अनुष्टुप छंदों में मूल लिपि की सुंगध खोजते रह गये । भारत की इस मूल लिपि ने **विश्व** को ऐसा प्रभावित किया कि समूचा **विश्व (अमरीका, रूस, यूरोप, चीन, मध्यदेश** आदि) भारत में अपने मूल अस्तित्व को खोजता दौड़ा आया क्योंकि, भारत प्राचीन काल से ही ज्ञान की मशाल प्रसिद्ध रहा है । उसे सबने सदैव सोने की चिड़िया इसलिए माना क्योंकि यहाँ की जलवायु अत्यंत अनुकूल; **पशु पक्षी, पौधे; फसलें, वन, फल–फूल** सदैव आकर्षण का केन्द्र रहे । नदियां; पर्वत, कछार ; मुहानें, समुद्र सभी ने मिलकर इसे ऐसा **देश बना दिया है कि विश्व के सारे मौसम, सारी उपजें, सारी संस्कृतियाँ, सारा वैभव** इसी के घेरे में प्रतिबिंबित हो उठे हैं । सारी मानव प्रजातियां दीर्घ काल से यहाँ समायी हुई हैं फिर भी सभी अपने आप में स्वस्थ सुरक्षित हैं । इससे ही सारे धर्म यहाँ स्पन्दित हैं परन्तु सभी स्वतंत्र और अलग–अलग हैं । कभी किसी ने दूसरे को दबाना भी चाहा तो भी उसे मिटा नहीं सका । कितनी ही संस्कृतियाँ आयीं और गईं किन्तु, **मूल संस्कृति** फिर भी अक्षुण्ण बनी रही। यहाँ गरीब भी **प्रसन्न** थे और धनी भी । उल्टे धनिकों ने त्याग मार्ग स्वीकार कर धन को ठुकराया, दान किया । त्यागा और तप की ओर मुड़ गये । तीर्थंकरों के पथ पर राम ने वनवास काटा। पाण्डवों ने राज पाट त्यागा । बची रहीं सब निधियाँ सदा से इसे धनांधों के लिए "सोने की चिड़िया" बना गई । अंग्रेजों ने भारत छोड़ा, तो उसे खोखला कर दिया था, किन्तु भारत की उर्वरा भूमि ने संतति को पुनः संभाल दिया । इस धरती पर अहिंसा का साम्राज्य ही सदैव रहा वरना जब–जब अहिंसा छूटी धरती ने करवटें बदलीं । आज पुनः उस कृषि प्रधान **देश के गोधन** पर भयंकर खतरा उपजा है । पक्षियों, मुर्गियों, बटेरों, भेड़ों, बकरों, मछलियों पर भी इंसान हैवान बनकर हावी हुआ है । इसका संकेत सुखद नहीं है । ऐसी परिस्थितियों में भला कैसे कोई सैंधव लिपि का अर्थ समझेगा ? अतः सबने उसे अपनी–अपनी तरह से पढ़ने के प्रयास किए और सब हारते गए । अध्यात्म की भाषा ने अपना रहस्य अध्यात्म से खोला और इसे पढ़ लिया गया है । अवलोकनार्थ **विशेषज्ञों** द्वारा प्रस्तुत की गई संकेताक्षर सूचियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं यथा :

1 **श्री माधो सरुप वत्स** द्वारा प्रस्तुत की गई संकेताक्षर सूची

2 **श्री मार्शल** द्वारा प्रस्तुत की गई संकेताक्षर सूची

3 **श्री पोसेल** द्वारा प्रस्तुत की गई संकेताक्षर सूची

श्री महादेवन के व्दारा तैयार की गई कान्कार्डेस भी समुचित उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करती है। उसे यहाँ' नही दर्शाया गया है क्योंकि वह उपरोक्त सूचियों पर ही आधारित है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

12715	[illegible]
12420	[illegible]
J-322	[illegible]
1265	[illegible]
11305	[illegible]
9080	[illegible]
11659	[illegible]
11304	[illegible]
11266(a)	[illegible]
11233	[illegible]
12150	[illegible]
H-537	[illegible]
2367	[illegible]
1633	[illegible]
2703	[illegible]
12750	[illegible]
11077	[illegible]
G-107	[illegible]
A(a)130	[illegible]
5389	[illegible]
2893	[illegible]
1672	[illegible]
10142	[illegible]
10805	[illegible]
10226	[illegible]
11852	[illegible]
10829	[illegible]
741	[illegible]
12132	[illegible]
Pl-44	[illegible]
J-581	[illegible]
Ai-97	[illegible]
B-234	[illegible]
5634	[illegible]
Ai-279	[illegible]
2482	[illegible]
4076	[illegible]
10625	[illegible]
11219	[illegible]
12056	[illegible]
201	[illegible]
11291	[illegible]
11798	[illegible]
12216	[illegible]

	10142	[illegible]
	4058	[illegible]
	2540	[illegible]
	11458	[illegible]
	5254	[illegible]
	J-361	[illegible]
	J-525	[illegible]
	3509	[illegible]
	5534	[illegible]
	A-233	[illegible]
	B-951	[illegible]
	4079	[illegible]
	J-493	[illegible]
	J-213	[illegible]
	F-42	[illegible]
3170		[illegible]
	J-455	[illegible]
	Ai-553	[illegible]
2789		[illegible]
7354		[illegible]
	J-250	[illegible]
	11022	[illegible]
	1200	[illegible]
	2081	[illegible]
	G-191	[illegible]
//	10061	[illegible]
3	12194	[illegible]
×		
[illegible]	Pl-39	[illegible]
5		
[illegible]	J-48	[illegible]
5.	12493	[illegible]
[illegible]	1172	[illegible]
6	12420	[illegible]
	1379	[illegible]
	12416	[illegible]
	J-483	[illegible]
	D-38	[illegible]
	11233	[illegible]
	A-263	[illegible]
	2381	[illegible]
	9041	[illegible]
	11547	[illegible]

	1591	[illegible]	
	11379	[illegible]	
	3716	[illegible]	[illegible]
	12377	[illegible]	8.
	G-107	[illegible]	[illegible]
	1059	[illegible]	9
	Ai-553	[illegible]	
	12493	[illegible]	
	Ai-922	[illegible]	
7354		[illegible]	
	4041	[illegible]	
	7155	[illegible]	
	3611	[illegible]	
	10980	[illegible]	
	P-133	[illegible]	
	H-611	[illegible]	[illegible]
			10
	1500	[illegible]	
	4553	[illegible]	[illegible]
	11830	[illegible]	11
	11795	[illegible]	
	474	[illegible]	
	4015	[illegible]	
	J-491	[illegible]	
	10831	[illegible]	
	7006	[illegible]	×
	5436	[illegible]	[illegible]
	A-214	[illegible]	12.
	11049	[illegible]	[illegible]
	11039	[illegible]	12.
	5975	[illegible]	[illegible]
			13
///	PIII-7	[illegible]	
7	11332	[illegible]	
	8716	[illegible]	
	G-217	[illegible]	
	10695	[illegible]	
PIV-114		[illegible]	[illegible]
	6650(n)	[illegible]	14
[illegible]	4703	[illegible]	[illegible]
8	12095	[illegible]	15
	Ai-279	[illegible]	
	J-213	[illegible]	
	8350	[illegible]	

12481	[illegible]
12574	[illegible]
11136	[illegible]
12581	[illegible]
4179	[illegible]
4063	[illegible]
8650(a)	[illegible]
94	[illegible]
10740	[illegible]
3787	[illegible]
11705	[illegible]
5399	[illegible]
6650(n)	[illegible]
J-28	[illegible]
12548	[illegible]
J-403	[illegible]
J-30	[illegible]
11695	[illegible]
3611	[illegible]
12251	[illegible]
12721	[illegible]
10165(n)	[illegible]
11331	[illegible]
A(i)18	[illegible]
12548	[illegible]
10102	[illegible]
8483	[illegible]
5152	[illegible]
B-[illegible]	[illegible]
A(a)62	[illegible]
115	[illegible]
11697	[illegible]
A-441	[illegible]
7591	[illegible]
12185	[illegible]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	2700
	J-530
	4042
	1056
	11458
	2281
	Pl-V-14
	2830
15	12216
16	
	Pl-40
17	J-449
	1235
	12104
17	
	10261
17	
	4765
18	10242
	11942
	A-09
	7354
	Pl-21
	7411
	1172
19	4044
	J-30
	12251
	J-28
	10821
	11331
	11942
	1244
	4795
	A-09
20	J-494
	7863
	11331

	J-530
23	Pl-8
25	2611
26	Pl-42
	7113
	11458
	2587
	A-102
	2561
28	5033
	11389
31	12415(a)
	Pl-V-14
	10162
	1561
	11467
	2281
	10536
	4331
	120
	Pl-42
32	4257
	J-273
32	J-466
36	1309
	4065
	3771
	10942
	12721
37	3716
37	Pl-42
	Pl-41

37	8-181
	474
	Ad-353
38	J-819
	3758
39	3482
	2260
	3771
	2500
	2921
	11369
	Pl-2
	J-579
	0360
	Pl-21
	3170
	12637
39	11553
	12721
40	2830
	11896
	849
	J-329
	A-214
	J-213
	7786
	5211
	11476
	5546
	10779
	1112
	12716
40	H-715
	J-497
40	12721
40	12040
40	11716

41	H-605
	10011
41	J-46
41	11554
43	12751
	10818
	272
	11895
	398
	H-150
	Ad-022
	3725
	A-30
43	81
47	11756
	10830
	11390
	10242
	12537
	3170
	316
	4765
47	4331
	4078
48	11452
	11535
	11458
	J-455
	Pl-23
	9041
48	10835(a)
	10178
50	Pl-2
	A-102
50	5388

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

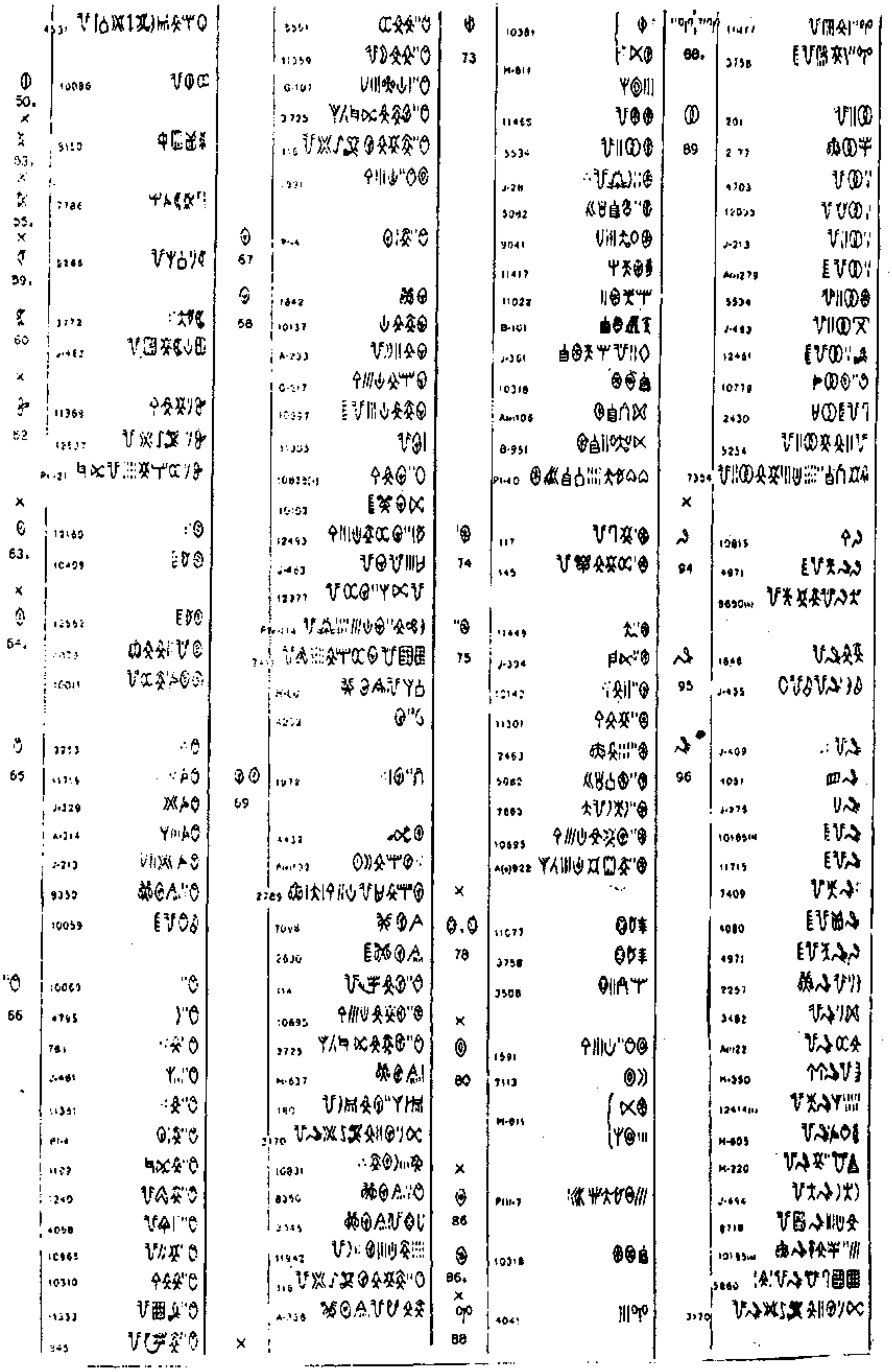

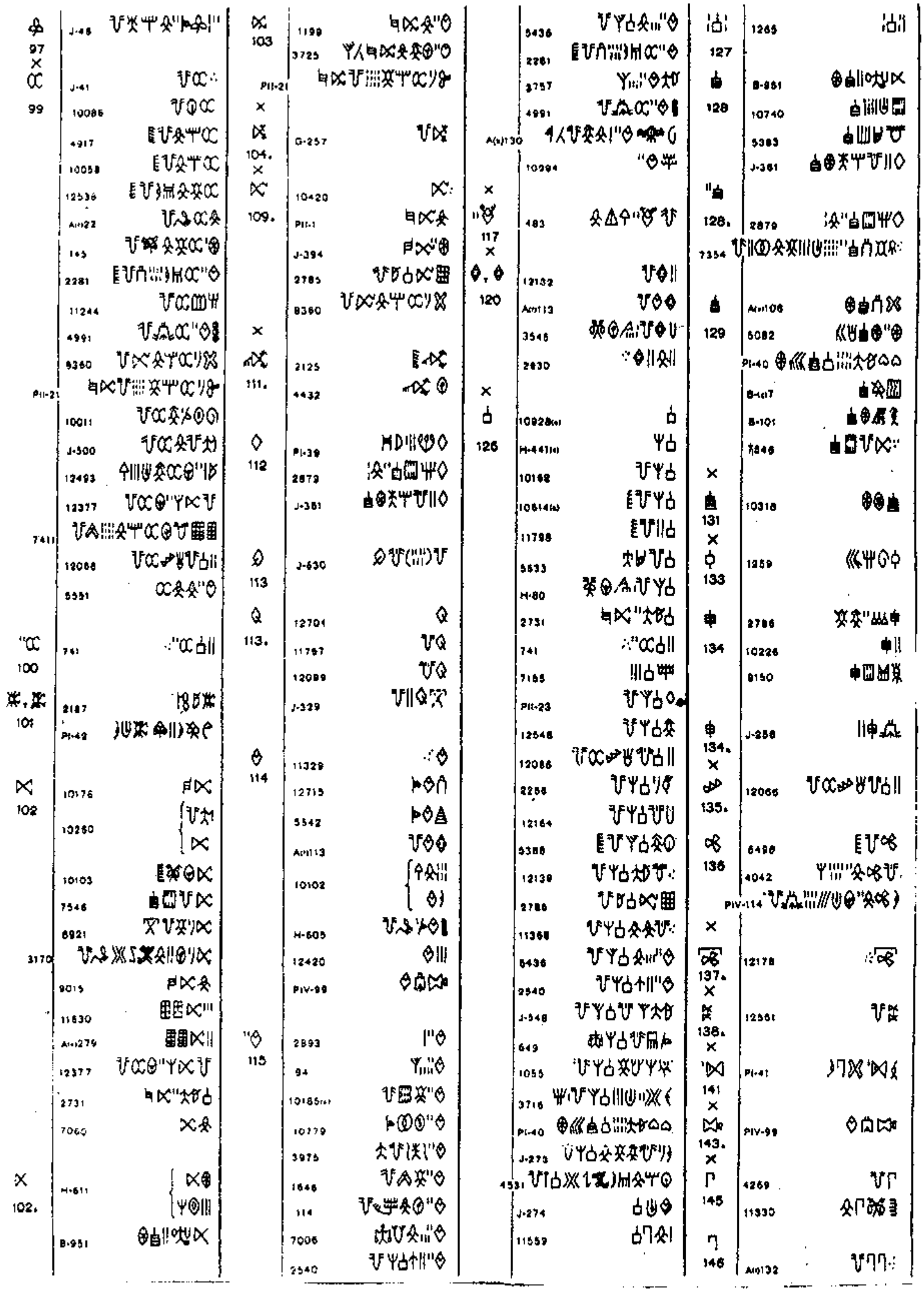

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Sign No.	Text No.
	5724
	7786
	2430
	117
	11559
	5880
	Pl-41
146.	6399
153	J-466
	433
153.	J-228
154	12180
	5542
	7591
	H-160
	H-220
	2390
154.	12185
	B-[illegible]
154.	G-290
157.	11244
158	3080
158.	2788
159	5152
	11714
	J-274
	10102
	12549
	483
	2789
	3951
	11027
	10815
	9080

Sign No.	Text No.
	5458
	4396
	10060
	11304
	9059
	11233
	1009
	10310
	10835(s)
	C-290
	11381
	3771
	11369
	11379
	1591
	G-217
	10895
	12493
159.	11796
159.	J-402
159.	12420
	11334
162	7786
163	8350
164	2630
	3545
	A-336
165.	H-637
	H-80
167.	7098
168	1240
170	868
	1244
	G-175
	1646

Sign No.	Text No.
	7411
171	1244
	8910
	B-[illegible]
174.	8850(n)
177	Pl-40
180	1259
	B-191
180.	A(s)130
180.	4252
181	10011
181.	12721
181.	12576
181.	4078
182	4276
182.	4991
	H-605
183	G-104
184.	10965
	A-233
189	1056
195	12099
	5630(n)
	11077
	3758
	J-630
	J-455
	12377

Sign No.	Text No.
198	5630(n)
	8080
	2118
	H-550
203.	Pl-41
204	B-101
205	Pl-53
214	10059
	J-465
214.	4016
214.	2866
	2785
214.	11757
	11756
219	12747
	12184
	10980
	3545
	11882
	8850(n)
	4078
	12574
	12562
	1172
	12581
	G-175
	1419
	J-275
	9041
	J-213
	10625
	J-630
	G-107
	J-455
	12377
	J-273

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Sign	Text no.
219. × 223	J-463, 7483, 3803, 1200, 5383, 5833, 10625, 2789
223. × 225. × 227	867, J-630, 11331, 11233, 10740, D-38, A-253, 8716, J-462, H-160, 12574, 11379, 11942, 10695, 2789, 10137
228	3544, 12750, 12752, J-274, PIII-38, 11332, 12721, 1591, G-107, 3716, G-217, 10997, A(s)922, PIV-114, 12493, 1354
	PI-42
× 231	5253
232	12575, 2728, 12035, 8650(n), 8650(n), 12131, 7006, 11332, 8053
× 233.	4965
234	G-175, 1055
× 236 × 237.	A-336, 868
238	J-450, 11626, 11138, 4662, 12329, J-449, 8650(n), J-582, J-630, 12377, 5254, 10010, 10928(n), 11452, 11516, 11715, 10185(c), 12327, 12442(n), 12581, 5498, 7483
	2891, 6411, 7546, 21, 2433, H-550, 11798, 10059, 10614(a), 10928(n), 1235, 11266(n), 11291, 12185, 12216, 2568, A(s)279, 4080, 4631, 5634, 1419, 7563, 6800, 11064, 11449, 11795, 5617, 11467, 12750, 4971, 12461, J-359, 5253, 5974, 6921, J-435, A-336, J-455, 11849, 3758, 5388, H-160, 10997, 12438, 2231
	PII-21, G-104, B-1341, 10361, 10818, 11757, 12561, 2531, J-409, 4259, 4276, H-643, Am132, A(s)113, 10081, 10162, 11466, 11893, J-219, J-30, PI-44, A-441, 4703, J-581, 12132, 5724, 5810, 7409, 7591, 868, Am22, 117, 12281, 1200, 1697, 10966, 11244, 11333, 12035, 12548, 12574, PII-23, J-213, 5219, J-329

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

J-493
1646
J-494
4056
4078
4553
845
J-228
A-233
11077
12139
12164
3508
J-28
H-220
2266
J-463
H-605
PI-2
145
10011
12537
2540
4965
J-548
J-579
5436
8718
474
150
12066
6360
8650(a)
11942
116
3170
7411
4531
7354
483
10185(c)
10260

238a

238b

11331
114
1055
P.V-114
J-500
12418
10056
10960
G-257
5083
10086
3803
G-175
1500
1646
3462
2981
12414(a)
4991
J-482
J-48
11440
3611
J-575
483
5211
12575
8650(a)
2257
12104
3975
12066
4917
8650(a)
2789
5880
A(a)130
J-41
4586
4041
4044
10186
11305

239

240

240a

×

2728
627
3844
201
10185(a)
272
1240
5534
2118
2700
2785
12131
11359
11332
11696
2765
11388
1056
7354
5399
3545
H-80
3716
1692
4042
11388
12164
2961
4079
J-463
J-548
J-361
474
12721
A-263
11788
12139
J-630
J-273
649
12066
8650(a)

241a

242

242a

243

243a

×

247

248

×

251

251a

×

253

×

255

255a

256

2960
7411
12099
H-220
5383
11705
G-175
5880
474
627
1056
2898
PI-39
11757
8650(a)
5383
11349
10080
11022
4531
J-361
6360
4043
11798
12704
11417
5617
A(a)102
4917
10058
G-217
J-579
PII-21

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Sign	Text No.
	J-46
	7411
	11334
	3508
	J-402
257 ×	2789
260	B-1341
	6650(a)
	7155
260.	10994
	2177
	10185(a)
260a ×	11038
261,	J-579
261.	114
261.	945
262	2879
	1259
	PIII-7
	3716
×	
263.	11244
	11304
	5083
	12066
264	8154
	11715
	12562
	10928(a)
	11390
	8600
	11064
	4971
265	10224
	11136

Sign	Text No.
	12575
	12150
× 267	10010
268	11504
	1722
	1423
	4552
	11468
	272
	10185(c)
	10409
	12329
	12442(a)
	2891
	5498
	8650(a)
	1692
	1419
	10059
	4080
	11798
	10814(a)
	12549
	A(s)279
	1235
	2630
	10960
	J-359
	5617
	10058
	B-191
	10242
	10997
269	12127
	12581
	7483
	12104
	12216
	12750
269.	11795
	3758

Sign	Text No.
	12538
269a	11330
	J-274
	H-550
270	2430
	A(s)97
	10103
	11756
	11291
	12416
	2482
	2868
	12461
	5388
270.	11696
	2125
	10359
	10830
	2867
	4631
	4917
	5974
	8650(a)
270a	11452
	2281
270c	11417
	8650(a)
271	J-283
	11714
	11467
	12415(a)
272	A(s)130
272a	517
273	5082
	1259

Sign	Text No.
	2119
	PI-40
	PIII-7
273.	11458
274	3725
	PII-1
	1199
	2731
	PII-21
×	
275.	10178
	9015
	J-394
× 277	1009
	2540
	A(s)563
	3771
	4965
× 279 ×	10960
281	9059
281a	11349
	7354
× 283	3771
	PI-2
	8360
	4078
	H-643
	J-582
	116
283.	11476
	A(s)100
	3482
	3503
	J-228
	11084
	PI-41
	J-213
	J-523

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

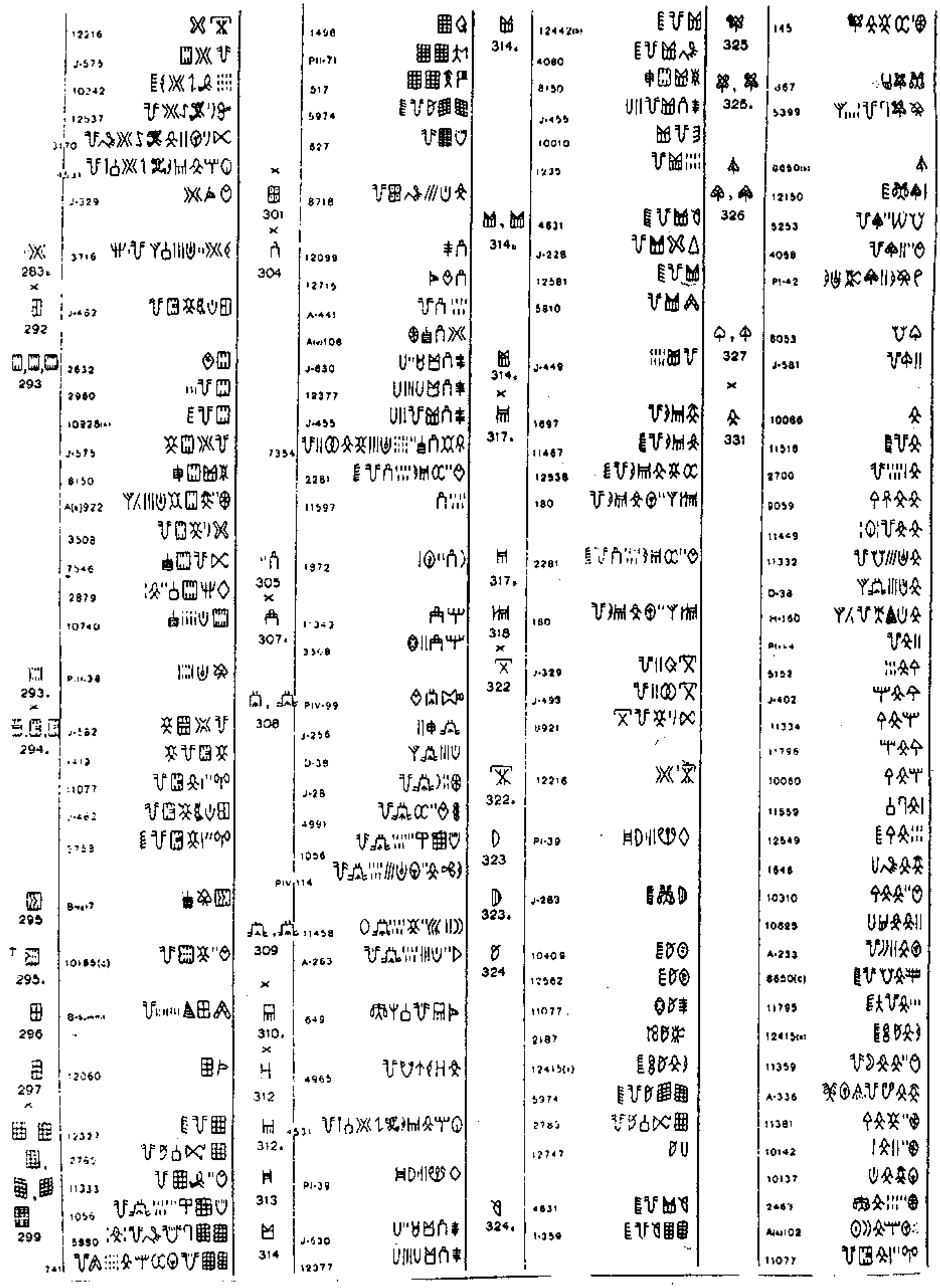

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Sign No.	Text No.
	7006
	J-500
	10058
	G-217
	5438
	5254
	12538
	10185(?)
	2789
	4531
	10102
	11849
	145
	4079
	11331
	116
	8360
	A(s)130
	3170
	J-273
	7411
	7354
	A(i)18
	115
	781
	12751
	8650(?)
	11330
	483
331. ×	1722
333	12131
	4042
	PIV-114
333a	2879
334 ×	Ai97
335. ×	1692
337	2930
338	11467
	3725
	11361
	7060
	11714
	9015
	8718
	4917
	11389
	180
	10695
339	11027
	PII-1
	9015
	4965
	2390
	5634
	11449
	10835(?)
	5551
	10625
	10997
	8080
	5498
339a	A(s)553
340	3001
340a	11368
	4079
340b	10224
341	10186
	2390
	2728
	5498
	8650(s)
	1419
	G-175
	1009
	4390
	117
	10185(s)
	1846
	10928(s)
	10968
	11288(n)
	11381
	12131
	12838
	G-290
	3508
	11389
	11788
	8821
	145
	H-220
	3758
	10895
	J-462
	J-579
	1055
	J-46
	11458
	474
	PII-21
	J-273
	7354
	J-580
	12185
	J-274
	J-575
	J-582
	2785
	116
	5254
341a. ×	8850(s)
344	12302
	Ai22
	398
	1199
	5551
	11388
	J-274
	11359
	114
345	5880
346	4398
	1897
	10928(s)
	8800
	398
	12548
	1848
	A-336
	A(s)563
	10137
	5388
	945
	1240
	10997
	11942
	A(s)922
	116
	2788
	12131
	3725
	10011
	8850(s)
	J-273
	12493
	A(s)130
	11392
	10831
346a. ×	PI-4
349	2284
	B-101
	517
356. ×	11331
359 ×	A(s)130
360. ×	PI-2
365.	3459

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

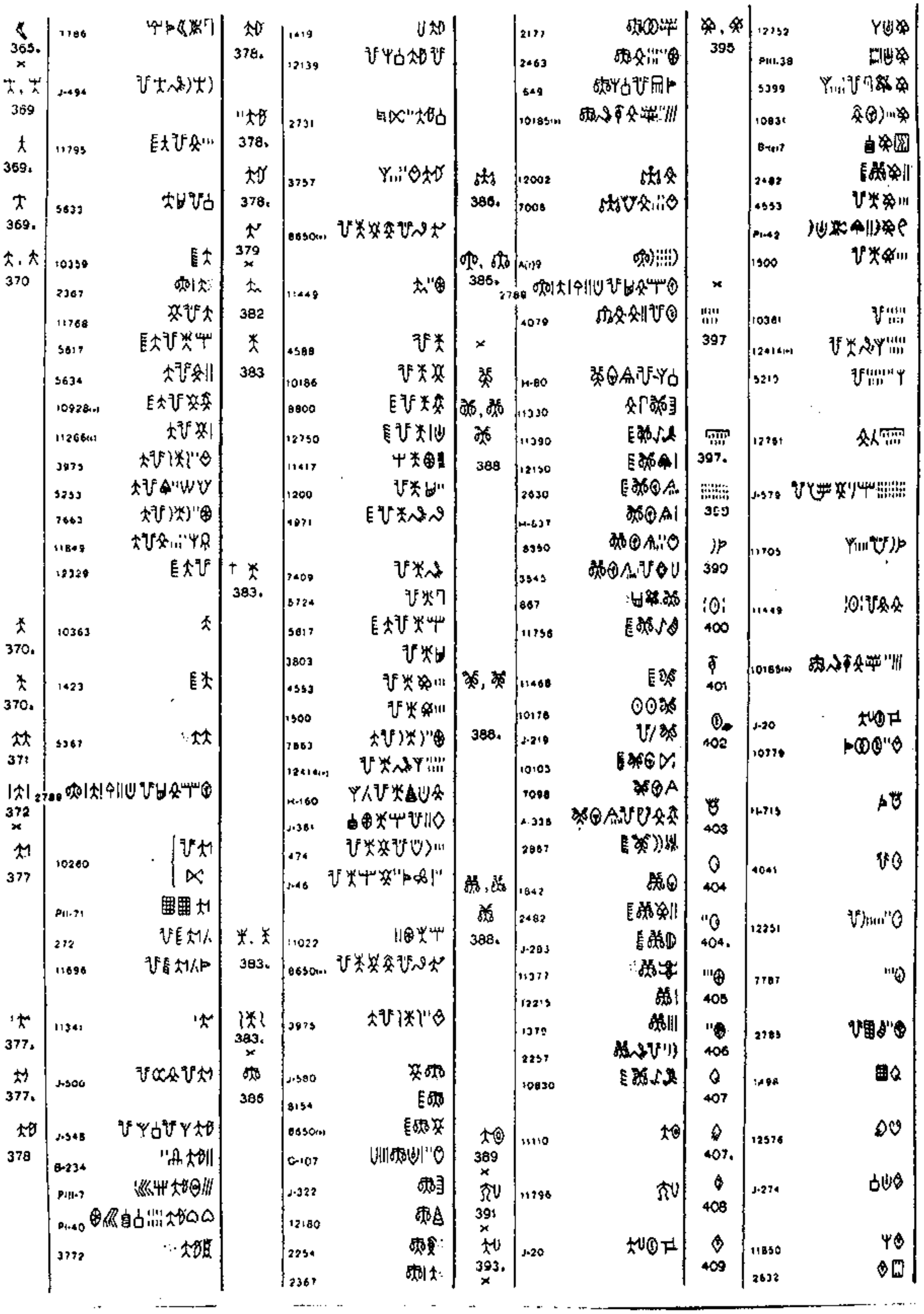

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर जौंन मार्शल की मोहन्जोदड़ो संबंधी संकेताक्षर सूची

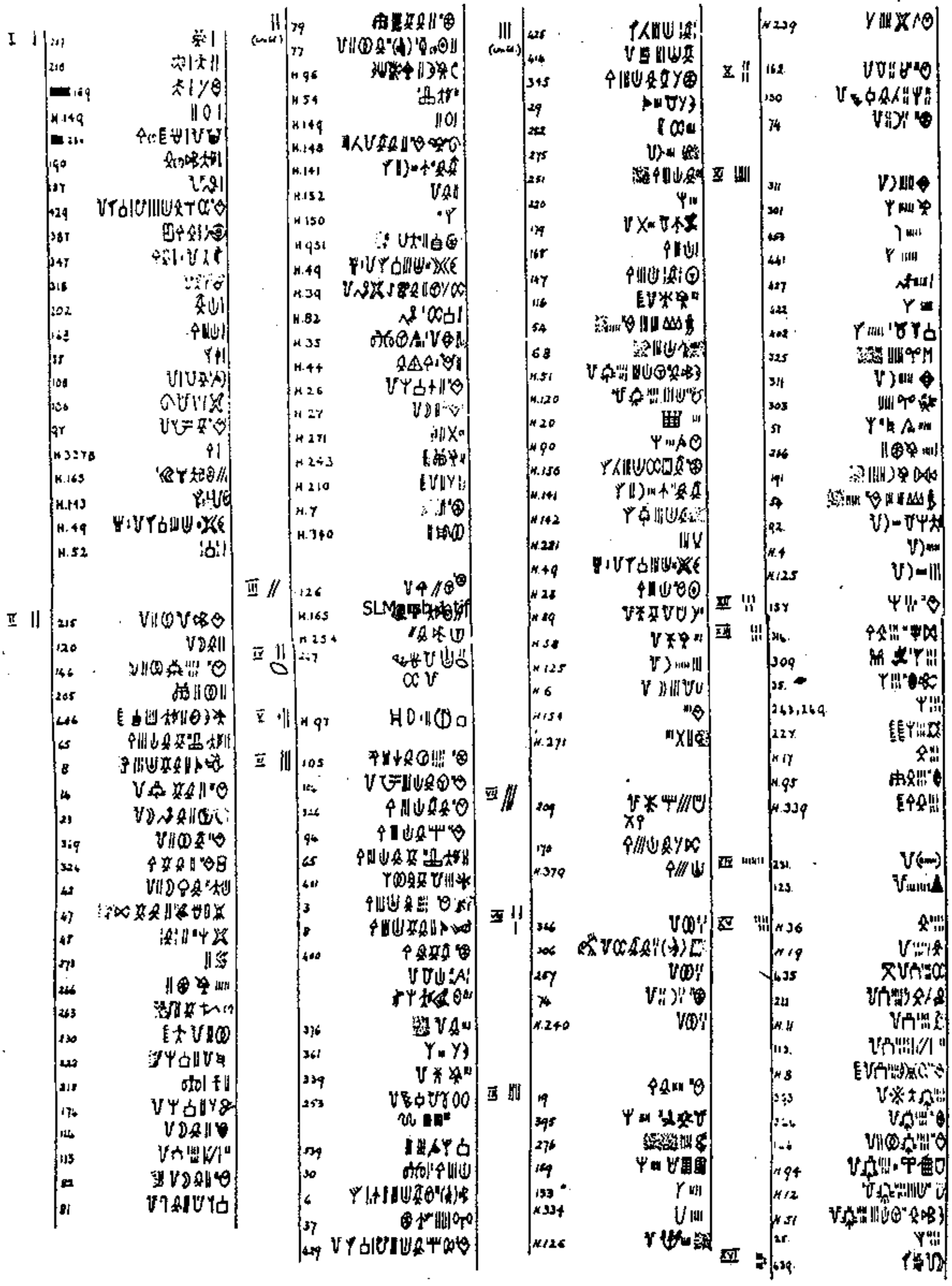

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

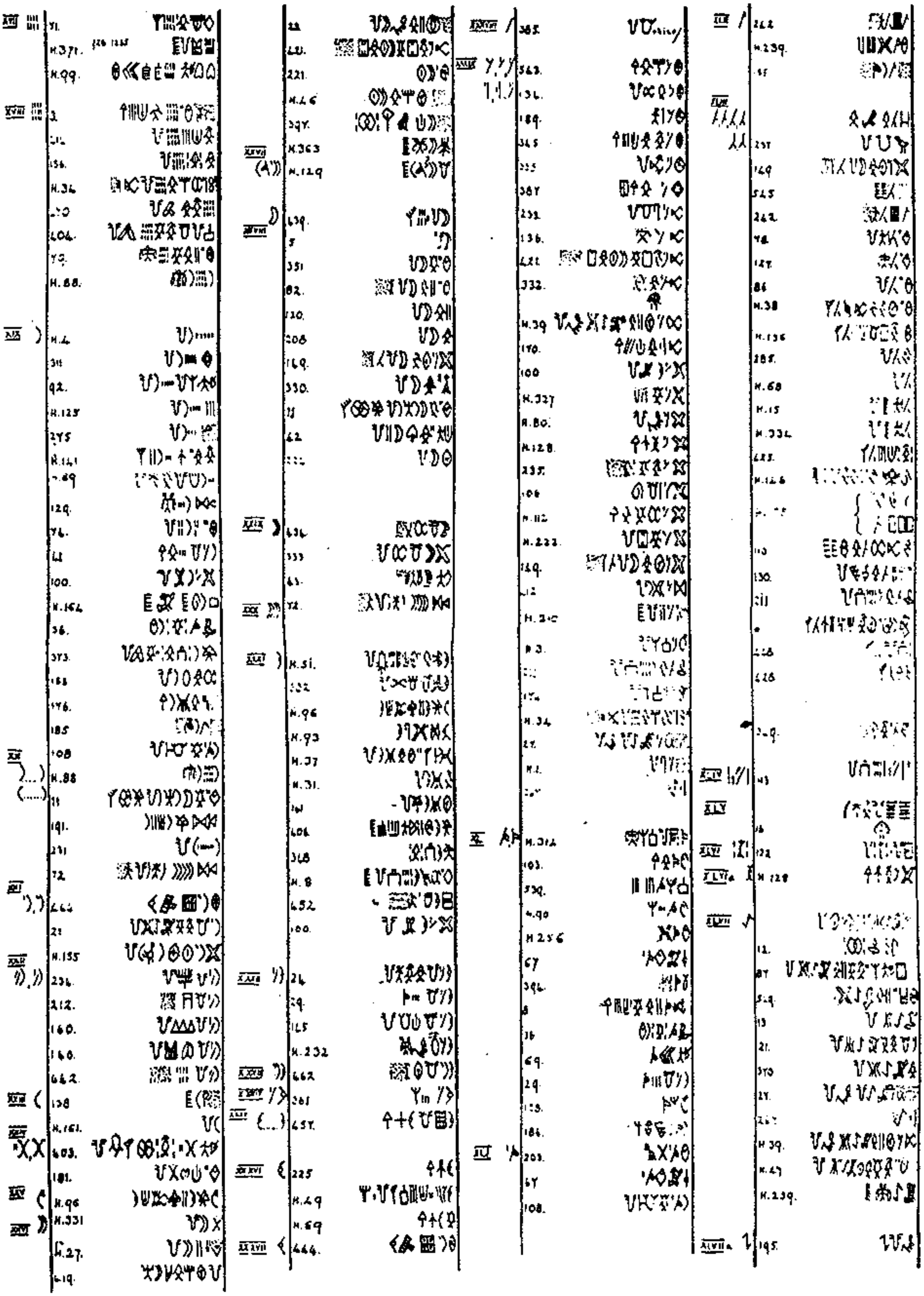

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

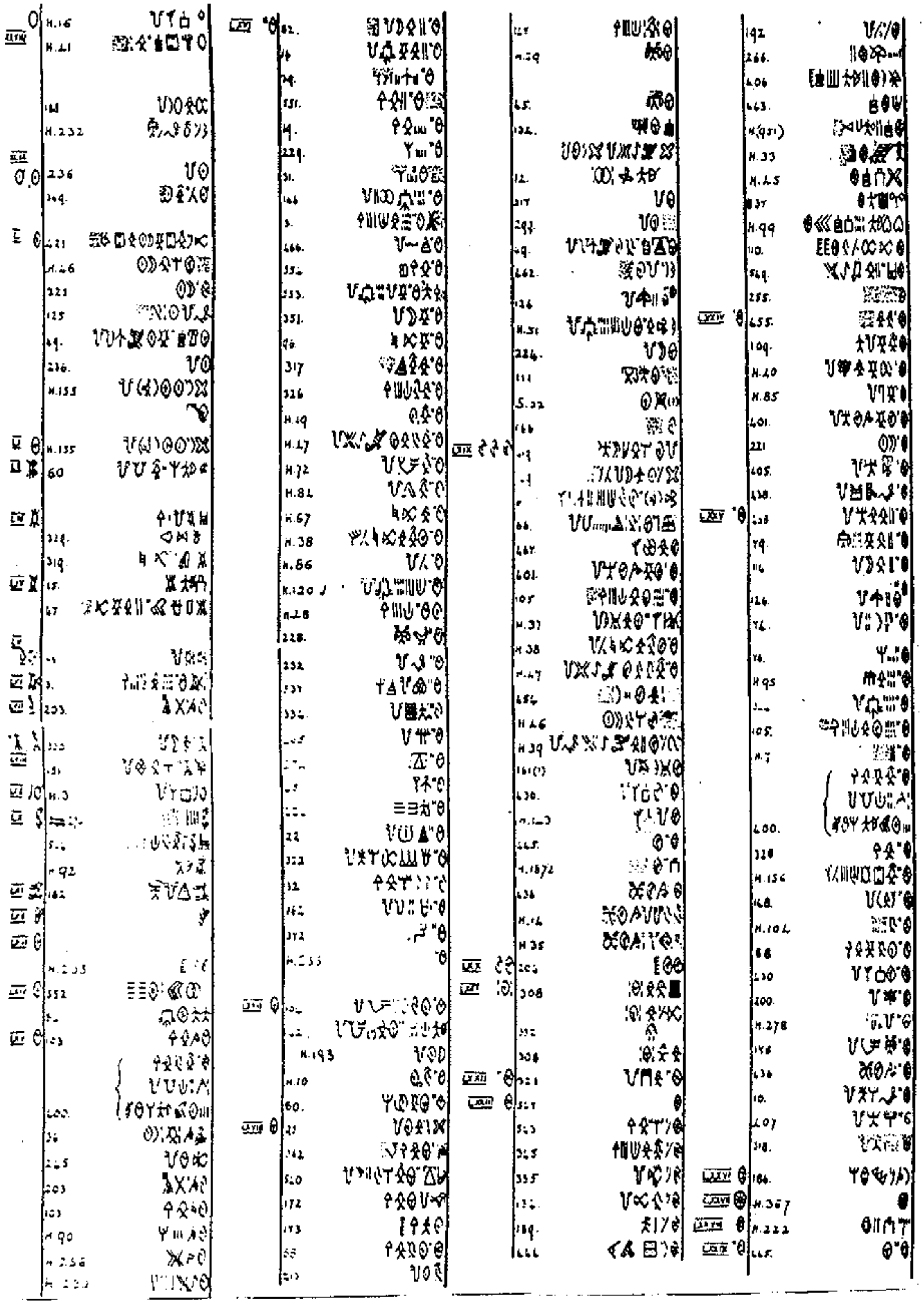

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

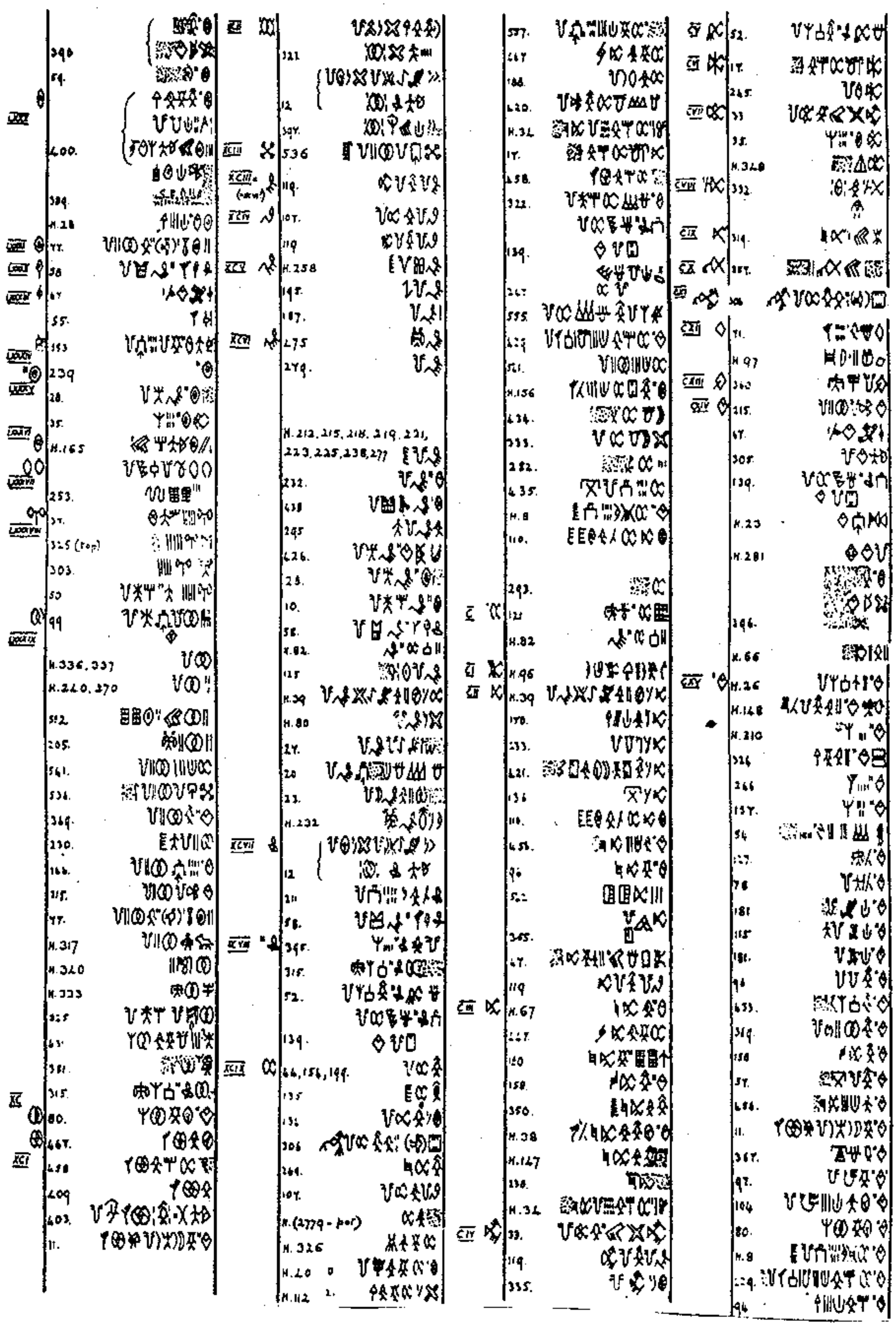

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

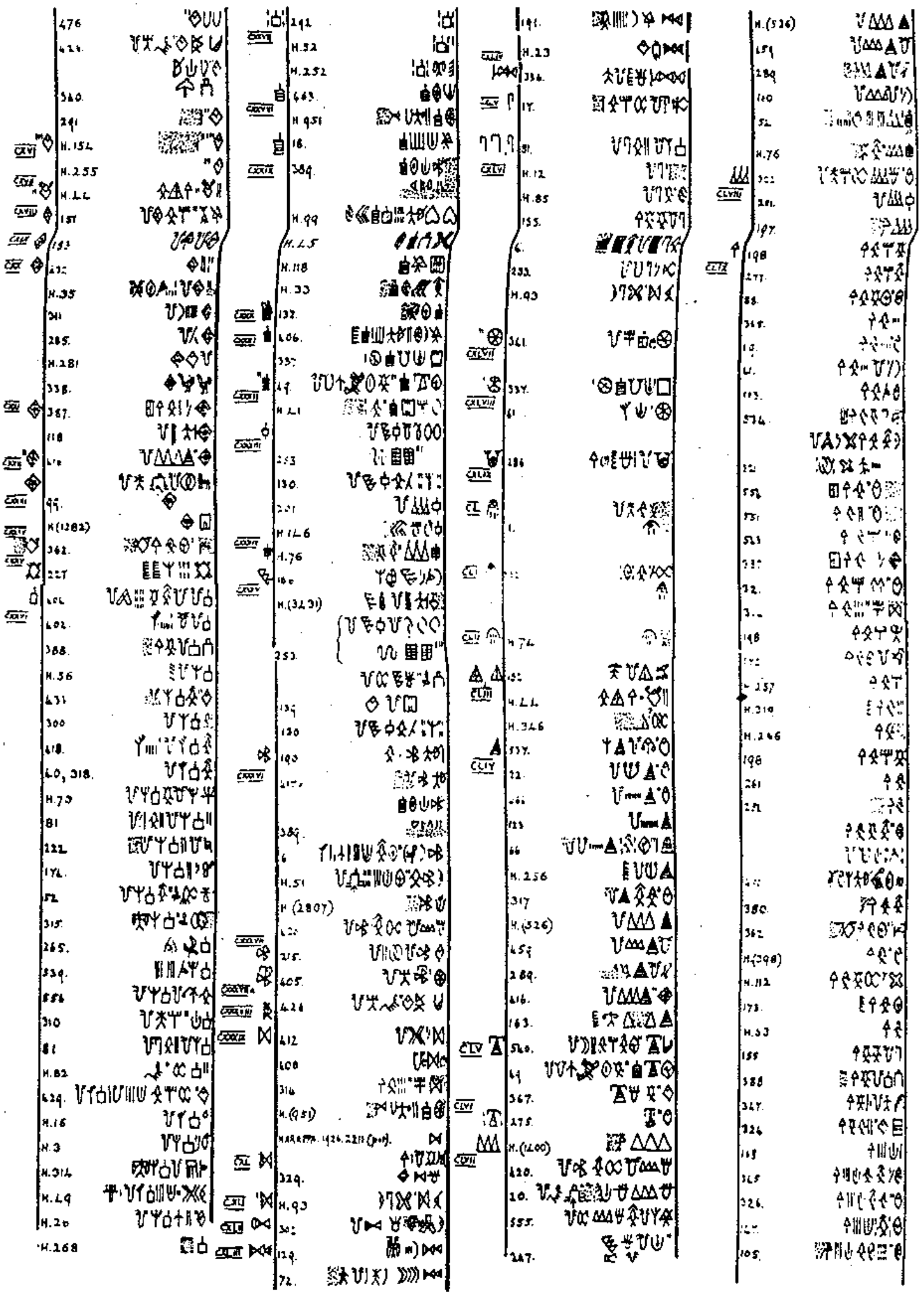

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

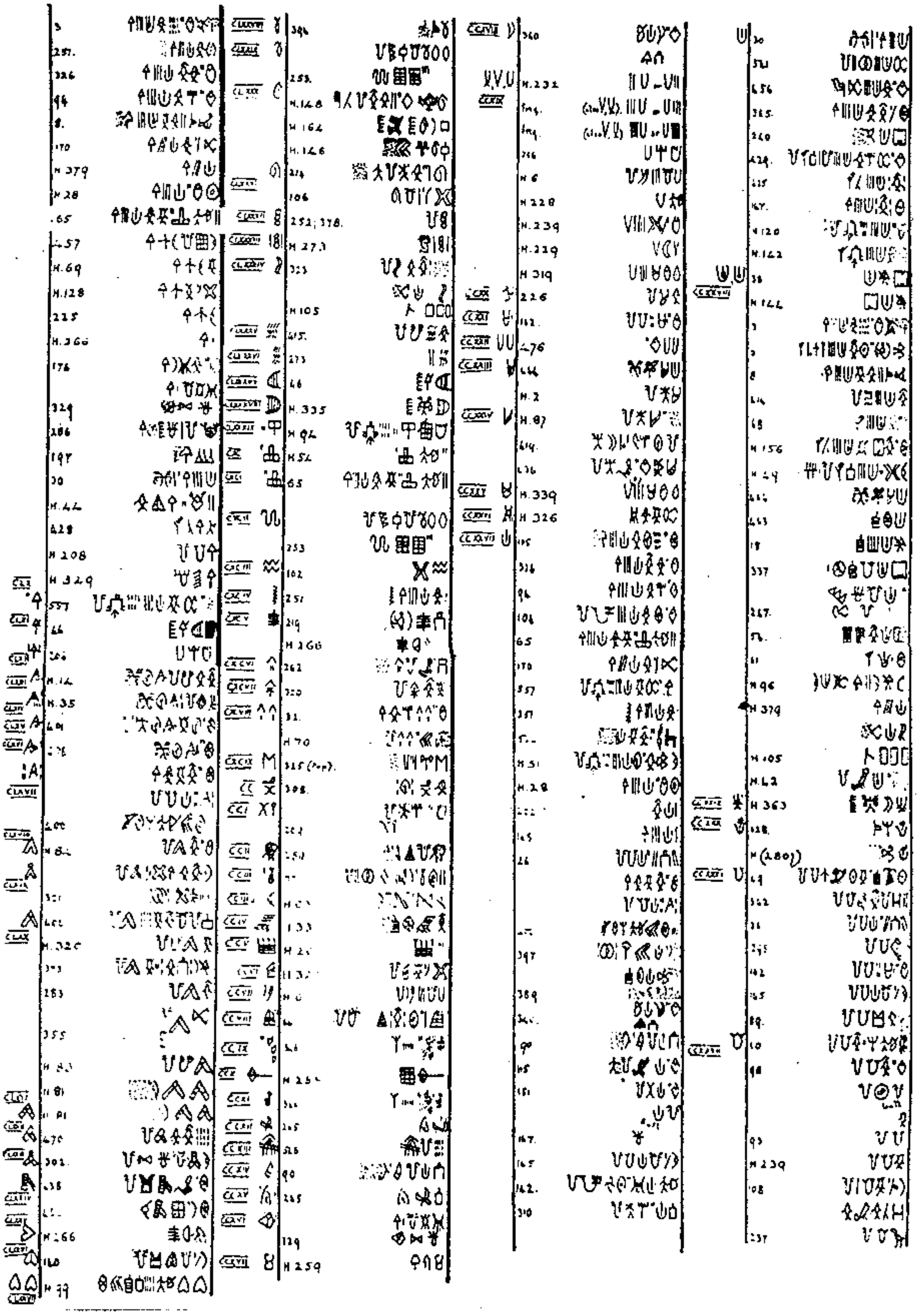

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

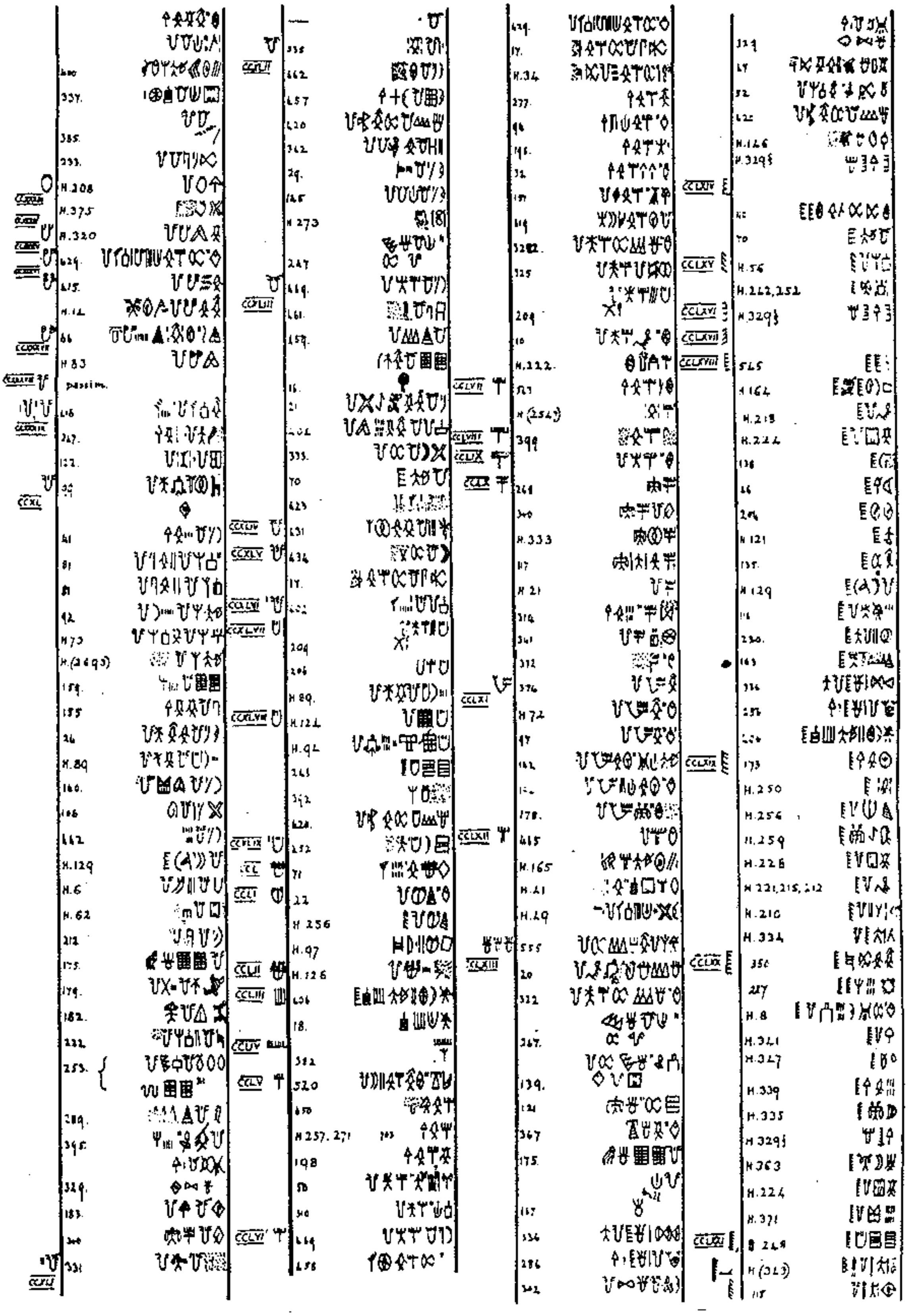

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

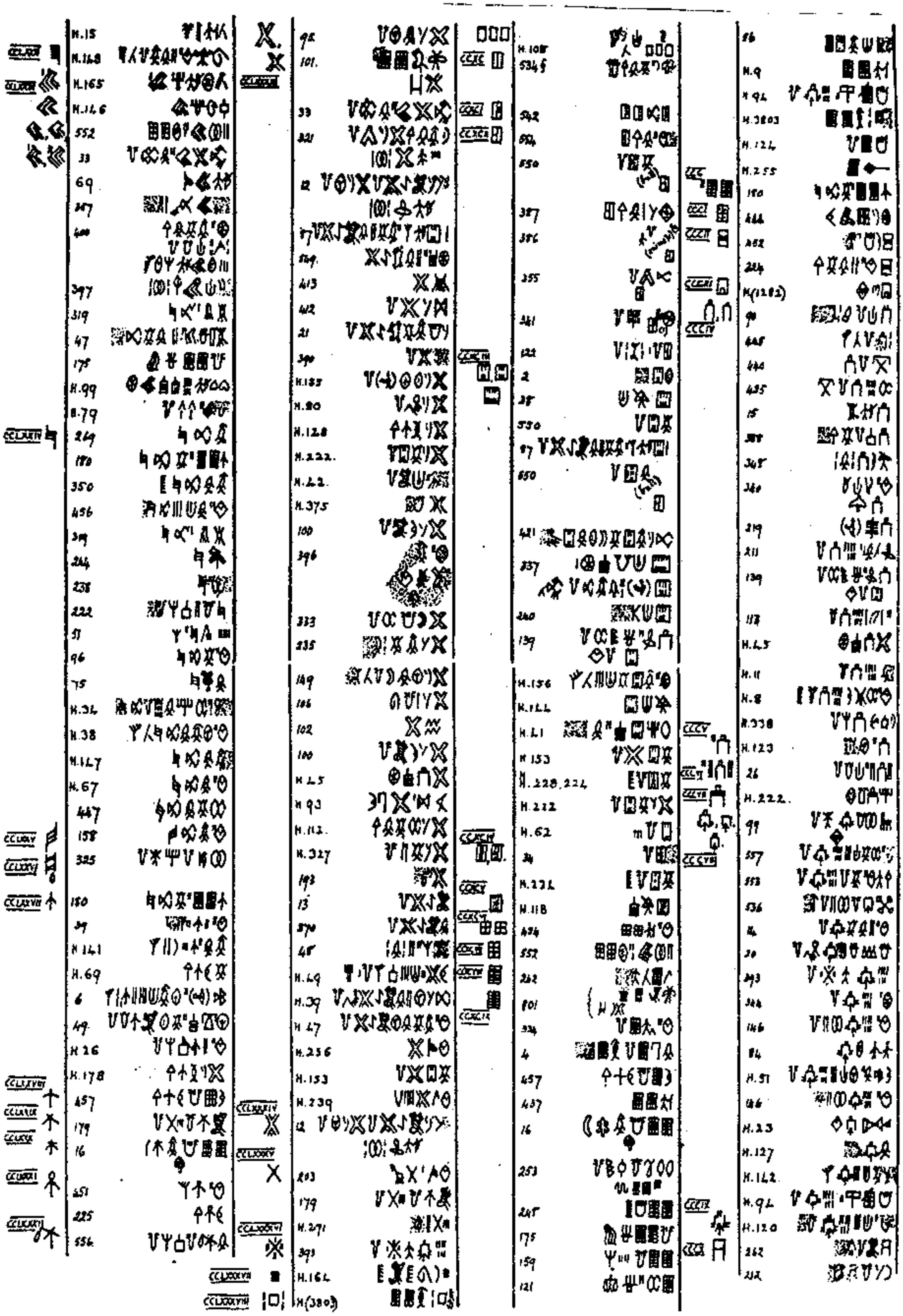

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

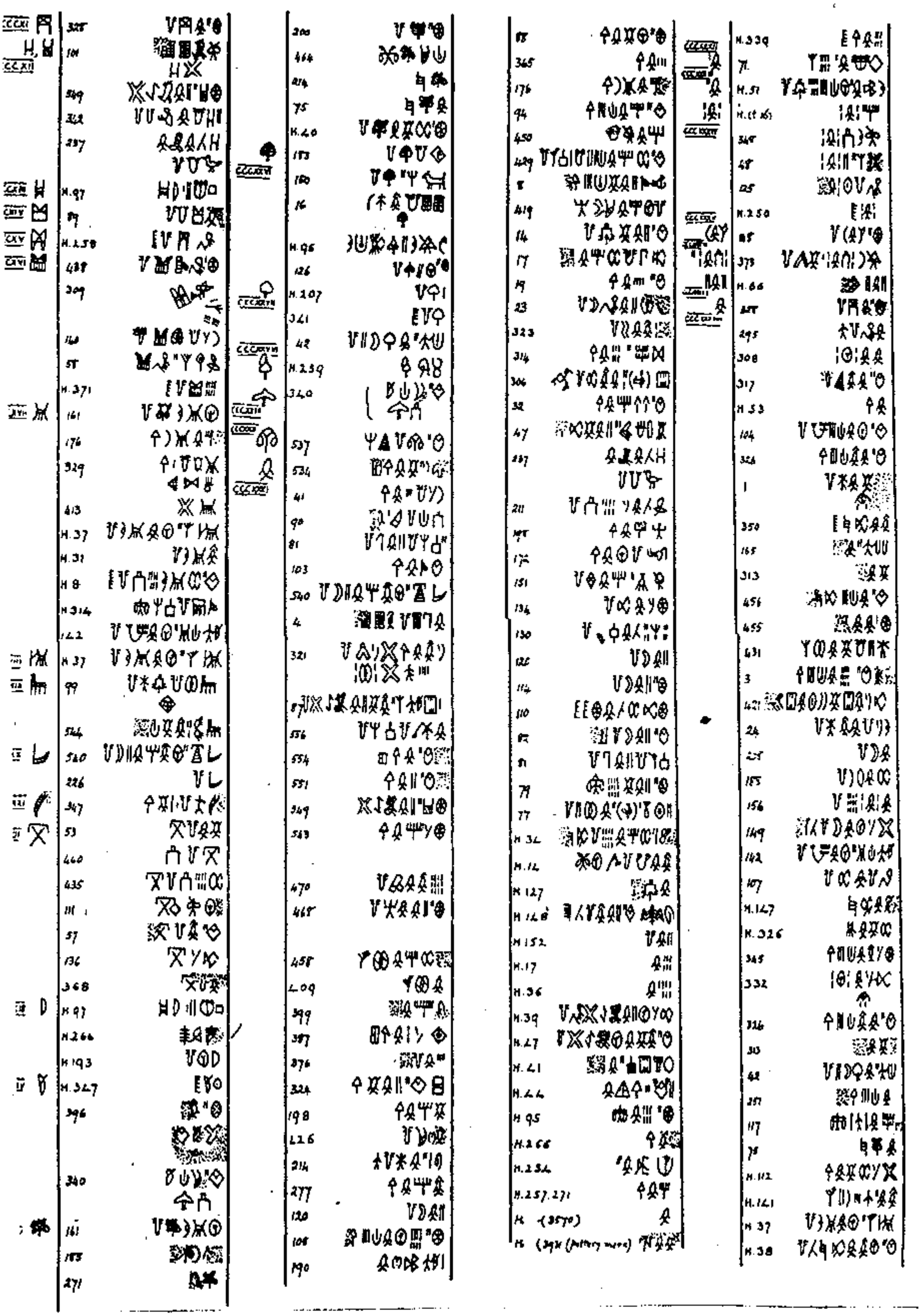

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

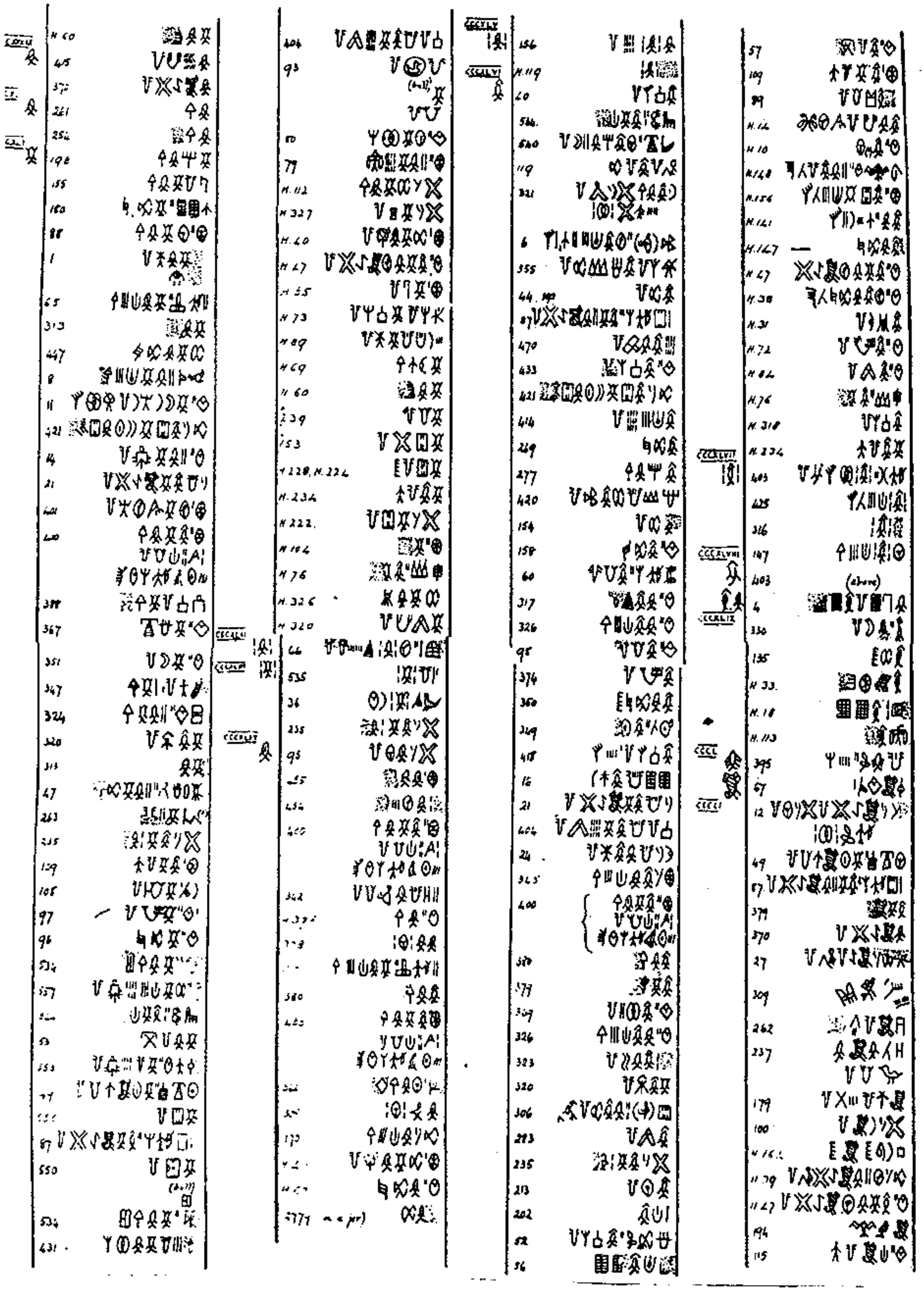

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

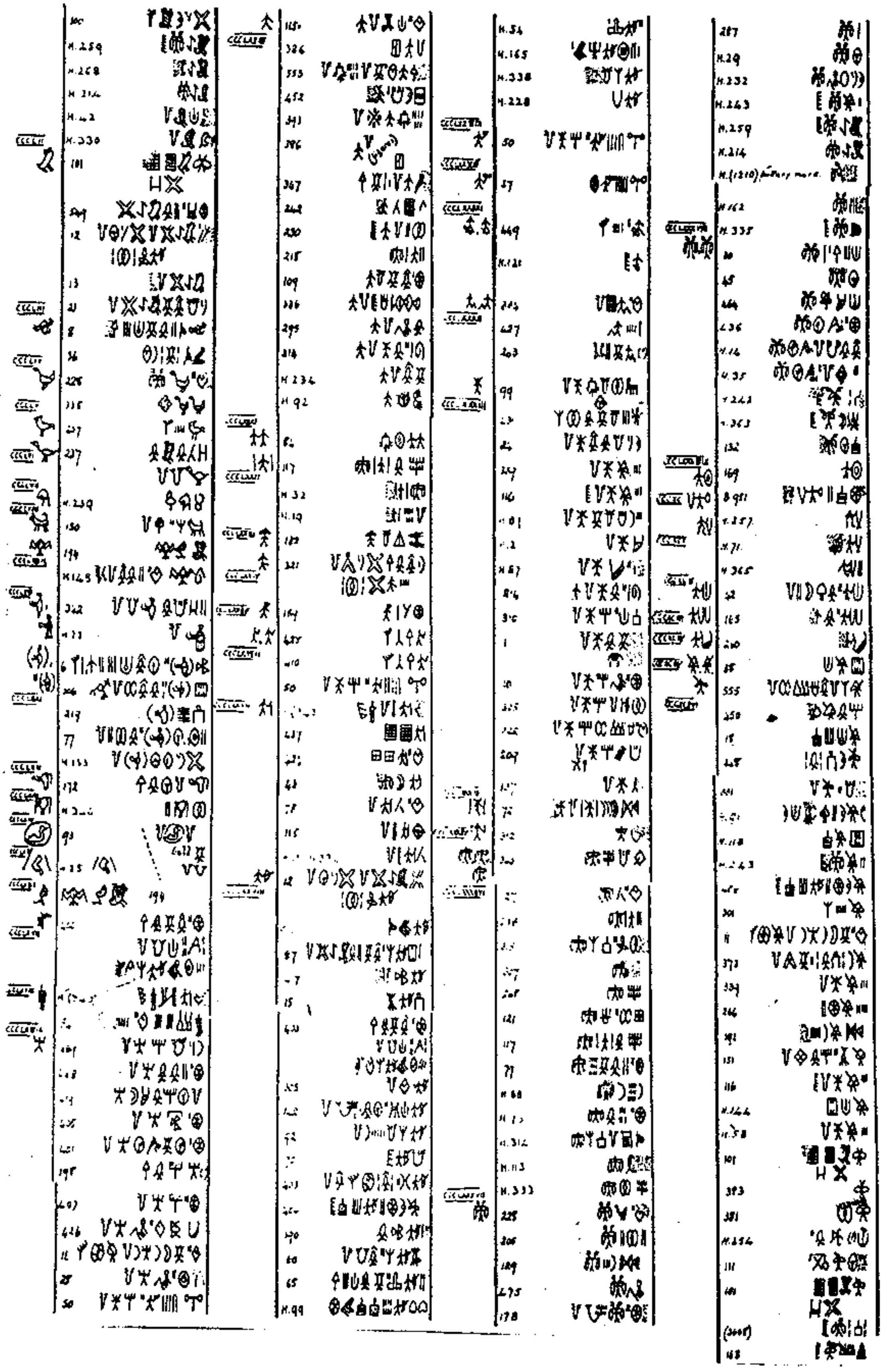

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

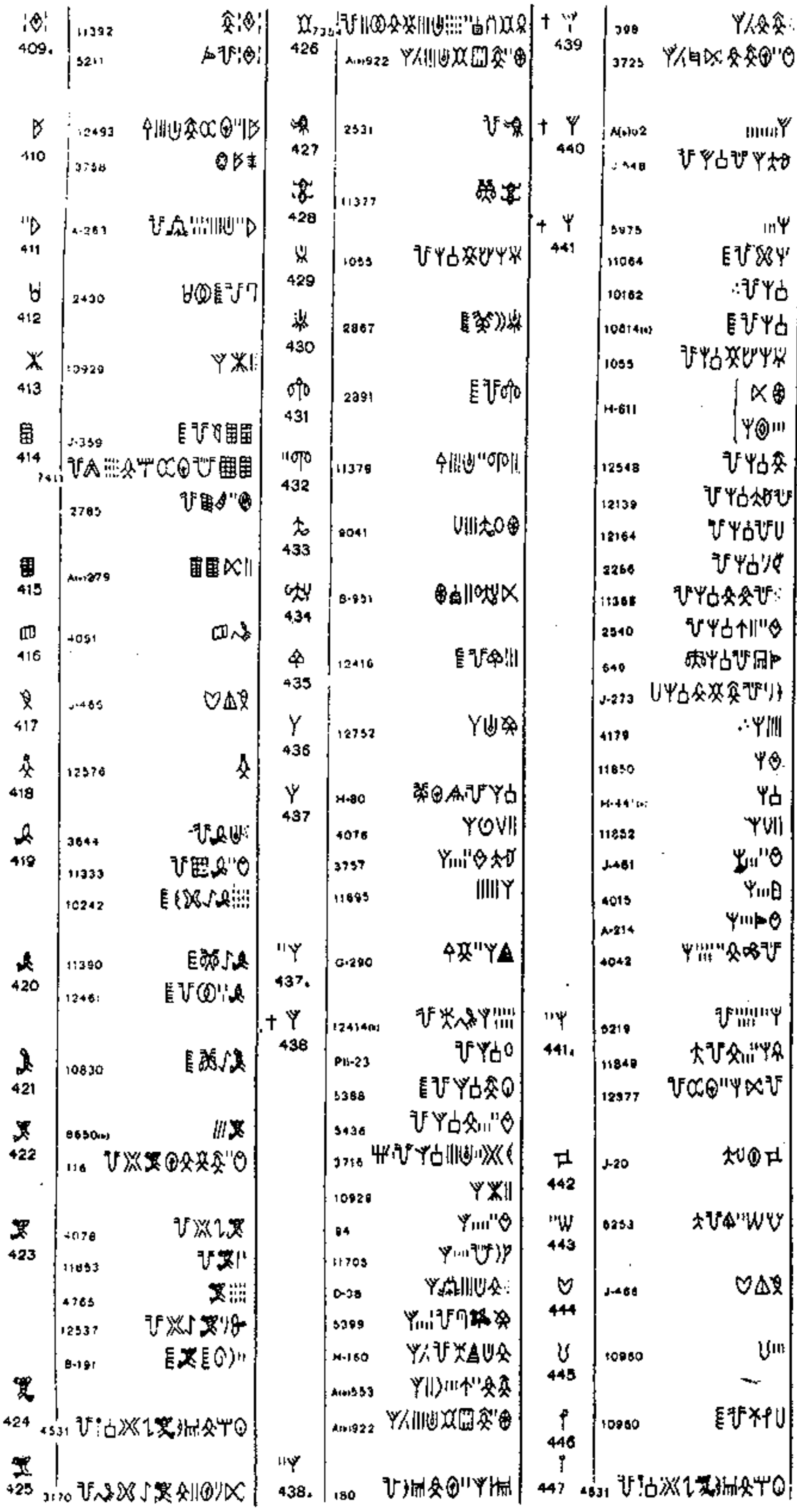

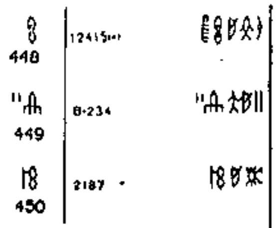

Sign Manual Ends.

INSCRIPTIONS COMMON TO HARAPPA AND MOHENJO-DARO.

Harappa Photo No. of Seal.	Inscription.	M. I. C. Photo No. of Seal.
166		287
211		166
629		366
18		3
374 *		281
286		252
246		109

* This is a Seal Impression.

† The following signs also occur at Mohenjo-daro but are not shown separately in M. I. C.

Harappa Sign No.	Sign.	M. I. C. Photo No. of Seal.
404		394
395a		550
383a		28
435		H150 (Pl. CXIX, under Sign No. 2.)
439		6
440		451
441		220

Signs found only at Mohenjo-daro.

Sign.	Mohenjo-daro Seal No.
	539
	323

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ प्रस्तुत की गई सूचियों के अलावा अध्येताओं ने अपनी अलग अलग कई और भी सूचियाँ तैयार की हैं जिनमें **श्री महादेवन का 'साइन मेंनुअल'** तथा **श्री पारपोला की 'साइन लिस्ट'** विशेष हैं।

प्रत्येक अध्येता ने अपने अध्ययन को नई दिशा देने का प्रयास किया है किंतु सभी का आधार वैदिक पृष्ठभूमि होने के कारण विवेचना उपयोगी होकर भी पाठन की दिशा में संतोष जनक उपलब्धि नहीं हो सकी।

श्री महादेवन ने उनके 'साइन मेनुअल' के अलावा गहन अध्ययन व्दारा सैंधव संकेतों संबंधी 9 गूढ़ निष्कर्ष निकाले हैं जिन्हें विश्व में **'महादेवन की कानकार्डेंस'** के नाम से जाना जाता है। वे निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

अ,—संपूर्ण सामग्री या तो मुहरें हैं या मुहर की छाप जो धातु,अथवा मृद, पाषाण, हस्तिदंत, भाण्डों पर उकेरित है।

ब,—अंकित संदेश संबंधी भ्रम निवारण हेतु मुहर की अंकित सतहों की गणना अति आवश्यक है, यथा, 1, 2, 3, 4, 5 अथवा 6।

स,—अधिकांशतः मुहरों के मध्य में एक प्रमुख पशु अंकित है जो **विशेषता** दर्शाते **एकश्रृंगी 'यूनीकार्न', उन्नत कंधे वाला वृषभ, छोटे सींगों वाला बैल, भैंसा, हाथी, शार्दूल, गेंड़ा, बकरा, हरिण, मगर, बंदर, मीन, कछुआ, शूकर, सर्प, पक्षी, वृक्ष, स्वस्तिक, चक, मेंढक, पुरुष, स्त्री, अर्ध पशु मानव, कुत्ता, सरीसृप, जियामितिक आकृतियाँ, घनचिन्ह, अंतहीन गठान, कंघा, लकीरें, वक, बिन्दु, रेतघड़ी आदि हैं।** इन पर गौर करके वर्गीकरण करना आवश्यक है।

द,— मुहरों पर लेखांकन अधिकतया एक पंक्ति में, तो कभी दो या अधिक पंक्तियों में, कभी कोनों में, तो कभी ऊपर से नीचे और कभी नीचे से ऊपर, कभी बेतरतीब और कभी चित्रात्मक अर्थमय पढ़ा गया है। कभी वही लेखन सामान्य है तो कभी प्रतिछवि रूप, कभी सामान्य होते हुए भी कम में विपरीत, कभी युगल अंकन में भिन्नता, तो कभी कम भिन्नता और कभी अंत संकेताक्षर की भिन्नता दिखलाई देने से अनियमित और स्वतंत्र है ।

इ,—कभी एक ही संकेताक्षर अनेक रूपान्तरों में दिखलाई देता है यथाः या या आदि। **वत्स, लांगडन, गड और स्मिथ** ने इस दिशामें ध्यान ना देते हुए सैंधव लिपि पर कार्य किया है जबकि **हंटर** ने इन्हे **वर्गीकृत** किया है। **दानी** ने संकेतों के रूपान्तरों पर काम किया है।

ग,— हंटर ने संकेताक्षरों का रूप आधारित वर्गीकरण किया है यथाः मानवाकृति अथवा मानव अंग। अन्य प्राणी और उनके अंग। लकीरें। अन्य रेखाकृतियाँ। त्रिकोणाक्षर। वर्गाकृतियाँ। वक संकेताक्षर। गिलासाकृतियाँ। घेरे और वर्तुलाकृतियाँ आदि ।

ह—सीमांकित संकेत **यथाः** कोष्ठकीय संकेत **यथाः** , दर्पणस्थ प्रतिछवि पुनरावृत्ति, बंधनयुक्त **तथा** संशयात्मक संकेत **यथाः** आदि।

ल— नए संकेताक्षर, यथाः आदि

किंतु ओम के रूप अनदेखे रह गए। इसी प्रकार जैसे सहज संकेताक्षरों को भी नही आंक पाए। डॉ. मधुसूदन मिश्रा, डॉ. एस आर राव, डॉ.राजाराम और झा, डॉ.पुणेकर, ने वेद और ब्राम्ही को आधार बना अलग अलग संकेताक्षरों को स्वर और व्यंजन के अर्थ दिए किंतु संतोषजनक सफलता से वंचित रहे। जो भी पढ़ा गया उसे मात्र 'काल्पनिक उड़ान' कहा गया है। अतः सैंधव लिपि अब भी वैसी ही अबूझ बनी है जैसी वह उसके खोजे जाने के समय थी।**डॉ. माधीवनन** ने लिपि को **तमिल मूल** की बतलाने का प्रयास किया है। **श्री पोसेल** ने संकेतो की मात्र विधिवत नकल ही प्रस्तुत की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री पोसेल की संकेताक्षर सूची

M 1100a.
1101a.
1103a.
1104a.
1105a.
1106a.
1107a.
1108a.
1109a.
1110a.
1111a.
1112a.
1113a.
1114a.
1115a.
1116a.
1117a.
1118a.
1119a.
1121a.
1122a.
1123a.
1126a.
1127a.
1128a.
1129a.
1132a.
1133a.
1134a.
1135a.
1136a.
1137a.
1138a.
1139a.

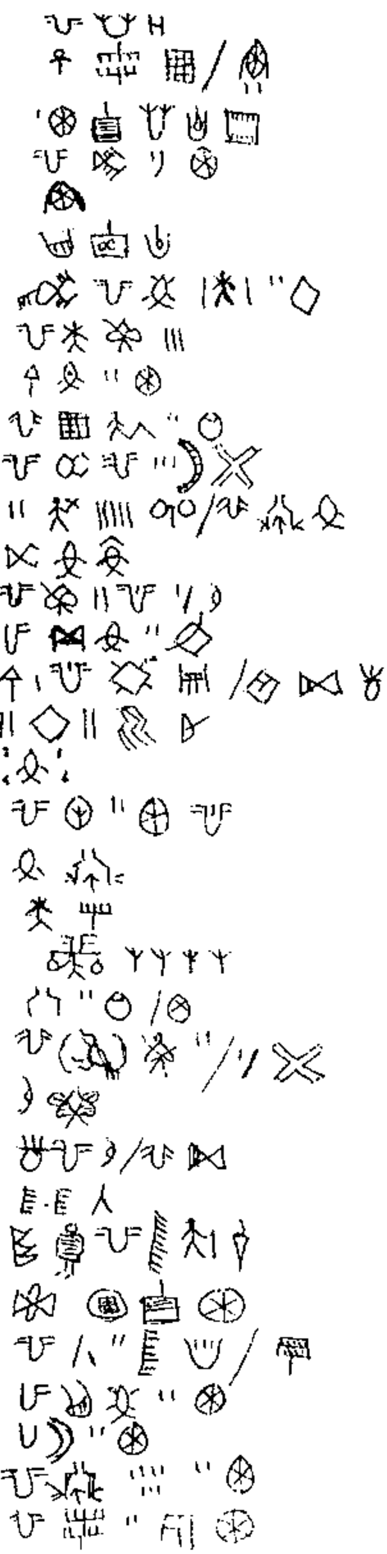

1140a.
1141a.
1146a.
1148a.
1149a.
1150a.
1151a.
1152a.
1153a.
1154a.
1155a.
1156a.
1157a.
1159a.
1160a.
1161a.
1162a.
1163a.
1164a.
1165a.
1166a.
1167a.
1168a.
1169a.
1173a.
1176a.
1177a.
1179a.
1178a.
1180a.
1181a.
1183a.

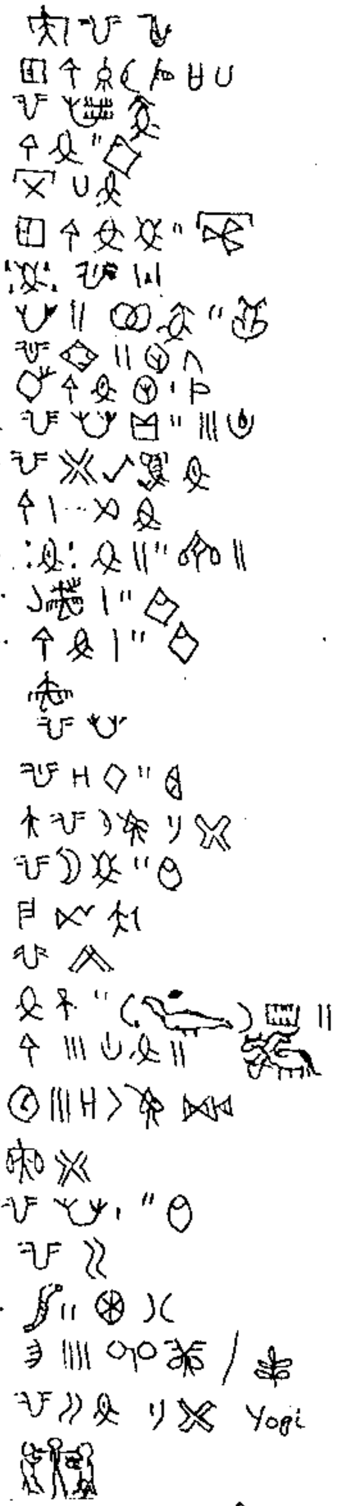

1185 a. वृक्ष देवगण शार्दूल

1186 a. ऋषभ की पूजा करते भरत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

M 1188a
1189a.
1190a.
1191a.
1192a.
1193a.
1194a.
1195a.
1197a.
1198a.
1199a.
1200a
1200c
1202a
1202c
1203a
1204a
1205c
1205 F
1205a.
1206a
1206e
1221a
1222a
1224a
1224b
1225a
1225b
1226a
1228a
1232a
1236a
1262a
1263a
1264a

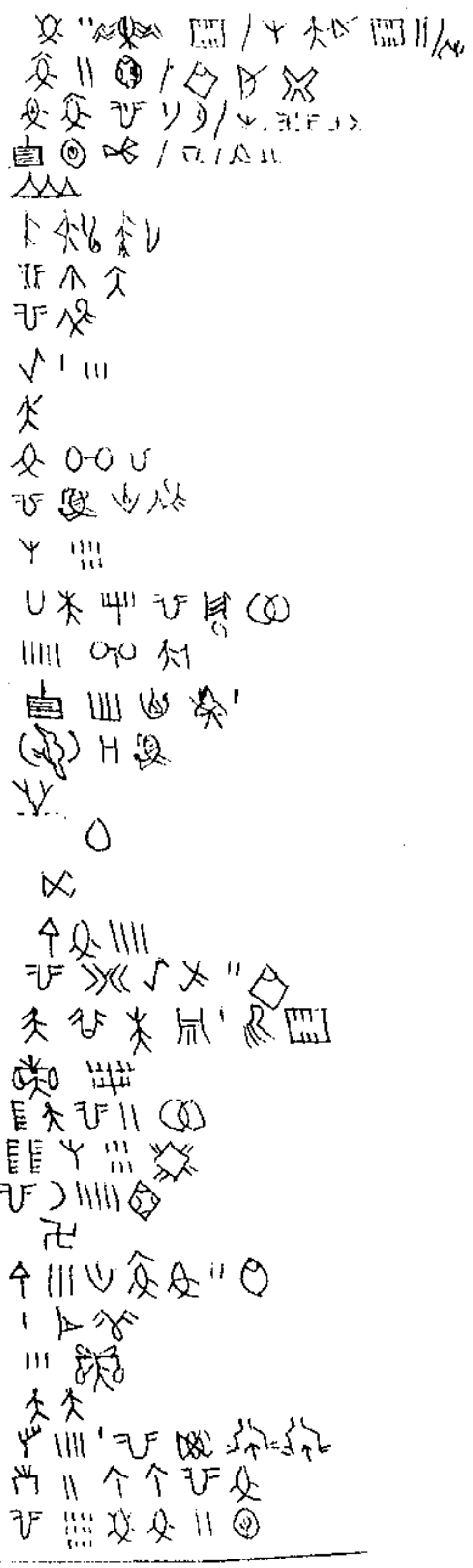

1264a.
1266a.
1267a.
1268a.
1269a.
1270a.
1271a.
1272a.
1273a.
1274a.
1275a.
1276a.
1277a.
1278a.
1280a.
1281a.
1282a.
1283a.
1284a.
1285a.
1286a.
1287a.
1288a.
1289a.
1290a.
1291a.
1292a.
1293a.
1294a
1295a.
1296a
1297a
1298a
1299a
1300a
1301a

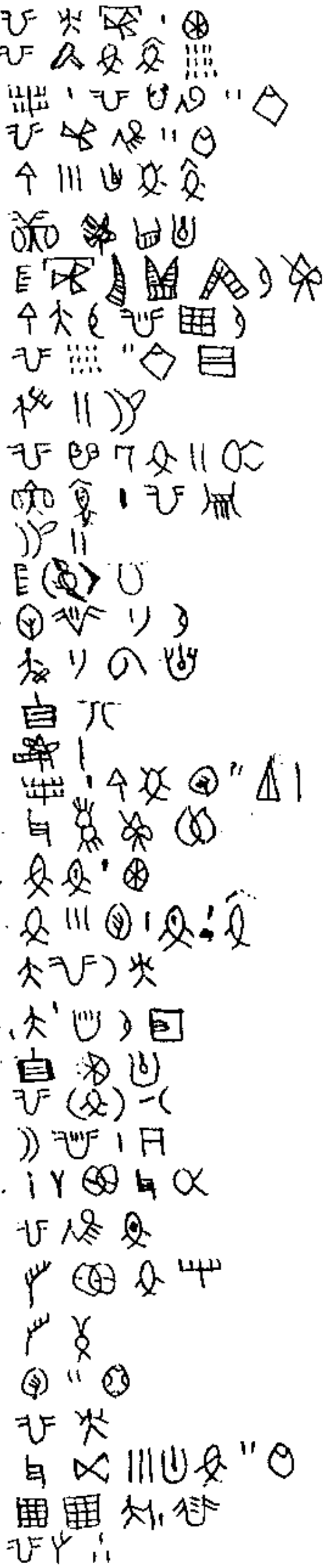

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

M 1302a
1304a
1305a
1306a
1307a
1308a
1309a
1310a
1311a
1312a.
1313a.
1314a
1315a.
1316a
1317a.
1318a.
1319a.
1320a
1321a.
1322a
1323a
1324a.
1325a.
1326a.
1327a.
1328a.
1329a.
1330a.
1331a.
1332a
1333a
1334a
1335a
1336a
1337a
1338a
1339a
1340a.
1341a.
1342a
1343a
1344a.
1346a
1349 GOAT
1350
1351a
1353a
1354a
1355a
1356a
1357a
1358a
1359a
1360a
1361a
1362a
1363a
1364a
1364c
1365a
1365b
1366a
1368a
1654 F/D SAPTA NAYA
1655/A
ON POTS 1369 A
1372 A(2)
1375 A(2)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

M 1382 A(2)
1383 A(2) (HORSE)
1386 A
1384 A
1405 B
1418 A
1418 B
1419 A
1419 B
1424 A
1424 B
1424 C

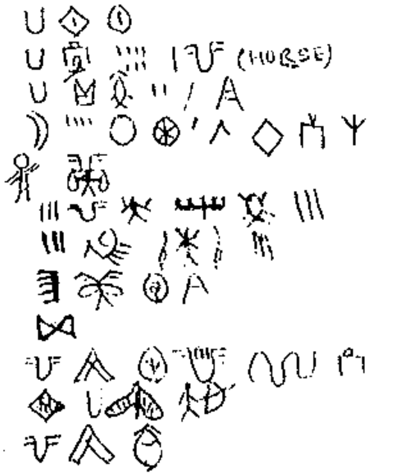

1425 a Plate of Nami Ji
1425 b Talrukkha Santhous
1426 A
1429 A
1429 B Boat with two Birds
1431 E Potter man with Wheel

HARAPPA

H 266 A
267 A
268 a
270 a
271 a
272 a.
273 a.
383 a.
385 a.
386 a
388 A
389 a
390 a
391 a
395 a
401 A
405 a
407 a.
408 a.

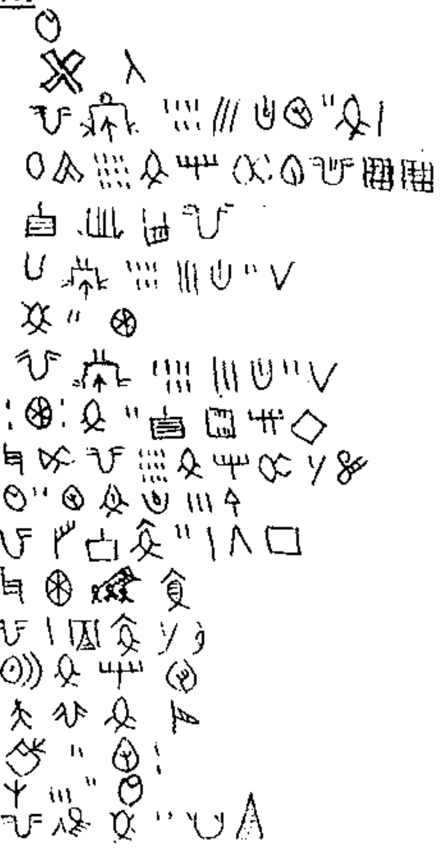

410 a
411 a
412 a
413 a
416 a
417 a
419 a
420 a
421 a
423 a
426 a
427 a
431 a
432 a
440 a
441 a
442 a
443 a
444 a
445 a
446 a
447 a
448 a
449 a
450 a
451 a
452 a
453 a
454 a
455 a
456 a
457 a
458 a
459 a
461 a.
462 A
464 a

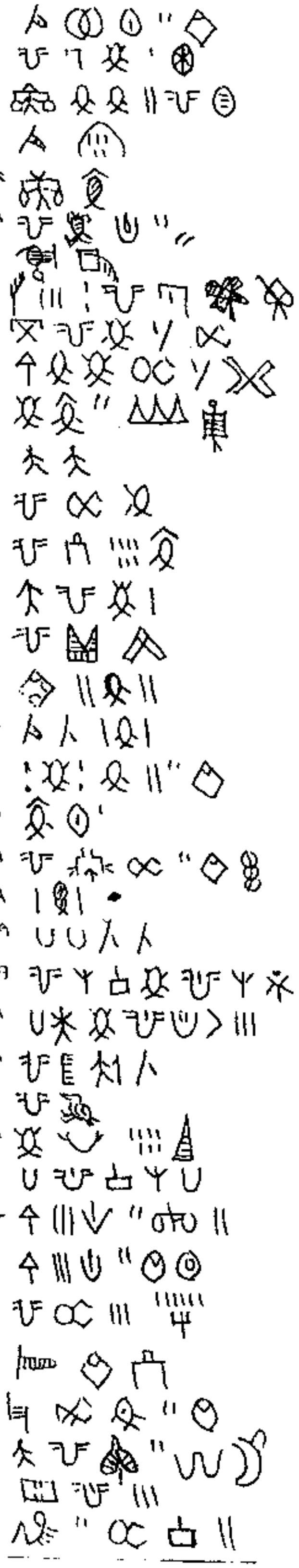

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

H

465a
466a
467a
468a
469a
471a
472a
473a
474a
475a
476a
477a
478a
479a
481a
483a
484a
485a
486a
489a
499a
501a
502a
503a
504a
505a
506a
507a
508a
510a
512a
511a
513a
514a
515a
516a
517a

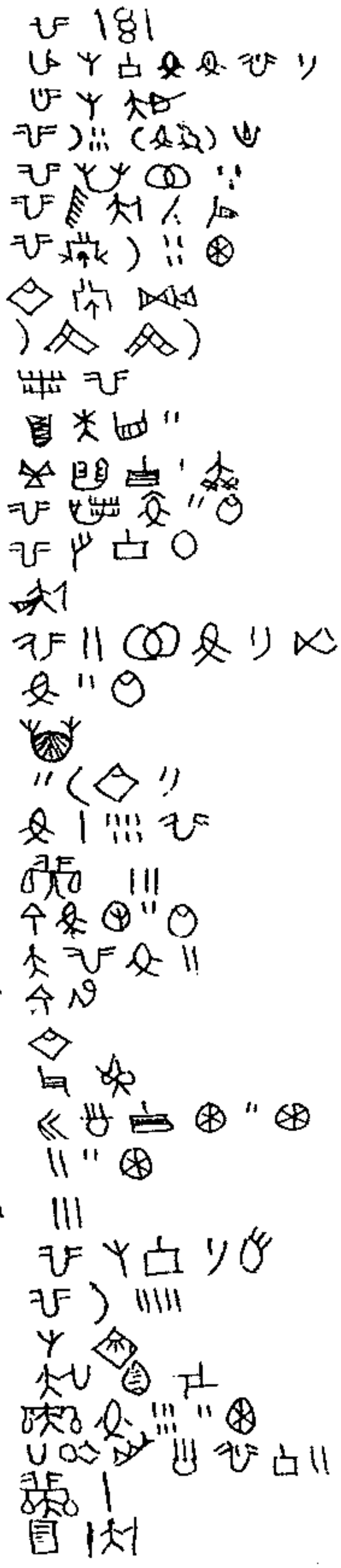

518a
519a
520a
521a
522a
523a
524a
525a
526a
530a
531a
533a
536a
537a
543a
544a
545a
546a
550a
556a
558a
559a
561a
563a
565a
566a
568a
569a
570a
572a
574a
575a
577a
578a
579a
580a

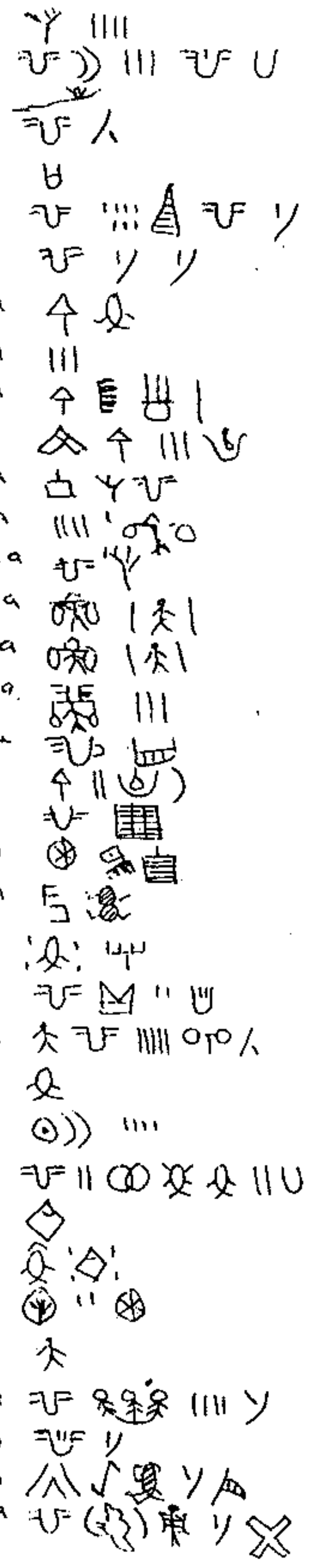

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

H 581a
584a
585A
586a
589a
591a
592a
593a
595A
596a
597a
597c
598a
598e
599a
599d Crocodile
601A Horse
602a
603 a(1) Fish
603 (2)A
609a
610a
611a
612c
612f
612a UNICORN
630a
631a
632a
633a
634a
635a
636a
637a
638a

639a
640A
641a
642a
643a
644a
645a
646a
647a
648a
649a
650a
651a
652a
653a
654A
655A
656a
657a
658A
659a
660a
661a
662a
663a
664a
665a
666a
667a
668a
669a
670a
679a
680a

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

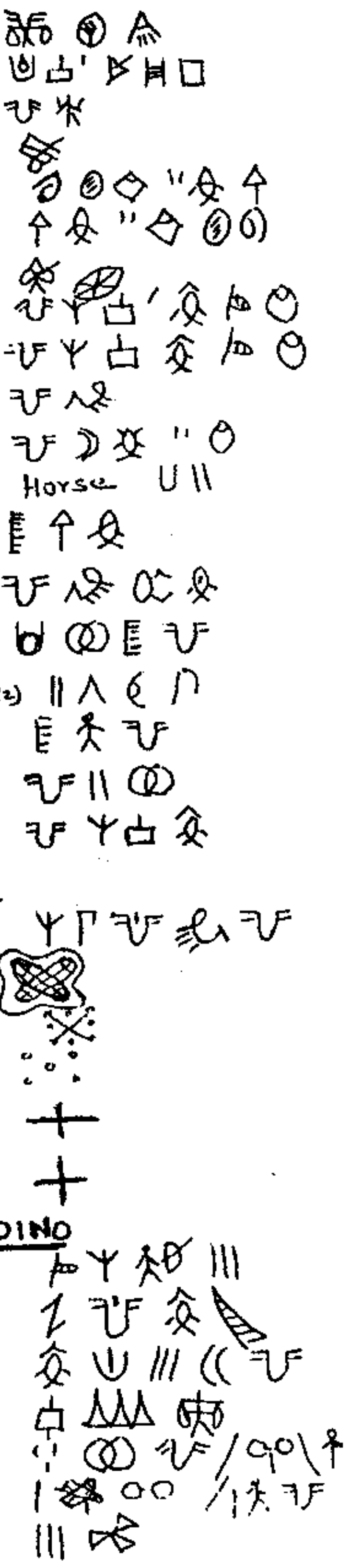

681a
682a
684a
686A
688A
688a
688F
694A
695A
696A
697A
697B Horse
698A
699A
705A
718A(1)/(2)
722A
723A
733A

PIRAK

PK-1A
PK
PK 6A
PK 10A
PK 29A
33A
PK 22A
23A

ALLAHDINO

Ad 2a
Ad 4A
Ad 3A
Ad 5A
Ad 6A
Ad 7A
Ad 9A

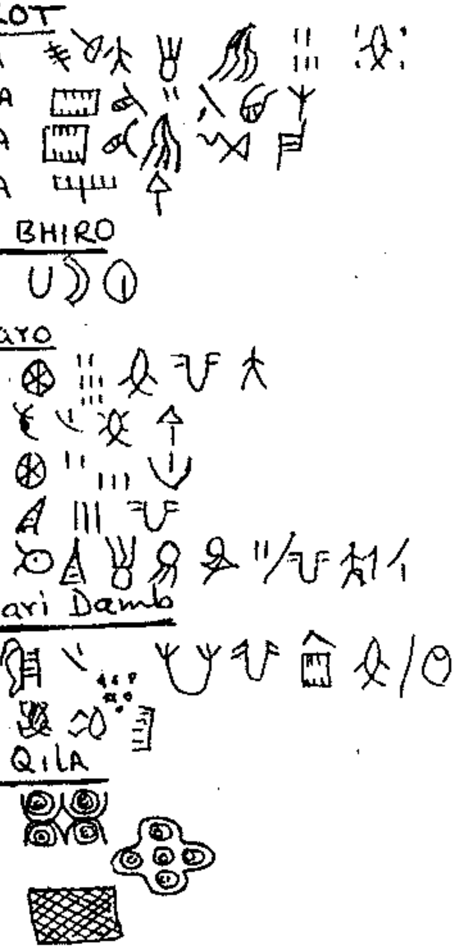

BALAKOT

BIK-1A
BIK-2A
BIK-4A
BIK-5A

GHARO BHIRO

Grb-1

Naushayo

Ns-5
Ns-6
NS-7
Ns-8a
Ns-9A

Nindowari Damb

Nd-1A
Nd-2A

TARAKAI QILA

Trq. 2A
Trq. 3A
Trq. 4A

More from
Kalako deray
Kot-Diji
Gurnla
Hissam Dhari
Mehrgarh
—
—
—
—
—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेखिका द्वारा अवलोकित मूल सैंधव संकेताक्षर सूची, अर्थ सहित

1. गृह / संघ

2. दरवाजा / गृहीका द्योतक ।

3. अंतर्यात्रा ।

4. त्रिशिखरी मंदिर का गर्भगृह ।

5. ध्यानी की अंतर्यात्रा ।

6. केवलत्व / त्रिलोकीनाथ ।

7. वन / वैराग्य । 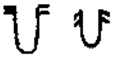

8. वातावरण ।

9. आरंभी गृहस्थ । 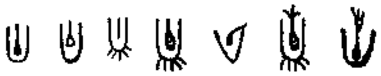

10. सल्लेखना झूला ।

11. दिगम्बरत्व ।

12. ब्रह्मचर्य ।

13. पिच्छीधारी महाव्रती संघ / गण

14 केवली संघ ।

15. भवघट ।

16. घातिया चतुष्क ।

17. जंबूद्वीप ।

18. ढाईद्वीप ।

19. ढाईद्वीप ।

20. निकट भव्य ।

21. अंतहीन भटकान ।

22. त्रिगुप्ति ।

23. शिखरतीर्थ । 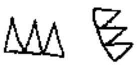

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

24. चतुर्गति भ्रमण । 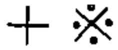

25 नवदेवता ।

26. मांगीतुंगी युगल श्रृंग ।

27. गुणस्थानोन्नति ।

28. उठती गिरती गुणस्थानोन्नति । 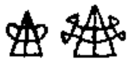

29. गुणस्थानोन्नति उपश,/क्षयोप,।

30 तीर्थराज पर गुणस्थानोन्नति ।

सर्पसीढ़ी खेल ।

32. जिनशासन का सिंहासन ।

33. अष्टापद । 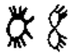

34. चतुर्गति भ्रमण । 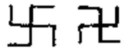

35. अष्टकर्म ।

36. पंचमगति । 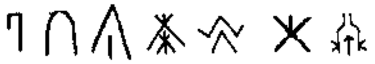

37. सप्तनंय ।

38. शुक्लध्यान । 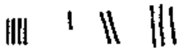

39. कालचक/भवचक ।

40. काल सर्पिणी 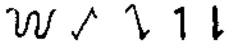

41. जाप । 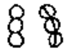

42. पुरुषार्थ ।

43. प्रतिमा पुरुषार्थ ।

44. अदम्य पुरुषार्थ ।

45. स्वसंयम ।

46. पिच्छी ।

47. शाकाहार ।

48. मन ।

49. स्वसंयमी ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

50. स्वयंतीर्थ ।

51. तीर्थंकर । 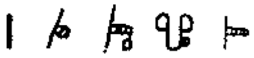

52. तीर्थंकर जिन ।

53. अरहंत ।

54. समवशरण ।

55. चतुर्दिक मानस्तंभ ।

56. केवली जिन । 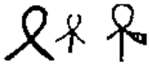

57. सिद्ध प्रभु ।

58. उपशम ।

59. क्षयोपशम ।

60. क्षय ।

61. समाधिमरणी सल्लेखी ।

62. अरहंत प्रभु/पंचपरमेष्ठी । 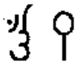

63. **निश्चय**—व्यवहार धर्म । 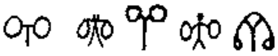

64. **शुक्ल**ध्यान ।

65. धर्मध्यान ।

66. पंच परमेष्ठी ।

67. षट् द्रव्य । 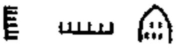

68. सप्त तत्त्व ।

69. अष्ट द्रव्य ।

70. नव पदार्थ ।

71. दश धर्म । 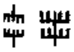

72. ग्यारह प्रतिमा । 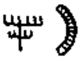

73. बारह भावना ।

74. द्वादश तप ।

75. सोलहकारण भावना । 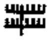

76. सल्लेखी का पंडितमरण ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

77. सल्लेखना रत / संथारी 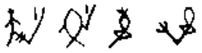

78. पंडित पंडित मरण सल्लेखना कायोत्सर्ग ।

79. अष्टमद ।

80. कषाऐं ।

81. दुर्ध्यान ।

82. रत्नत्रय । 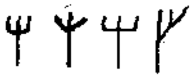

83. छत्र ।

84. छत्रधारी ।

85. त्रिछत्र / जिनेन्द्र का छत्र।

86. कछुआ ।

87. चातुर्मासं ।

88. चतुराधन ।

89. पांचसूना ।

90 त्यागी ।

91. ऐलक ।

92. आर्यिका ।

93. तपस्वी ।

94. राघो मच्छ ।

95. क्षुल्लक / क्षुल्लिका । 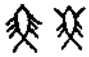

96. लोकपूरणी समुद्घात ।

97. चतुर्दिक त्रिआवर्ति ।

98. वैयाव्रत्य की कामर ।

99. अर्धचक्री ।

100. चक्री ।

101. अणुव्रती ।

102. महाव्रती । 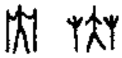

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

103 पंचाचारी । 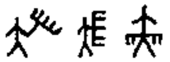

104. विद्याधर ।

105. सम्यकत्वधारी ।

106. चतुर्विध संघाचार्य ।

107. चार अनुयोगी संघाचार्य । 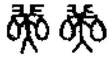

108. भक्त ।

109. वृत्ति परिसंख्यानी ।

110. तद्‌भवी मोक्ष ।

इनसे बने व्यापक अर्थी संयुक्ताक्षर तथा चित्राक्षरों में अनेक अक्षर **पशु** पक्षी तथा यक्ष, देवों के द्योतक हैं जिनके विशेष अर्थ भी हैं। कुछ ज्यामिती की आकृतियाँ अपने **विशेष** अर्थ खोलती हैं जिन्हें **जे. एम. केनोअर** ने समीपवर्ती देशों के पर्वतों पर अंकित खोज निकाला है । उनके संभावित अर्थ यहाँ अलग से **दर्शाए** गए हैं । यथा--
वूम्ब स्केच / **भूवलय चक की अभिव्यक्ति** है। अन्य अंकन **अर्थात विधान चित्र. चतुर्दिक त्रिआवर्ति. दिगंबरत्व. गुणस्थानोन्नति आदि जिनधर्मी संकेताक्षर हैं।** अनेक सिरों वाला **पशु. अर्ध पशु. (यक्ष). देव. शेर/शार्दूल.** यूनिकार्न. सांड़. हाथी. भैंसा. गेंड़ा. बंदर. सर्प. घोड़ा. चंद्र. कछुवा. हरिण. मछली. मगर. पक्षी आदि **तीर्थंकर लांछन** रूप हैं।

चतुरंगी लेश्या बोधक **जिनध्वजा**, जिन **कलश** आदि सारे ही जिन धर्म प्रभावी अंकन हैं।

बाहुबली की सील में भरत **धराशायी, मैमथ**/रस्सों से बंधा, एक पालतू हाथी उस काल के मनुष्य के साहस और सामर्थ्य को दिखलाता है जब **डायनासर सा** सरीसृप भी लिपि अंकन में एक सल्लेखी की अभिव्यक्ति हेतु उपयोग किया गया है। मेंढ़क. कुत्ता. खरगोश. गधा. गिलहरी. **प्रथमानुयोगी कथा पात्र** हैं। मुर्गा, बतख, कबूतर, चिड़िया ,जल कुक्कुट, ऊँट आदि का समावेश उस काल में प्रचलित कथाओं की झलक देता है। **तिल्लोय पण्णत्ति** की कुछ गाथाऐं इनकी चर्चा करती हैं। यथा कल्पकाल के सारे ही प्राणी शाकाहारी होते हैं जो अब काल परिवर्तन से मनुष्य के प्रभाव में मांसाहारी हो गए हैं :

--वग्धादी भूमिचरा, वायस पहुदी य खेयरा तिरिया, मंसाहारेण विणा, भुंजंते सुरतरूण महुरफलं।। ति, प, 4/396

--हरिणादि तणचरा भोगमहीए तणाणि दिव्वाणि भुंजंति ।। ति. प, 4/367

--गो केसरिं करि मयरा सूवर सारंग रोज्झ महिस वया, वाणर गवय तरच्छा वग्ध सिगालच्छ भल्ला य । कुक्कुड कोइल कीरा पारावद, सायहंस, कारंडा, बक, कोक, कोंच, किंजक, पहुदीयो होंति अण्णेवि ।। ति, पं, 4/393--394

--जह मणुवाणं भोगा, तह तिरियाणं हवंति एदाणं, णिय णिय जो त्तेणं, फल कंद तणं कुरादीणिं ।। ति, प, 4/395

सैंधव लिपि के संदेशों की झलक इस प्रकार परंपरागत वर्तमान जैनागमिक साहित्य में भी अपनी उपस्थिति दर्शाती है। जैसे **बतलाया** जा चुका है इन संकेताक्षरों के अर्थ को लिपि अंकन में दाहिने से बाऐं अथवा बाऐं से दाऐं जोड़ते हुए पढ़ने से अत्यंत उपयोगी जैन अध्यात्मिक संदेश सहज ही प्राप्त हो जाते हैं; किसी भी प्रकार की उसमें खीचतान नहीं करना पड़ती यही इस लिपि को समझने की सार्थकता सिध्द करता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन संकेताक्षरों को **रेबस विधि** से **जैन परिप्रेक्ष्य** में कई वर्षों पूर्व पढ़ा गया था । प्राचीन साहित्यिक प्रमाणों के होते हुए भी लगभग छह वर्ष बीत गए पुरातात्त्विक प्रमाण खोजते। जैन संदर्भित प्रमाणों को कान्फ्रेंसों और लेखों की प्रस्तुति के बाद भी उपेक्षित देख प्रथम पुराप्रमाण उस्मानाबाद गुफाओं में और दूसरा देवगढ़ के एक प्राचीन मानस्तंभ पर अंकित दिखा। इनसे प्रोत्साहन पाकर लगभग सारे ही पुरा संदर्भित हिंदू, बौध्द, जैन, मंदिरों, मठों, तीर्थक्षेत्रों, गुफाओं, गम्य पहाड़ों, धामों, घाटों, खण्डहरों, किलों, उजाड़ों, पुरा उत्खननों, प्राचीन मस्जिदों में खोजते खोजते अचानक श्रमण बेलगोला की आदि शिला पर अंकित पुरा जिन और वे 4–5 सैंधवाक्षर दिव्य कुंजी के रूप में दिख गए। उस क्षेत्र के व्यापक विस्तार पर पुरा अंकन का खजाना देखते देखते एकाएक केलेंडर में बड़े बाबा का चित्र महाकुंजी के रूप में सामने आ गया। अब कोई संशय बाकी न रहा अतः प्राचीन जिन बिंबों की खोज की, और 10 ही नहीं हमारे सर्वेक्षण का पुण्य पाक अब तक 12 पुरालिपि अंकित जिनबिंबों में से 10 यहाँ प्रस्तुत हैं। **इससे यह भी संकेत मिलता है कि यह लिपि पार्श्वनाथ काल तक भी कुछ अंशों में प्रचलित रही** है।

उसके बाद की परिस्थितियाँ इसके न केवल इसलिए प्रतिकूल गई प्रतीत होती हैं कि यह श्रमणों तपस्वियों की लिपि रही बल्कि जिनधर्म की भी घोर विरोधी बनी दिखती हैं। धर्म के नाम पर वैदिक हिंसा को जन्म देने वाला कदाचित यही काल रहा है जब धर्मक्रांति के नाम पर नए वैदिक धर्म की न केवल स्थापना हुई बल्कि ब्राह्मणवाद ने प्रबल रूप धारण करते हुए ईश्वर के नए **सृष्टिकर्ता** रूप को भी स्थापित किया । ऋषभ भक्तों को बहला फुसलाकर अथवा भय दिखलाकर नए तथाकथित हिन्दू धर्म की नींव डाली एवं **ब्रह्मा विष्णु महेश के त्रिमुख रूप और अवतारवाद का महत्त्व दर्शाते हुए शक्ति** मत **का प्रचार किया और शैव धर्म का भी। ऋषभ के ऋग्वैदिक महत्त्व को पहचान कर उन्हें कभी आठवां तो कभी चौदहवां अवतार दिखलाते हुए जिनभक्तों और श्रमणों पर उग्र हिंसक दबाव बनाकर उन्हें पीड़ित कर उनका धर्म परिवर्तन कराया । स्वयं को 'आर्य' घोषित करते हुए मूल धर्मियों को 'अनार्य' और 'द्रविड' कहकर उन्हें 'हीन' बतलाते हुए स्वयं की 'प्रभुता' दिखलाकर उनका दमन किया। उन्हें 'अनीश्वरवादी' और 'वेदविरोधी' बतलाकर** उनके विशेष तीर्थ क्षेत्रों को हथियाकर उनपर अपने मठ स्थापित कर लिए और वीतरागी जिन बिंबों को वस्त्रों, आभूषणों से ढांककर उन्हें कहीं शंकर तो कहीं राम लखन जानकी अथवा कहीं कृष्ण बलराम और कहीं घांघरा फरिया पहनाकर देवी के रूप में पूजना प्रारंभ कर दिया । आज भी वहाँ दर्शन पाने के लिए तथाकथित हिंदुओं को छूट है किंतु अभिषेक से पहले दर्शनार्थी जिनधर्मियों से मोटी राशि टिकिट के रूप में पंडे वसूलते हैं। हमारे हिंदू प्रधान भारत का अब यही स्वरूप है। समन्वयवादी ऐतिहासिक काल में भी जिन मंदिर निर्माण पर कड़ी रोक थी। मात्र तभी मंदिर बनाया जा सकता था जब उसमें हिंदू देवी देवताओं को भी स्थान दिया जाता। उस काल के अनेक मंदिरों में बाहर अथवा अंदर, किंतु गर्भ गृह के बाहर हिंदु देवी देवता, गणेश, राम सीता, हनुमान, कृष्ण बलराम आदि देखे जाते हैं जिनके आधार पर जैनियों को हिंदू घोषित किए जाने का षड़यंत्र प्रबल हो रहा है। अहिंसक जिनधर्मियों ने प्रत्येक कठिन परिस्थिति में भी अपने धर्म प्रभावी धैर्य का परिचय दिया है।

इन्हें प्रस्तुत करने का एक **उद्देश्य यह भी है कि** पाठकगण संभावित सर्वेक्षण व्दारा जानकारी को बढ़ाकर अन्य जैनेतर साहित्यों से भी सारगर्भित पुरा प्रमाण तुलनात्मक अध्ययन हेतु सामने लाकर ठोस निष्कर्ष निकालने में सहयोग कर सकें। तभी जाकर प्राचीन उस भारतवर्ष एवं समीपवर्ती देशों के उत्तरकालीन धर्मों पर उस मूल संस्कृति का कितने कितने अंशों में कैसा प्रभाव पड़ा, उसे भी अध्ययन में लिया जा सकेगा।

इस दिशा में किए गए सारे प्रयास हमें हमारे सही इतिहास को स्थापित कराने में सहायक सिध्द होंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुछ रोचक संयुक्त संकेताक्षर

मूल संकेताक्षरों को जोड़कर कभी दो और कभी अनेकअर्थी संयुक्त संकेताक्षर बने हैं। जिन्हें पहचानने में पूर्व लिपिविदों ने कभी–कभी गंभीर त्रुटियाँ की हैं। यथा– ||' को एक नहीं **दो** अक्षर मानना चाहिए था (अरहंत | तथा |' सल्लेखना) उसी प्रकार |" एक न होकर **दो अक्षर** हैं | + " ; ||) एक नहीं **दो** ||+) हैं ; "/// भी एक नहीं **दो** "+/// दो हैं, एक नहीं **दो** "+) हैं; ")) एक नहीं **तीन** "+)+) हैं ; " एक नहीं **दो** "+ हैं , /((हिंसा नहीं पैर /**पालतू पशु** का पांव है जिसे सुरक्षा मे दर्शाया गया है। (पूर्व संकेताक्षरों के प्रभाव अनुसार) अन्य **विशेषतायें** यथा–

(अ) कुछ अक्षर तो अनेक रूप लेकर आये हैं जैसे–खलबत्ता जिसके सामान्य अर्थ है–आरंभी गृहस्थ, ; वातावरण, U U U; सल्लेखना की वैयावृत्ति का झूला , घर, ; घर का दरवाजा H दिगम्बरत्व , भवघट ◇, वीतरागत्व, वन , चातुर्मास CC, काल , पुरुषार्थ) मन , अरहंत | ; सल्लेखी , **दशधर्म** , **बारह भावना** , **निश्चय**–व्यवहार धर्म ; सल्लेखना |' | |' , रत्नत्रय , चतुराधन , पंचाचार, पंचमगति , अष्टकर्म कालचक्र , भवचक्र ⊕, गुणस्थानोन्नति तपस्वी , जिन**शासन** सिद्ध ; पिच्छी , केवली , पिच्छी धारी / गणी , आदिजिन आदि तो कुछ संधिमय अर्थ वाले हैं। यथा–

(ब) चतुर्गति + × 卐 , **शिखर**तीर्थ, भवघट के संधि रूप , जम्बूद्वीप , निकट भव्यत्व , युगल श्रृंग , (मांगीतुंगी, उदयगिरि–खण्डगिरि / इन्द्रगिरि–चन्द्रगिरि), रत्नत्रयी **दशधर्मी** वातावरण , अणुव्रती आरंभी ग्रहस्थ , प्रतिमा धारी त्यागी का पुरुषार्थ , तपस्वी का चतुर्विध संघ , चार अनुयोगी आचार्य का **निश्चय**–व्यवहारी वातावरण , ख्याति प्राप्त तपस्वी की रत्नत्रयी लोकपूरण समुद्घात हेतु तत्परता , तद्भवी स्वयं तीर्थ , तपस्वी का महाव्रती पिच्छीधारण , पुरुषलिंगी का पिच्छीधारण , तीर्थंकर प्रकृतिवान का **शुक्लध्यानी** होना , महाव्रती श्रमण की तीर्थंकर प्रकृति आदि–आदि। इन संकेताक्षरों की विस्तृत अभिव्यक्ति निम्नांकित है–

(स) (1) वातावरण पंचमगति का ΛU = Λ+U

(2) उत्तरोत्तर वातावरण । U' = U+U

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(3) पिच्छीधारी का वैराग्यमय वातावरण । 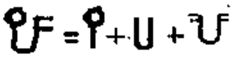

(4) निश्चय व्यवहारधर्मी वीतरागी तपस्या । 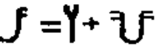

(5) वीतरागी तपस्या का उत्तरोत्तर वातावरण । 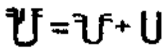

(6) जाप वाला वीतरागी वातावरण । 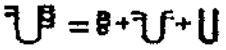

(7) अर्धचक्री का जापलीन वातावरण। 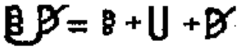

(8) पंचपरमेष्ठी आराधना वाला वीतरागी तपस्वी। 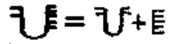

(9) वीतरागी तपस्वी का पंचाचार। 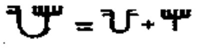

(10) रत्नत्रयी दशधर्मी वातावरण। 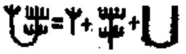

(11) षट् द्रव्य चिंतक महाव्रती का गुणस्थानोन्नति का वातावरण। 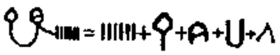

(12) पि॰॰धारियों का रत्नत्रयी संघमय वातावरण। 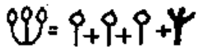

(13) तपस्वी का अरहंत सिद्धमय; आत्मस्थता का तीन धर्मध्यानी वातावरण। 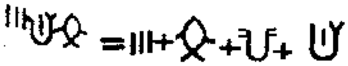

(14) रत्नत्रयी पंचाचारी वातावरण। 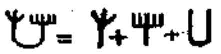

(15) पंचमगति वाले वैय्याव्रती दिगम्बर वीतरागी तपस्वी का रत्नत्रयी वातावरण 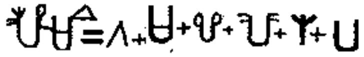

(16) सल्लेखी का वातावरण, तीर्थंकर प्रकृति प्रदायी, अदम्य पुरुषार्थी, तपस्वी का है। 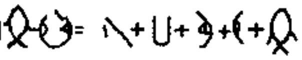

(17) तपस्वी का महाव्रती वातावरण। 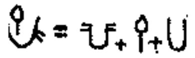

(18) हर कालार्द्ध में शिखर जी शाश्वत तीर्थ पर आत्मस्थ साधना का वातावरण। 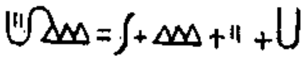

(19) सल्लेखी की आत्मस्थ वीतरागी तपस्या । 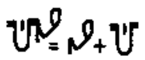

(20) दो धर्मध्यानी का पुरुषार्थी वातावरण। 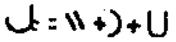

(21) तपस्वी की सल्लेखना हेतु वातावरणी तत्परता। 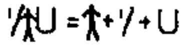

(22) रत्नत्रयी सल्लेखी का कैवल्य श्रद्धानी वातावरण। 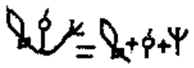

(23) अदम्य पुरुषार्थ। 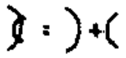

(24) तपस्वी का रत्नत्रय धारण। 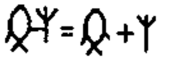

(25) तपस्वी का अणुव्रती / एकदेश व्रती होना। 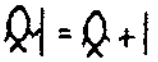

(26) तपस्वी का गुणस्थानोन्नति करना। 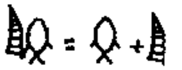

(27) तपस्वी का स्वसंयम / इच्छानिरोध। 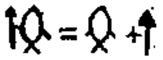

(28) तपस्वी का दो धर्मध्यानों से दो शुक्लध्यानों तक उद्यम। 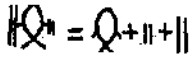

(29) सचेलक का अणुव्रती से तपस्वी बनकर चतुराधन। 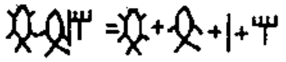

(30) तपस्वी के दो धर्मध्यान। 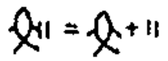

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(31) तपस्वी का सल्लेखना/ संथारा धारण। 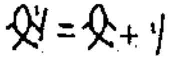

(32) छत्री का तपस्वी बनकर स्वसंयम धारण। 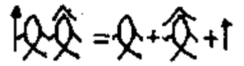

(33) तपस्वी का तीर्थंकर प्रकृति प्राप्त करने हेतु पुरुषार्थ द्वारा आत्मस्थता धारना । 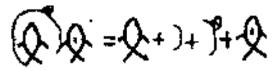

(34) तपस्वी का दूसरे शुक्लध्यान के केवलत्व हेतु उद्यम। 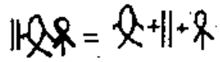

(35) छत्रधारी (छत्री) का चारों कषायों का त्याग। 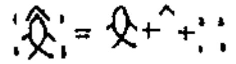

(36) सम्यक्त्वी का सल्लेखना पुरुषार्थ सहित तीर्थंकर प्रकृति बांधकर निकट भव्यत्व पाना। 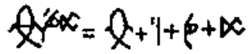

(37) सचेलक तपस्वी का आत्मस्थ तपस्वी बनकर निकटभव्य होना। 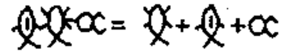

(38) उपशमी तपस्वी का निश्चय--व्यवहार धर्म द्वारा पंचमगति का लक्ष्य। 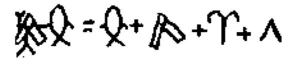

(39) सचेलक का त्रिगुप्ति धारण। 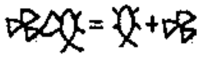

(40) तपस्वी की चतुर्गति भ्रमण नाशन और गुणस्थानोन्नति।

(41) आत्मस्थ तपस्वी द्वारा निकट भव्यत्व पाना। 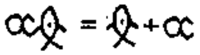

(42) सल्लेखी का तीर्थंकर प्रकृति प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ। 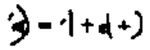

(43) चतुर्गति भ्रमण को गुणस्थानोन्नति द्वारा रोकना। 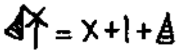

(44) शिखर श्रृंगों पर चतुर्गति भ्रमण को तप से रोकना।

(45) चतुर्गति के भवभ्रमण को पंचमगति द्वारा रोकना। 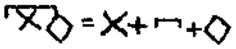

(46) भवभ्रमण को रत्नत्रय द्वारा पंचमगति से रोकना। 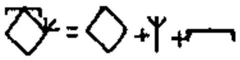

(47) भव/जीवन को मन, वचन, काय से स्थिर बनाकर जीना। 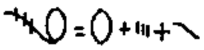

(48) निश्चय व्यवहार धर्ममय सल्लेखना। 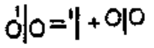

(49) निश्चय व्यवहार धर्म द्वारा भव में चारों कषायों का त्याग। 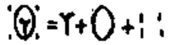

(50) पंचमगति में जीव का उर्ध्वगामी प्रवेश/मोक्ष । 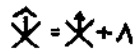

(51) स्वसंयमी की चार धर्म आराधना। 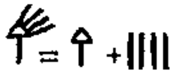

(52) केवली के शीर्ष/अंतर्भूत पाँचों "जिन" परमेष्ठी । 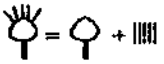

(53) निकटभव्य का अरहंत सिद्धयुक्त भावन और चतुराधन। 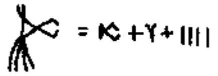

(54) काल से प्रभावित अन्य पाँच द्रव्य। 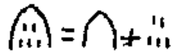

(55) निकट भव्यत्व को छोटा बनाकर केन्द्र की ओर मोड़ना। 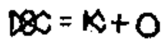

(56) रत्नत्रयी पंचाचार। 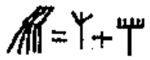

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(57) सल्लेखी के ध्यान में अरहंत के तीन शुक्लध्यान।

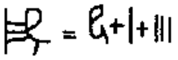

(58) अरहंत की महामत्स्य जैसी संहनन दृढ़ता।

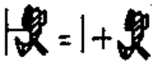

(59) जिनसिंहासन पर अवस्थित पंचपरमेष्ठी ।

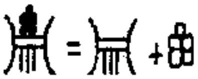

(60) जिनसिंहासन के सारे ही जिनलिंगी गुणस्थानोन्नति रत।

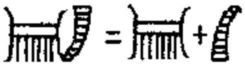

(61) पंचमगति वाले का चतुराधन।

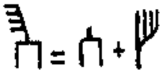

(62) तीर्थंकर प्रकृति पुण्यार्थी द्वारा सल्लेखना।

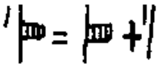

(63) युगल श्रृंगों पर पुरुषार्थी द्वारा समाधिमरण और पंचमगति की साधना।

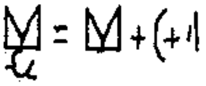

(64) ढ़ाईद्वीप में जीवन को दोहरी संकल्पित सीमाओं में बांधना।

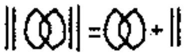

(65) भवचक्र से पार उतारता रत्नत्रयी वैय्यावृत्तिक वातावरण ।

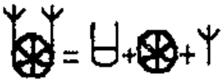

(66) रत्नत्रय हेतु निश्चय व्यवहार धर्म सहित पुरुषार्थ ।

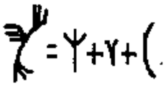

(67) कर्मफल चेतना को शांति से सहने से गुणस्थानोन्नति।

(68) रत्नत्रय का केवली के शीर्ष पर धारण और तपस्वी का पंचाचार।

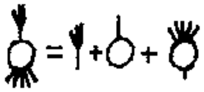

(69) महामत्स्य जैसी उत्तम संहनन वाली तपश्चर्या।

(70) चतुर्गति भ्रमण का पंचमगति में बदलना।

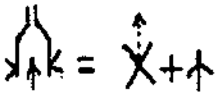

(71) अष्ट कर्म जन्य चतुर्गति भ्रमण को रत्नत्रय से नाशना।

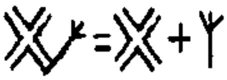

(72) शिखरतीर्थ श्रृंगों पर जाकर चतुर्गति भ्रमण नाशन।

(73) सल्लेखी का रत्नत्रय धारण सहित चतुराधन और पंचमगति साधना का पुरुषार्थ ।

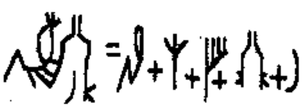

(74) कैवल्य के लिए आवश्यक दो धर्मध्यानों से चौथे शुक्लध्यान तक का उद्यम।

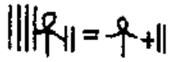

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(75) रत्नत्रयी तपस्वी का पंचाचारी रत्नत्रयी उद्यम संघ में ही संभव। 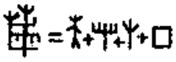

(76) पंचमगति के साधन चार शुक्लध्यान और अरहंत के तीसरा शुक्लध्यान। 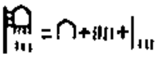

(77) चतुर्गति नाशने वाली, पंचमगति वाली पुरुषार्थी सल्लेखना। 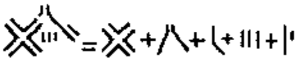

(78) चार आराधन द्वारा पंचमगति का तप करने वाले को बाह्य उपसर्गी बाधाऐं। 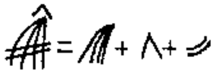

(79) रत्नत्रय की प्राप्ति के लिए चारों कषायों का त्याग। 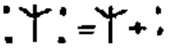

(80) वैय्यावृत्ति का झूला चतुराधक को हर कालार्द्ध में। 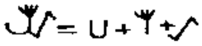

(81) तपस्वी का निश्चय व्यवहार धर्मी तीर्थंकर प्रकृति का उद्यम। 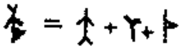

(82) तपस्वी की निश्चय व्यवहार धर्मी सल्लेखना । 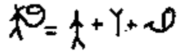

(83) तपस्वी को सल्लेखना में बंधनों की बेड़ी । 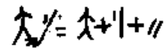

(84) तपस्वी की पुरुषार्थी सल्लेखना में तीनधर्म ध्यान। 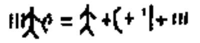

(85) तपस्वी के इहभव में तीर्थंकर प्रकृति का पुण्योदय। 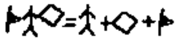

(86) रत्नत्रयधारी तपस्वी ने तद्भवी मोक्ष हेतु निश्चय व्यवहार धर्मी महाव्रत धारा। 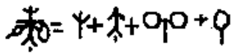

(87) तपस्वी संघस्थ उद्यमी है। 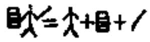

(88) तपस्वी संघ में सल्लेखनाधार चर्या अपनाता है।

(89) तपस्वी अष्टापद जैसा अपरास्त होने वाला अर्द्धचक्री है। 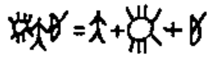

(90) तपस्वी चार धर्मध्यानी रत्नत्रयी पुरुषार्थी अर्द्धचक्री है। 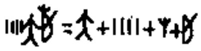

(91) त्रिगुप्तिधारी तपस्वी पुरुषार्थी है। 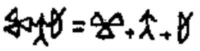

(92) प्रतिमा पुरुषार्थी तपस्वी दूसरे शुक्लध्यान हेतु उद्यमी था। 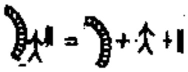

(93) प्रतिमा पुरुषार्थी तपस्वी पुरुषार्थी था । 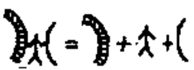

(94) पंचमगति भावी तपस्वी निश्चय व्यवहार धर्मी. आचार्य हैं। 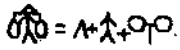

(95) तपस्वी दो धर्मध्यानों वाला होकर भी अरहंत भक्त है। 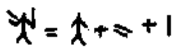

(96) कुमारी युगल श्रृगों पर चौथा शुक्लध्यानी तद्भवी मोक्षार्थी यशस्वी जिनध्वजा प्रभावक था।

(97) तपस्वी कांवर पर गुणस्थानोन्नति शील क्षपक को लेकर विहार में सहायता करते हैं। 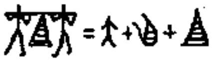

(98) तपस्वी ओंकारी है। 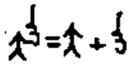

(99) तपस्वी सप्त तत्व चिंतक है। 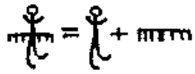

(100) तपस्वी ढाईदीप में समता उद्यमी है। 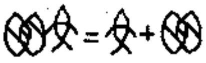

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरालिपि का विस्तार

मूल में तो सिंधु घाटी की पुरालिपि का विस्तार भारतवर्ष में ही रामायण और महाभारत के मध्यकाल में उभरा प्रतीत होता है किंतु वर्षों की गहराई में इसका अस्तित्त्व डायनासर काल से भी पूर्व काल में चला जाता है जो चार सीलें दर्शाती हैं। लावा की चट्टानी पर्तों के अंदर से झांकता इसका अस्तित्त्व भारत के दक्षिण पठार की पिछली लावा उफानों से भी पूर्व जा बैठता है । उस रामायण–महाभारत की प्रथम चर्चा तो जैनाधारी रही है और प्रभावी भी रही किंतु जैन विरोधी आंदोलन के पश्चात् उसे परिवर्तित (जैनों) हिंदुओं ने अपने अनुकूल परिवर्तन करके भी अपनाए रखा । इस प्रकार जैनों और ब्राह्मणों की रामायण और महाभारत तथा गीता अलग–अलग हो गए । आश्चर्य है कि इनका कोई भी "लौकिक पात्र" सैंधव लिपि में नहीं दीखता भले ही अध्यात्म के रस में पगी वही लिपि रामायण युग के बंधु तपस्वियों, कुलभूषण देशभूषण की पूरी कथा दिखलाती है।

सिंधु पुरालिपि को किसी भी दिशा में पढ़े जाने पर भी उस अक्षर–कम में **अर्थ क्रम** की विशेषता बनी रहती है । स्वस्तिक एक ऐसा संकेताक्षर है जो सिंधु घाटी लिपि के साथ–साथ प्राचीन भारतवर्ष के प्रत्येक भूभाग पर अपनी उपस्थिति दर्शाता है । मध्य विश्व के देशों के साथ–साथ वह इटली के इत्रूस्कन स्वर्ण पत्रों में भी देखा जाता है जहाँ त्रिशूल, गुणस्थान, जंबूद्वीप अंकन के साथ–साथ धनुष तथा काल अंकन भी स्पष्ट दिखलाई पड़ता है । इत्रूस्कन सभ्यता "इत्रूरिया" की प्राचीन (ईसापूर्व) "सिकुली" तथा "अंबरी" (Siculi & Umbri) जातियों की विशेषता रही है जिसे विद्वान **जार्ज डेनिस** के अनुसार 1000 ई. पू. (B.C.) से भी अधिक प्राचीन माना जा सकता है । डेनिस के मतानुसार इतूरिया के मूल "इत्रूस्कनों" को (जो बद्दू न होकर समूहों में बसते थे) ग्रीक की थेसाली (Thessali) की पेल्सागी (Pelsagi) सभ्यता वालों ने हमलों से नष्ट करके स्वयं को स्थापित किया था। वहाँ से इत्रूरियनों को भगाकर उन्होंने वहाँ ऊंची–ऊंची दीवारों वाले निर्माण किए किंतु उन्हें भी ग्रीक की तिरहेनी/तिरसेनी (Tyrseni) जाति समूहों ने लगभग 1044 ई. पू. (B.C.) में हमला कर नष्ट किया और स्वयं को स्थापित कर *लिया था । वे स्वयं को "रसेना" पुकारते थे तथा रोमन उन्हें "इत्रुस्की" पुकारते हैं* । इटली की उस प्राचीन संस्कृति में सैंधव लिपि के अनेक संकेताक्षर स्पष्ट दिखाई देते हैं । उस "मूल" सभ्यता के विषय में "**प्लेटो**" का अभिमत था कि वह (850,000) साढ़े आठ लाख वर्ष पुरानी सभ्यता थी जिसे सम्पूर्ण विश्व ने लगभग भुला दिया है । "प्लेटो की इसे "सनक" कहकर हंसी में उड़ा दिया गया किंतु कुछ प्रमाण तो उनकी उस बात के संबंध में अवश्य मिलते हैं । उन इत्रूरियों की प्राचीन बस्तियों के खंडहर अब भी बीच अमेलिया और बसेरा नगरों में खड़े मिलते हैं । कुछ गुफाऐं भी मिलती हैं ।

भले ही पेलस्गियन (Pelasgian) जैसी अनेकों सभ्यताऐं काल के गाल में समा चुकी है और उनकी लिपियों का रहस्य भी, किंतु उन पर खोज करना अत्यंत रोचक विषय है । विशेषकर तब, जब हमें उस पुरालिपि को पढ़ने का आधार भी मिल चुका है । काल की अनादि और अनंतता में मनुष्य के अस्तित्त्व के प्रमाण हमें मनुष्य के गहराई से जुड़े अस्तित्त्व वाले, उस भूले जा चुके काल में ले जाकर हमें हमारी "जड़ों" से परिचित कराते हैं कि जैन मान्यता के उत्सर्पिणी/अवसर्पिणी के काल प्रभावों में न जाने कितनी ही सभ्यताऐं उठीं और काल कवलित हो चुकी हैं । किंतु भारत की उस मूल संस्कृति को आज भी उसी रूप में जीवंत देख इसे "शाश्वत संस्कृति" बतलाने का श्रेय इसी "सिंधु घाटी लिपि" को जाता है । साथ ही यह भी दिखाई देने लगता है कि उस संस्कृति का प्रभाव कितना विश्वव्यापी था । इटली से लेकर ईजिप्त तक प्रभावी "गेटीज कूरो" आज भी उतने ही गौरव का विषय बना हुआ है । ईजिप्त की 'नील कछारी सभ्यता" में भी अनेक अक्षर इसी सिंधु लिपि के सदृश्य दिखाई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पड़ जाते हैं विशेष कर तूतेनखामेन के मंदिर में चित्रांकित अक्षरों के रूप में रत्नत्रयी राजा का पंचम गति की भावना भाता दृश्य, राजा और रानी की उन बैठी मुद्राओं का परिचय "जिनप्रभावी" और उन्हें जिन भक्तिमय दर्शाता है ।

पुरातत्त्व की दृष्टि से उस सभ्यता के विषय में मानव के सामाजिक जीवन संबंधी भी थोड़ी बहुत जानकारी पुरा वस्तुओं से अवश्य मिलती है । किंतु जो लिपि अंकन के रूप में सीलों, सिक्कों तथा अन्य सामग्री पर दिखाई देती है वह उस काल में अध्यात्म की अभिरुचि को ही दर्शाती है । उत्तरकाल में इसके कुछ संकेताक्षर ब्राह्मी, ग्रीक तथा लैटिन आदि लिपियों ने ले लिए हैं । इस लिपि को देखकर यह निष्कर्ष निकालना भी उचित नहीं होगा कि उस समय अथवा इसके उद्भव से पूर्व मानव समाज में दैनिक जीवन संबंधी कोई भाषा अथवा लिपि नहीं थे । प्राप्त सीलों में ही जब "ऊँ" के तीन स्वरूप मिल रहे हैं तब इतना तो संकेत मिल ही जाता है कि तब "देवनागरी" का भी किसी न किसी रूप में प्रचलन अवश्य था । सिर से लटकते ऊँ ॐ का प्रयोग तो मूल धवला ग्रंथ के साथ--साथ अनेक पाण्डुलिपियों तथा जिनबिम्बों की प्रशस्तियों,, पादपीठ अभिलेखों, प्राचीन शिलालेखों आदि मे दिखाई पड़ता ही है अन्य दो रूप ॐ तथा ॐ सिंधु घाटी लिपि की विशेषता दिखाई देते हैं। विशेष बात तो ध्यान देने योग्य यह है कि जिस सनातन परंपरा की झलक हमें सिंधु घाटी के अवशेषों (सील, मुहरों) आदि में देखने को अंकित मिलती है **वही** परंपरा **आज भी दिगंबर जिन धर्मी साधुओं की दैनिक चर्या में जीवंत है । मूल जैन सिद्धांत ग्रंथ भी उसी की पुष्टि करते हैं । उसके कुछ अक्षरों का जिन मुद्राओं के साथ होना भी इसी बात का संकेत है कि वह "जिनानुयायियों" की भाषा थी । "कुंजी" के रूप में वह विश्व को संकेत देती है कि उसका पाठन "जैनआगम के आधार" पर ही होना चाहिए** । व्यर्थ वैदिक, गायत्री, माहेश्वर सूत्र तथा अनुष्टुप छंदों को खींचतान कर बैठाने का पूर्वाग्रह तो त्याग ही दिया जाना चाहिए । श्री **वत्स**. **मैके** और **मार्शल** के केटालॉगों से प्राप्त लिपि विषयों तथा अन्य प्रकाशित सैंधव सामग्री पर अंकित लिपि अभिलेखों को जैन आगम के आधार पर पढ़ने पर जो तथ्य सामने आते हैं उन्हें **"सैंधव पुरालिपि में दिशा बोध"** शीर्षक के अंतर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है क्योंकि वह आत्मबोधक है। प्रयत्न यही किया गया है कि अधिक से अधिक अभिलेखों को पढ़ लिया जावे किंतु संभवतः यदि कुछ अभिलेख हमारी दृष्टि से छूट गए हों तो पाठकगणों से विनती है कि उन्हें हमारे ध्यान में अवश्य लाया जावे । हम उनके आभारी होंगे ।

पाठकों की सुविधा के लिए लिपिकोष की संक्षिप्त सूची भी यहाँ अलग से प्रस्तुत की गई है ताकि वे पुरालिपिकों की आध्यात्मिक अनुभूति की झलक पा सकें । यहाँ आगे कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष जो हमारे ज्ञान में पुरालिपि पढ़ने पर आए थे उन्हें दर्शाना भी उचित समझा गया है, कि :

1 – यह पुरालिपि संपूर्णता में जैन श्रमण परिप्रेक्ष्य में पढ़ी और लिखी गई है जहाँ तनिक भी खींचतान नहीं की गई है । मात्र अक्षरों के अर्थ ही क्रमवार संजोए गए हैं ।

2 – सैंधव लिपि के अक्षर (स्वर–व्यंजन नहीं) रहस्य उद्घाटित करने वाले **शब्द** हैं। संकेताक्षर, चित्राक्षर और संयुक्ताक्षर जैसे

3 – उन शब्दों का मूलाधार उनकी भारतवर्ष में बिखरी / प्रस्थित विशाल मूलाकृतियां हैं अथवा रही हैं ।

4 – सैंधव सीलों / मुहरों में उस काल तक के 21 तीर्थंकरों के लांछनों की उपस्थिति दिखती है भले ही विद्वानों के मतानुसार तीर्थंकरों के लांछन की प्रथा उत्तरकालीन बतलाई जाती है ।

5 – कुछ सीलों में प्रथमानुयोग तथा अधिकांशतः द्रव्यानुयोग का दर्शन होता है ।

6 – इस पुरालिपि में आत्मा का रहस्य और आत्मोत्थान की राहें "बोधगम्य" हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

7 – संसार से ऊपर उठने और वैराग्य धारण करने की प्रेरणादायक यह सैंधव लिपि ही है जिसे किसी भी "मूल्य" से नहीं मात्र आचरण तथा पुरुषार्थ से ही संयम द्वारा अपनाया जा सकता है ।

8 – इसके मूल सिद्धांतों को अनुभवन में न लाने के कारण आगे चलकर अज्ञान वश विरोधी बनकर अनेक तथाकथित धर्मधारी बाहर निकल गए और जैनत्व के विरोध में उठ खड़े हुए जिससे धर्म और पुरातत्व की भारी क्षति हुई है।

9. सबसे प्राचीन लिपि होने के कारण इसके अनेक अक्षर ब्राह्मी में तथा और आगे चलकर उत्तर कालीन प्राकृत, संस्कृत, तथा वर्तमान में प्रचलित देवनागरी आदि ने भी ले लिए हैं जिन्हें सावधानी पूर्वक पढ़ा जाना आवश्यक होगा ।

सैंधव भाषा और लिपि को पकड़ने समझने के जितने प्रयास हुए हैं वे सब इसी ध्येय से हुए हैं कि वर्तमान भाषाओं से सैंधव भाषा का तारतम्य बिठाया जा सके । जबकि सैंधव भाषा लौकिक न होकर अध्यात्मिक भाषा रही है और वर्तमान में भी प्रचलित है । अधिकांश विद्वान सैंधव भाषा को द्रविड़ भाषाओं से जोड़ते हैं जबकि सैंधव भाषा और लिपि प्राकृत आधारित होने से सभी क्षेत्रों में अपना प्रभाव दर्शाती है । श्री **एस्को पारपोला** ने बहुत गंभीर अध्ययन करके लिपियों के विषय में उनके स्वयं के अभिमत दिए हैं कि सैंधव भाषा को "इंडोआर्यन" भाषा ने हटाया अर्थात जहाँ सैंधव बोली जाती थी वहाँ कालान्तर में संस्कृत आ गई जिससे पुनः बदलते हुए कदाचित् हिन्दी, बंगाली और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं ने स्थान पा लिया । वैसा होना तो स्वाभाविक ही था।

डॉ. ब्युलर ने भारतीय लिपि का काल ई. पू. 1000 से भी अधिक मानते हुए ब्राह्मी के पक्ष में नवीन शिलालेखों से संदर्भित विचार दिए हैं । मेगस्थनीज से लेकर भारतीय और विदेशी विद्वानों की लंबी सूची इसी ऊहापोह में हमें सहज ही उपलब्ध हो जाती है । ब्राह्मी के उदभव सम्बंधित अनेक मान्यताऐं हैं । अष्टाध्यायी में लिपियों का प्राचीनतम उल्लेख यवनानी को दर्शाता है । जैन सूत्रों में बंभी (ब्राह्मी), जवनालि (ग्रीक) दोसपुरिम, खरोत्थि, पुक्खरसरिया, भोगवैगा, पहाराइय, उयअंतरिक्खिया, अक्खरपिट्ठिया, तेवनैया, गिन्हैया, अंकलिपि, गंधव्वलिपि, आंदसलिपि, माहेसरी, दामिली (तमिल) और पोलिन्दी का उल्लेख है । बौद्ध ग्रंथ **ललित विस्तर** में ब्राह्मी, खरोष्ठी, पुष्करसारि, अंगलिपि, बंगलिपि, मगधलिपि, मंगल्यलिपि, मनुष्य लिपि, अंगुलिय लिपि, शकारि लिपि, ब्रह्मवल्लि लिपि, द्रविड़ लिपि, कनारि, दक्षिण, उग्र, संख्या, अनुलोम, उर्ध्वधनुर्लिपि, दरद, खंस्य, चीनी, हूण, पुष्प, मध्यक्षर, विस्तार, देव, नाग, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, महोरग, असुर, गरुड़, मृगचक, चक, वायुमरू, भौमदेव, अंतरिक्ष, उत्तर, कुरुद्वीप, उपर गौड़, पूर्वविदेह, उत्क्षेप, विक्षेप, प्रक्षेप, सागर, वज्र, लेख प्रतिलेख, अनुद्रुत, शास्त्रावर्त, गणावर्त, उत्क्षेपावर्त, विक्षेपावर्त, पादलिखित, द्विरुत्तर–पदसन्धि लिखित, दशोत्तर पद सन्धि लिखित अध्याहारिणी, सर्वरुत्संग्रहणि, सर्वभुवरुदग्रहणि आदि लिपियों का वर्णन है जिनमें से **ब्रह्मा** ने बाऐं से दाहिने, **क्यालु** ने दाहिने से बाऐं और **त्सम्–कि** लिपियाँ ऊपर से नीचे की ओर लिखी जाने वाली ऐसी **तीन दैवी शक्तियों** द्वारा दी गई लिपियाँ बौद्ध साहित्य में मानी गई हैं ।

सिन्धु घाटी की लिपि की उत्पत्ति संबंधी भिन्न–भिन्न मत हैं । **सर जान् मार्शल** उसे L-R तथा द्रविड़ मूल की मानते है । पांचवी कुंजी एक अति प्राचीन सबसे बड़ी दिगंबर जिन पद्मासित प्रतिमा है जिसे लक्षणों से "आदिनाथ" पहचाना गया है । वह अतिशयकारी प्रतिमा **कुण्डलपुर** नामक सिद्धक्षेत्र पर दमोह के समीप एक पाषाण पर उभरी दिखाई देती है और तृतीय कला काल की रचना प्रतीत होती है । इसके पद्मासित पैरों पर सैंधव लिपि के 3 और 10 अक्षर दृष्ट हैं जो इसे सिंधु घाटी कालीन सभ्यता के सम कालीन प्राचीन दर्शाते हैं । कला के प्रथम काल / चरण की हमारे सामने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुंजी प्रथम और द्वितीय है । कला के दूसरे चरण की कुंजी 3 धाराशिव द्वारपर और तीसरे चरण की कुंजी आदिजिन की कुण्डलपुर स्थित आदि जिन' मुद्रा है । **पालगंज की पार्श्वनाथ** जिनमुद्रा महावीर कालीन होकर भी कुण्डलपुर बड़े बाबा की कलाछवि प्रतीत होती है ।इसके पैरों पर भी सैंधव पुरा लिपि अंकन है। प्राप्त सभी कुंजियां सैंधव लिपि के सारे रहस्य खोल देती हैं । इसके बाद तो सारे ही सैंधव पुरा लेखों को पढ़ा जाना अति सहज बन गया । इसलिए सभी पुरालेखों को एकत्रित करके उन्हें पढ़कर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि सभी पुरा लिपि प्रेमी बंधु उसका लाभ ले सकें । लिपि को पढ़ना सहज होने से पाठक स्वयं भी इन संकेत लेखों को स्वयं अर्थ देकर इस दिशा में बहुत बड़ा सहयोग कर सकते हैं ।

'सैंधव पुरालिपि में दिशाबोध'' द्वारा सभी उपलब्ध पुरा अंकनों को क्रमबार पढ़ा गया है और उनकी महत्ता को खोला गया है जो एक उपयोगी सामग्री दे रहा है। इसे प्रथम तो भारतीय केटालॉगों की दृष्टि से पढ़ा गया पश्चात् पाकिस्तान तथा अन्य पुराअंकनों को भी समाहित करके पढ़ लिया गया है । साथ ही इस शोधकार्य में सम्मिलित उपयोग किए जा रहे सभी भारतीय प्रदेशों से प्राप्त पुरा संकेतों को भी सम्मिलित किया जा रहा है । मेरी अपनी दृष्टि में पड़े सभी पुरालेखों को भी पढ़ा गया है जो इस प्रकार हैं कि अभिलेखों के ''आरंभ'' और ''अंत'' को पहचानकर उनके पढ़े जाने की दिशा आत्मोन्नति हेतु मिले वही सही दिशा बोध कहलावेगा , सो ही यहाँ स्वीकार किया गया है । आशा है कि पाठकगण इससे लाभ प्राप्त कर सकेंगे। सीलों में शिवलिंग दर्शाने का जबरन प्रयास किया गया है जो संपूर्ण रूप से भ्रामक है । उस काल में भी बांट और तौल के साधन बहुत उत्तम थे। उन्हीं को येन केन प्रकारेण शिवलिंग बतलाने के प्रयास में भिन्न–भिन्न शिवलिंग दर्शाए गए हैं (सीलें 8 तथा 13) जो श्री वत्स की पूर्वाग्रह ग्रसित भूमिका दर्शाते हैं । एक कलेंडर (सील 14) भी दर्शाया गया है जो चंद्रमा की तिथियों पर आधारित वर्ष को बतलाने में महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है । बाहरी घेरे में 29 दिन और 29 रातें हैं जो पखवारे दर्शाते हैं । भीतरी घेरे में 24 खंड हैं जो एक दिन को दर्शाते हैं । सबसे अंदर तीन प्रमुख ऋतुऐं और उनके मध्य तीन उप ऋतुऐं हैं । यह कलेंडर घड़ी, तिथि और मौसम का ज्ञान उस काल में भी सहज दिलाता रहा है । ये एक प्रमाण है कि सैंधव युगीन मानव कितना सभ्य और प्रगतिवान तथा दूरदर्शी था । सील 21 गवासन मुद्रा में भक्ति दर्शाती है जबकि 13 और 14 उस काल के सामान्य कृषक/मानव को दर्शाती हैं । 17–25 सीलें अध्यात्म की प्रतीक हैं उन्हें भी आगे विवरण में प्रस्तुत किया गया है ।

सैंधव लिपि के अंतर्गत माने गए अनेक संकेताक्षर हमें सर्वेक्षण के दौरान **कर्नाटक** प्रदेश तथा **तमिल नाडु** की पर्वतीय शिलाओं/ चट्टानों पर देखने को मिले। **मदुरै के आसपास** के सभी शोचनीय स्थिति में। **पुंडी** का विशाल क्षेत्र झगड़े में उलझने से अतिक्रामकों की चपेट में आ गया है। चतुर्दिक त्रि आवर्ति वाली एक शायिका यहाँ भी दिखी। **करंदई** तथा **तिरपनमूर** में भी सामायिक का पुरा अंकन दिखा । **सेलुकेई** की आदिनाथ प्रतिमा अति विशेष है क्योंकि उसके पादपीठ पर दोनों ओर त्रिछत्र अंकित हैं। **थिरुमलै, मेरसित्तमूर, वीळकम, किलसात्तमंगलं, तिरुपनकुंडरं,** सभी में पुरा कालीन शैलांकन हैं जो वहाँ पुराकाल में जिन श्रमणों का तप रत रहना दर्शाते हैं, घोर उपेक्षित पड़े हैं। श्रमण बेलगोला में भारतीय पुरातत्व व्दारा भी घोरतम उपेक्षित और खतरे में पुरा अंकित विशाल विस्तार पड़ा है। इसका एकमात्र कारण उसका **अपठ,य होना** है।

गुजरात,, कच्छ में वह पुरातत्त्व **गिरनार** की ऊँची श्रृंगों और श्रृंगपथ के साथ साथ **जूनागढ़** के आसपास के क्षेत्रीय विस्तार में प्रचुर मात्रा में था किंतु प्रादेशिक पुरातत्त्व विभाग ने अज्ञानतावश उसे क्षुद्र स्वार्थवश, आराजक तत्वों को पंडों के रूप में वहाँ अनियंत्रित बसाकर बुरी तरह नष्ट कराया है। महाराष्ट्र,में भी लगभग यही स्थिति प्रादेशिक विभागों व्दारा बिहार और झारखंड जैसी है। उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश के **ग्वालियर, विदिशा, ग्यारसपुर, चंदेरी** की ही भांति उपेक्षित पड़ा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरालिपि पाठन

पुरासीलों में अंकित जीवन संबंधी चित्र इडियोग्राम्स कहलाते हैं क्योंकि इन्हें देखते ही कल्पना उठती है अर्थात् इनसे जीवन के उपक्रम का कुछ संदेश मिलता है जिसमें पात्र के साथ क्या संभावित घटा इसका बोध होता है । प्रत्येक चित्र ही ज्ञान देते हुए अति विशेष घटनाऐं बतलाता है अर्थात् यहाँ आरंभ और अंत को देखकर स्वात्मोन्नति की ओर ध्यान देते हुए जीवन के कार्यों से लक्ष्य प्राप्ति करना यही दिशा बोध का ध्येय रहा है । अनेक उपलब्ध केटालॉगों में सीलों को जिस कम में प्रस्तुत किया गया है उन्हें उसी क्रम में उनकी लिपि हेतु पढ़ा गया है । जिसका आधार लेखिका द्वारा दी गई संकेत सूची है । सर्व प्रथम इसमें हड़प्पा के चित्रों को वर्णित किया गया है । कुछ सैंधव पुरा लिपि विशेषज्ञों ने इसे रेबस पध्दति से पढ़ने का संकेत किया है जो अब तक किए गए प्रयासों में उचित तो लगता है किंतु निम्नांकित कारणों से चूक रह गई है।

1, कुंजी हाथ न लगने से वे सही संदर्भ उपयोग करने में चूक गए। उनका सारा ध्यान संकेतों को या तो **ऋग्वेद की ऋचाओं** से सामंजस्य बैठाने का रहा आया या फिर माहेश्वर सूत्र अथवा अनुष्टुप छंद और गायत्री मंत्र से ।

2, लिपि पढ़ने के उद्देश्य से किया गया उद्यम संकेत लिपि का अर्थ समझने से हटाकर सारा प्रयास नई भाषा? की खोज में लगा दिया गया।

3, ब्राह्मी के साथ स्वर साम्य बैठाने के प्रयास में भटककर पूरी शताब्दी लगाकर भी लिपि संकेतों की ओर गहन दृष्टि नही डाली गई।

4, लिपि पाठन संबंधी संकेत कतिपय पुरा विशेषज्ञों से पाकर भी उन्हें गंभीरता से नहीं लिया गया।

5, भारतीय प्राच्य संस्कृति में भी सचाई से अज्ञात कारणों वश नहीं झांका गया ।

6, पुरालिपि विशेषज्ञों की प्राच्य जैन साहित्य से अनभिज्ञता और जैनधर्म के प्रति पूर्वाग्रही दृष्टि भी बहुत बड़ा कारण हैं।

7, वह पूर्वाग्रह सत्य का दर्शन भी नहीं करना चाहकर भारत के इतिहास को काल्पनिक हिंदुत्व के रंग में ही दिखलाना चाहता तो है किंतु प्रमाण उनका साथ नहीं देते हैं। तब बहुसंख्यक हिंदुत्व प्रभावी उठे हाथ स्वयमेव प्रमाणों के अभाव में ढलक जाते हैं ।

8, सैंधव संस्कृति को कदाचित हिंदू संस्कृति मान लेने पर भी धर्म के धरातल पर उसकी मान्यता संबंधी कोई भी संदर्भ उन पुरालिपि संकेतों में दिखलाई नहीं देते जबकि जिनधर्मी चारों अनुयोगों का दर्शन हमें उसमें सर्वत्र सहज दिखता है।

9, जिन पूर्वलिखित डायरियों, रोजनामचों, संदर्भों के आधार पर अंग्रेजों ने इतिहास रचा उन्हें भी आज के जैनेतर विव्दानों की भांति भारत की मूल संस्कृति से परिचय नहीं था इसीलिए आसपास बिखरे प्रमाणों के होते हुए भी उन्हें अनदेखा कर दिया गया और इसी कारण अति सूक्ष्म विश्लेषण व्दारा बनाई गई संकेत सूचियों मे भी वे कहीं कहीं चूक गए।

हमने उन सूचियों को नए सिरे से पढ़कर सर्वप्रथम यहाँ हड़प्पा के चित्रों को वर्णित करने हेतु श्री माधव स्वरूप वत्स के ''एक्सकेवेशन्स'एट हरप्पा भाग I–2 / 11 से लेख सं. LXXXV / (85) में अंकित अभिलेखों को अभिव्यक्त किया है जो पृष्ठ 84 तक जाते हैं।:

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री माधव स्वरूप वत्स के केटेलॉग का page No. LXXXV पाठन

(1) एक अदम्य पुरुषार्थी ने अष्ट कर्मजन्य चतुर्गति भ्रमण से मुक्ति हेतु दो धर्म ध्यानों वाली चतुर्थ गुणस्थानी की आरंभी गृहस्थ स्थिति से उठकर तीन धर्मध्यानों वाला पंचम गुणस्थानी बनकर संघाचार्य की शरण ले संघस्थ हो चतुराधन करते हुए, वैराग्य धारण किया और तीर्थंकर के समवशरण में पहुंचकर उनके पादमूल में जा बैठा ।

(2) एक तीन धर्मध्यानों वाले गृहस्थ के वातावरण में नवदेवता पूजन और रत्नत्रय से प्रेरित होकर गृहत्यागी ने दो धर्मध्यानी (चतुर्थ गुणस्थानी) स्थिति से ही सप्त तत्त्व चिंतन द्वारा पंचम गति की साधना हेतु वैराग्य धारण किया ।

(3) दो रसिक जो अर्धचक्री थे और अष्ट विद्या में निपुण थे ने घातिया कर्मो के क्षयार्थ निश्चय--व्यवहारमय जिनधर्म के शरणागत होकर संघाचार्य के सम्मुख रत्नत्रयी पंचाचार पालते हुए भवचक्र पार करने लीन हुए ।

(4) दूसरी प्रतिमा धारण करते हुए पुरुषार्थी ने स्वसंयम धारण किया और अदम्य पुरुषार्थ बढ़ाकर दो शुक्लध्यानों की प्राप्ति हेतु शाकाहार स्वीकार कर अष्टापद जैसे निकट भव्य प्राणी की तरह कभी हार न मानते हुए आरंभी गृहस्थ जीवन को त्याग दिया और पुनः आगे अदम्य पुरुषार्थ उन्नत किया।

(5) भवसागर से पार होने के ध्येय से चतुराधक छत्रधारी राजा ने ऐलक बनकर स्वसंयम धारा और तपस्वी बनकर रत्नत्रयी जंबूद्वीप में महामत्स्य की तरह वज्रवृषभनाराच संहनन के कारण उत्सर्पिणी--अवसर्पिणी कालार्धो में चारों गतियों से पार होने वाला अरहंत सिद्धमय वातावरण बनाया ।

(6) भव से भयभीत हुए व्यक्ति रत्नत्रयी संघ में रहकर तीर्थंकर पद और सल्लेखना का पुरुषार्थ करते हुए जिनशरणी बन गृहत्यागी बनते हैं ।

(7) यह संसार ही अष्टकर्म जनित चतुर्गतियों का प्रतिफल है ।

(8) पुरुषार्थी जीव ही अंतहीन भटकान से छुटकारा पाने के लिए सिद्ध प्रभु का सहारा लेकर अष्टकर्मो से छूटने सल्लेखना मरण द्वारा अदम्य पुरुषार्थ कर जाते हैं ।

(9) सप्त तत्व चिंतन ही तपस्वियों के ध्यान का विषय बनता है ।

(10) चतुर्गति के अष्टकर्मनाशन के लिए पंचमगति का लक्ष्य रखकर संघ की शरण में जाना ही भवचक्र से पार कराता है।

(11) जंबूद्वीप में भवघट से तिरने की राह है ।

(12) 12 व्रतों का पालन 15 प्रमादों से बचाकर पंचमगति की साधना और वैराग्य में तीन धर्मध्यानी को भी रत्नत्रय की प्राप्ति कराता है । ऐसे चतुराधक सल्लेखी का वैराग्य और दृढ़ता चारों कषायों का त्याग कराकर ही आत्मस्थता लाती है ।

(13) एकदेश स्वसंयमी आरंभी गृहस्थ ने तीन धर्म ध्यानों के साथ भी चतुराधन करते हुए रत्नत्रयी सल्लेखना से तीर्थंकर प्रकृति बांध-कर चर्तुगति छेदन हेतु वैराग्य लिया ।

(14) अपठ्य है ।

(15) लोकपूरण करते हुए केवली समुद्घात करने वाले वह पंचाचारी तपस्वी, प्रारंभ में एक आरंभी गृहस्थ थे जिन्होंने तीन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्मध्यानों के लिए संयम/इच्छा निरोध स्वीकारा था । (लक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए यह यों भी बाएं से दाहिने पढ़ा जायेगा) जिन ध्वजा की शरणागत आदि प्रभु के पथ पर चलते हुए स्वसंयमी ने तीन धर्मध्यानों के साथ आरंभी गृहस्थ होकर भी तप स्वीकार पंचाचार पाला और केवली समुद्घात तक की लोकपूरण स्थिति पर पहुंचे।

(16) भवचक्र से पार उतरने सिद्धत्व पद इच्छुक निकट भव्य ने ऐलकत्व फिर मुनित्व पद द्वारा चंचल मन को मुनि चरणों मे स्थिर करके वैराग्य धारा ।

(17) (वातावरण को घातिया कर्म नाशक बनाने के लिए वैराग्य धारण द्वारा अरहंत भक्ति) गुणस्थानोन्नति के साथ चार शुक्लध्यानों की प्राप्ति रत्नत्रयी जंबूद्वीप में चार अनुयोगी संघाचार्य की शरण में बनी।

(18) पुरुषार्थमय वैराग्य पूर्ण तपस्या ही इष्ट है।

(19) निकट भव्य ने सल्लेखना द्वारा रत्नत्रयी जंबूद्वीप में दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति हेतु तपस्या को महामत्स्य की तरह **उत्कृष्ट** संहनन से उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल मे अष्टकर्म नाश करके चतुराधक सल्लेखी बन वैराग्य स्वीकारा।

(20) अदम्य पुरुषार्थ से त्रिगुप्ति धारण कर तपस्वी दो शुक्लध्यानों वाले अरहंत सिद्धमय जंबूद्वीप में आरंभी गृहस्थ की भूमिका से तीन धर्मध्यानों का तप आधार बना त्वरित होकर सप्त तत्त्वों का चिंतन करते हुए पंचमगति की साधना करते तपस्यारत आत्मस्थ हो लेते हैं ।

(21) धर्ममय वातावरण में दो धर्मध्यानी आरंभी गृहस्थ भी तीन धर्म ध्यान प्राप्त करके सप्त तत्त्व चिंतन से पंचम गति की प्राप्ति हेतु आत्मस्थता लेते हैं ।

(22) भवघट से तिरने वाले दो शुक्लध्यानों की प्राप्ति करके जंबूद्वीप में अरहंत–सिद्ध आराधना से एक छत्रधारी राजा ने एकदेश स्वसंयम साधते हुए निकट भव्यता प्राप्त करके गुणस्थानोन्नति की और सल्लेखना हेतु चतुराधन किया।

(23) जिनसिंहासन के शरणागत की सल्लेखना चतुराधन वाली दूसरे शुक्लध्यान तक रत्नत्रयी जंबूद्वीप में तपस्वी को मिलती है और उसे भी जिनलिंग दिला अदम्य पुरुषार्थ और वैराग्य दिलाती है ।

(24) एक छत्रधारी राजा ने अंतरात्मा बन रत्नत्रयी तीन केवली पादमूल में भवचक्र से तरने के लिए रत्नत्रय साधा ।

(25) सर्पसीढ़ी उठान गिरान ले तपस्वी ने सल्लेखना लेकर निकट भव्य पंचाचारी तपस्वी बन बारह भावनाऐं जपते हुए वातावरण को भव्यत्व से गुणस्थानोन्नति में लगाया ।

(26) निकट भव्य, सल्लेखी ऐलक था जिसने वैराग्य धारण कर चतुर्गति भ्रमण को अंत करने का उपक्रम किया ।

(27) (अधूरा है) ढ़ाईद्वीप के रत्नत्रयी जंबूद्वीप में पंचाचारी तपस्वी ने उत्तरोत्तर पुरुषार्थ द्वारा आत्मस्थता प्राप्त की ।

(28) पुरुषार्थी अरहंत लीन सल्लेखी ने रत्नत्रयी जंबूद्वीप में निकट भव्यता से छत्रधारी राजा और आरंभी गृहस्थ होकर भी तीन धर्मध्यानी बनने का स्वसंयम साधा ।

(29) रत्नत्रयी जंबूद्वीप में चार अनुयोगी चतुर्विध संघाचार्य निश्चय–व्यवहार धर्मी होते हैं ।

(30) उपशम द्वारा पंचमगति साधक अपने वातावरण को उन्नत कर वैराग्यमय बनाते हैं ।

(31) निकट भव्य बंधुओं ने एकसाथ वैराग्य धारा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(32) काल का स्पर्श शेष पाँचों द्रव्यों को है ।

(33) तीन धर्मध्यानी स्वसंयमी ने ऐलकत्व/आर्यिका पद से वैराग्य धारा ।

(34) परमेष्ठी जाप से भवघट तिरने का साधन दो धर्मध्यानी को भी निकट भव्यता दिलाकर पंचमगति हेतु वैराग्य दिलाता है।

(35) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानी ऐलक ने नदी तट पर अदम्य पुरुषार्थी रत्नत्रयी तप किया और वैराग्य धारण कर केवलत्व पाया ।

(36) जंबूद्वीप में तीन प्रतिमाऐं धारणकर मुनि संघस्थ हो वैराग्य धारण कर दो शुक्लध्यानों की प्राप्ति युगल तपस्वियों ने निश्चय–व्यवहार धर्मी गुरुछत्र में की ।

(37) मुनियों के पुरुषार्थी वातावरण में हर उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी में दो धर्मध्यानी व्यक्ति भी शुद्ध.शाकाहार पालन करके रत्नत्रयी मुनि का वातावरण बना तपस्यारत होते हैं ।

(38) अष्टापद की तरह अपराजेय चक्री भी किसी से पराजित नहीं होते और तपस्या में स्वयंतीर्थ से सामर्थ्यवान होते हैं ।

(39) अस्पष्ट ।

(40) संघस्थ प्रतिमाधारी ने लोकपूरणी सल्लेखी के चरणों में चारों अनुयोगों का अध्ययन करने गृह त्यागा ।

(41) अस्पष्ट ।

(42) संघस्थ श्रावक दुर्ध्यान त्यागकर स्वसंयम धारण करते हुए संघाचार्य के समीप रहते हैं ।

(43) भवचक्र पार करने हेतु दो धर्म ध्यानों की भूमिका से पुरुषार्थी ने ऐलक के एकदेश व्रत बढ़ाकर वैराग्य धारण कर श्रमणत्व अपनाया ।

(44) दो धर्मध्यानों की भूमिका से योगी ने एकदेश स्वसंयम अपनाते हुए वैय्यावृत्य को पाने का वातारण बनाया ।

(45) भवघट से तिरने "जिन–समवसरण भक्त" ने प्रतिमाधारी बनकर पंचमगति साधन की सत्संगति करके दो धर्मध्यानों सहित योग धारण कर दुर्ध्यानों को त्यागा ।

(46) स्वसीमाऐं बांधकर भव में रत्नत्रयी साधना दूसरे धर्मध्यानी को इच्छा निरोधी बनाकर तद्‌भवी मोक्षप्राप्ति की स्थिति तक तपस्वी को पहुंचा सकता है ।

(47) अष्टगुण साधना चतुराधक सल्लेखी को वस्त्रधारी (आर्यिका) होकर भी वैराग्य की ओर मोड़ती है ।

(48) अस्पष्ट ।

(49) योगी आरंभी गृहस्थ था ज़ो तीन धर्मध्यानों से अपने वातावरण को रत्नत्रयी बनाकर वीतराग तपस्या की ओर मुड़ गया

(50) पंचमगति का साधक भवघट में तिरने का इच्छुक पुरुषार्थी होता है ।

(51) गुणस्थानोन्नति करने वाला वीतरागी ही होता है ।

(52) सर्पसीढ़ी का खेल खेलता सल्लेखी एक ऐलक था जिसने स्वसंयमी बनकर मोक्ष पथ पकड़ा था ।

(53) आत्मस्थ योगी दो धर्मध्यानों वाला योगी था ।

(54) सल्लेखी पुरुषार्थी योगी है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(55) दूसरे शुक्लध्यान का स्वामी वह निश्चय–व्यवहारी तो एक दो धर्मध्यानी गृहस्थ था जिसने तीन धर्मध्यानों की प्राप्ति के साथ स्वसंयम स्वीकारा था ।

(56) अस्पष्ट

(57) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानी छत्रधारियों ने उपशमी वैराग्य धारण किया ।

(58) रिक्त ।

(59) छत्रधारी ने निश्चय–व्यवहार धर्म अपनाया ।

(60) दो धर्मध्यानी, एकदेशी तपस्वी, पुरुषार्थी था ।

(61) गुणस्थानी ने सप्त तत्त्व चिंतन करते वैराग्य धारण किया ।

(62–66) कुछ नहीं

(67) जंबूद्वीप में रत्नत्रयी चतुराधन करते दो धर्मध्यानी युगल बंधुओं ने स्वसंयम धारणकर वैराग्य पूर्ण तपस्या की ।

(68) रिक्त ।

(69) वैराग्यवान दूसरे शुक्लध्यान में लीन तपस्वी सल्लेखी है जिसने चारों अनुयोगों का ज्ञान प्राप्त करके संघाचार्य का पद स्वीकारा था ।

(70) रिक्त ।

(71) भवचक्र को पार करने दूसरे धर्मध्यान से उठकर दूसरे शुक्लध्यान तक की यात्रा (4^{th} गुणस्थान से 12 वें गुणस्थान तक की) तपस्वी पार करते हैं और सल्लेखना तत्पर रहते हैं ।

(72) लोकपूरणी, आत्मस्थ ,तीर्थंकर प्रकृति पुण्यवानी है जिसने 2 धर्मध्यानों से (स्वयं एक) छत्री (छत्रधारी) को निकट भव्य और वीतरागी बनाया ।

(73) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामी ने तीसरे धर्मध्यान की भूमिका बनाकर (एकदेश व्रती बनकर) रत्नत्रयी तपस्या का वातावरण बनाया। वह एक निश्चय–व्यवहार धर्मी चतुर्विध संघ तपस्वी बना ।

(74) उपशमी (मांगीतुंगी / उदयगिरि–खंडगिरि / चंद्रगिरि–विन्ध्यगिरि) युगल पर्वतों पर ससंघ विराजमान होकर वीतरागी तपस्यारत हुआ ।

(75) भवघट तिरने वाले दो धर्मध्यानी योगी ने दो शुक्लध्यानों तक की तपस्या करके केवलत्व पाने, संघाचार्य की शरण में रत्नत्रय धारण कर वीतराग तप किया ।

(76) छत्रधारी / सम्राट ने चतुराधन करते हुए अदम्य पुरुषार्थमय वीतरागी तपस्या की।

(77) दूसरे शुक्लध्यानी ने अष्टकर्म क्षय करने के लिए चतुराधन किया ।

(78) भवचक्र से पार होकर सिद्धत्व पाने ऐलक ने सल्लेखनामय वीतराग तप किया ।

(79) गुणस्थानोन्नति वाले वातावरण में आत्मस्थता द्वारा दूसरे धर्मध्यान वाला श्रावक भी चतुराधन सहित सल्लेखना करने वीतरागी तप करता है ।

(80) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों से भी आत्मस्थता पाकर ढ़ाईद्वीप में तीर्थंकर प्रकृति का पुण्य बांधा जा सकता है ।

(81) द्वादश अनुप्रेक्षा / बारह भावना से सम्राट / छत्रधारी ने आरंभी गृहस्थ की स्थिति से तीन धर्मध्यानों के साथ रत्नत्रयी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जंबू व्दीप में तीसरे शुक्लध्यान तक का पुरुषार्थ किया और वीतराग तप धारा।

(82) रत्नत्रयधारी श्रमण का रत्नत्रयी निश्चय–व्यवहारधर्ममय वातावरण ऐलक की भूमिका से संघाचार्य की शरण में प्रारंभ हुआ था जहाँ उसने रत्नत्रय संभालते हुए तपश्चरण किया ।

(83) जंबूद्वीप में भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के श्रावक आरंभी गृहस्थ ने तीन धर्मध्यानों सहित स्वसंयम की कठोर साधना की ।

(84) तीन धर्मध्यानों के सामान्य पुरुषार्थी ने आत्मस्थ होकर (प्रारंभ में) दो धर्म ध्यानों सहित वीतराग तप प्रारंभ किया था और पश्चात् ऐलक/आर्यिका की तरह तप किया ।

(85) भवघट से तिरने तीर्थंकर प्रभु की शरण आवश्यक है जो तीन धर्मध्यानों से रत्नत्रय सहित प्रारंभ होती है ।

(86) पुरुषार्थ सहित द्वादश अनुप्रेक्षा, निश्चय–व्यवहार धर्म की रक्षा करते हैं ।

(87) आरंभी गृहस्थ जैसा पुरुषार्थ तो पक्षी भी योग धारण करके कर लेते हैं जो दो धर्मध्यानों से प्रारंभ होकर तीसरे धर्म ध्यान तक पंचम गुणस्थान तक जाकर पुरुषार्थ से तप कराता है ।

(88) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानी, सम्राट/छत्रधारी (छत्री) ने दशधर्म पालते हुए अरहंत सिद्ध भक्ति पूर्वक (निश्चय–व्यवहार धर्म) की साधना करते हुए वैराग्य धारण किया ।

(89) "आदि–जिन" धर्म की शरण में पशु भी गुणस्थानोन्नति और संयम प्राप्त कर सकते हैं ।

(90) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानी ऐलक/आर्यिका ने संघस्थ रहते वैराग्य तप धारा ।

(91) तीन धर्मध्यानी चारों अनुयोगों का ज्ञान निश्चय–व्यवहार धर्ममय मोक्षमार्ग की भूमिका बनाता है ।

(92) भवघट से तिरने वाला दो धर्मध्यानी योगी आत्मस्थ हुआ निकट भव्य है और सल्लेखना तत्पर है ।

(93) दशधर्म धारी वैरागी ही होता है ।

(94) अष्ट अनंत गुणों की प्राप्ति दूसरे शुक्लध्यानी को वीतरागी आत्मस्थ बनाती है ।

(95) योगी द्वारा स्वसंयम और स्व सीमाऐं जो घातिया कर्मों से छुड़ाती हैं ।

(96) श्रमणत्व आर्यिका की गुणस्थानोन्नति ,क्रमशः, विधि से पंचमगति का साधन दिलाती है और भवघट से तिराती है ।

(97) भवचक्र से पार होने दो धर्मध्यान भी कालचक्र के विशेष खंडों में पंचम गति का साधन रत्नत्रयी जंबूद्वीप में अरहंत सिद्ध और रत्नत्रय के साथ बनाते हैं ।

(98) तपस्वी ने वैराग्य को योगी बनकर प्रारंभ किया था ।

(100) दो शुक्लध्यानी, संघाचार्य, निकट भव्य षट द्रव्यों पर श्रध्दान रखते थे।

(101) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामी योगी,तपस्वी बनकर पुरुषार्थ बढ़ाकर वैराग्य धारण करते हैं/थे।

(102) दो धर्मध्यानों का स्वामी सल्लेखी की वैय्यावृत्ति सचेलक होकर भी करने वाला वैराग्य पथ पकड़ लेता है।

(103) दोनों ही सल्लेखी अपने आप में पुरुषार्थी तपस्वी थे जिन्होंने पंचाचार पालते हुए सचेलक अवस्था में दो धर्मध्यान पालन किए थे।

(104) सल्लेखी वैरागी था, जो सम्राट था, सचेलक त्यागी था और क्रोध मान माया को त्यागकर रत्नत्रयधारी बना था ।

(105) छत्रधारी त्यागी अपने तप की सुरक्षार्थ वैराग्य धारण कर अवसर्पिणी में रत्नत्रय के धारक बनकर चतुर्अनुयोगी निश्चय व्यवहार धर्मी थे ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(106) पूर्व के 24 तीर्थंकरों की भक्ति करते हुए पंचाचारी ने सल्लेखना ली और सचेलक होकर भी दशधर्म पालन करते जिनशासन की शरण में रत्नत्रयी वैराग्य धारा ।

(107) अर्धचक्री ने भवघट का शीर्ष पाने दो धर्मध्यानों से उठकर चार शुक्लध्यानों की प्राप्ति हेतु रत्नत्रय का अवलंबन लिया

(108) (खंडित) जंबूद्वीप में दो धर्म ध्यान वाली भूमिका से दूसरे शुक्लध्यान तक की उन्नति हेतु पुरुषार्थमय वैराग्य की आवश्यकता पड़ती है ।

(109) हर उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी में अर्धचक्री ने संघाचार्य की शरण लेकर रत्नत्रयी वातावरण जिया है ।

(110) अष्टकर्म जन्य चतुर्गति भ्रमण को नष्ट करने के लिए सल्लेखना लेते हुए तपस्वी ने समाधिमरण में वैराग्य पाला ।

(111) सामान्य वातावरण में आत्मस्थता द्वारा साधक ने सचेलक ने संघाचार्य की शरण में रत्नत्रय मय वातावरण बनाया ।

(112) जंबूद्वीप में वातावरण संयोजन कर आत्मस्थता रखते स्व संयम लिया ।

(113) एक पुरुषार्थी प्रतिमाधारी संयमी ने वैराग्य द्वारा तीर्थंकर प्रकृति साधते हुए जाप करते निकट भव्यता का वैराग्य बनाया ।

(114) जिनशासन की शरण में तीर्थंकरत्व का पुरुषार्थी तीन धर्म ध्यानी वातावरण से क्रमशः निरंतर उन्नति करते हुए चौथे शुक्लध्यान तक की प्राप्ति चतुराधन से करता है ।

(115) तीर्थंकरत्व की प्राप्ति हेतु संपूर्ण संघ ही (संघाचार्य सहित) चारों कषायों को त्यागते हैं ।

(116) भवचक्र से तिरने दो धर्मध्यानी साधक षट् द्रव्य चिंतन करते हुए साधु बनकर चतुर्विध संघ के (व्यवहार और निश्चय धर्म) शरण में चले जाते हैं ।

(117) भवघट से पार उतरने दो धर्मध्यानी छत्रधारी राजा ने दुर्ध्यानों को दूर कर अरहंत सिद्धमय वातावरण जंबूद्वीप में बनाया ।

(118) गुणोन्नति हेतु सर्प सीढ़ी का खेल खेलते सल्लेखी महामत्स्य की तरह उत्तम संहनन प्राप्ति से हर उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी युगार्ध में अष्ट कर्म जन्य चार गतियों को पार करने हेतु वैराग्य धारण करते हैं ।

(119) भवघट पार उतरने दो धर्मध्यानी निकट भव्य ने जिन सिंहासन प्राप्ति के लिए सप्त तत्त्व का चिंतन किया और पंचमगति पाने को वैराग्य धारा।

(120) एक महाव्रती ने तीसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति तक (बारह) द्वादश तपों की साधना की ।

(121) योगी ने स्वयं की सीमाओं को बांध कर दो शुक्लध्यानों का पुरुषार्थ बनाया ।

(122) 12 वें गुणस्थानी तपस्वी ने तीसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति करके रत्नत्रय पालन करते हुए तीर्थंकरत्व पाया ।

(123) (अ) तीर्थंकर प्रकृति अर्जन हेतु सप्त तत्व चिंतन और सल्लेखना धारण निकट भव्य को संघाचार्य की शरण में अर्ध चक्री होने पर भी वैराग्य और तप दिलाते हैं।

(ब) भवचक्र पार करने दो धर्मध्यानों का स्वामी गुणस्थानोन्नति करते अष्टान्हिका व्रतरखता वैराग्यमय तप पालता है

(124) जम्बूद्वीप में वीतराग तप ही इष्ट है ।

(125) ऐलक भी पुरुषार्थ करते हुए केवलत्व का स्व संयम धारण कर सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(126) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानी भी तीसरे शुक्लध्यान तक रत्नत्रय से उठ सकता है ।

(127) अस्पष्ट ।

(128) तीन धर्मध्यानी स्वसंयमी रत्नत्रयी स्वामी तपस्या से निश्चय व्यवहार धर्म की प्राप्ति का वातावरण बनाता है ।

(129) सल्लेखना स्वसंयम से ही संभव होती है ।

(130) अरहंत पद तक उठने के लिए छत्रधारी अंतर्आत्मा 12 तप करता और 15 प्रमाद तजता है ।

(131) अर्धचक्री भी चतुराधन द्वारा निश्चय व्यवहारमय धर्म के वातावरण वाली पंचमगति की साधना उस वातावरण में बना लेता है ।

(132) वातावरण को आत्मस्थ बनकर ही पंचमगति हेतु रत्नत्रय के अनुकूल वातावरण बनाना पड़ता है ।

(133) तीन धर्मध्यानी संसारी जीव भी उनके योग्य षट् आवश्यक और षट् बाह्य व्रत पालते हैं ।

(134) भवचक्र से पार होने दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति तक पंचपरमेष्ठी आराधन, पुरुषार्थ और निश्चय व्यवहार धर्म में विश्वास वाला वातावरण होना आवश्यक है ।

(135) दो धर्मध्यानो का स्वामी अर्धचक्री भी पंचमगति की साधना हेतु दूसरा (शुक्लध्यान) पा सकता है।

(136) (खंडित है) गुणस्थानोन्नति से पंचम गति का लक्ष्य ही चतुर्विध संघाचार्य का लक्ष्य होता है ।

(137) सल्लेखना धारण करने वाला "अणुव्रती" षट् द्रव्यों का चिंतन करते हुए वैराग्य बनाये रखता है ।

(138) रत्नत्रय की धारणा रखते हुए जंबूद्वीप में दो धर्मध्यानों का स्वामी भी दूसरे शुक्लध्यान का स्वामी भरत चक्रवर्ती की तरह अंततः बन सकता है।

(139) समाधिमरण, सल्लेखना द्वारा पंचमगति की साधना रत्नत्रय और वैराग्य सहित संपन्न होती है ।

(140) (एक वस्त्रधारी) ऐलक, अथवा आर्यिका तपस्वी बनकर ही गुणस्थानोन्नति कर सकते हैं ।

(141) केवली रत्नत्रयी सल्लेखी तपस्वी का वातावरण वैराग्य वाला और वैरागी मुनि का होता है ।

(142) वैय्यावृत्ति का गुणस्थानी झूला रत्नत्रयी तपस्वी को सहायता करता हुआ वैरागी बनाता है।

(143) दूसरे शुक्लध्यान का स्वामी तपस्वी वैराग्य बढ़ाते हुए उत्कृष्ट मुनि बनता है।

(144) एक अणुव्रती स्वयं को निश्चय-व्यवहार धर्मी साधक बना लेता है ।

(145) तीर्थंकरत्व की प्राप्ति सल्लेखना सहित दृढ़ महाव्रती को वैराग्य बनाए रखने से ही होती है ।

(146) सल्लेखना ही वैराग्य की सफलता है ।

(147) जंबूद्वीप में समता पूर्ण रत्नत्रय सेवन तीसरे धर्मध्यानी को पंचमगति की राह दिलाकर वैराग्य की ओर ले ज़ाता है।

(148) तीर्थंकरत्व का आधार रत्नत्रयी जंबूद्वीप में षट्द्रव्य श्रद्धान और स्वसंयम है ।

(149) तपस्वी के तप का आधार स्वसंयम इच्छा निरोध है ।

(150) पंचमगति का साधक सल्लेखना और वैराग्य में तत्पर होता है ।

(151) खंडित सील ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(152) भवचक्र के पार उतरने चार घातियों का नाश और पुरुषार्थ के साथ पंचमगति की साधना वाले वातावरण की आवश्यकता रहती है ।

(153) मुक्ति प्राप्त करने वाला तपस्वी श्री सम्मेद शिखर समाधि क्षेत्र पर दो धर्म ध्यानी छत्रधारी था जिसने ध्यानस्थ होने ऐलकत्व स्वीकारा था।

(154) भवघट से तिरने के लिए दो धर्म ध्यानों वाला भी स्वसंयमी हो जाता है ।

(155) पंचमगति का साधक वैराग्यवान होता है ।

(156) जिनपथी सल्लेखी, तीर्थकरत्व का अधिकारी बनकर दूसरे शुक्लध्यान की भूमिका बनाता है ।

(157) खंडित सील ।

(159) भवचक्र से पार उतरने हेतु दो धर्मध्यानों वाले जीव को दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति तथा चारों घातिया कर्मों का नाश करना आवश्यक है ।

(160) चारों शुक्लध्यानों की प्राप्ति दो धर्मध्यानी को पंच परमेष्ठी के आराधन से ही होती है ।

(161) दो शुक्लध्यानों का स्वामी संघाचार्य की शरण में रत्नत्रय का सेवन करते हुए वातावरण में चतुराधनरत बनता है ।

(162) दूसरे शुक्लध्यान का स्वामी संघाचार्य की शरण में भरत ऐरावत क्षेत्रों में जंबूद्वीप वाली रत्नत्रयी समता सहित आगे तीसरे शुक्लध्यान का स्वामी बनकर पुरुषार्थ उठाते हुए भव से मोक्ष पाता है ।

(163) गुणस्थानोन्नति करता साधु जम्बूद्वीप में आत्मस्थता से दो शुक्लध्यानों का वातावरण बनाकर मोक्षपथी साधक होता है

(164) तीसरे शुक्लध्यान की ओर बढ़ता क्षपक अरहंत/सिद्ध वाले वातावरण में लीन होकर सिद्धत्व की शरण वाला पंचाचारी होता है ।

(165) भवघट से तिरने का एकमात्र साधन रत्नत्रय है ।

(166) अरहंत अवस्था निश्चय व्यवहारी संघाचार्यों को ही प्राप्त होती है जो अरहंत सिद्ध में लीन हैं ।

(167) दूसरे शुक्लध्यानी का समाधिमरण वैराग्य पूर्ण ही होता है ।

(168) तीर्थंकर की शरण में त्यागी भी वैराग्य लेकर महाव्रत धारण करता है ।

(169) सिद्धत्व की प्राप्ति मात्र ढ़ाई द्वीप में ही संभव है ।

(170) खंडित एवं अपठ्य ।

(171) षट्द्रव्यों का चिंतन ही छत्रधारी को तपस्वी बनाता है ।

(172) सल्लेखना के लिए तीन धर्मध्यान और इच्छा निरोधी संयम आवश्यक है।

(173) (174) (175) खंडित ।

(176) अर्धखंडित/भवचक्र पार करने के लिए दो शुक्लध्यान और वैराग्य आवश्यक हैं।

(177) केवलत्व और अरहंतत्व चतुर्विद संघाचार्यो को मिलते हैं।

(178) चतुर्गति भ्रमण का नाश रत्नत्रय से होता है।

(179) खंडित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(180) अर्धखंडित/दशधर्म का पालन ही दूसरे शुक्ल ध्यान तक पहुंचाता है।

(181) जाप की मर्यादाएँ और वैराग्य ही लक्ष्य तक पहुंचाते हैं।

(182) खंडित

(183) भवघट से पार उतरना ही इष्ट है।

(184. 187) खंडित और अपठ,य

(188) उपशम और क्षयोपशम भी पुरुषार्थ से ही प्राप्त होते हैं।

(189) ध्यानस्थ योगी/ कायोत्सर्गी समाधिमरण के व्दारा पंच प्रभु स्मरण करके वैराग्य बनाता है।

(190) (चतुर्गति अथवा ध्यानस्थ योगी के चरण) खंडित ।

(191. 205) खंडित ।

(206) तीन धर्मध्यान ।

(207) चतुराधन ।

(208, 209) खंडित ।

(210) ढाईद्वीप ।

(211) अरहंत पद की प्राप्ति आरंभी गृहस्थ को भी तीन धर्म ध्यानों और स्वसंयम के द्वारा ही सुलभ होती है ।

(212) भवघट से तिरना ।

(213–216) खंडित ।

(217) पुरुषार्थी रत्नत्रयी अणुव्रती ।

(218, 219) खंडित ।

(220) संघाचार्य की शरण में दीक्षा पुरुषार्थी षट् आवश्यक करते हुए संसार चक्र को पार कर सकता है ।

(221. 222) खंडित अपठ्य ।

(223) संभवतः बनावटी है । इसमें तारतम्य रहित गूदा गादी में षट् द्रव्य, निकट भव्य, स्व संयम अंकित हैं ।

(224) निकट भव्यत्व । गूदागादी में स्वसंयमी तपस्वी और वैराग्य अंकित है ।

(225) अपठ,य

(226) खंडित ।

(227) सल्लेखी अष्टापद की तरह दृढ़ आत्मस्थ होकर पुरुषार्थ बढ़ाते हुए क्रमोन्नति से तीर्थंकर बन सकता है जिसके समवशरण लगते हैं ।

(228) आत्मस्थ वैराग्यता अरहंत सिद्धभक्त. पुरुषार्थी. संयमी होने और पंच परमेष्ठी आराधना का फल है ।

(229) तीन धर्मध्यानी दो शुक्लध्यानों तक नवदेवता आराधन से ध्यानस्थ योगी बनकर किसी भी काल में केवली बनने का पुण्य सल्लेखना से पंचाचारी समाधिमरण करने हेतु निश्चय–व्यवहार धर्मी संघाचार्य के वातावरण में ही पाता है ।

(230) अष्टकर्म जन्य चार गतियों के नाशने हेतु सल्लेखना धारी समाधिमरणी साधक अदम्य पुरुषार्थ द्वारा केवलत्व प्राप्त करने हेतु स्वसंयम धारता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(231) अनुकूल वातावरण का निर्माण अर्धचक्री ने किया ।

(232) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानी ध्यानस्थ योगियों ने स्वसंयम धारण किया ।

(233) अरहंत पद की प्राप्ति श्री शिखर तीर्थ पर स्वसंयम से ही संभव है (अथवा स्वसंयमी ने शिखर तीर्थ पर/जिन मंदिर के निकट अरहंत पद को पाया)।

(234) खंडित ।

(235) तपस्वी पंचपरमेष्ठी आराधक है । (अस्पष्ट)

(236) सल्लेखी ने अष्टापद को चुना (आदि प्रभु ने अष्टापद पर निर्वाण पाया)

(237) दो शुक्लध्यानी क्षपक घाति चतुष्क क्षय करने वाला, वैराग्य रखता है ।

(238) एक आरंभी गृहस्थ ने त्रिगुप्ति धारण करके ध्यानस्थ होकर दो शुक्लध्यान सप्त तत्त्वों का चिंतन करके और रत्नत्रय धारण करके पाया ।

(239) अर्हंत अथवा केवली पद प्राप्ति के लिए पुरुषार्थी (सल्लेखी का चार शुक्लध्यानों वाला एक तीन धर्म ध्यानी जीव ही कर सकता है।

(240) जिस वातावरण में अंतरंग तीन धर्म ध्यान पलते हैं वहाँ चौथे शुक्लध्यान की प्राप्ति वाला वैराग्य भी पल सकता है ।

(241) सल्लेखना का संकल्प लेकर एक सल्लेखी आत्मस्थ वैराग्य में क्षत्रधारी राजा भी रत्नत्रयी योगी तथा रत्नत्रयधारी तपस्वी जैसा उत्कृष्ट वैराग्य पा सकते हैं ।

(243) चौथा शुक्लध्यान पाने के लिए ही केवली समूह रत्नत्रयी वैराग्य बनाए रखते हैं ।

(244) पुरुषार्थी पंचमगति के साधक सहज ही दूसरे शुक्लध्यान को प्राप्त करके अपनी साधना अरहंत सिद्धमय जंबूद्वीप में पूरी करते हैं ।

(245) एक संघ की शरण में गृहस्थ ने वैराग्यमय आत्मस्थता प्राप्त करके चतुराधन किया और उसी तपस्वी ने भवांतरी गुणस्थानोन्नति भी की ।

(246) लोकपूरणी केवली तपस्वी वीरधर्मी होते हैं।

(247) खंडित ।

(248) वीरधर्मी (शार्दूल चिन्ही) देव और वृक्ष भी होते हैं।

(249) भवघट से तिरने के लिए चारों कषायों के त्याग के साथ रत्नत्रय धारण आवश्यक होता है।

(250) अरहंत पद प्राप्ति के लिए त्यागी को दो शुक्लध्यानों का स्वामी बनना पड़ता है चाहे वह ऐलक, आर्यिका अथवा छत्र धारी राजा भी क्यों न हो। **रत्नत्रय और वीतराग तप धारण सहित सल्लेखना भी आवश्यक है।**

(251) सल्लेखी ने कषायें त्याग नदी तट पर आत्मस्थता से सल्लेखना ली और क्रमशः वातावरण उन्नत करते हुए सल्लेखना ले लेकर अनेक तपस्वी समाधिस्थ हुए।

(252) खंडित।

(253) भवचक्र से पार होने के लिए ढ़ाई द्वीप में दो शुक्लध्यान और वीतराग तप आवश्यक है ।

(254) (अ) रत्नत्रयी जंबूद्वीप में षट्द्रव्यों का चिंतन योगी साधक को वैयावृत्ति का झूला भी दिला देता है (सेवा मिलती है)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा वीतरागता बढ़ाने में भी वैयावृत्ति सहयोग कराती है ।

(ब) महाव्रत धारण और चतुर्विध संघाचार्य की छत्रछाया, अरहंत पद प्राप्ति में सहायक होते है।

(स) अपठ्य।

(255) (अ) त्रिलोक संस्थानी पुरुष।

(ब) समवशरणी गंधकुटी।

(256) (अ) षट् द्रव्य चिंतन से साधक को स्वसंयम की प्रेरणा धर्म ध्वजा की शरण में मिलती है ।

(ब) तथा अदम्य पुरुषार्थ से भवघट से तिरा जाता है ।

(257) यह चतुर्गति का संसार है जहाँ पांचवी गति द्वारा ही केन्द्र से उर्ध्वगमन द्वारा पार हुआ जाता है ।

(258) अपठ्य।

(259) चतुर्गतियों के नाशने को साधक छत्रधारी राजा ने पंचाचारी मार्ग लिया और शिखर तीर्थ /(कैलाश तीर्थ) से षट् द्रव्य चिंतन करते हुए ऊपर उठे।

(260) संघस्थ श्रमणाचार्य की शरण में अर्धचक्री ने सल्लेखना पुरुषार्थ दो धर्मध्यानों के साथ भव्यत्व की प्राप्ति करके गुणस्थानोन्नति की ।

(261) अष्टकर्म जन्य चार गतियों से निकलने के लिए सल्लेखना का पुरुषार्थ करते हुए निकट भव्य चतुराधन करता है और साधक बनकर 6 भवों में मोक्ष प्राप्त करने का तप कर लेता है ।

(262) साधक चार घातिया कर्मो के नाशन हेतु अदम्य पुरुषार्थ बढ़ाकर केवली पद भी क्रमोन्नति से प्राप्त करता है और रत्नत्रयी गुणस्थानोन्नति का वातावरण बनाते हुए वीतराग तप बढ़ाता है ।

(263) पुरुषार्थी दो शुक्लध्यानों का लक्ष्य करके साधना प्रारंभ करते हैं साधक या आर्यिका ढ़ाई द्वीप में ही होते हैं और दो शुक्लध्यानी वीतरागी तप बढ़ाते हुए साधना करते हैं ।

(264) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानी भी तीन शुक्ल–ध्यानी साधना का लक्ष्य बनाकर साधना करते हुए संघ के चरणों में चतुराधन करके वीतरागी तप करते हैं ।

(265) वीतराग रत्नत्रयी तप के लिए षट् आवश्यक करते हुए संघाचार्य की शरण में संयम साधना हेतु जाते हैं ।

(266) सल्लेखी अरहंत भक्ति द्वारा जंबूद्वीप में तीन धर्म–ध्यानों से साधना प्रारंभ करते हुए अर्धचक्री होकर भी समवशरण मे तीर्थकर के पादमूल में रत्नत्रयी पंचाचार करते हुए सिद्धत्व की भूमिका बना सकते हैं ।

(267) गुणस्थानोन्नति करता चतुर्थ गुणस्थानी भवघट से तिरने वाला तीर्थंकर प्रकृति कर्म बांधने का पुरुषार्थ कर सकता है।

(268) भवघट से तिरने दो धर्म–ध्यानी व्यक्ति भी दो शुक्ल–ध्यानों की क्रमशः प्राप्ति चंचल मन पर संयम करके वैराग्य/ वीतरागता द्वारा प्राप्त कर सकते हैं ।

(269) रत्नत्रयी जंबूद्वीप में पुरुषार्थी पक्षी भी भवघट से तिरने दो शुक्ल–ध्यानी तीर्थंकर के पादमूल में साधक और छत्रधारी होते हुए भी पुण्य बांधकर वैराग्य साधते और सल्लेखना द्वारा क्रमोन्नति से अरहंत हो जाते हैं ।

(270) भवघट से तिरने दो शुक्ल–ध्यानों के लक्ष्यधारी जंबूद्वीप में रत्नत्रय धारण करके आत्मस्थ साधक बनकर रत्नत्रयी दश धर्मी वातावरण बनाते और वीतराग तप तपते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(271) मुनिव्रत को कछुए की तरह पंचम गति के लिए श्रमणाचार्य के संघ में दो धर्म–ध्यानों द्वारा ही बारह अनुप्रेक्षा करते आरंभी गृहस्थ अपनी स्थिति से उठकर श्रावक पद से ऐलक फिर साधक बनता हुआ ढ़ाई द्वीप में दो शुक्ल–ध्यानी वैराग्य प्राप्ति और तप कर लेता है ।

(272) अष्टकर्म जन्य चतुर्गति भ्रमण से बचने के लिए सल्लेखना पुरुषार्थ युगल साधक (कुलभूषण–देशभूषण) मुनियों ने आत्मस्थता पुरुषार्थी स्वसंयमी पक्षियों जैसी वैराग्य द्वारा की है ।

(273) चतुर्विध संघाचार्य के चार अनुयोगी ज्ञान की शरण में चंचल मन को स्थिरता प्राप्त होकर सल्लेखी में उत्साह उठता है। उसे वैयावृत्ति मिलती है।

(274) छत्रधारी एवं देशसंयमी साधक दो धर्म–ध्यानों के साथ भी केवलत्व तक की प्राप्ति की पात्रता तीन धर्म–ध्यानी बनकर और अधिक पुरुषार्थ उठाते हुए क्रम से दो शुक्ल–ध्यानों तक की प्राप्ति चतुराधन करता हुआ कर लेता है ।

(275) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों का साधक संघ/घर में सीमाओं में बंधकर स्वयं को चारों कषायों से दूर करता है और कछुए जैसी सजगता से आरंभी गृहस्थ की तीन धर्म–ध्यानी स्थिति से भी सल्लेखना धारण कर चतुराधन करता है ।

(276) (अ) पंचमगति का साधक पंचाचार करते हुए जंबूदीप में रत्नत्रय की साधना करता चार अनुयोगी निश्चय व्यवहार धर्म की शरण में तीर्थंकर प्रकृति का पुण्य बांधता है ।

(ब) सल्लेखी सप्त तत्त्वों का चिंतन करता हुआ पक्ष पार करता है।

(277) साधक/योगी ।

(278) सांसारिक चतुर्गति पतन दिखलाता उल्टा स्वस्तिक ।

(279) वीतरागी तप, बारह भावना भावन और जंबूद्वीप में रत्नत्रयी साधना ही जीव को परम इष्ट है ।

(280) निकटभव्य पुरुषार्थियों ने ही अष्टापद की तरह हार न मानते हुए अर्धचक्री स्थिति से उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी कालार्धों में संसार की अंतहीन भटकान से बचकर सल्लेखना धारण की है ।

(281) भवचक्र से पार होने दो धर्मध्यानों से उठते हुए जंबूद्वीप में अरहंत सिद्ध आराधना करते सरीसृपों ने समताधारी साधक बनकर तीन धर्मध्यानी (आरंभी) श्रावक की तरह स्वसंयम से इच्छा निरोध किया ।

(282) भवघट से तिरने तीन धर्म–ध्यानों का सहारा लेकर पंचमगति हेतु चतुराधन करते हुए जंबूद्वीप के रत्नत्रयी वातावरण में चार अनुयोगी वीतरागी संघाचार्यों ने साधना की ।

(283) केवली भगवन्तों ने वीतरागी अदम्य पुरुषार्थ निरंतर बढ़ाया, और भी बढ़ाया, और–और अधिक बढ़ाया ।

(284) वीतरागी चार अनुयोगी निश्चय व्यवहारी धर्म साधने द्वादश तप तपते हुए गुणस्थानोन्नति करते हैं ।

(285) छत्रधारी तथा आर्यिका स्वसंयमी इच्छा निरोध करते हैं ।

(286) जाप जपने से वीतरागी साधना बढ़ती है ।

(287) पुरुषार्थ उठाते हुए छत्रधारी साधक आत्मस्थ होते हुए सल्लेखना लेकर चतुराधन करते हैं ।

(283) केवली भगवन्तों ने वीतरागी अदम्य पुरुषार्थ निरंतर बढ़ाया, और भी बढ़ाया, और–और अधिक बढ़ाया ।

(284) वीतरागी चार अनुयोगी निश्चय व्यवहारी धर्म साधने द्वादश तप तपते हुए गुणस्थानोन्नति करते हैं ।

(285) छत्रधारी तथा आर्यिका स्वसंयमी इच्छा निरोध करते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(286) जाप जपने से वीतरागी साधना बढ़ती है ।

(287) पुरुषार्थ उठाते हुए छत्रधारी साधक आत्मस्थ होते हुए सल्लेखना लेकर चतुराधन करते हैं ।

(288) दो धर्मध्यानी आरंभी गृहस्थ भी तीन धर्म–ध्यानी स्थिति से पंचमगति की साधना और चतुराधन कर सकता है ।

(289) अरहंत और केवली अवस्था साधक को वीतरागी तप से प्राप्त होती है ।

(290) चारों कषायों को तज करके गुणस्थानोन्नति से कालार्द्धो में वीतरागता सुरक्षा देती है ।

(291) स्वसंयमी व्यक्ति आरंभी गृहस्थ होकर भी षट् आवश्यक तत्पर रहता है ।

(292) समाधिमरण करता सल्लेखी रत्नत्रय का धारक वीतरागी तपस्वी होता है ।

(293) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानी ने पुरुषार्थ किया ।

(294) त्रिलोकीनाथ केवली लोकपूरणी समुद्घात करने हेतु समवशरण के अंदर भी चतुराधन लीन सिद्ध साधक हैं ।

(295) भवघट से तारने दो शुक्ल–ध्यान (बारहवाँ गुणस्थान) ही आधार हैं ।

(296) सिद्धत्व का पुरुषार्थ लोकपूरण करने वाले के द्वारा पंच परमेष्ठी की आराधना करते महामत्स्य जैसा, उत्तम संहननी साधक के रूप में गुणस्थानोन्नति करता है ।

(297) संघाचार्य रत्नत्रयी वीतरागी हैं जो पंचम गति हेतु चतुराधन करते हुए जंबू व्दीप में अरहंत सिध्द को ध्याते हैं और वीतरागी निश्चय व्यवहार धर्म को पालते हैं।

(298) रत्नत्रयी जंबू व्दीप में निकट भव्य ने रत्नत्रय पाला जिसे किसी भव में छोड़ा था।

(299) त्रिगुप्ति से पंचमगति है।

(300) तीर्थंकरत्व मात्र पुरुष द्वारा ही संभव है ।

(301) भवचक्र भी कालचक्र की तरह षट्खण्डी है ।

(302) अस्पष्ट/अपठ्य।

(303) (अ) जियो और जीने दो

(ब) भवचक्र से पार उतरने दोनों बंधुओं ने वीतरागता धारण करके तपस्या की। भवनों को त्याग कायोत्सर्गी तप किया।

(304) (अ) जन्म होने पर स्वस्तिक की चार गति भ्रमण आसन पर जन्म लेता हुआ जीव भी तीर्थंकरत्व के लिए जिनशासन की शरण लेकर वीतरागी तप और संघाचार्य की शरण सहित रत्नत्रय की साधना करके कीर्तिवान चतुर्विध संघाचार्य की स्थिति पा लेता है। अन्यथा कषायों में पड़कर प्रत्येक मनुष्य भव का भी जन्मा जीव जीवन बिगाड़ लेता है।

(ब) तीर्थंकरत्व और चतुर्विध जिनशासन की शरण आत्मस्थ तपस्वी को संघाचार्य अवस्था में रत्नत्रय पालन करते हुए कीर्तिवान चतुर्विध संघाचार्य के रूप में चर्यावान पिच्छी कमंडलुधारी मुनि अवस्था से प्रारंभ होती है, जिसे श्रावक पड़गाहते हैं।

(305) जागृत साधक तपस्या रत रहता है । अरहंत सिद्ध शुद्धात्मा का ध्यान उसे जगाता है। अन्यथा सोता खोता मनुष्य संसार की चार गतियों में ही लीन रहता है, जिसका सिर और विवेक नहीं रहते । वह अज्ञानी और असंयमी बनकर लौकिकता में लीन रहता है।

(306) (अ) शार्दूल अथवा जिनवाणी का उद्घोष ढोल सी गूंज करता ढाईद्वीप में दो शुक्लध्यान और वीतरागता की प्रभावना करता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(ब) ढाईद्वीप में रहकर ही शुक्लध्यान वीतराग तप और आत्मोन्नति प्राप्त होते हैं जिसकी भूमिका में गृहत्याग उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में और उन्नति स्वर्ग–नरक और आत्मोन्नति का रहस्य अनादिकाल से चलता आ रहा है ।

(307) (अ) चतुराधन पंचाचारी सल्लेखी समाधिमरण के लिए रत्नत्रयी जिनदेव की शरण में वीतरागी तपस्वी बना ।

(ब) रत्नत्रयी कायोत्सर्गी का तप जो तीर्थंकरत्व तक पहुँचाता है

(308) (अ) अस्पष्ट।

(ब) जिनशासन के शार्दूल की शरण में देव और स्थावर भी हैं।

(309) (अ) पंचरंगी 'लेश्या' द्योतक जिनध्वजा।

(ब) जिनध्वजा के नीचे एक ओर ॐ और दूसरी ओर उसके स्वागत में खड़ा मनुष्य।

(310)/(311) अस्पष्ट।

(312) साधक निकट भव्य है जिसने चतुराधन करते हुए समाधिमरण से अपने वीतरागी तप को पूर्ण किया ।

(313) अस्पष्ट।

(314) (अ) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामी ने अणुव्रती बनकर सल्लेखना धारण करते हुए वीतरागी बनकर तप किया और अरहंत अवस्था तक क्रमोन्नति की।

(ब) दो शुक्लध्यानी वातावरण रत्नत्रयी साधनामय ही आदि जिनमार्ग है जो केवलत्व तक दिलाता है

(315) (अ) संभवजिन का 'घोड़ा' लांछन। वैभव त्याग से ही गुणस्थानोन्नति।

(ब) गुणस्थानोन्नति करने चतुराधक ने दो धर्म ध्यानों की भूमिका से ही स्वसंयम धारण किया ।

(316) (अ) कायोत्सर्गी तपस्वी इतना तपलीन था कि लताऐं उसके आसपास मंडप सी बना गई। उसे पूजने वृषभ के साथ भक्त आया वे आदिजिन हैं। तपस्वी तप में लीन रहता है ।

(ब) भवघट से पार उतरने दो धर्मध्यानों के पुरुषार्थी ने आरंभी गृहस्थ अवस्था से निश्चय–व्यवहारी संघाचार्य श्रमण की शरण में तीसरे शुक्लध्यान हेतु वातावरण प्राप्त किया ।

(317) (अ) कायोत्सर्गी तपस्वी का उग्र तप था कि लता मंडप ने उसे ढंक लिया ।

(ब) कायोत्सर्गी जिन मुद्रा महाव्रती की। शेष अंकन अस्पष्ट ।

(318) (अ) रत्नत्रयी कायोत्सर्गी तपस्वी ।

(ब) वैयावृत्त्य का झूला पाने वाला वीतरागी तपस्वी पंच परमेष्ठी लीन पंचाचारी था ।

(319) (अ) अस्पष्ट ।

(ब) पुरुषार्थ उठाते हुए उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी में आरंभी गृहस्थों ने सल्लेखना धारण करके चार शुक्लध्यानों वाला वीतराग तप धारा।

(320) (अ) जिनध्वजा कलश सहित। (ब) समाधिमरण करने वाला सल्लेखी रत्नत्रयी तपस्वी चतुराधक था जिसने वीतराग तप करने चतुराधन किया ।

(321) (अ) ऐलक ने उपशम द्वारा अनुकूल वातावरण उत्तरोत्तर बनाकर वीतराग तप किया ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(ब) तीन धर्मध्यानी वातावरण से पुरुषार्थी स्वसंयमी तपस्वी ने अरहंत पद तक आत्मोन्नति की ।

(322) (अ) पांचसूनारत आरंभी गृहस्थ ने पुरुषार्थ बढ़ाते हुए चार अनुयोगी निश्चय–व्यवहार धर्मी आचार्य की शरण ली और सप्त व्यसनों को त्यागकर सप्त तत्व चिंतन करने लगा।

(323) रत्नत्रयी सुरवासित तपस्वी ने स्वयं को पुरुषार्थी रत्नत्रय से संयमित करके चार अनुयोगी निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण लेकर पंचमगति प्राप्ति हेतु उद्यम किया।

(324) (अ) दो युगल बंधुओं ने तपस्वी बनकर केवलत्व प्राप्ति हेतु इच्छा निरोध किया ।

(ब) दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति हेतु वातावरण में तपस्वी ने लोकपूरणी सल्लेखना से अरहंत पद पाया ।

(325) (अ) कल्पवृक्ष / साधना वृक्ष।

(ब) पंचाचार पालन करते उस रत्नत्रयी साधक की तपस्या साधक ने पंच परमेष्ठी आराधना से की ।

(326) (अ) भवघट से तिरने के लिए दो धर्मध्यानों वाले भी सल्लेखना का पुरुषार्थ करते हुए दूसरे शुक्लध्यान तक पहुंच जाते हैं और चतुराधन करते हैं ।

(ब) कल्पवृक्ष / साधना वृक्ष।

(327) (अ) कल्पवृक्ष / साधना वृक्ष।

(ब) अदम्य पुरुषार्थ करके योगी साधक ने अर्धचक्री की स्थिति से भी उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी में अपनी अंतहीन भटकान को पंच परमेष्ठी सुमिरन से अंत किया ।

(328) (अ) अस्पष्ट। (ब) कल्पवृक्ष।

(329) (अ) / (ब) अस्पष्ट।

(330) (अ) अस्पष्ट। (ब) कल्पवृक्ष।

(331) (अ) कल्पवृक्ष।

(ब) समवशरण में शिखर तीर्थ पर अरहंत सिद्ध ध्याते दूसरे शुक्लध्यानी संघों में अलग–अलग रहते हैं ।

(332) (अ) समवशरण में शिखर तीर्थ पर महाव्रती साधक गुणस्थानोन्नति करते हैं।

(ब) कल्पवृक्ष।

(333) अस्पष्ट।

(334) (अ) मगर, नौवें तीर्थंकर का लांछन।

(ब) आत्मस्थ चतुराधक साधक जिनशासन के चरणों में अदम्य पुरुषार्थ से पहुंचा और महामत्स्य जैसा स्वसंयम पुरुषार्थ उठाकर चारों गतियों को छेदने वाले संघ की शरण में वीतरागी तप करने लगा।

(335) (अ) पुष्पदंत का लांछन, मगर। (ब) अस्पष्ट।

(336) (अ) पुष्पदंत का लांछन, मगर।

(ब) अस्पष्ट।

(337) (अ) पुष्पदंत प्रभु का लांछन मगर और अरहनाथ की मछली / कर्मफल चेतना ।

(ब) पंचम गति के लिए वीतराग तपस्या करते हुए षट् द्रव्यों का ध्यान करना ढाई द्वीप में वैयावृत्ति दिलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(338) (अ) पुष्पदंत का लांछन मगर

(ब) मुक्ति पथ हेतु गुणस्थानोन्नति, सल्लेखना और दूसरे शुक्लध्यान की साधना द्वारा ढाईद्वीप में चतुराधन से ही संभव होती है।

(339) (अ) पुष्पदंत का लांछन मगर।

(ब) साधक की गुणस्थानोन्नति ढाईद्वीप में वीतराग तप से ही संभव होती है।

(340) (अ) अस्पष्ट।

(ब) भवघट से पार होने दूसरे शुक्ल–ध्यान की प्राप्ति तपस्वी ने तीन धर्म–ध्यानी पंचम गुणस्थानी वीतरागी तप के वातावरण से प्रारंभ की ।

(341) (अ) तद्‌भवी मोक्षार्थी पंचम गति का साधक रत्नत्रयी जम्बूद्वीप में था जिसने चार अनुयोगी चतुर्विध धर्म साधना से सप्त तत्त्व चिंतन करते हुए साधना की ।

(ब) मानस्तंभ और सिद्धत्व।

(342) (अ) छत्रधारी राजा ने वैराग्य धारणकर रत्नत्रयी साधना का वातावरण बनाने षट्‌दव्यों का चिंतन किया

(ब) तद्‌भवी मोक्षपथी ने केवलत्व प्राप्ति के वातावरण का तप किया।

(स) वह दो शुक्लध्यानी वातावरण अरहंत सिद्धमय था ।

(343) (अ) अरहंत पद की व्यक्ति से छत्रधारी राजा ने त्याग करते हुए साधक बन सल्लेखना लेकर अनुकूल वातावरण बनाया

(ब) भवघट से तिरने एक रागी हृदय ने ऐलक (अथवा आर्यिका) बनकर उपशम द्वारा वैराग्य धारण किया ।

(344) (अ) पंच परमेष्ठियों की आराधना करते हुए पंचमगति को प्राप्त करने युगल श्रृंगों पर मूल जिनशासन की शरण में पहुंचे जहाँ वैयावृत्त्य का झूला मिलता है और तीन शुक्ल–ध्यानी वातावरण भी ।

(ब) जम्बूद्वीप में आत्मस्थता दो धर्म–ध्यानी को पुरुषार्थ उठाते हुए चार शुक्लध्यानी वीतरागता तक ले जाती है।

(345) (अ) एक गृही ने आरंभी गृहस्थ की स्थिति को त्यागते हुए अष्टापद की तरह रत्नत्रय साधकर घर में ही सामायिक प्रतिमाऐं और षट् आवश्यक द्वारा वीतराग तप किया ।

(ब) उसका वातावरण तीन धर्मध्यानी रत्नत्रयी था ।

(346) (अ) चार गतियों को समाप्त करने के लिए पुरुषार्थवान सल्लेखना आवश्यक होती है जिसे उच्च श्रावक/आर्यिका क्रमशः गुणस्थानोन्नति करके वीतराग तप द्वारा प्राप्त करते हैं ।

(ब) गुणस्थानोन्नति करते हुए दो शुक्लध्यानी वातावरण बना ।

(347) (अ) महाव्रत की पिच्छी और वीतराग तप ही पंच परमेष्ठी की आराधना हैं ।

(ब) अस्पष्ट ।

(348) (अ) द्वादश अनुप्रेक्षा द्वारा निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण चार गतियों का भ्रमण छुड़ाने वाले अदम्य पुरुषार्थ है ।

(ब) तब दूसरे शुक्लध्यान का वातावरण बनता है ।

(349) (अ) अदम्य पुरुषार्थ बार–बार बढ़ाते हुए सल्लेखी अपना वैराग्य और आत्मस्थता बढ़ाता है । जिस से उसे तीर्थंकर प्रकृति का "बंध" बंधकर गुणस्थानोन्नति होती है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(ब) गुणस्थानी सीढ़ियां चढ़ते वह रत्नत्रयी पथ पर पंचमगति के लिए तैयारी करता युगल पर्वत के शिखरों पर संघ में मांगीतुंगी/उदयगिरि खण्डगिरि (कुमारी पर्वत) जाता है जहाँ वैराग्य का वातावरण और सल्लेखना हेतु उसे अनुकूल मिलता है ।

(350) (अ) वैयावृत्ति के झूले पर उस तीन धर्मध्यानी का वातावरण रत्नत्रयमय हो जाता है। उसे सल्लेखना का पुरुषार्थ और वातावरण मिलता है ।

(ब) वातावरण तीन धर्मध्यान वाला अनुकूल है ।

(351) (अ) जाप जपते हुए पंचम गति का साधक सल्लेखना लेकर/पुरुषार्थ तीर्थंकर प्रकृति का बनाकर दूसरे धर्मध्यान से भी दूसरे शुक्लध्यान को पंचाचार द्वारा प्राप्त कर सकता है ।

(ब) अस्पष्ट ।

(352) (अ) चातुर्मास में पंचाचारियों के साथ त्यागी वैराग्य और चतुराधन से परिचित होते हैं ।

(ब) तीन धर्म–ध्यानों की भूमिका से क्रमोन्नति द्वारा दूसरे शुक्लध्यान का वातावरण मिल जाता है। (अरहंत पद)

(353) (अ) द्वादश भावना भाते इस ढाईद्वीप में ही कीर्तिमान श्रमण निश्चय व्यवहारी संघाचार्य होते हैं ।

(ब) चार धर्म–ध्यानों वाला वातावरण ही सही वातावरण है । (सप्तम गुणस्थानी)

(354) (अ) चातुर्मास में महिलाऐं और पुरुष सम्यक्त्व धारते हैं और वातावरण को चतुराधनी बना देते हैं ।

(ब) अरहंत के पादमूल में सही वातावरण मिलता है ।

(355) से (358) अस्पष्ट ।

(359) (अ) जंबूद्वीप को पंचाचारी बनाने वाला तीर्थंकर प्रकृति का पुरुषार्थ कर लेता हैं।

(ब) दूसरे शुक्लध्यान वाला वातावरण ही इष्ट है।

(360) (अ) स्वसंयमी तपस्वी निकट भव्यत्व पाकर परम गुणस्थानोन्नति करता है ।

(ब) दो शुक्लध्यानी वातावरण बनाना इष्ट है ।

(361) (अ) सल्लेखना लेकर दूसरे धर्मध्यान का स्वामी सप्त तत्व चिंतन करने वाला वैराग्य प्राप्त कर लेता है।

(ब) पंच परमेष्ठी ध्यान से प्राप्त वातावरण (पुण्यात्मक है)

(362) (अ) त्रिगुप्ति और वैराग्य धारण करके वह पंच परमेष्ठी को ही स्मरण करता है ।

(ब) आर्यिका/त्यागियों ने स्वसंयम साधा ।

(363) (अ) ढ़ाईद्वीप में वैराग्य छाया ।

(ब) दो धर्मध्यान वाला एकदेश त्यागी था ।

(364) (अ) तप द्वारा प्राप्त ज्ञान चेतना जागृत होकर तीर्थंकरत्व/कैवल्य प्राप्त हुआ।

(ब) दो धर्मध्यानों वाला वातावरण था ।

(365) (366) अस्पष्ट ।

(367) (अ) जंबूद्वीप में वह भव्य तपस्वी, संघशीर्ष था जिसने चतुराधन करते हुए वातावरण को सप्त तत्व चिंतन से प्राप्त किया

(ब) अस्पष्ट ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(368) (अ) पंच परमेष्ठी की शरण में पुरुषार्थी सल्लेखी ने अरहंत सिद्ध जपते हुए जीवन पूर्ण किया और निकट भव्यत्व पाया

(ब) दो शुक्ल ध्यानों वाला वह (केवली) का वातावरण ही रहा है ।

(369) (अ) सप्त तत्व चिंतन युगल श्रृंगों पर वैराग्य तप कराता है। अथवा सप्त तत्व चिंतन से युगल शिखरों (सिद्ध क्षेत्र मांगीतुंगी) पर वैराग्य प्राप्त किया गया।

(ब) निकट भव्य ने तीन धर्मध्यानों से यात्रा प्रारंभ कर सिद्धत्व पाया।

(370) (अ) अस्पष्ट।

(ब) तीन धर्मध्यानों की प्राप्ति का वातावरण ।

(371) (अ) निकट भव्य ने पंचपरमेष्ठी आराधना तपस्वी की तरह वैराग्य प्राप्त करके और केवली के पादमूल में जिनशासन की शरण साधना करते हुए पूर्ण की ।

(ब) तीन धर्मध्यानों की भूमिका से ही सही वातावरण की प्राप्ति हुई ।

(372) (अ) अस्पष्ट ।

(ब) तीसरे शुक्लध्यान वाले वातावरण में वह निकट भव्य सल्लेखी था ।

(373) (अ) दोनों बंधुओं (कुलभूषण, देशभूषण) को वैराग्य उत्पन्न हुआ और दोनों ने चारों कषायें त्यागकर जंबूद्वीप में श्री अरहंत की शरण ली ।

(ब) तीन धर्मध्यानी वातावरण था । अथवा तीन शुक्लध्यानी केवली बने ।

(374) (अ) उसने एकदेश स्वसंयम धारण कर अपनी इच्छाओं का निरोध किया ।

(ब) वह वातावरण ही तीन धर्मध्यानों वाले श्रावक का था ।

(375) (अ) अस्पष्ट ।

(ब) वह तीन धर्म ध्यानियों का वातावरण था ।

(376) (अ) वैराग्यमय तप वाला वह युगल श्रृंगों पर (मांगीतुंगी) सप्त तत्त्व किया ।

(ब) वह तीन धर्मध्यानी वातावरण था ।

(377) (अ) चार घातिया कर्मों के संसार चक्र से उवरने का संकल्प लिया ।

(ब) चार तपों से साधक ने आत्मस्थता पायी ।

(378) (अ) निकट भव्य ने पंचमगति हेतु चतुराधन किया ।

(ब) वातावरण दूसरे शुक्लध्यान वाला था ।

(379) जंबूद्वीप में वैराग्य के वातावरण में साधक सप्त तत्व चिंतन करते हैं ।

(380) पुरुषार्थी रत्नत्रय ।

(381) (अ) सल्लेखी ने पंचमगति प्राप्त कर अरहंत पद भी पाया।

(ब) तीन धर्मध्यानी वातावरण था ।

(382) रत्नत्रयी साधक को तीसरा शुक्लध्यान प्राप्त हुआ, (वह सयोग केवली बने)

(383) गृहस्थ का वही गृह अंतर्मुखी होने से आत्मा तक पहुंचने का साधन बना ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(384–385) अस्पष्ट ।

(386) (अ) दो तपस्वियों ने तद्भवी मोक्ष का साधन बनाया और तप किया रत्नत्रयी वातावरण में ।

(ब) अस्पष्ट ।

(387) (अ) सल्लेखी ने वैराग्य धारकर पंच परमेष्ठी आराधन किया ।

(ब) तीन शुक्लध्यानी वातावरण बनाया ।

(388) ये नवदेवता हैं – अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और जिन चैत्यालय। (अथवा जन्म के नौ योनि स्थान भी दर्शाते हैं) ।

(389) यहाँ स्वास्तिक के रूप में जीव की चार विग्रह गतियों का वर्णन है ।

(390) यह संसार की चार गतियाँ हैं जिनमें जीव अनादिकाल से भटक रहा है ।

(391) " "वही " " " ।

(392) "उल्टा" यह स्वास्तिक संसार में जीव की "पर्याय अवनति" का द्योतक है ।

(393) "कर्मन की 63 प्रकृति नाशन" ।

(394) यह गृहस्थों / गृहियों के आवास के द्योतक हैं, जो दीवारों से घिरे दरवाजों और कक्षों से युक्त हैं और आत्मा में झांकने का प्रयास सामायिक से कराते हैं ।

(395) यह बारह तप करता आत्मस्थ तपस्वी के व्रतों की अंकन दर्शाता है ।

(396–99) चार गतियों वाली प्रत्येक जीव की संसार में "उन्नति" वाला यह स्वस्तिक है ।

(400) ये संकेत संसार में जीव की आत्म साधना के भरत और ऐरावत के क्षेत्र में ठीक एक घर में नर और नारी के अलग–अलग आत्म साधना के क्षेत्र हैं ।

(401–403) अस्पष्ट ।

(404) (अ) निकट भव्य ने सल्लेखना द्वारा जंबूद्वीप में समाधिमरण किया और केवलत्व पाया।

(ब) वातावरण दूसरे धर्मध्यानी का भी उन्नति कारक हो सकता है ।

(405) (अ) पंच परमेष्ठियों का मंत्र उच्चारण या ध्यान भी वैराग्यमय वातावरण में सल्लेखी को साधना में सहायक बनता है।

(ब) तीन धर्मध्यानी साधक का वातावरण है ।

(406) (अ) वह दो धर्मध्यानों का स्वसंयमी, महाव्रत का पोषक और वैराग्य को उत्तरोत्तर बढ़ाता है ।

(ब) चार धर्मध्यानी वातावरण (ध्यानस्थ मुनि का) है ।

(407) (अ) तपस्वी पंच परमेष्ठी आराधन में लीन है ।

(ब) तीन धर्म ध्यानमय वातावरण (उच्च श्रावक का है)

(408) (अ) पंच परमेष्ठी आराधक तपस्वी स्वसंयम द्वारा इच्छा निरोध कर लेते हैं ।

(ब) केवली समुद्घात में आत्मा एक–एक समय में दंड, प्रतर, कपाट और लोकपूरण करके वापस 4 समयों में कपाट, प्रतर, दंड होकर अपने शरीर में आ जाती है ।

(409) अस्पष्ट ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(410) (अ) वह निश्चय–व्यवहार धर्मी निकट भव्य तपस्वी है ।

(ब) साधक तीन धर्मध्यान वाले वातावरण में है ।

(411) (अ) सल्लेखना धारक आरंभी गृहस्थ ने वैराग्य धारण करके षट् द्रव्य चिंतन किया ।

(ब) तपस्वी आत्मस्थ ऐलक है/अथवा आर्यिका है।

(412) (अ) समवशरणी साधक चतुराधक है।

(ब) वीतरागी तपस्वी स्वर्ग में दो धर्मध्यानी देव हुआ।

(413) (अ) संघाचार्य । (ब) आत्मकेन्द्रता, ध्यान ।

(414) (अ) एकदेश स्वसंयमी सप्त तत्व चिंतक था ।

(ब) वह निकट भव्य था।

(415) (अ) छत्रधारी राजा ने केवली भगवान की शरण लेने के लिए वैराग्यमय वातावरण को पंच परमेष्ठीमय किया ।

(ब) पुरुषार्थी के रत्नत्रय से वैराग्य बुद्धि पाकर वातावरण चतुर्गति नाशक होता है।

(416) (अ) अष्ट कर्मों को हटाने के लिए पुरुषार्थी वैराग्य को जंबूद्वीप में बनाया ।

(ब) अस्पष्ट ।

(417) (अ) पंचमगति रत्नत्रय से ही संभव है।

(ब) सिद्धत्व ।

(418) लोकपूरणी समुद्घात दंड, प्रतर, कपाट, लोकपूरन करता और उसी विपरीत क्रम में वापिस होता है ।

(419) (अ) सल्लेखी का चतुराधन और वैराग्य पंच परमेष्ठी आराधना सहित है।

(ब) दूसरे शुक्लध्यान का वातावरण ।

(421) जंबूद्वीप में दो शुक्लध्यान और केवलज्ञान ।

(422) (अ) जम्बूद्वीप में त्रिगुप्ति और पंच परमेष्ठी आराधन

(ब) अस्पष्ट ।

(423) (अ) जंबूद्वीप में पुरुषार्थी का पंच परमेष्ठी श्रद्धान ।

(ब) अस्पष्ट ।

(424) अस्पष्ट ।

(425) (अ) लोकपूरणी का चतुराधन और रत्नत्रय धारण ।

(ब) अस्पष्ट ।

(426) अस्पष्ट ।

(427) (अ) अस्पष्ट ।

(ब) जंबूद्वीप में तीर्थंकर द्वारा चतुर्गति नाशन ।

(428) अ) चार शुक्लध्यानी वातावरण

(ब) दो योगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(429) (अ) तपस्वी सप्त तत्त्व चिंतन करता ।

(ब) हरिण युगल, शांतिनाथ का लांछन ।

(430) (अ) दो धर्मध्यान पंच परमेष्ठी आराधन के वैराग्यमय वातावरण में रत्नत्रय का पालन और गुणस्थानोन्नति

(ब) मगर पुष्पदंत और मीन अरहनाथ के लांछन।

(431) (अ) पंच परमेष्ठी आराधन सहित वैराग्य में निश्चय–व्यवहार का वातावरण और गुणस्थानोन्नति से दो शुक्लध्यान

(ब) मगर (पुष्पदंत) ।

(432) (अ) तपस्वी का वैराग्य और पंच परमेष्ठी आराधन।

(ब) मगर (पुष्पदंत का लांछन)।

(433) (अ) सप्त तत्त्व चिंतन करता वैराग्यमय निश्चय–व्यवहार वातावरण और गुणस्थानोन्नति।

(ब) मगर नौवें तीर्थंकर का लांछन।

(434) (अ)पंच परमेष्ठी चिंतन करता वैराग्यमय वातावरण और रत्नत्रय पालन सहित गुणस्थानोन्नति।

(ब)मगर और मीन

(435) (अ) दो धर्मध्यान पंच परमेष्ठी आराधन के वैराग्यमय वातावरण में रत्नत्रय साधना और गुणस्थानोन्नति

(ब) मगर पुष्पदंत और मीन अरहनाथ के लांछन।

(436) (अ) तपस्वी का वैराग्यमय वातावरण और पंच परमेष्ठी आराधन।

(ब) मगर और मीन ।

(437) (अ) अस्पष्ट ।

(ब) मगर पुष्पदंत और मीन अरहनाथ के लांछन।

(438) अस्पष्ट ।

(439) वैराग्यमय संघ तपस्वियों का और चार शुक्लध्यान ।

(440) (अ) जिनध्वजा और कलश ।

(ब) तपस्वी का नदी किनारे वैराग्य धारण और षट द्रव्य श्रध्दान।

(441) (अ) भवघट से तिराने वाले दो शुक्लध्यान

(ब) जिनध्वजा।

(442) (अ)संघाचार्य

(ब) क्षत्री त्यागी ने ऐलकत्व धारण करके वैराग्य स्वीकारा और श्रमण बना ।

(443) (अ) भवघट से तिरने वाले दो शुक्लध्यान हैं।

(ब) जिनध्वजा।

(444) (अ) त्यागी का दो शुक्लध्यानी लक्ष्य और वैराग्य षट् द्रव्य श्रद्धान वाला था।

(ब) तीन धर्मध्यानों का वातावरण (उसका मूल) था ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(445) वातावरण चतुर्गति क्षय हेतु प्रतिमा धारण और दो धर्म ध्यानों से प्रारंभ होता है । वह वातावरण तीन धर्मध्यानी बनना भी प्रगति है ।

(446) षट् द्रव्यों का श्रद्धान पंचम गतिदायी, युगल श्रृंगों पर संघ के समीप वैयाव्रत्य के झूले के साथ गुणस्थानोन्नति कराताहै तथा सल्लेखना की दृढ़ता देकर अरहंत पद तक पहुंचाता है । भवघट को छेदने तब वैराग्यमय आत्मस्थता और पुरुषार्थ सहित सप्त तत्त्व चिंतनयुक्त वैराग्य लाते हैं ।

(447) (अ) संघाचार्य की शरणागत आरंभी गृहस्थ भी गृह त्यागने तत्पर रहता है।

(ब) महामत्स्य सा वज्रवृषभनाराच संहनन होने पर भी भवघट तिराने निश्चय–व्यवहार धर्म और षट् द्रव्यों का श्रद्धान आवश्यक होते हैं ।

(448) दश धर्म साधना त्यागी को निश्चय–व्यवहार धर्म के साथ वैराग्य और षट् द्रव्य श्रद्धानी रखता है चार धर्मध्यान और वैराग्य त्यागी की पंच परमेष्ठी भक्ति सार्थक करते हैं ।

(449) (अ) रत्नत्रय और तीन धर्म ध्यान त्यागी को संघस्थ शरण दिला गुणस्थानोन्नति वैराग्य कराते हैं

(ब) पंच परमेष्ठी आराधन आत्मस्थता से चार घातिया नष्ट कराते हैं ।

(450) निश्चय–व्यवहार धर्म और दो धर्मध्यान एकदेश त्यागी को संघस्थ प्रतिमाधारी की तरह वैराग्य की ओर ले जाते और पंच परमेष्ठी भक्ति में सहायक होते हैं। तीर्थंकरत्व/केवलत्व ही चार घातिया कर्मों के क्षय में सहायक होते हैं ।

(451) सल्लेखी युगल श्रृंगों पर स्थित जिन लिंगी संघ के समीप वैराग्य धारण कर अच्छी समाधिमरण कर सकता है । वातावरण चार शुक्लध्यानों का बन सकता है ।

(452) (अ) दश धर्म तपस्वी को रत्नत्रयी निश्चय–व्यवहार धर्म से जोड़ते और वैराग्य धारण में सहायक होते हैं। जब चतुराधन करना सहज होता है ।

(ब) चार धर्मध्यान त्यागी को वैराग्य से जोड़ते हैं ।

(453) पंचाचार पालते हुए त्यागी ने स्वसंयमी की साधना की, पूर्व में उसका वातावरण अत्यंत अस्थिर था ।

(454) गुणस्थानोन्नति करते मुनियों के संघ में वैराग्य धारण करके पंच परमेष्ठी आराधन करता तपस्यारत था और भवघट तिरने तीर्थंकर प्रकृति बांध अष्ट कर्मोजन्य चतुर्गति भ्रमण का क्षय किया ।

(455) (अ)चौदह गुणस्थानी भवघट तिरने वातावरण को पंच परमेष्ठीमय बनाया ।

(ब) वातावरण तीसरे शुक्लध्यान का हो गया ।

(458) (अ) स्वसंयमी इच्छा निरोध त्यागी ने पंचाचार पाला ।

(ब) लोकपूरणी सल्लेखी होकर ही उसने चौथे शुक्लध्यान की प्राप्ति की ।

(460) (अ) गुणस्थानोन्नति करता मुनियों का संघ । (ब) ढ़ाईद्वीप में पुरुषार्थी तीर्थंकरत्व का पुण्यवान था ।

(461) पंचमगति तक उसने दुध्यानों को दूर रखा और स्वसंयमी बनकर तीर्थंकरत्व की साधना की। उसका वातावरण दूसरे शुक्लध्यान का था ।

(462) स्वसंयमी निश्चय–व्यवहार धर्मी षट् द्रव्य श्रद्धानी था । उसका वातावरण तीसरे धर्मध्यान का था ।

(463) दो धर्मध्यानी त्यागी वह निकट भव्य आरंभी गृहस्थ था। उसका वातावरण तीसरे धर्मध्यान का बना ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(465) (अ) दण्ड बना आत्मा गुणस्थानोन्नतिरत पुरुषार्थी वैराग्यवान था जिसने लोकपूरण किया ।

(ब) चतुराधन करते अर्धचक्री ने घातिया कर्मोका क्षय किया ।

(466) (अ) दुर्ध्यानों को त्यागकर एकदेश त्यागी ने चतुराधन किया ।

(ब) लोकपूरण तक की क्रिया की ।

(467) (अ) ऐलक पूर्व में सम्राट (छत्री) था और वैराग्य धारण करके तपस्वी बन गया ।

(ब) संघाचार्य ।

(468) दो शुक्लध्यानी भवघट से तिर जाते हैं/दो शुक्लध्यानों का स्वामी तीर्थंकर का वातावरण वाला होता है ।

(469) (अ) योगी वैराग्यवान था ।

(ब) चतुराधन का वातावरण बना ।

(470) (अ) अष्टान्हिका व्रती भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों की शरण रखता है।

(ब) उसका वातावरण चार धर्मध्यानों वाला भी बन सकता है ।

(471) पंच परमेष्ठी आराधन स्वसंयम में सहायक बनकर एक देश व्रती बनाता और गृहस्थ (श्रावक) को भी उच्च बनाता है

(ब) भवघट से तिरने वाला सल्लेखना तत्पर और पंचमगति साधक बनता है ।

(472) (अ) गुणस्थानोन्नति जंबूद्वीप में दो धर्मध्यानों और सप्त तत्त्व चिंतन से प्रारंभ होती हैं।

(ब) अष्टकर्मों को संवर द्वारा रोककर भी चतुर्गति भ्रमण क्रमशः रोका जा सकता है ।

(473) (अ) जाप जपने का संकल्प भी वैराग्य को दो धर्मध्यानों में दृढ़ता लाकर वीतरागपथ से जोड़ता है।

(ब) वातावरण निश्चय-व्यवहारी (अरहंत सिद्धमय) हो जाता है ।

(474) (अ) अरहंत और सिद्धपद की प्राप्ति स्वसंयम से ही संभव होती है।

(ब) तीन धर्मध्यानों से भवघट तिरने की यात्रा प्रारंभ होती है ।

(475)- (अ) षट् आवश्यक ही चार अनुयोगी चतुर्विध संघ को संचालित रखते हैं।

(ब) तब प्रथम शुक्लध्यान का वातावरण सहज बन जाता है ।

(477)- (अ) दो धर्मध्यान ढ़ाईद्वीप में दो शुक्लध्यानों तक वातावरण ले जाते हैं।

(ब) भवघट से तिरने गुणस्थानोन्नति करता त्यागी पुरुषार्थ बढ़ाकर तीन धर्मध्यानों के साथ आत्मस्थ होता है ।

(478)- (अ)संघ और चतुर्विध संघाचार्य पंच परमेष्ठी आराधक होते हैं।

(ब) गृह त्यागी श्रावक भी श्रमण बनकर संघाचार्य की शरण ले लेते हैं ।

(479)- (अ) चतुर्विध संघ में त्यागी भी रहते हैं।

(ब) वातावरण तीन धर्मध्यानों का है ।

(480)- (अ) पंचम गति की साधना आरंभी गृहस्थ भी आत्मस्थता से कर सकता है।

(ब) महामत्स्य जैसा संहनन वैराग्य के लिए निश्चय-व्यवहार धर्म धरातल पर षट् द्रव्यों के श्रद्धान से आता है ।

(481)- (अ) त्यागी दो धर्मध्यानों के साथ वैराग्य धारण करता पंच परमेष्ठी की आराधना करता है।

(ब) वैयावृत्य का झूला भी चार गति का भ्रमण रोकने में सहायक होता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

482— (अ) तीन धर्मध्यानों वाले संघ आचार्य दश धर्म सेवी होते हैं।

(ब) तीन धर्मध्यानों के लिए भी (पंचम गुणस्थानी चर्या हेतु) संहनन महामत्स्य जैसा चाहिए ।

483— (अ) पंचम गति चार शुक्लध्यानों और रत्नत्रय से संभव होती है।

(ब) पंचम गति की यात्रा तीन धर्मध्यानों से प्रारंभ होती है ।

485— ऐलक रत्नत्रयी वातावरण और वैराग्य धारता है । भवघट से तिरने तीर्थंकर चतुर्गति भ्रमण को नाश करते हैं और पंच परमेष्ठी आराधना करते हैं ।

486— (अ) चार शुक्लध्यानों का वातावरण (मुक्ति का प्रदाता है)।

(ब) महामत्स्य सा वज्रवृषभनाराच संहनन तीन शुक्लध्यानी तपस्वी कर सकता है ।

487— (अ) अर्धचक्री का वातावरण।

(ब) त्यागी उच्च श्रावक प्रतिमाऐं धारण करके एकदेश वैराग्य तप करते गुणस्थानोन्नति करते हैं ।

488— (अ) जंबूद्वीप में अर्धचक्री भी संयम का पुरुषार्थ कर सकता है।

(ब) भवघट तिरने के लिए घातिया चतुष्क का नाशन आवश्यक है ।

489— (अ) तीन शुक्लध्यानों वाला वातावरण।

(ब) त्यागी चतुर्विध संघाचार्य की शरण लेकर पंच परमेष्ठी आराधन करते हैं ।

490— (अ) त्यागी षट् आवश्यक करें।

(ब) वातावरण तीन शुक्लध्यानों वाला तक बन सकता है ।

491— (अ) निकट भव्य सप्त तत्त्व चिंतन करते हैं।

(ब) अस्पष्ट ।

492— (अ) सल्लेखी भवघट तिरने निश्चय–व्यवहार धर्मी वातावरण बनाते और पंच परमेष्ठी आराधन करते हैं।

(ब) पंचम गति का साधन चार शुक्लध्यानों से ।

493— (अ) सीमा बांध महाव्रती सप्त तत्त्व चिंतन करते हैं।

(ब) तीन शुक्लध्यानी वातावरण का लक्ष्य ।

494— (अ) भवघट तिरने पुरुषार्थी ने गुणस्थानोन्नति की।

(ब) वातावरण ।

496— (अ) शुक्लध्यानी वातावरण।

(ब) तीन शुक्लध्यान ।

497— (अ) ऐलक, आर्यिका की वैराग्य साधना।

(ब) वातावरण ।

498— (अ) पंचम गति के लिए तीर्थंकरत्व की प्राप्ति स्वसंयमी शाकाहार से प्राप्त होती है ।

(ब) चार शुक्लध्यानी वातावरण ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

499– (अ) त्यागी निकट भव्य गुणस्थानोन्नति करता है।

(ब) दो शुक्लध्यानी वातावरण ।

500– (अ) गुणस्थानोन्नति से निश्चय–व्यवहार धर्म की साधना तीसरे शुक्लध्यान तक की जा सकती है।

(ब) वज्रवृषभनाराच संहनन वाला महामत्स्य भी तीन धर्मध्यान का तप कर सकता है ।

501– (अ) चारों कषाऐं त्यागकर त्यागी ने पंच परमेष्ठी आराधन किया ।

(ब) यह चार शुक्लध्यानी वातावरण तक (मोक्ष तक) पहुंचा सकता है ।

502– (अ) पुरुषार्थ से ही सिद्धत्व और तीर्थंकर पद मिलते हैं।

(ब) तीसरे शुक्लध्यान का वातावरण केवलत्व का मिलता है ।

503– (अ) चारों कषाऐं त्यागकर त्यागी ने पंच परमेष्ठी आराधन किया।

(ब) वातावरण तीन शुक्लध्यानों तक का ।

504– (अ) गुणस्थानोन्नति करके बारहवें गुणस्थानी ने भवघट पर से तिरने वातावरण अरहंत पद वाला पाया ।

(ब) तीसरे शुक्लध्यान वाला वातावरण ।

505– (अ) दो शुक्लध्यानी तपस्वी ।

(ब) लोकपूरणी ।

506– (अ) महामत्स्य सा संहनन हर उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी काल में सिद्धत्व लाता है ।

(ब) संघाचार्य ।

508– (अ) समाधिमरणी सल्लेखी वैराग्य बनाए रखकर पंच परमेष्ठी आराधन करता है ।

(ब) चार शुक्लध्यान का वातावरण बनाता है ।

512– (अ) रत्नत्रय ढ़ाईद्वीप में वैराग्य और पंच परमेष्ठी आराधन से जोड़ता है ।

(ब) तीन शुक्लध्यानों का वातावरण बनता है।

516– (अ) अर्धचक्री का पुरुषार्थ पंचाचारी सल्लेखना से जोड़ता है।

(ब) वातावरण पुरुषार्थी वाला तीन शुक्लध्यान वाला बनता है ।

517– (अ) पंचम गति।

(ब) गृहत्यागी का वैराग्य और धर्मध्यान ।

518– (अ) तीन धर्म ध्यानों से भवघट तिरने का मार्ग ।

(ब) पंचम गति ।

525– (अ) पुरुषार्थ से वैराग्य ।

(ब) पुरुषार्थ से तीन शुक्लध्यान प्राप्ति ।

526– (अ) अष्टकर्म जन्य चतुर्गति भ्रमण ।

(ब) तीन ध्यान।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

528— (अ) निश्चय–व्यवहार धर्मी की सल्लेखना ।

(ब) रत्नत्रयी तीन ध्यान ।

529— (अ) दो शुक्लध्यानी वातावरण ।

(ब) तीन शुक्लध्यान (धर्म ध्यान) ?

532— (अ) आरंभी गृहस्थ का रत्नत्रय पालन और त्रिगुप्ति ।

(ब) तीन (शुक्ल) धर्म ध्यान

536— गुणस्थानोन्नति करता महाव्रतियों का रत्नत्रयी समूह गुणस्थानोन्नति वाला वातावरण ।

542— (अ) रत्नत्रयी सल्लेखी द्वारा वैराग्य और चतुराधन ।

(ब) तीन शुक्लध्यानी वातावरण ।

543— (अ) चतुराधक सल्लेखी द्वारा पंच परमेष्ठी आराधन ।

(ब) चार शुक्लध्यानों वाला वातावरण

544— (अ) सल्लेखना तत्पर दो धर्मध्यान त्यागी का स्वसंयम बढ़ाते हैं ।

(ब) चार (शुक्ल)/धर्म ध्यानों तक पहुंचाते हैं ।

545— (अ) चतुर्गति भ्रमण ।

(ब) भवघट तिरना ।

549— (अ) घातिया चतुष्क क्षय करने वाला, भवघट तिरने वाला, वैराग्य तप ।

(ब) तीन शुक्लध्यानी वातावरण ।

550— (अ) दो शुक्लध्यानी वैराग्यमय तप ।

(ब) दो शुक्लध्यानों वाला वातावरण ।

551— (अ) समतावान त्यागी का स्वसंयम ।

(ब) दो शुक्लध्यानी वातावरण ।

556— अष्टगुण वैभव प्राप्त करने वाले केवली दूसरे शुक्लध्यान के स्वामी होते हैं दो शुक्लध्यानों का वह वातावरण होता है

557— (अ) निश्चय–व्यवहार धर्मी तीसरे धर्मध्यान के अधिकारी ।

(ब) दो शुक्लध्यान तक आत्म साधना तत्पर रहते हैं ।

559— (अ) अर्हंत और सिद्ध अवस्था वीतराग तपस्या से प्राप्त होती है ।

(ब) निकट भव्य का वातावरण ।

561— निकट भव्य सल्लेखी है ।

(बीच के संकेताक्षर अस्पष्ट हैं)

573— (अ) निश्चय–व्यवहार धर्मी दो धर्म ध्यानी सल्लेखी ऐलक प्रतिमा धारण कर संघस्थ हुए और वैराग्य के वातावरण में पंच परमेष्ठी आराधक थे/घातिया चतुष्क नाश करते निकट भव्य ने पंचाचार किया ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(ब) केवली का लोकपूरण समुद्घात ।

574– (अ) अरहंत पद हेतु आत्मस्थता का वातावरण ।

(ब) तीन शुक्लध्यानी वातावरण का पुरुषार्थ ।

(स) लोकपूरणी समुद्घात ।

575– (अ) रत्नत्रयी सल्लेखी का दो शुक्लध्यानी वातावरण ।

(ब) तीन शुक्लध्यानों का वातावरण और पुरुषार्थ ।

(स) लोकपूरणी समुद्घात ।

581– (अ) निश्चय–व्यवहार धर्मी दो शुक्लध्यानी वातावरण पंच परमेष्ठी आराधक का है।

(ब) चार शुक्लध्यानी वातावरण का पुरुषार्थी ।

582– (अ) रत्नत्रयी त्यागी संघस्थ प्रतिमाधारी है । चार अनुयोगों का शिक्षार्थी जंबूद्वीप में पंच परमेष्ठी आराधक का है ।

(ब) अरहंत पद प्राप्तकर्ता तीन शुक्लध्यानी वातावरण में/लोकपूरणी है ।

583– (अ) अस्पष्ट ।

(ब) चतुराधक पंचमगति हेतु दो शुक्लध्यानों का स्वामी सल्लेखी स्वसंयमी है । लोकपूरणी है ।

584– (अ) चतुर्गति भ्रमण क्षय कर्ता दो धर्मध्यानी ऐलक संघस्थ प्रतिमाधारी होकर तप करते थे

(ब) पंचाचार पालते पंचमगति के साधक ने दो शुक्लध्यान घातिया कर्म नाश के द्वारा सिद्धत्व को पाने/लोकपूरणी समुद्घात किया ।

599– निकट भव्य ने अपने वातावरण को निश्चय धर्मी बना दो शुक्लध्यान प्राप्त करके संघाचार्य की तरह भवचक्र को पार *किया ।*

छोटी सीलें अस्पष्ट हैं–

614– इच्छा निरोधी स्वसंयमी तपस्वी मन को स्थिर करके पंचम गति की साधना करने वाला वैराग्य धारण करके सिद्धत्व की प्राप्ति चौथे शुक्लध्यान को चतुराधन के द्वारा प्राप्त करता है ।

615– सल्लेखी तपस्वी वैराग्य का वातावरण साधना हेतु स्वयं बनाता है ।

616– सप्त तत्त्व के चिंतन से पंचम गति प्राप्त कराने वाला वैराग्य उपजता है ।

617– आत्मस्थता का साधक निश्चय और व्यवहार धर्मी होता है ।

618– पंच परमेष्ठियों का आराधक पुरुषार्थी और वीतरागी होता है ।

619– पुरुषार्थमय तीर्थंकरत्व की प्राप्ति भवचक्र से पार कराने के लिए दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति के बाद संभव होती है जो रत्नत्रयी पंचाचार से एक "दूसरे धर्मध्यान का स्वामी" वस्त्रधारी त्यागी (पंचम गुणस्थान से) सप्त तत्त्व चिंतन द्वारा पंचम गति की साधना के रूप कैवल्य/ केवल ज्ञान प्राप्ति के लिए करता है ।

620– प्रतिमा धारण करके आत्मस्थ वैराग्य की भूमिका तीसरे धर्मध्यान से बना लेता है ।

621– पंच परमेष्ठी आराधक, सल्लेखी, त्रिगुप्ति का वातावरण वैराग्यवान तपस्वी जैसा षट् द्रव्य चिंतन का बनाता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

622— तीन धर्मध्यानी (श्रावक) चार अनुयोगी, चतुर्विध संघाचार्य की शरण में जाते हैं ।

623— संघाचार्य की सुरक्षा में प्राप्त वैराग्यमय वातावरण वैयाव्रत्य द्वारा साधक को सल्लेखना और मोक्ष में सहायक होता है।

624— अर्धचक्री भी रत्नत्रय की साधना करके आत्मस्थता से वीतरागी तप करता है ।

625— संघाचार्य की शरण में रत्नत्रय की साधना वैराग्यमय वीतराग तप कराती है ।

626— अस्पष्ट।

627— स्वसंयमी, इच्छा निरोधी, आरंभी गृहस्थ भी भेद विज्ञानी, निश्चय व्यवहारी है ।

628— एकभवी पंचम गति का साधक रत्नत्रयी जंबूद्वीप में चार अनुयोगी, वैराग्यमय निश्चय–व्यवहार धर्म पालता है ।

629— सप्त तत्व चिंतन ढाई द्वीप में वैराग्य उपजाते हैं ।

630— (परमेष्ठी) जाप को स्मरण करने वाला भवघट से तिरने के लिए पुरुषार्थमय सल्लेखना लेकर तीर्थंकर की आराधना करते हुए वैराग्य पालता है ।

631— उपशमी ने गृह से ही गुणस्थानोन्नति करते हुए सल्लेखना विचार तीन दो ध्यानों सहित चार शुक्लध्यानों का ध्यान करके वैराग्य साधना की ।

632— आर्यिका ने वैराग्य साधना की ।

633— निकट भव्यत्व (छठें भव में मोक्ष जाने वाला) है

634— एकदेश स्वसंयमी ने तीन धर्मध्यानी भूमिका से पुरुषार्थ बढ़ा भवघट तिरने निश्चय–व्यवहार धर्म पालकर साधना की।

635—638—अस्पष्ट।

639— (अ) वैयावृत्य का झूला ।

(ब) वातावरण ।

640— (अ) तीर्थंकरत्व हेतु वैराग्य ।

(ब) दो शुक्लध्यान वाला वातावरण।

641—642—अस्पष्ट।

643— (अ) चतुराधन और पंच परमेष्ठी आराधन पंचमगति तक पहुंचाते हैं ।

(ब) अस्पष्ट ।

644— अधूरा एवं अस्पष्ट।

645— (अ) वृक्षों के वन में वीतरागत्व पलता और पंच परमेष्ठी आराधन होता है।

(ब) मछली (अरहनाथ)

(स) वातावरण तीन धर्मध्यानों वाला सामान्य (इस काल में उपकारी होता है)

646— तपस्वी संघाचार्य की शरण में रत्नत्रय से (दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति के लिए) वैराग्य धारण करते हैं ।

647— अस्पष्ट ।

648— (अ) चर्तुगति भ्रमण ।

(ब) अष्ट गुण वैभव और तीर्थंकरत्व।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

649— अस्पष्ट ।

650— (अ) रत्नत्रयी वातावरण

(ब) पंचम गति के आराधक केवली (संघ में) (पंच पांडव ?)

656— (अ) त्यागी ने वैराग्य धारण करके षट् द्रव्य श्रद्धान किया ।

(ब) अस्पष्ट ।

657— रत्नत्रयी जंबूद्वीप में त्यागी दो धर्म ध्यानों के सहित सल्लेखना जागृति रखते वैराग्य धारण करते हैं ।

658— (अ) ढ़ाईद्वीप में दो ध्यान वैराग्य की ओर ले जाते हैं ।

(ब) भवघट से तिरने के लिए तीर्थकर जैसी तपस्या व्दारा चर्तुगति भ्रमण रोकना होता है ।

659— (अ) एकदेश त्यागी का स्वसंयम धारण और पंच परमेष्ठी आराधन ।

(ब) अस्पष्ट ।

660— वातावरण तीन शुक्लध्यानों वाला, दो धर्म ध्यानों से (क्रमोन्नति द्वारा)।

661— त्यागी का जिनशासन की शरणागत होकर अदम्य पुरुषार्थ करना वैराग्य धारण करके सप्त तत्त्व चिंतन करना ।

662— अस्पष्ट ।

663— (अ) महाव्रती (ब) अस्पष्ट ।

664— (अ) त्यागी का स्वसंयम धारण और पंच परमेष्ठी आराधन (ब) सप्त नय और केवलत्त्व ।

665— अस्पष्ट ।

666— (अ) पंचम गति से चर्तुगति क्षय रत्नत्रयी वातावरण द्वारा शुद्धात्म प्राप्ति (ब) दो शुक्लध्यानी वातावरण ।

667— (अ) रत्नत्रयी जंबूद्वीप में छत्री और त्यागी का वैराग्य (ब) वातावरण ।

668— (अ) चतुर्अनुयोगी निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण और पंच परमेष्ठी आराधन (ब) अस्पष्ट ।

669— अस्पष्ट ।

670— (अ) आर्यिका /ऐलक का अदम्य पुरुषार्थ पुनः पुरुषार्थ और वीतरागी तप (ब) वातावरण तीन शुक्लध्यानों का।

671— अस्पष्ट ।

672— (अ) उच्च श्रावक आरंभी गृहस्थ की तीन धर्म ध्यानी स्थिति से निकट भव्यत्त्व पाकर, गुणस्थानोन्नति और सप्त तत्त्व, चिंतन करता (ब) गुणस्थानोन्नति से पंचम गति साधना युगल श्रृंग पर सल्लेखना झूला पाते हुये दो शुक्लध्यान और अरहंत सिद्ध को स्मरण किया।

673— भव चक्र पार करने दो धर्मध्यानों से आर्यिका और त्यागी ने स्वसंयम धारकर क्रमोन्नति से चार शुक्लध्यानी वाता

674— (अ) वातावरण में षट् द्रव्य चार अनुयोगो का श्रद्धान करते गुणस्थानोन्नति और गिरान करते हुए क्रमशः दो शुक्ल ध्यान पाए।

(ब) तीन शुक्लध्यानी वातावरण बनाया।

675 / 676 अस्पष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

677– (अ) चतुराधनी सल्लेखना और वैराग्यमय तप (ब) अस्पष्ट ।

678– (अ) दो धर्मध्यानी गृहस्थ की सल्लेखना जंबूद्वीप में (ब) तीन शुक्लध्यानी वातावरण

679– अस्पष्ट ।

680– (अ) पुरुषार्थी का रत्नत्रय धारण एवं निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण में जाना (ब) वातावरण तीन शुक्ल ध्यानों का ।

681 / 682 / 683 / 684 / 685 / 686 – अस्पष्ट ।

687– (अ) भवचक्र / दो शुक्लध्यानी वातावरण

688– अस्पष्ट ।

689– (अ) पंचम गति से चतुर्गति क्षय करने वाला अणुव्रती वीतरागी तपस्वी था (ब) तीन शुक्लध्यानी वातावरण बनाया ।

690 / 91–अस्पष्ट ।

692– (अ) क्षत्री चार अनुयोगी चतुर्विध संघाचार्य की शरण पहुंचकर सप्त तत्त्व चिंतन में लीन हुआ (ब) पुरुषार्थी ने वीतराग तपस्या द्वारा तीसरा शुक्लध्यान पाया (केवलत्व पाया)।

page No. CI 693 -712 M.S.V.

693– नौ पदार्थों का चिंतन मोक्ष पथ प्रदर्शक बनकर साधक को कैवल्य प्राप्त कराकर मोक्ष (क्रमोन्नति से) दिलाता है ।

694– (अ) भवचक्र को पार करने वह निकट भव्य (चौथे भव का मोक्षार्थी) बनता है ।

(ब) तीन धर्म ध्यानी तपस्वी आत्मस्थ होकर रत्नत्रय पालता है ।

695– चारों कषायों को त्यागकर भवघट से तिरने में छत्रधारी सफल होता है ।

696– लोकपूरण करता आत्मा दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति आत्मस्थ होकर करता है ।

697– वातावरण को वीतरागी ने वैराग्य से बनाया है ।

698– त्यागी आरंभी गृहस्थ गुणस्थानोन्नति करता हुआ रत्नत्रयी तपस्वी बन सकता है और वीतरागता धारण कर समाधिमरण को चतुराधन सहित कर लेता है ।

699– ताड़ वृक्ष के नीचे भी दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति नौ पदार्थ चिंतन करते हुए वीतरागी तपस्वी कर सकता है ।

700– पंचम गति के लिए पंच परमेष्ठी आराधक चार धर्म ध्यानी संघ में जाता है। वातावरण दो शुक्लध्यान का बनाता है ।

701– (अ)अष्टापद यूगल श्रंग शिखर (ब) मांगीतुंगी के शिखर पर जिन संघ की शरण में अपने षट आवश्यक करता है ।

702– (अ) युगल बंधुओं ने वीतराग तपस्या द्वारा चारों कषायों को दूर करके आत्मस्थता प्राप्त की और अरहंत पद पाया।

(ब) तीन शुक्ल ध्यानों का वातावरण ।

707– अस्पष्ट।

708– स्वसंयमी तपस्वी की तरह वैयाव्रत्य का झूला दो शुक्लध्यानों की प्राप्ति षट्द्रव्यों का चिंतन करते हुए तपस्या और कर्मक्षय।

709– निकट भव्य का वातावरण । उसने वैराग्य तपस्या धारण की ।

710– तपस्वी ने इसी अवसर्पिणी में सल्लेखना ली ।

713– अंतहीन भटकन में उलझे संसारी जीव ने चारों गतियों के नाशन हेतु पुरुषार्थ बढ़ाते हुए क्रमोन्नति द्वारा वैराग्य धारण कर मोक्षपथी गुणस्थानोन्नति की ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ संख्या 13 के 17 से 25

(17) दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति निकट भव्य को भी रत्नत्रय पुनः साधने और चतुराधन से ही संभव होती है ।

(19) जिनध्वजा की शरण और ॐ का स्मरण ही एकमात्र मोक्ष पथ है ।

(20) जिनध्वजा की शरण और पुरुषार्थ से भव तिरना संभव है । षट्द्रव्यों का ध्यान और योगी का स्वसंयम ही उसे उपरोक्त स्थिति बनाते हैं ।

(22) जिनध्वजा की शरण लेकर दो रसिक ह्रदयों ने अर्धचक्री होते हुए भी अष्ट गुण प्राप्ति हेतु संघस्थ होकर गुणस्थानी संयम उन्नत करते हुए रत्नत्रय और पंचाचार पालते हुए भवचक्र को दूर करनेका उपक्रम किया ।

(25) आत्मस्थ व्यक्ति अपने निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण लेते पंचम गति का पुरुषार्थ करने ऐलकत्व रखते वैराग्य और तप द्वारा महाव्रत और मुनिपद धारण करता है ।

उपरोक्त सीलें/मुहरें हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त हुई थीं। हड़प्पा की रोचक कहानी है। अज्ञात काल का एक पकी ईंटों का लंबा चौड़ा टीला लाहौर के समीप मोन्टगोमरी मे सुनसान पड़ा था। कदाचित बरेली के समीप खड़े अहिच्छेत्र के खण्डहरों की भांति। उसका मालिक दिल्ली में रहता था । वह उसे बेचकर अपने उपयोग के लिए रकम चाहता था। लोग वहाँ से पकी बड़ी बड़ी ईंटें ढो ले जाकर अपने अपने घर तो बना लेते थे खण्डगिरि और बिलहरी की तरह किंतु उस लावारिस जैसे टीले को मिट्टी मोल भी खरीदने को कोई तैयार न था । वह क्षेत्र मैदान नहीं लंबा चौड़ा टीला सा दिखने लगा था क्योंकि धीरे धीरे उसकी ऊपरी लगभग सारी ईंटें बिन चुकी थीं। जब ब्रिटिश सरकार की रेल्वे लाइन डालने की योजना बनी तब सर्वेक्षण में उस क्षेत्र को उपयुक्त समझा गया । खुदाई में पुनः ईंटें निकलने लगीं। तब उसकी पुरातात्त्विक महत्ता समझकर वहाँ रेल लाइन न बिछाकर बाद में पुरा उत्खनन हुए और जो प्रागैतिहासिक संपदा निकली उसे हम अब देख रहे हैं। हड़प्पा के ही समीप तक्षशिला के अवशेष प्राप्त हुए। श्री वत्स ने 1921–1934 तक पश्चात **मोर्टिमर व्हीलर** ने हड़प्पा के उत्खनन करवाए ।

पुरा कालीन जीवन शैली में लौकिकता के साथ साथ तप श्रद्धान प्रबल था। इस कृषि प्रधान देश की सुदृढ़ अर्थ व्यवस्था थल और जल मार्गी व्यापार निर्भर थी जिनमें प्रमुख कपास, रेशम, ऊन, रत्न, आभूषण, स्वर्ण, पात्र, चंदन, मसाले, इत्र, पान आदि होते थे ऐसा जैन कथानकों में मिलता है। व्यापारी पूर्व सुव्यवस्थित मार्गो से ही रातें रुकते ठहरते आगे बढ़ते वर्षों में वापस आने तीर्थ यात्रियों की भांति निकलते थे। **राजा श्रीपाल** की कथा अति प्रसिध्द है जो समुद्र में धोखेबाजों व्दारा फेंके जाने पर **णमोकार मंत्र के सहारे तैरते घोघा बंदरगाह पर किनारे आ लगा था** । आज भी वहाँ के प्राचीन जिनमंदिर में पीतल का अति प्राचीन जिन सहस्त्रकूट है। वह मंदिर अति जीर्ण और जर्जर स्थिति में उध्दार चाहता है। पुरा धरोहर होने के बावजूद वर्तमान में वहाँ दिगम्बर समाज न होने से उपेक्षित पड़ा है। अनेकों मंदिरों के प्राचीन पाषाण निर्मित जिनसहस्त्रकूट खंडित टुकड़ों के रूप में आज भी **बोधि गया वाले बुध्द मंदिर में स्तूपों में जड़े** देखे जा सकते हैं। यह विडंबना है कि अहिंसा मूलक उस संस्कृति को विश्व ने मात्र प्रहार ही दिए और उसकी पहचान भी नष्ट कर देना चाहता है।

हड़प्पा के ही समीप रावी के तट पर प्रसिध्द **ब्रम्हाणी देवी मंदिर** भी स्थित है जो आज भी ब्राम्ही के तप का स्मरण कराता है। हड़प्पा की खुदाई में **मातृ शक्ति के वैभव** का भान देती मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। वह **तीर्थंकर माता** का बोध कराती हैं। नर्तकी की मूर्ति भी निकली जिसे अनेक विव्दानों ने **नीलांजना** नाम दिया है। ऋषभजा ब्राम्ही को सरस्वती भी पुकारा गया है क्योंकि उसे लिपियों की अधिष्ठात्री माना गया है। उसी के नाम पर सैंधव की बेटी को भी **ब्राम्ही लिपि** कहा गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर मुखोद्‌भव दिव्यध्वनि को सरस्वती के रूप में प्रतिदिन पूजा गया है। जिन श्रमण परंपरा में सामायिक, त्रिगुप्ति और प्रत्याख्यान का बहुत महत्व है। कायोत्सर्ग करके सोने के, बाद बाधा आ जाने पर भी उठा नही जाता ऐसी ही स्थिति की संभावना उन चित्रों में दिखती है। महादेवन ने तमिल नाडु के एक गुफा मंदिर के शिलालेख में अंकित **ब्राम्ही तपस्विनी** का बोधक **पम्मिती** शब्द पढ़ा है अर्थात वह शिलालेख वहाँ किसी काल में आर्यिका के आवास की घोषणा करता है।

सिंधु घाटी के कछारी मैदान में एक दिखती छिपती नदी को भी प्राचीन काल में सरस्वती नाम दिया गया था। एक मत पुराविदों का यह भी जोर पकड़ रहा है कि **सैंधव सभ्यता को उसी नदी के नाम पर सरस्वती सभ्यता** पुकारा जावे। यह सुझाव अनुकूल लगता है क्योंकि मथुरा की खुदाई में सबसे प्राचीन मूर्ति **पुरादेवी के रूप में बैठी सरस्वती की ही** निकली है। **वह आर्यिका जैसी एक वस्त्रा है, एक हाथ में जाप और दूसरे में पाण्डुलिपि है।** इसके अस्तित्व का कोई भान न होने के बावजूद परम्परागत शासनदेवी के रूप में मध्ययुगीन अति सुंदर **चतुर्भुजी जैन सरस्वती बिंबों का निर्माण हुआ** जिनमें विशेष बीकानेर, दिल्ली म्यूजियम, लाड़नूं ,सावर तथा जहाजपुर आदि की हैं। उनके एक हाथ में जाप, दूसरे में पाण्डुलिपि, तीसरे मे कमण्डलु और चौथा अभय मुद्रा में है। **जैन दैनिक पूजा के अंत में सरस्वती जिनवाणी पूजन सर्वदा** होता ही है। इस तरह सैंधव सभ्यता संपूर्ण रूप से **जिन प्रमादी सभ्यता** होने का बोध देती है। ऐसी स्थिति में उसका नया नामकरण उसे ब्राम्ही की तपस्थली के साथ साथ दिव्य ध्वनि से भी जोड़ देता है। धर्म परिवर्तन के दबाव में आकर भी भारतीय मूल का जन्मा व्यक्ति उसे भुला नहीं सका। वह वाक्देवी गूगों के हृदय पर भी राज करती है। कुछ परिवर्तन करके हंस अथवा कमल के ऊपर उसे दर्शाकर श्वेत वस्त्रा, वीणा वादिनी के रूप में उसे जैनेतरों व्दारा पूजा जाता है किंतु पिच्छी की जगह मोर उसके आसपास होता है।

सैंधव संपदा संपूर्ण भारत ही नहीं आसपास के नए नामों से जाने जा रहे सारे ही देशों में भी वैसी ही फैली पड़ी अपना श्रमण स्रोत दर्शा रही है।अर्थात हड़प्पा सभ्यता से पूर्वकाल में भी वह वैसी ही संपन्न रही है। अतः उसे उसके उसी रूप में मान्यता देते हुए पुकारा जाना चाहिए। पिछले वर्षों में पुरानिधि अन्वेषकों को भारत के कई स्थलों पर मेवाड़ के आसपास आरंभिक कृषि काल संबंधी संकेत, औजार, अन्नागार और दाने आदि मिले हैं जिन्हें हड़प्पा पूर्वकालीन समझा जा रहा है। **खारवेल की गुफा के नैसर्गिक भाग की सीलिंग पर एक शैलचित्र में ज्वार की गदा/गुच्छा दर्शित है। पुराविदों को उसे भी अब अध्ययन में लेना चाहिए।**

ब्रिटिश भारत में हड़प्पा के बाद दूसरी खुदाई एक वैसे ही सोए पड़े टीले की हुई जिसे मौनजोदरो/ मोहन्जोदड़ो पुकारा गया । उससे प्राप्त पुरा सामग्री **सर जॉन मार्शल** और **ई.आइ.एच.मैके** के व्दारा सहेजी गई जिसकी चर्चा आगे की गई है। उन पुराउत्खननों में भाग लेने वालों की बड़ी लंबी सूची है उसे अभी इतना ही लिखकर छोड़ा जा रहा है किंतु उनका वह श्रम एक तपस्या जैसा ही रहा है। खुले आसमान के नीचे हर पल मजदूरों के साथ इंच इंच मिट्टी खुदवाकर, सहेजते हुए छनवाकर कण कण को परखा आंका। सुनसान में पानी की बूंद बूंद को तरसते हुऐ भी आसपास खुदी धरती, तम्बू, मजदूरों के साथ अगले दिन की योजना, प्रतिदिन प्राप्त सामग्री का संपूर्ण ब्यौरा आदि आदि सहेजते अन्वेषक। कहने में सहज किंतु उतना ही जटिल रहा होगा। अहिच्छत्र के राजा द्रुपद वाले उस विशाल किंतु अधूरे उत्खनन अवशेषों को देखकर कुछ कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री मैके का केटेलॉग फर्दर एक्सकेवेशन्स एट मोहन्जोदारो I एवं II (1927 से 31 तक)

1— पर्यायों की संसार में गिरान

2— अस्पष्ट ।

3— चतुर्गति भ्रमण छेदने पंचम गति की साधना की । जहां आर्यिका/ऐलक भी तपस्यारत थे । अदम्य पुरुषार्थ किया था

5— अदम्य पुरुषार्थ उठाते हुए चर्तुगति भ्रमण को नाशने हेतु पंचम गति की साधना क्षत्री एवं रत्नत्रयी त्यागी ने की। वैराग्य ले वीतराग तप किया और पंच परमेष्ठी आराधन भी किया ।

6— छत्रधारी ने (राजा ने) समाधिमरण में निश्चय—व्यवहार धर्म की शरण लेकर तीर्थंकर प्रकृति पुण्य कर्म बांधा ।

9— चतुर्गतिक भ्रमण को काटने के लिए गिलहरी जैसा सदा उद्यमी रहना चाहिए ।

10— कैवल्य प्राप्ति द्वारा चतुर्गतिक भ्रमण को नाश करने वाले पंचम गति इच्छुक ने तपस्वी बनने से पूर्व एक ऐलक एवं रत्नत्रयी त्यागी के रूप में वैराग्य तपस्यारत हो वीतरागता स्वीकार कर चर्या की ।

11— एक दूसरे धर्मध्यानी व्यक्ति ने भवघट से तिरने हेतु चतुर्विध संघ की शरण लेकर श्रमणत्व धारा और अंत में कैवल्य प्राप्त कर मोक्ष गए।

12— पक्षी भी जाप देते हैं ।

13— भवघट से तिरने दूसरे धर्मध्यान का अधिकारी सप्त तत्व चिंतन द्वारा (दो धर्मध्यानों से) दूसरे शुक्लध्यान तक की भूमिका बनाकर चतुर्गति को लांघकर पंचमगति की प्राप्ति करता है।

14— गृहस्थ ने (गृह त्यागकर) वीतरागी तपस्या धारी ।

15— वह सल्लेखी तीसरे धर्मध्यान तक उठा हुआ स्वसंयमी था।

16— सल्लेखना धारक दो धर्मध्यानों से उठकर चतुर्गति भ्रमण को रोकने वाली सल्लेखी आर्यिका है ।

17— चतुर्गति में उठान लाने वाला (स्वस्तिक) (मंगलमय माना गया है) ।

18— गुणस्थानोन्नति करने वाले तपस्वी पुरुषार्थी तीन धर्मध्यानी हैं जो अरहंत पद की भावना भाते हैं । अतः अर्धचक्री भी रत्नत्रय को धारण कर दो धर्मध्यानों से उपशम द्वारा आत्मानुभूति करके मांगीतुंगी अथवा उदयगिरि खण्डगिरि युगल श्रृंगों पर संघस्थ होने चतुर्विध संघ के समीप जाते हैं ।

19— (पंच परमेष्ठी) जाप जपन से ही भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों की स्वामी दूसरे शुक्लध्यान तक की भूमिका बनाकर आत्मस्थ त्यागी और सम्यक्त्ववान आर्यिका बनकर क्रमशः छह भवों के निकट भव्यत्व को प्राप्त कर गुणस्थानोन्नति कर जाते हैं ।

20— वैयावृत्ति झूला रत्नत्रयी वीतरागी निश्चय—व्यवहार धर्म द्वारा स्वसंयमी चतुर्विध संघाचार्य की शरण में पहुंच कर वीतराग तप करता है।

21— भवघट को नाशने घातिया कर्मों का नाश और भवबंधन काटना वीतरागी तप से ही संभव है जो करना होता है।

22— भवचक्र को पारकर सिध्दत्व पाने, निकट भव्य तपस्या हेतु जंबूद्वीप में पुरुषार्थ से वीतरागी तप करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

23– चतुर्गति के अष्ट कर्म नाशन को चतुराधक ने इस अवसर्पिणी में रत्नत्रयी जंबूद्वीप में चार अनुयोगी वीतराग धर्म के निश्चय–व्यवहार पक्षों सहित तपस्या की।

24– पुरुषार्थी सरीसृपों की तरह दो धर्मध्यान–केवलत्व तक त्यागी को पहुंचाने में सक्षम होते हैं/तपस्वी त्यागी आरंभी गृहस्थ होकर भी सप्त तत्व चिंतन करके दो धर्म ध्यानों से सप्त तत्व चिंतन करता है ।

25– (गृहस्थ) सल्लेखी ने नौ पदार्थों का चिंतन करके चतुराधन किया ।

26– ऐलक/आर्यिका (सचेलकों) का तप स्वसंयम से ही संभव है ।

27– तीन धर्म ध्यानों वाले छठवीं प्रतिमाधारी श्रावक अरहंत भक्ति से अर्धचक्री की स्थिति से भी अष्टापद की तरह हार न मानने वाली सहनशीलता सहित सल्लेखना करते अष्टान्हिकाऐं पालते और तप साधना करते अरहंत का ध्यान धरते हुए रत्नत्रय पालते हैं ।

28– पक्षियों द्वारा भी पुरुषार्थ और पंचपरमेष्ठी आराधना होती है ।

29– (अपने–अपने) भवचक्रों से पार उतरने दोनों बंधुओं (कुलभूषण देशभूषण) ने अरहंत पद हेतु साधना की और जिनशासन के तपस्वी बनकर पुरुषार्थमय वातावरण बनाया।

30– एक गुणस्थानों से गिरे हुए व्यक्ति ने तपस्वी की तरह उठकर जिनशासन की शरण ली ।

31– भव घट को तिरने दो धर्म ध्यानों वाले सल्लेखना रहित जीव भी कषायों को दूर करके तपस्यारत हो ओंकारी भाव रखकर अरहंत पद की भावना भाते हैं ।

32– अरहंत पद इच्छुक वातावरण की अनुकूलता से गृहस्थ ने सप्त तत्त्व चिंतन करके रत्नत्रयी साधक बनकर चतुर्गति नाशने आरंभी गृहस्थ की भूमिका से भी पंचमगति के लिए भावना भाई।

33– पंचम गति का साधक त्रिगुप्ति धारण करके तपस्या करने तत्पर दो धर्मध्यानी होता हुआ भी जंबूद्वीप में अरहंत सिद्ध आराधना करते छत्रधारी राजा और आर्यिका की भांति द्वादश अनुप्रेक्षा भाता वीतरागी तपस्यारत हो जाता है ।

34– सल्लेखी दो धर्मध्यानों की भूमिका वाले तपस्वी हैं जो छत्रधारी राजा होकर भी कैवल्य प्राप्ति की भक्ति लिए स्वसंयम का सेवी है ।

35– दोनों बंधुओं का वातावरण एक सा (वैराग्यमय) पंचाचारी और पंच परमेष्ठी आराधक था ।

36– नवदेवता आराधन एवं तप ।

37– स्वस्तिक की मंगलकारी, पुण्योदयी उत्थानी प्रकृति ।

38– भवचक्र से पार होने वाले वे तीन धर्म ध्यानों के स्वामी स्वसंयम पालते हुए आर्त रौद्र ध्यान क्षय करते हैं और चतुराधन करते हुए निश्चय–व्यवहारी आत्म धर्म साधना करते हैं ।

39– क्षयोपशमी चतुराधक इस अवसर्पिणी में जंबूद्वीप में रत्नत्रय धर्म साधना करते चार अनुयोगी चतुर्विध संघाचार्य की शरण लेते हैं ।

40– केवलत्व का तपस्वी निश्चय–व्यवहार धर्मी वातावरण में वीतरागी तप करता है ।

41– सल्लेखी आत्मस्थ ध्यानी वीतरागी तपस्या रत निकट भव्य है जो दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति के लिए चारों कषायों को त्याग चुका है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

42– भवघट से तिरने के लिए दो धर्मध्यानों के साथ तपस्वी की आत्मस्थता आवश्यक होती है ।

43– *सल्लेखी अदम्य पुरुषार्थी दो रसिक हृदयों ने भवचक्र पार करने पंचाचार पालते हुए पंचपरमेष्ठी की शरण ली।*

44– भवघट से तिरने हेतु दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने चारों कषायों को दूर भगाकर सम्यक्त्व धारा ।

45– चारों कषायों को दूर करके पक्षी ने कछुए की भांति स्वयं को अष्ट कर्मों से बचाने हेतु सल्लेखना धारण कर अरहंत सिध्दमय वातावरण बनाकर वीतरागी तप किया ।

46– रत्नत्रयी जंबूद्वीप में दो शुक्लध्यानों की भावना भाते तपस्वी, संघाचार्य की शरण में, चतुराधन करते वीतरागी तप तपते हैं।

47– सिद्धत्व की प्राप्ति के लिए (आर्यिका अथवा सचेलक ऐलक) भी स्वसंयम धारण करते हैं ।

48– भवघट तिरने दो धर्मध्यानी (ऐलक/आर्यिका) सचेलकों ने पंचाचार करके रत्नत्रयी तपस्वी बन वीतरागी तपस्या की।

49– तीन धर्म ध्यानी ने अदम्य पुरुषार्थ करके दो शुक्लध्यानों की भूमिका बनाई और संघाचार्य की शरण में रत्नत्रयी चतुराधन किया । वे दोनों रसिक हृदय पूर्व में चक्रवर्ती थे ।

50– चार शुक्लध्यानों की भूमिका हेतु वीतरागी तपस्या रत "निश्चय–व्यवहार धर्मी', समाधिमरणी भी चतुराधन करके महाव्रती बनकर वीतरागी तपस्या अपनी साधना द्वारा पूरी करता है ।

51– भवघट से तिरने, दो धर्म ध्यानों का स्वामी भी तीसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति हेतु रत्नत्रयी वातावरण बनाकर वीतरागी तपस्या रत होते हैं ।

52– चंचल मन पर नियंत्रण करके जिन सिंहासन की शरण में आत्मस्थता सदैव से ही प्रचलित है । जंबूद्वीप में (स्वयंभू रमण समुद्र कें) महामत्स्य जैसा संहनन पाकर तपस्वी और आर्यिका निकट भव्य बनकर मोक्षप्राप्ति का लक्ष्य करके गुणस्थानोन्नति करते हैं ।

53– आत्मस्थ वातावरण में अरहंत पद की भावना से चतुराधन करने के लिए चारों कषायें त्यागी और तपस्वी बना ।

54– भवघट से पार उतरने को दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने दूसरे शुक्लध्यान की भावना भाई और तपस्वी बनकर छत्र धारी राजा की तरह (अंतहीन भटकान को तोड़कर) कैवल्य प्राप्ति के लिए वातावरण पंचम गति वाला बनाया तथा क्रमोन्नति से वीतरागी तप साधना की ।

55– वीतरागी तपस्वी ने सल्लेखना धारण कर चतुराधन किया ।

56– संसार चक्र से पार होने दूसरे धर्म ध्यानी ने दूसरे शुक्लध्यान (वाली कैवल्य) तक उन्नति के लिए अदम्य पुरुषार्थ उठाया और केवली के निश्चय व्यवहार धर्मी वातावरण में तपस्या करते हुए उस वातावरण को स्थिर किया ।

57– भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के साथ अरहंत पद की भावना विद्याधर जीव ने भावना भाते भक्ति सहित सप्त तत्त्व चिंतन किया और वातावरण अनुकूल बनाया।

58– विद्याधर भक्ति पूर्वक पंच परमेष्ठी का आराधक बनकर उड़ता था और दो धर्म ध्यानी था ।

60– भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामी निकट भव्य ने मोक्षार्थी गुणोन्नति की ।

61– वीतरागी आत्मस्थ तपस्वी ने रत्नत्रय उठाते हुए चतुराधन. पंचाचार किया और पंच परमेष्ठी की आराधना की ।

63– पंचम गति के लिए सप्त तत्त्व चिंतन करते हुए निश्चय–व्यवहार धर्मी तपस्वी ने वीतराग तप किया ।

64– अष्ट कर्म जन्य चतुर्गति भ्रमण को नाशने सल्लेखी ने स्वसंयमी बनकर पुरुषार्थ उठाया और वीतराग तपस्वी बन गया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

65— भवचक्र से पार उतरने सल्लेखी ने दशधर्मी हुए चतुराधन किया और वीतरागी तप तपने लगा ।

66— चार अनुयोगी चर्या पुरुषार्थ सहित दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने अरहंत पद की प्राप्ति हेतु गुणस्थानोन्नति करते हुए शिखर तीर्थ पर सल्लेखना ली ।

67— भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने रत्नत्रयी साधना से पंचम गति हेतु जंबूद्वीप वाले क्षेत्र में अपने निश्चय–व्यवहारी धर्म से चारों कषायों को दूर किया ।

68— चार नयों के अधिकारी भवघट से पार उतरने दो धर्म ध्यानों से ही आत्मस्थता लेकर तपस्वी आचरण अरहंत पद प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ सहित चर्या करते हैं और वीतरागी तपस्या रत होकर तपस्वी बनते हैं ।

69— भवचक्र से पार उतरने स्वसंयमी ने कालचक्र को निश्चय–व्यवहार धर्म पूर्वक संघस्थ होकर लंबे कालचक्र तक भक्ति और पंचाचार करके आत्मस्थता सहित तपस्वी बन वैरागी तपस्वी रूप में क्रमशः चतुर्गति को सीमित करते हुए किया।

70— पुरुषार्थी सल्लेखी वैराग्य/वीतराग तपस्या द्वारा अष्ट कर्मों को नाशने सर्प की तरह वीतरागी तप करते हैं ।

71— पुरुषार्थी सल्लेखी वीतराग धर्म पालन करते हुए अरहंत पद की भावना भाते सल्लेखना धारण कर स्वसंयमी तपस्वी बनकर वीतरागी तपस्या करते हैं ।

72— तीर्थंकरत्व का साधक निश्चय–व्ययवहार धर्मी षट् आवश्यक रत द्वादश तप लीन रहता है ।

73— तपस्वी निश्चय व्यवहारी सल्लेखना भाता तपस्वी हैं जो बारह भावना भाते और बारह तप करते हैं ।

74— चतुर्गति एवं अष्ट कर्म नाशन हेतु सल्लेखी निकट भव्य युगल बंधु हैं जो वीतरागी तपस्या के तपी हैं ।वे षट् द्रव्य चिंतन करते हैं ।

75— दूसरे शुक्लध्यान का तपस्वी कैवल्य जयी है जिसने दो धर्म ध्यानों से तपस्या आरंभ करके स्वसंयम द्वारा चिंतन करते साधना की है ।

76— पंचम गति इच्छुक तपस्वी का वातावरण कैवल्य उपयुक्त है जो भवचक्र से पार संयम द्वारा ही लोकपूरण कराएगा ।

77— तीन धर्म ध्यानी वीतरागी तपस्वी ऐसा स्वयं तीर्थ हैं जिसने पक्षियों की तरह निरीह रहकर तीसरे शुक्लध्यान के लिए चतुर्अनुयोगी जिनलिंगियों के पास तप तपा ।

79— भव से तिरने वाले दो धर्म ध्यानों के स्वामी ऐलक तपस्वी ने पुरुषार्थ द्वारा गुणस्थानोन्नति करते हुए द्वादश तपों की तपस्या करके अपनी वैराग्य तप साधना की ।

80— भवघट से तिरने वाले दो धर्मध्यानों के स्वामी भी तीसरे शुक्लध्यान का पुरुषार्थ कर लेते हैं और रत्नत्रय साधते हैं।

81— भवघट से तिरने के लिए दो धर्म ध्यानों के साथ आत्मस्थ हो निश्चय व्यवहार धर्मी जंबूद्वीप में स्वसंयमी ने त्यागी बनकर तप किया।

82— गुणस्थानोन्नति करने हेतु तपस्वियों (मुनियों एवं आर्यिकाओं) ने तीन धर्म ध्यान की स्थिति से प्रारंभ करके चार अनुयोगी चतुर्विध संघाचार्य की शरण में साधना की ।

83— (पं$_1$) तीर्थंकर पद हेतु भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी जीवों ने त्याग करते हुए क्रमशः त्यागी फिर आर्यिका एवं ऐलक बनकर अपनी–अपनी वीतरागी तपस्या की ।

(पं$_2$) पुरुषार्थी ने अष्ट कर्मों को नष्ट कर के केवली पद पाया ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

84— दो शुक्लध्यानों की प्राप्ति, पुरुषार्थ द्वारा आत्मस्थ निश्चय–व्यवहारी ने वीतराग तपस्या करते हुए निश्चय व्यवहार धर्ममय जंबूद्वीप में छत्रधारी राजा की तरह रत्नत्रयधारी निकट भव्य बनकर की ।

85— पंचमगति साधक एक स्वसंयमी आरंभी था जिसने महामत्स्य की तरह उत्तम संहनन पाया और वीतराग तप साधना की

86— भवघट से तिरने वाले वह कीर्तिमान भरत चक्री थे जिन्हें बाहुबली ने परास्त करके पटका था तथा जिन्होंने वातावरण को वीतराग आत्मस्थता से निकट भव्य बनकर जम्बूद्वीप में सल्लेखना की वैयावृत्ति से तीसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति की

87— एकदेश स्वसंयमी तपस्वी दो शुक्लध्यानों को प्राप्तकर घातिया कर्मों का नाश करने हेतु वीतरागी तपस्यारत हुआ ।

88— तीन धर्म ध्यानी निकट भव्य कीर्तिवान तपस्वी ने दशधर्मो का पालन किया और व्रत धारण किए ।

89— दो धर्म ध्यानों का स्वामी भी समाधिमरण को चतुराधक की भूमिका के साथ करता हुआ वीतरागी तपस्वी होता है।

90— चार शुक्लध्यानों का ध्यानी, रत्नत्रयधारी, तीर्थंकर प्रकृति वाला तपस्वी होता है जो उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी कालों में सदैव ही संभव रहा है।

91— महामत्स्य के जैसे उत्तम संहनन वालों (वज्रवृषभनाराच संहननी पुरुषों) ने हर उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालार्धों में अष्ट कर्मों वाली चतुर्गति के नाशन हेतु वीतराग तप किया है।

92— षट् आवश्यक लीन जिनशासनलिंगी संघाचार्य के निर्देशन में श्रावक–श्राविका षट् द्रव्य चिंतन करते हैं ।

93— चारों कषायों को त्यागकर ही जंबूद्वीप में आत्मस्थ होने से केवलत्व की प्राप्ति होती है ।

94— सल्लेखी ने चार गतियों से छुटकारा पाने के लिए जंबूद्वीप में चतुराधन किया और कालांतर में क्षयोपशम प्रभावी वीतराग तप धारा।

95— (महामत्स्य जैसे उद्यमी उत्तम संहननी ने) दो धर्म ध्यानों से पुरुषार्थ उठाते हुए पक्षियों जैसी पुरुषार्थी साधना की ।

96— अस्पष्ट ।

97— गुणस्थानोन्नति करते, द्वादश तप तपते तीन धर्मध्यानों के स्वामी ने पुरुषार्थ करते हुए वीतराग तप किया ।

98— अष्ट कर्मों को नाशने अष्ट गुण पाने कषायों को त्यागते और घातिया चतुष्क का क्षय करके भवचक्र से पार उतरने युगल तपस्वियों ने दो धर्म ध्यानों से ही एकदेश स्वसंयम धारण करते हुए तपस्यारत हो वैयावृत्ति पाई और वीतराग तप किया ।

99— षट् नयों से (दृष्टि की अपूर्णता रखते) पंचम गति को वीतराग वातावरण में तपस्या और महाव्रत की चर्या लेकर पंच परमेष्ठी आराधन से तपस्वी ने निश्चय व्यवहार धर्मी वातावरण में वीतरागी तप तपा ।

100— भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानी तपस्वियों ने सल्लेखना ली और चतुराधना की ।

101— स्वंयतीर्थ ने युगल शिखरों पर सल्लेखना द्वारा भवचक्र पार किया ।

102— भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने रत्नत्रयी दशधर्म पालन कर वीतराग तपस्या की ।

103— भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामी ने दो शुक्लध्यानों की प्राप्ति हेतु चतुर्गति भ्रमण नाश करके पंचम गति पाने के लिए **वीतरागी तपस्या** की और **सिध्दत्व पाकर जंबूद्वीप को रत्नत्रयी कर गए।**

104— रत्नत्रयी साधक ने चतुराधन सहित समाधिमरण करके वीतरागी तपस्या को पूर्णता दी ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

105– आरंभी गृहस्थ ने स्वसंयमी बनकर, गुणस्थानोन्नति करते हुए भवान्तरों में तीर्थंकर प्रकृति पायी ।

106– रत्नत्रयी अपने पुरुषार्थ को प्रकटाकर दो शुक्लध्यानों की स्थिति तक पहुंचने चतुराधक बनकर निश्चय–व्यवहार धर्म को पालता है ।

107– आरंभी गृहस्थों ने महामत्स्य की तरह उत्तम संहनन पाकर उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी कालार्धों में निकट भव्य बनकर सल्लेखना सहित दो धर्म ध्यानों के साथ षट्द्रव्य चिंतन करते हुए वीतरागी तपस्या की ।

108– महाव्रती ने भक्त के रूप में व्यवहार धर्म की तपस्या की ।

109– संघाचार्य की शरण लेकर तीन धर्मध्यानी ने त्रिगुप्ति धारणकर पंचम गति का साधन बनाया और तपस्वी के रूप में रत्नत्रयी केवली के रूप में ख्याति पाई जिस प्रकार कि दो धर्मध्यानों के साथ महामत्स्य जैसे उत्तम संहननी ने हर युगार्ध में वैयावृत्ति का झूला पाते सल्लेखना लेकर तपस्या की है ।

110– उस तपस्वी साधु ने वातावरण में शुद्धत्व के लिए कैवल्य की साधना करके अरहंत पद पाने वाला स्वसंयम एवं मुनिव्रत

111– तीन धर्म ध्यानों की भूमिका से तद्भवी मोक्षार्थी तपस्वी ने उठकर दो शुक्लध्यान पाने हेतु आरंभी गृहस्थ की स्थिति से अरहंत भक्ति करके निश्चय–व्यवहार धर्म को स्वसंयमी बनकर पंचम गति के लिए अरहंत भक्ति में जापें की ।

112– रत्नत्रयी जंबूद्वीप में वह रत्नत्रय साधते हुए चतुराधक बना ।

113– पंच परमेष्ठी आराधक वह निश्चय–व्यवहारी तपस्वी आचार्य की शरणागत हुआ ।

114– ढाईद्वीप में दूसरे शुक्ल ध्यानी ने लोकपूरणी समुद्घात संघाचार्य के चरणों में किया ।

115– अदम्य पुरुषार्थी ने सल्लेखना लेकर वीतरागी तपस्या आत्मस्थता से करते हुए ढाईद्वीप में दो ध्यान की प्राप्ति हेतु वीतरागी तप किया।

116– ऐलक (सचेलक) ने रत्नत्रयी दिगंबर मुनित्व धारा ।

117– तीर्थंकर प्रकृति बांधा जीव मोक्षपथ प्राप्ति हेतु शुक्लध्यानें की प्राप्ति नदी के तट पर भी वीतराग तपस्या से करते हैं।

118– आत्मस्थ तपस्वी, मन की चंचलता को स्थिर करके पंचमगति की साधना करते केवलज्ञान पाने चतुराधक रहते हैं ।

119– (अ) पुरुषार्थी रत्नत्रयधारी राजा ने संघाचार्य के समीप भव घट से तिरने के लिए पंचम गति से सिद्धत्व के लिए उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी काल युगार्धों में साधना की ।

(ब) आरंभी गृहस्थ ने तदभव मोक्ष का पुण्य कर्म बांधकर तीर्थंकर पद पाया ।

120– चतुर्गति की अंतहीन भटकन से बचने के लिए दो धर्मध्यानी साधक ने रत्नत्रयी जंबूद्वीप में ऐलक स्थिति से सप्त तत्त्व चिंतन करते हुए पंचम गति के लिए वीतरागी तपस्या रत होकर निश्चय–व्यवहार धर्म पालन करते चतुर्गति भ्रमण का नाश किया ।

121– सल्लेखी अणुव्रती ने सप्त तत्व चिंतन करते वीतरागी तपस्या की ।

122– निकट भव्य ने सल्लेखना धारण करके दो शुक्लध्यान की प्रप्ति हेतु पुरुषार्थ उठाया,बढ़ाया और वीतरागी तपस्या की

123– रत्नत्रयी जंबूद्वीप में आत्मस्थ सम्यक्त्व तपस्वी और आर्यिकाऐं आरंभी गृहस्थ की भूमिका से तीन धर्म ध्यानी बनकर स्वसंयम से आगे बढ़ते हैं ।

124– तीर्थंकरत्व के लिए निश्चय और व्यवहार धर्म धर्माचार्यो दोनों ही समान रूप से भूमिका रहे हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

125– अदम्य पुरुषार्थी वह अष्टापद जैसा संघस्थ तपस्वी सिद्धत्व हेतु अनुकूल वातावरण करता उत्तरोत्तर वीतरागी तपस्वी होता है ।

126– पांचसूनों को त्यागने वाला आरंभी गृहस्थ ही सिद्ध पद को स्वसंयम से पाता है ।

127– अष्ट मूलगुणों का श्रद्धानी और रत्नत्रय सेवी ही "इष्ट" है ।

128– स्वसंयमी पुरुषार्थी, अष्टापद जैसा निकट भव्य रत्नत्रयी पंचाचार द्वारा दो धर्म ध्यानों का स्वामी होकर भी षट् द्रव्य चिंतक त्यागी होता है जो वीतरागी तपस्वी बनता है ।

129– केवलत्व के लिए जंबूद्वीप में मन वचन काय की समता धारण कर वातावरण को ओंकारमय बनाकर आत्मस्थ वीतरागी हो छत्रधारी राजा भी त्यागी तपस्वी बनकर द्वादश भावना भाता निकट भव्य बनकर पंचमगति साधना करता है ।

130– सल्लेखी सिद्धत्व हेतु भवचक्र पार होने दूसरे धर्मध्यान से दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति हेतु महाव्रत की पिच्छी धारण करता और स्वसंयमी बनता है ।

131– चार गतियों को नाशने कछुआ प्रवृत्ति सजग तपस्वी सल्लेखना तत्पर वातावरण में वैय्यावृत्त्य और रत्नत्रयी साधना करते द्रव्यलिंगी मुनि श्रमण की सक्षम तपस्या करता हैं ।

132– भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानी तपस्वी स्वसंयम को आधार बनाते हैं ।

133– मगर और कायोत्सर्गी, अर्थात् कर्म फल चेतना से कभी भी कोई जीव, तपस्वी भी नहीं बचे हैं । यह पुष्पदंत प्रभु का लांछन भी है।

134– लोकपूरणी समुद्घात करने वाला जीव केवली है जो पंचमगति का अधिकारी है, सल्लेखी हैं, जो महाव्रती है और निश्चय–व्यवहार धर्म वाले चतुर्विध संघ का कीर्तिवान स्वामी है ।

135– वीतराग तपस्या का प्रतीक । (विमलनाथ का लांछन, शूकर)

136– भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों का स्वामी छत्रधारी राजा, तपस्वी है।

137– दो धर्मध्यानों का स्वामी प्रतिमाधारी बनकर रत्नत्रय का धारी वीतरागी तपस्वी है ।

138– जंबूद्वीप से ही तिरने निकट भव्य एकदेश स्वसंयमी मन को स्थिर करके आत्मस्थता से उर्ध्व पंचमगति की साधना वैराग्य पुरुषार्थ से तपस्या ढाई द्वीप में करता है ।

139– ढाईद्वीप में आत्मस्थता, रत्नत्रय धारण और सप्त तत्व चिंतन कल्याणकारी है ।

140– तीन स्थिरताओं (मनवचनकाय) के वातावरण का स्वामी सप्त तत्त्वों का चिंतन करके दो धर्म ध्यानों से भी सल्लेखना धारणकर वीतरागी तप तपता है ।

141– दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति के लिए ढाईद्वीप में दो धर्मध्यानों के स्वामी पक्षी ने रत्नत्रय के वातावरण में वीतराग तपस्या धारण की । (भवान्तरों में सफलता)

142– छत्रधारी राजा भी निकट भव्य बनकर गुणस्थानोन्नति करता है ।

143– पंचाचारी त्यागी पुरुषार्थमय सल्लेखना धारण कर पुरुषार्थवान स्वसंयम अपनाता है ।

144– जिनलिंगी अदम्य पुरुषार्थी वीतराग तपस्वी होते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

145– समाधिमरण करने वाला चतुराधक वीतरागी तपस्वी, स्वसंयमी है जो ढाईद्वीप में निश्चय व्यवहार धर्म को पालता है ।

146– भवचक्र को पार करने वाला सल्लेखी छत्रधारी राजा अथवा आर्यिका या ऐलक, त्रिगुप्ति धारण करके, वैयाव्रती वीतरागी तप साधना करते हैं ।

147– भवचक्र से पार उतरने, दो धर्म ध्यानों के स्वामी ढाईद्वीप में आत्मस्थता लेकर रत्नत्रय का पालन करते धर्मध्यानी होते हैं ।

148– सिद्धत्व प्राप्त करते स्वयं तीर्थ ने युगल षिखरों पर पुरुषार्थी पंच परमेष्ठी आराधना की ।

149– जिन ध्वजा में (सोलहकारणी साधना) का उद्घोष ।

150– खंडित है।

151– निकट भव्य का घातिया चतुष्क क्षय कषायों के त्याग द्वारा ।

152– पंचमगति की भावना करने वाला महामत्स्य सा उत्तम संहननी तपस्वी तीर्थंकर प्रकृति बांधने वाला वीतरागी तपस्वी है

153– चतुराधक तपस्वी

154– दशधर्म का धारी वीतरागी तपस्वी

155– सल्लेखी निश्चय व्यवहार धर्मी, पंच परमेष्ठी आराधक वीतरागी तप तपने वाला तपस्वी है ।

156– चार गतियों के संसार में भी आत्मस्थता संभव है जिसमें बाहरी ओर बढ़ने से भटकन और केन्द्र में उत्थान है दश धर्मों का पालन केंद्रीय उर्ध्व गति का सहयोगी है । नवदेवताओं का संसार में रहते श्रद्धान है।

157– चतुराधक पुरुषार्थवानी सल्लेखी है/थी जिसने तीर्थंकरत्व के लिए क्षयोपशम द्वारा युगल श्रृंगियों पर गुणस्थानोन्नति करता हुआ जिनशासन स्वीकारा है और वीतरागी तपस्या की ।

158– दशधर्म का ध्यानी वीतरागी तपस्वी है ।

159– सल्लेखी का वातावरण धर्मी शिखर तीर्थ पर निकट भव्य बनकर चार अनुयोगी वीतरागी निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण से तप कराता हैं।

160– भवचक्रों से पार होने आत्मस्थ जंबूद्वीप में (उर्ध्वगामी) वीतरागी तपस्वी संघ में रहकर रत्नत्रय पालते और वैराग्य तप धारते हैं।

161– ऐलक/आर्यिका भी स्वसंयम धारक होते हैं ।

162– भवचक्र से पार होने दो धर्मध्यानों का स्वामी निकट भव्य दूसरे शुक्लध्यान की (अरहंत पद) प्राप्ति हेतु तपस्वी बन द्वादश भावना भाते हुए वीतरागी तपस्या में रत रहते पंचमगति की साधना करते हैं ।

163– निकट भव्य की गुणस्थानोन्नति द्वादश अनुप्रेक्षा और वीतरागी तपस्या में रत रहने से होती है ।

164– भवचक्र से पार होने दो धर्म ध्यानों का स्वामी तपस्वी बन चतुर्गति भ्रमण रोकने तीर्थंकर की शरण में सल्लेखी बन वैय्यावृत्त का झूला पाता है ।

165– चार गतियों के भ्रमण को रोकने के लिए बार–बार पुरुषार्थ और आत्मस्थ वातावरण की आवश्यकता होती है ।

166– दशधर्म सेवी ने रत्नत्रयी चतुराधन द्वारा दो धर्मध्यानों का स्वामी होकर भी सल्लेखना धारकर वीतरागी तपस्या की।

167– तीसरे शुक्लध्यान का रत्नत्रयी स्वामी पूर्व में (प्रारंभ में) मात्र तीसरे धर्मध्यान का स्वामी था ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

168— भवचक्र से पार होने दो धर्मध्यानों का स्वामी और पंचाचारी होकर रत्नत्रयी तपस्यारत वीतरागी तपस्या तपता है ।

170— अरहंत की शरणागत दुर्ध्यानों का त्यागी पंचम गति का साधन चतुराधन से रत्नत्रयी जंबूद्वीप में चार अनुयोगी

171— अरहंत की शरणागत निश्चय–व्यवहार धर्मी दो धर्मध्यानों का स्वामी है जो दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति के लिए तपस्या लीन आत्मस्थ होकर चारों कषायों को त्यागता है ।

172— ये उल्टा स्वास्तिक पर्यायों की गिरान वाला अशुभ है, और संसार बढ़ाने वाला है ।

173— जंबूद्वीप में मन वचन काय की समता द्वारा पाँच समिति और पाँच महाव्रत पलते हैं ।

174— दूसरे शुक्लध्यानी अरहंत ने शिखर तीर्थ पर रत्नत्रयी चतुराधक बन दो धर्म ध्यानों के स्वामित्व से क्रमोन्नति कर आत्मस्थ तपस्वी बन निकट भव्यत्व पाकर वीतरागी तपस्या की ।

175— चार अनुयोगों का ज्ञान निश्चय–व्यवहार धर्म के तपस्वी को षट्द्रव्यों के चिंतन से जोड़ता है ।

176— पंचमगति का ध्येय लिए रत्नत्रय पालने वाला भवचक्र से पार हो सिद्धत्व पाता है ।

177— भवघट से तिरने के लिए दो धर्म ध्यानों का स्वामी पंचाचारी, समाधिमरण करके वीतरागी तपस्या का कीर्तिवान तपस्वी बनता है ।

178— भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी दशधर्मों का सेवन, ढ़ाईद्वीप में निश्चय–व्यवहार धर्म साधना सहित वीतरागी तपस्या द्वारा सल्लेखना सहित चार भवों वाली निकट भव्यता पाता है ।

179— भवघट से तिरने वाला तीन धर्म ध्यानों का स्वामी पंचमगति इच्छुक पंच परमेष्ठी आराधन और वीतरागी तप करता मोक्ष पाता है ।

180— भवघट तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी तीसरे शुक्लध्यान तक का स्वामित्व रत्नत्रय के सहारे प्राप्त कर सकता है।

181— चतुराधक सल्लेखी समाधिमरण में लीन रहने वाला वीतरागी तपस्वी है ।

182— संघाचार्य चतुराधक है ।

183— चातुर्मास करता निकट भव्य साधक पंचाचारी तपस्वी है जो स्वसंयम से इच्छा निरोधक है ।

184— संघस्थ निकट भव्य ने दूसरे धर्म ध्यानी वातावरण से उठकर ऐलक/आर्यिका दीक्षा ली और अरहंत पद की भावना भाते निश्चय व्यवहारी धर्म पालते वीतरागी तपस्या की ।

185— पंचमगति का इच्छुक आत्मस्थ वीतरागी तपस्वी छत्रधारी राजा चारों कषायों को त्याग करने वाला जंबूद्वीप में आत्मस्थता द्वारा तीसरे शुक्लध्यान का ध्यानी बना ।

186— छत्रधारी राजा ने ऐलक की तरह दीक्षा लेकर द्वादश अनुप्रेक्षा से उन्नति कर निश्चय व्यवहारी धर्म की शरण में दिगंबर चतुर्विध संघाचार्य की शरण पाई ।

187— चतुर्गति भ्रमण और अष्ट कर्मों की बाधा टालने के लिए दूसरे शुक्लध्यान की आवश्यकता होती है जो भवघट से तिराते हैं ।

188— अस्पष्ट।

189— ऐलक/ आर्यिका पंचम गति साधने गुणस्थानोन्नति तत्पर हैं ।

190— अदम्य पुरुषार्थी छत्रधारी ने सल्लेखना धारण कर महाव्रत की पिच्छी को राजा छत्र रूप स्वीकारा और चतुर्गति भ्रमण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाशने गुणस्थानों में गति करता पुरुषार्थी बन पंच परमेष्ठी आराधना की शरण ली ।

191— भवघट से तिरने रत्नत्रय और चतुराधन पालते लोकपूरणी समुद्घात को करते हुए सिद्धत्व हेतु तीसरा शुक्लध्यान पाने वाले साधक ने चारों अनुयोगों का ज्ञान पाया।

192— स्वसंयमी ने ढाईद्वीप में आत्मस्थता से रत्नत्रय धारा ।

193— दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने वीतरागी तपस्या की और छत्रधारी राजा से ऐलक और फिर समताधारी तपस्वी बनकर स्वसंयम से इच्छा निरोध किया ।

194— खंडित।

195— मांगीतुंगी/उदयगिरि, खण्डगिरि (युगल शिखरों) पर रत्नत्रय धारणकर मोक्षार्थी साधक वीतरागी तपस्या लीन होते हैं

196— सम्यक्त्वी स्वसंयमी, ने भवघट में रत्नत्रय पालने के लिए चारों कषायों को त्यागकर श्री अरहंत की शरण ली ।

197— चंचल मन के असंयमी पंचम गति भावी छत्रधारी राजा ने एकदेश स्वसंयमी बनकर आरंभी गृहस्थ का त्याग किया और तीन धर्म ध्यानों का स्वामी बनकर जंबूद्वीप में रत्नत्रय धारने हेतु चारों कषायें त्यागी । मन को स्थिर करते हुए वह निश्चय–व्यवहार धर्म में लीन हुआ ।

198— निकट भव्य ने सल्लेखना धारणकर षट् द्रव्य चिंतन करके रत्नत्रय धारा ।

199— चार घातिया कर्मों का नाश करके भवचक्र से पार होने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने सचेलक तपस्या धारकर चारों कषायों को त्यागा।

200— स्वसंयम बढ़ाते हुए ही वीतरागी तपस्या चलती है ।

201— दूसरे शुक्लध्यान की भूमिका रत्नत्रयी जीवन के वातावरण और वीतरागी तपस्या से सधती है ।

202— षट् आवश्यक सजग साधक शिखर तीर्थ पर जाकर दो धर्म ध्यानों का स्वामी होकर भी सल्लेखना करने हेतु अनुकूल वातावरण पा लेता है ।

203— पंचाचारी तपस्वी ने अरहंत पद की प्राप्ति हेतु "निश्चय–व्यवहार धर्मी चतुर्विध संघाचार्य की शरण ली ।

204— ढ़ाईद्वीप में जीव स्वसंयमी बनकर अष्टापद की तरह कभी हार न मानते हुए पंचम गति हेतु/गुणस्थानोन्नति करते हैं ।

205— रत्नत्रयी जंबूद्वीप में निकट भव्य पंचाचारी बनकर तपस्या करते लीन होते हैं और पुरुषार्थ बढ़ाकर वीतराग तपस्यारत होते हैं ।

206— रत्नत्रयी चतुराधन से ही तीर्थंकर प्रकृति बंधती है ।

207— केवली जिन आत्मस्थ होकर वीतरागी तपस्या करते हैं । वे पंचाचार पालते हुए तपस्वी को तप दर्शाते निकट भव्यत्व और वीतरागी तपस्या का पथ प्रशस्त कराते हैं ।

208— वीतरागी तपस्या भवचक्र से पार कराने वाली दो धर्म ध्यानों के स्वामित्व की स्थिति से प्रारंभ होकर आत्मस्थ तपस्वी को आरंभी गृहस्थ की भूमिका से तीन धर्म ध्यानों और स्वसंयम के इच्छा निरोध में स्थापित कराती है।

209— इह भवतारी पंचमगति ।

210— अस्पष्ट।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

211– रत्नत्रयी जंबूद्वीप में दूसरे शुक्लध्यान तक की प्राप्ति तपस्वी को चारों कषायों के त्यागने पर प्राप्त होती है ।

212– घातिया चतुष्क का क्षय भवचक्र से पार होने के लिए दो शुक्लध्यानों की आवश्यकता होती है । जो साधक/तपस्वी को चारों कषायों को दूर करने पर ही प्राप्त होते हैं।

213– आरंभी गृहस्थ तीन धर्म ध्यानों का स्वामी अरहंत और सिद्ध की भक्ति करता अपने वातावरण में गुणस्थानोन्नति करते हुए वैराग्य धारण कर (वीतरागी) तप में लीन होता है ।

214– सप्त तत्त्वों का चिंतक पंचम गति हेतु वीतरागी तपस्या धारण करता है ।

215– पंच परमेष्ठी की आराधना और चतुराधन ही सार है ।

216– रत्नत्रयी जंबूद्वीप में अरहंत सिद्ध (व्यवहार–निश्चयधर्म) का जाप और चतुराधन दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति का कारण होते हैं । तिस पर वीतरागी तपस्या ही इष्ट है ।

217– निश्चय व्यवहारी वीतरागी तपस्वी कीर्तिवान युगल बंधु निश्चय–व्यवहार धर्मी (कुलभूषण–देशभूषण) थे ।

218– अस्पष्ट।

219– कुत्ते ने रत्नत्रयी निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण ली, और युगल बंधु तपस्वियों की तरह आत्मस्थता और पुरुषार्थ से क्रमोन्नति करके अरहंत पद प्राप्ति हेतु वीतरागी तपस्या की ।

220– (अ) निकट भव्य सल्लेखना द्वारा अष्टकर्मों जन्य चतुर्गति का नाश करने वीतरागी तपस्या करता है ।

(ब) अष्ट कर्मो से जन्य चतुर्गति भ्रमण का नाश करने जिनशासन के जिनलिंगियों की शरण में जाता है ।

(स) रत्नत्रय।

221– रत्नत्रयी जंबुद्वीप में छत्रधारी राजा सचेलक रत्नत्रयी तपस्वी बनकर उत्तरोत्तर पुरुषार्थ उठाते वीतरागी तप करते हैं।

222– चतुर्गति भ्रमण नाशने सल्लेखी ने जिनदेव जैसी तपस्वी की आत्मस्थता धारण करके नदी के तट पर वीतरागी तपस्या की ।

223– अस्पष्ट।

224– भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने रत्नत्रय धारी ऐलकत्व स्वीकार कर तपस्या की और युगल बंधुओं जैसा स्वसंयम से इच्छा निरोध करके वातावरण को निश्चय–व्यवहार धर्ममय बनाकर वीतरागी तप किया ।

225– समवशरण में दूसरे धर्मध्यान के स्वामी जीव को भी वैयावृत्ति गुणस्थानोन्नति कराती है ।

226– सम्यक्त्व की साधना चारों कषायें त्यागने पर ही होती है।

227– रत्नत्रयी जंबूद्वीप में दो धर्म ध्यानों वाले भी तपस्या तत्पर जीव ऐलक अथवा आर्यिका बनकर द्वादश अनुप्रेक्षा भाते वीतरागी तपस्या में प्रगति करते हैं ।

228– (अ) संघवृक्ष की छांव में तीन धर्म ध्यानी जीव भी पक्षी जैसा ग्ग सचेलक, योग्य पुण्य तपस्या द्वारा पा सकते हैं ।

(ब) अंतहीन भटकान से छुटकारा अरहंत प्रभु ने षट् आवश्यक करते हुए अर्धचक्री पद से सल्लेखना पुरुषार्थ दो धर्म ध्यानों व्दारा किया ।

(स) रत्नत्रय।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

229— चार धर्म ध्यानों को ध्याने वाला छत्रधारी राजा भी तपस्वी बनकर स्वसंयमी बना ।

230— चतुराधक तपस्वी ने कैवल्य की प्राप्ति दो शुक्ल ध्यानों सहित की थी ।

231— रत्नत्रयी जंबूद्वीप में निकट भव्य पंचाचारी तपस्या लीन होकर सिद्धत्व के लिए निश्चय--व्यवहार धर्म पालकर पंचम गति की साधना हेतु वीतरागी तपस्या करते हैं ।

232— जंबूद्वीप में आत्मस्थता पाने छत्रधारी राजा तपस्वी बनकर मन पर संयम योग्य वातावरण बनाता है ।

233— मुनि एवं आर्यिकाओं की गुणस्थानोन्नति स्वसीमाओं में संयमित होकर (पुरुषार्थ सहित) चारों कषायों को त्यागकर अणुव्रती ने प्रारंभ की जिसे वीतरागी तपस्वी बनकर तप में प्रखर किया ।

234— आरंभी गृहस्थ ने रत्नत्रय धारकर दो धर्म ध्यानों के स्वामित्व से छत्रधारी राजा की तरह चारों कषायों को त्यागकर तपस्या की ।

235— (अ) दो धर्म ध्यानी पक्षी ने चारों कषायें त्यागी ।

(ब) तपस्वी ने तपस्या के द्वारा केवली समुद्घात किया ।

236— सिद्धत्व पाने चतुराधक ने निकट भव्य के रूप में निश्चय—व्यवहार धर्म सहित वैराग्य तपस्या रूप धारा ।

237— भवघट से तिरने आरंभी गृहस्थ ने दो धर्म ध्यानों के स्वामित्व से उठकर केवलत्व हेतु सल्लेखी बनकर चतुराधन के अदम्य पुरुषार्थ द्वारा वीतरागी तप किया ।

238— लोकपूरणी समुद्घात करने वाला तपस्वी दो धर्म ध्यानी छत्रधारी राजा था जिसने अदम्य पुरुषार्थ द्वारा रत्नत्रयी साधना से वीतरागी तपस्या की ।

239— छत्रधारी राजा ने चतुर्विध संघाचार्य की शरण ली ।

240— चार धर्म ध्यानों का स्वामी, वीतरागी मुनि, नवदेवता एवं नवग्रह आराधक था ।

241— चतुराधक सल्लेखी अर्धचक्री था जिसने चार आराधनाओं को आराधा ।

242— वैयावृत्ति व्दारा गुणस्थानोन्नति करता पंचम गति का साधक चार अनुयोगी निश्चय—व्यवहार धर्मी था ।

243— चतुर्गति भ्रमण से मुक्ति पाने आत्मस्थ तपस्वी सल्लेखना धारणकर वीतराग तप धर्मी होते हैं ।

244— निकट भव्य गुणस्थानोन्नति करते हैं ।

245— अपूर्ण एवं खण्डित।

246— रत्नत्रयी महाव्रती कैवल्य पाने वाले सललेखी संघ में ढ़ाईद्वीप में आत्मस्थता रखते, दूसरे शुक्लध्यान के स्वामी बनकर वीतरागी तपस्या करते हैं ।

247— चतुर्गति भ्रमण नाशने को सल्लेखी ने युगल तपस्वियों (कुलभूषण—देशभूषण) जैसा पंचाचारी तपश्चरण किया ।

248— चतुराधक निकट भव्य वीतरागी तपस्वी है ।

249— अदम्य पुरुषार्थ से चार धर्म ध्यान मुनि रत्नत्रयी कीर्ति पाते हैं ।

250— तीर्थंकर बनने वाले को मन की निर्विकल्पता दूसरे और तीसरे शुक्लध्यान और अष्ट गुण वैभव की ओर ले जाते हैं।

251— भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों की भूमिका से आरंभी गृहस्थ तीन धर्म ध्यानों की भूमिका में पहुंचने हेतु स्वसंयम से इच्छा निरोध स्वीकारता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

252— अस्पष्ट ।

253— वीतरागी तपस्या उत्तरोत्तर बढ़ते हुए निश्चय–व्यवहार धर्म के साथ रत्नत्रय का संपूर्ण पालन करने से वीतरागत्व और तपस्या को बढ़ाती है।

254— पंच परमेष्ठियों का आराधन और पुरुषार्थ तथा वीतरागी तपस्या ही तपस्वी मुनि करते हैं ।

255— भवघट से तिरने दूसरे शुक्लध्यान का स्वामी लोकपूरन करता समाधिस्थ होकर (जिस प्रकार कुलभूषण–देशभूषण बंधुओं ने की थी) वीतरागी तपस्या तपता है ।

256— भवघट से तिरने और दूसरे शुक्लध्यान के स्वामित्व द्वारा अरहंत पद की प्राप्ति आर्यिकाओं एवं सचेलकों द्वारा क्रमशः चौथी प्रतिमा संयम से ऊपर उठने पर भवोन्नति से ही होती है ।

257— चतुर्गति भ्रमण को रोककर सिद्धत्व पाने हेतु साधना दूसरे धर्म ध्यान की प्राप्ति और निश्चय–व्यवहार धर्म की साधना सहित चतुर्विध संघ में चौथी प्रतिमा का व्रत धारण और वीतराग तपस्या करने से संभव होती है ।

258— पुरुषार्थी सल्लेखी चतुराधक, वीतरागी जिनधर्मी तपस्या को सर्प के रूप में भी साधना से प्रारंभ कर लेता है ।

260— निश्चय–व्यवहार धर्म का वातावरण तपस्वी और आर्यिका अथवा ऐलक को तीन धर्म ध्यानों से जम्बूद्वीप में संघस्थ हो क्रमशः पूर्ण वैराग्य पालते हुए होता है ।

261— चारों कषायों का त्याग ही भवचक्र से पार होने और दूसरे शुक्लध्यान को पाने की भूमिका बनाता है ।

262— भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों का स्वामी पुरुषार्थ उठाते, सप्त तत्त्व चिंतन करता वीतराग तपस्या करता है ।

263— जंबूद्वीप में रत्नत्रय पालन वीतराग तप और पंचम गति का उद्यम रत्नत्रय तप वैराग्य बढ़ाने से ही संभव होता है ।

266— आरंभी गृहस्थ ने लोकपूरणी सल्लेखना की भावना मुनिव्रत धारण करके करने की भाई किंतु उसके चरणों में संसारी बेड़ियां थीं ।

267— सिद्धत्व प्राप्ति हेतु पुरुषार्थी जम्बूद्वीप में रत्नत्रयी साधनारत अरहंत देव भी अष्ट मूलगुणों और रत्नत्रय की साधना करते हैं ।

268— भवचक्र से पार होने दो धर्मध्यानों के स्वामी को अंतहीन गठान से छूटने (बाहर निकलने) के लिए गुणस्थानोन्नति वाली वीतरागी तपस्या करना आवश्यक है ।

270— ढ़ाईद्वीप में ही रत्नत्रय पलता है ।

271— भवचक्र से पार होने के लिए अर्धचक्री ने रत्नत्रयी पुरुषार्थ करके छत्रधारी राजा से तपस्वी बनकर सचेलक अवस्था से षट् आवश्यक पूरे करते हुए वीतरागी तपस्या की ।

272— रत्नत्रयी वातावरण में सचेलक तपस्वी भी रत्नत्रय पालन करता उत्तम दशधर्म का पालन करते हुए निश्चय–व्यवहार धर्म को सही–सही आचरता है और वातावरण अपने अनुकूल बनाता है ।

273— निकट भव्य, पुरुषार्थी सल्लेखना और चतुराधन करते हुए तपस्वी बनकर आरंभी गृहस्थ अवस्था को त्यागकर तीन धर्म ध्यानों सहित उठते हुए भव्य बनते और गुणस्थानोन्नति करते हैं ।

274— पंचपरमेष्ठी आराधना करते हैं ।

275— छत्रधारी राजा ऐलक बनकर आरंभी गृहस्थ की भूमिका से उठ तीन धर्म ध्यानी संयमी बन इच्छा निरोध करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

276– भवघट से तिरने, दो धर्मध्यानों के स्वामी अर्धचक्री ने वीतरागी श्रमणत्व स्वीकारा ।

277– गृह/संघ से ही चतुराधन और वीतराग तपस्या प्रारंभ होते हैं ।

278– पंचमगति पाने के लिए जम्बूद्वीप में आत्मस्थ होकर दूसरे शुक्लध्यान का स्वामी बनने की स्थिति तक घातिया कर्मों के नाशने का पुरुषार्थ उत्तरोत्तर बढ़ाना पड़ता है और वीतरागी तपस्या तपना पड़ती है ।

279– (अ) कीर्तिवान मुनि का रत्नत्रय पालन ।

(ब) भवघट के कृषक का बालक को गोद में लिए भैंसे पर नियंत्रण/वार ।

280– पंचमगति की साधना हेतु संघस्थ होकर वीतरागी तपस्या करते हुए आत्मस्थ होकर सचेलक को भी स्वसंयम से इच्छा निरोधक बनाया।

281– भव केन्द्रण हेतु दो धर्मध्यानों का स्वामी सचेलक रत्नत्रयी वीतरागी तपस्या करते हुए निकट भव्य बनता और गुणस्थानोन्नति करता है ।

282– निकट भव्य चतुराधन करके तपस्वी बनता और वीतरागी तपस्या करता है ।

283– भवचक्र को पार करने वाले उर्ध्वगामी केवली जिन दूसरे शुक्लध्यान के स्वामी होते हैं जो अणुव्रती स्थिति से उठते हुए षट् द्रव्यों के गुणों (और उनकी शाश्तता) का चिंतन करते हुए वीतरागी तप करते हैं ।

284– आरंभी गृहस्थ की स्थिति से तद्‌भवी मोक्ष पाने भव्य जीव निश्चय–व्यवहार धर्म की साधना करता संपूर्ण भव को निश्चय व्यवहारमय बना लेता है और बार–बार पुरुषार्थ उठाते हुए वीतरागी तप करता है ।

285– चार दुर्ध्यानों को त्यागने वाला अणुव्रती तपस्वी दो धर्म ध्यानों की स्थिति से उठकर दूसरे शुक्लध्यान तक पहुंचने के लिए तपस्या करता साधक बन जाता है और कायोत्सर्गी बनकर वीतरागी तपस्या तपता है ।

286– वीतरागी तपस्वी आत्मस्थता से भवचक्र पार करके सिद्ध बनने हेतु सल्लेखना धारण करता और कैवल्य प्राप्ति तक चतुर्विध संघाचार्य की शरण में निश्चय–व्यवहार धर्म पालन करता है ।

287– खंडित है।

288– भवघट से तिरने दो धर्मध्यानी भी सल्लेखना धारण कर चतुराधन करके त्रिगुप्ति रखता और वीतरागी तपस्या लीन होता है ।

289– भवघट से घातिया चतुष्क नाश करने हेतु निश्चय–व्यवहार धर्मतुला की शरण में पंच परमेष्ठी आराधना ही गुणस्थानोन्नति कराती है ।

290– भवघट से तिरने दो शुभध्यानी (धर्मध्यानी) भी तद्‌भवी मोक्षार्थी बनकर शिखर तीर्थ पर अदम्य पुरुषार्थ बढ़ाते हुए कैवल्य प्राप्त कर वातावरण में वीतरागी तपस्या तपते हैं ।

291– तपस्वी चतुराधक सल्लेखना से अपनी वीतरागी तपस्या को पूर्णता देते हैं ।

292– स्वसंयमी वीतरागी तपस्या हेतु अणुव्रत धारणकर छह बाह्य और छह अंतरंग तप तपते हैं ।

293– सल्लेखी निश्चय–व्यवहार धर्मी चतुर्विध संघाचार्य की शरण में है ।

294– तद्‌भवी मोक्षार्थी पन्द्रह योगों का निग्रही वीतरागी तपस्वी है ।

295– चारों कषायों को त्यागते, पुरुषार्थमय चार गुणों की उन्नति कर, वीतरागी तपस्वी रत्नत्रय धारण और चतुराधन से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अष्ट कर्मजन्य चतुर्गति के नाशने हेतु साधना करता है।

296— जिनशासन के जिनलिंगी अदम्य पुरुषार्थी और रत्नत्रयी होते हैं ।

297— तीर्थंकर प्रकृति के अदम्य पुरुषार्थ के लिए गुणस्थानोन्नति और दूसरे शुक्लध्यान के स्वामित्व के साथ–साथ रत्नत्रयी जम्बूद्वीप में साधना करने वाला सचेलक स्वसंयमी था जिसने सिद्धत्व के लिए तीन धर्म ध्यानों की भूमिका से साधना प्रारंभ की ।

298— पुरुषार्थी सल्लेखी वीतरागी साधना सप्त तत्त्व का चिंतन और रत्नत्रय पालन द्वारा करता है ।

299— सल्लेखना पुरुषार्थ ।

300— संघ की शरण में रत्नत्रय धारण करके आत्मस्थ हो वीतरागी ने पुरुषार्थ बार–बार बढ़ाकर वातावरण उन्नत किया ।

301— पंचमगति के युगल साधकों ने (कुलभूषण देशभूषण) निकट भव्यत्व की साधना तीन धर्म ध्यानों के साथ वीतरागी तपस्वी बन, सिद्धत्व हेतु चार शुक्ल ध्यानों वाला पुरुषार्थी बनने रत्नत्रयी तपस्या की ।

302— भवचक्र से पार होने दो "धर्म ध्यानों" के स्वामी ने रत्नत्रय भव साधना करते हुए तीसरे शुक्लध्यान तक का पुरुषार्थ उठाकर वीतरागी तपस्या की ।

303— स्वयसंयमी ने संघ के पादमूल में सल्लेखना ली ।

304— भवघट से पार उतरने तीर्थंकर प्रकृतिवान ने अणुव्रती बन निश्चय–व्यवहार धर्म की तपमूलक चार अनुयोगी वीतरागी धर्म की शरण ली ।

305— कुत्ते ने भी रत्नत्रयी जिनशासन की शरण ली जिससे भवान्तर में रत्नत्रयी तपस्या करते तीन धर्म ध्यानी स्थिति से वीतरागी तपस्यारत चार अनुयोगी चतुर्विध संघाचार्य की शरण में जाने पर (तिर्यंच होकर भी) साधना पथ पकड़ा ।

306— चारों घातिया कर्मों को नष्ट करने के लिए रत्नत्रय की साधना हेतु अणुव्रती सचेलक की तरह तप मार्ग चुनकर (चौथे गुणस्थान) से वीतरागी तपस्या की. और निकट भव्य बनकर रत्नत्रयी साधना की ।

307— भवचक्र से पार होने दो "धर्म ध्यानों" के स्वामी निकट भव्य आरंभी गृहस्थ ने तीन धर्म ध्यान प्राप्त करके सचेलक (ऐलक) आर्यिका बनकर तपस्या की और चारों कषाये त्यागकर छत्रधारी जैसी तपस्या की ।

308— जिन सिंहासन के आश्रित जिनलिंगी अदम्य पुरुषार्थी वीतरागी तपस्या करते हैं ।

309— इस अवसर्पिणी कालार्ध में तपस्वी रत्नत्रयधारी, वीतरागी तप धारते हैं ।

310— अरहंत "जिन" चारों कषायें त्याग कर ही पंचम गति प्राप्त करते हैं ।

311— चतुर्गति भ्रमण के नाशने को सल्लेखी "निकट भव्य" युगल बंधु तपस्वी जैसे हैं ।

312— गृहस्थ भी निकट भव्यता से अनुकूल वातावरण संघाचार्य की शरण में रत्नत्रय पालकर वीतरागी तपस्या करते हैं ।

313— सल्लेखना द्वारा कुत्ते ने भी निश्चय–व्यवहारी आत्म धर्म पाया ।

314— अदम्य पुरुषार्थी सल्लेखी वीतरागी तप द्वारा दो शुक्लध्यान पा जाते हैं ।

315— तपस्वी चतुराधक वीतरागी तप करते हैं ।

316— मंचाचारी पुरुषार्थी सल्लेखना द्वारा दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति कषायें त्याग करते हुए तपस्या द्वारा पाता है ।

317— चतुराधन करता रत्नत्रयी तपस्वी वीतरागी तपस्वी है जिसने गुणस्थानोन्नति हेतु पूर्व के उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालार्धों में सल्लेखना करके निकट भव्यता पाई और छह अंतरंग तथा छह बहिरंग तप तपे ।

318– तपस्वी जंबूद्वीप में ऐसा चार अनुयोगी वीतरागी तपी है जिसने घातिया कर्मों के ज्ञानावरण दर्शनावरण नाशने का संकल्प किया है ।

319– चारों शुक्लध्यानों के स्वामी को समवशरण में सुनने, दूसरे धर्मध्यान स्वामी श्रावक, निकट भव्य और चतुराधक गए।

320– उल्टा अमांगलिक स्वस्तिक।

321– वीतरागी तपस्वी संघाचार्य की शरण में केवली श्रद्धानी रत्नत्रयी तपस्वी है ।

322– रत्नत्रय की उत्तरोत्तर बढ़ती साधना को वीतरागी तपस्वी चतुर्विध संघाचार्य निश्चय व्यवहारमय जीवन में उतारते हैं

323– भवघट से तिरने वाले मन वचन काय नियंत्रक वे अरहंत परमेष्ठी (तीर्थंकर) तपस्वी द्रव्यलिंगी पुरुष तपस्वी ही थे ।

324– रत्नत्रयी जंबूद्वीप में छत्रधारी राजा (छत्री भी तपस्वी होता है) और स्वसंयम से इच्छा निरोध करता है ।

325– चार प्रतिमा धारी,, आरंभी गृहस्थ, उपशमी महाव्रतधारी आदि मन को स्थिर करके दो धर्म ध्यानों से ही रत्नत्रयी जम्बूद्वीप में छत्रधारी तपस्वी संघाचार्य के चरणों में पहुंचे और चतुराधन करते सल्लेखनारत हुए ।

326– भवचक्र से पार उतरने सल्लेखी छत्रधारी (छत्री) राजा रत्नत्रयी तपस्वी बन गया और उत्तरोत्तर पुरुषार्थ उठाकर उसने वीतरागी तपस्या की ।

327– अस्पष्ट ।

328– बनावटी दिखता है/अस्पष्ट है ।

329/330–अधूरा अस्पष्ट।

331– आरंभी गृहस्थ स्वसीमित शाकाहार के साथ सल्लेखना वैयावृत्ति भी भाता है ।

332– घातिया कर्मों से मुक्ति चाहता (साधक) भवघट से तिरने के लिए दो धर्म ध्यानों के स्वामित्व से उठकर पुरुषार्थ द्वारा दूसरे शुक्लध्यान को पा लेता है ।

333– (केवलज्ञान प्राप्ति तक गुणस्थानोन्नति करते) तीर्थंकर प्रकृति वाले ने दो धर्म ध्यानों के स्वामित्व की भूमिका (चतुर्थ गुणस्थान) से आत्मस्थ हो तपस्या की और संघ के शीर्ष चतुराधक, वीतरागी तपस्वी बने ।

334– जिनशासन में इस अवसर्पिणी में आर्यिका/ऐलक (सचेलक) अपने षट् आवश्यक करते हुए ही अपने व्रत पालते हैं।

335– भवचक्र से पार उतरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी आत्मस्थ निकट भव्य चतुराधन करते दोनों युगल बंधुओं (कुलभूषण देशभूषण) की तरह पंचम गति प्राप्त करने हेतु रत्नत्रय सहित वीतरागी तपस्या तपते हैं।

336– द्वादश अनुप्रेक्षा चिंतन करते हुए ढाईद्वीप के आत्मस्थ व्यक्ति चतुराधन करते हुए निकट भव्य बनकर बाधा आने पर भी अपनी गुणस्थानोन्नति ही करते हैं ।

337– अदम्य पुरुषार्थ सहित सल्लेखी वीतरागी तपस्या में आत्मस्थ होकर रत्नत्रयी वातावरण का क्षेत्र सीमित सुरक्षित रखते हैं और जंबूद्वीप में वीतरागी तप तपते हैं ।

338– भवघट से पार उतरने दो धर्म ध्यानो के स्वामी रत्नत्रयी तपस्यारत होकर पंचाचार पालते और सचेलक (आर्यिका–ऐलक) होकर भी वीतरागी महाव्रती तपस्या करके भवान्तर में कीर्तिवान मुनि बनते हैं ।

339– (अ) निकट भव्य सल्लेखी चारों गतियों (अष्ट कर्मों) के नाशन हेतु वीतरागी तपस्या करते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(ब) जिन सिंहासन के लिंगी पिच्छीधारी चारों गतियों को नष्ट करने में तत्पर रहते हैं।

340— चतुर्गति और अष्टकर्मों के नाशन हेतु रत्नत्रय को पालने के लिए दो धर्म ध्यानों का स्वामी निकट भव्य होता है जो तपस्या द्वारा दो शुक्लध्यानों की प्राप्ति हेतु चारों कषायों का त्याग करके तपस्या करता हैं ।

341— तीर्थकर प्रकृति को बांधने वाला षट् द्रव्य चिंतक श्रावक संघ में अपने आवश्यक पालते हुए निश्चय–व्यवहार धर्म को ध्याता वीतरागी तपस्या करता है ।

342— अणुव्रती भी चार अनुयोगी चतुर्विध संघाचार्य की शरण में तपस्या करता है ।

343— सल्लेखी पुरुषार्थी चार अनुयोगी,, निश्चय व्यवहारी, चतुर्विध संघी, दिगंबराचार्य, वीतरागी तपस्वी है ।

344— पुरुषार्थी वीतराग तपस्या हेतु आत्मस्थ हो छत्रधारी,, तपस्या इच्छुक सचेलक आर्यिका/ऐलक निश्चय–व्यवहारी संघाचार्य की शरण में जाना चाहते हैं ।

345— आर्यिका हो अथवा मुनि श्रमण, अणुव्रती वैराग्य लीन सभी तीसरे शुक्लध्यान की कामना करके नवदेवताओं की भक्ति में लीन होते हैं ।

346— तीन धर्म ध्यानों का स्वामी निकट भव्य छह अंतरंग और छह बाह्य तप षट् आवश्यकों के साथ करता हैं ।

347— देवता भी तीर्थकरत्व के लिए तरसते हैं और दो धर्मध्यानों के साथ षट् द्रव्य में श्रद्धान रखते हैं अथवा कैवल्य और तीर्थकरत्व के लिए दो धर्म ध्यानों का स्वामी षट् द्रव्य चिंतन और षट् आवश्यक करता है ।

348— पंचाचारी पुरुषार्थ से सल्लेखना तत्पर सचेलक तपस्वी हैं, जो ऐलक अथवा आर्यिका बनकर भी तप करते हैं । तथा रत्नत्रय और दशधर्म पालन का वातावरण बनाते हैं ।

349— भवचक्र से पार होने और सिद्धत्व पाने को अंतहीन भटकान तथा चार गतियों से बाहर निकलना आवश्यक है ।

350— वीतरागी तपस्या के लिए तीन (मन वचन काय की) समतायें और सल्लेखना तत्परता सहित द्वादश भावना तथा द्वादश तप तपे जाते हैं ।

351— वे पंचाचारी आराधक स्वयं तीर्थ हैं जो पंच परमेष्ठी का ही ध्यान करते हैं ।

352— चतुर्गति, भवघट, वीतराग आत्मस्थता, रत्नत्रय, तप, केवलत्व, पंचमगति साधना ही क्रम है।

353— स्वसंयमी,, आरंभी गृहस्थ की स्थिति से पंचमगति की भावना घर में भाते हैं ।

354— भवघट से पार होने दो धर्म ध्यानों की भूमिका से ही उठकर तीन धर्मध्यानों की भूमिका बनाने पर रत्नत्रय पलता है

355— पंचमगति को लक्ष्य में रखने वाला अदम्य पुरुषार्थी वैराग्य वीतरागता आने पर आत्मस्थ होकर पुरुषार्थ बढ़ाते हुए सप्त तत्त्व चिंतन करता हुआ अपनी तपस्या उन्नत करता है ।

356— निकट भव्यत्व भवघट से तिरा देता है ।

357— भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी चार धर्म ध्यानी बनकर (सप्तम गुणस्थानी) चतुराधन करता है ।

358— चारो कषायों को त्यागने वाला पुरुषार्थी अनंत चतुष्टय की भावना रखता वीतरागी तपस्या तपता है ।

359— अर्धचक्री, स्वसंयमी चतुराधन द्वारा दो धर्म ध्यानों के स्वामित्व से रत्नत्रयधारी तपस्वी बनकर वीतरागी तप करता है ।

360— उपशमी तपस्वी वीतरागी तपस्या करता है ।

361— सिद्धत्व के लिए अष्टापद जैसी लगन और रत्नत्रयी प्रयास, पंचाचारी पुरुषार्थी द्वारा पक्षी को भी पुरुषार्थ का लाभ दिलाते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

363— छत्रधारी भी केवली की शरण में सल्लेखना स्वीकारने निकट भव्यता प्राप्त करते हैं ।

364— तीन सूनी गृहस्थ को भी छत्र (सुरक्षा) दिलाने वाली एकमात्र वीतरागी तपस्या ही होती है ।

365— पक्षी की तरह चतुर्गति में देवत्व पाते हुए गुणस्थानोन्नतिरत स्वात्मस्थित संयमी वीतरागी तपस्वी तपस्या से इच्छा निरोध करता हुआ सम्यक्त्वी स्वसंयमी बनता है ।

366— (अ) निश्चय—व्यवहार धर्म पालने वाला पंचम गति उद्यमी तीन धर्मध्यानी तपस्वी है जिसने महाव्रत की पिच्छी सेने का संकल्प किया है और जो दो शुक्लध्यानों का स्वामी बनेगा।

(ब) तपस्वी पंचम गति का साधक तपस्वी है।

367— त्रिगुप्तिधारी दूसरे शुक्लध्यानी उद्यमी वे तपस्वी बंधु थे (कुलभूषण देशभूषण) जिन्होंने आरंभी गृहस्थ की भूमिका से दो धर्मध्यानों सहित घर छोड़ा था।

368— तीन धर्मध्यानों का स्वामी वह चार अनुयोगी निश्चय—व्यवहार धर्मी चतुर्विध धर्मसंघ है।

369— महामत्स्य की तरह उत्तम संहनन वाले जीव ने उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालार्ध में चार गतियों की भटकान से बचने के लिए वातावरण संकल्पी करने को समवशरण की शरण ली ।

370— रत्नत्रयी जम्बूद्वीप में अर्धचक्री ने पंच परमेष्ठी को ध्यान में रखते हुए रत्नत्रय की साधना की है ।

371— महाव्रती, चतुर्विधी निश्चय—वयवहार धर्मी श्रमण संघाचार्य के संघस्थ है ।

372— गुणस्थानोन्नति कराने वाला चार अनुयोगी, निश्चय—व्यवहारी कीर्तिवान "धर्म" है ।

373— एक अदम्य पुरुषार्थी ने समाधिमरण करने हेतु सल्लेखना ली और दो धर्म ध्यानों का स्वामी रहकर भी पंचाचार पालते हुए तपस्या करने हेतु स्वसंयम धारक बना ।

374— वीतरागी तप साधक तपस्वी ने दूसरे धर्मध्यान से साधना प्रारंभ की ।

375— कार्योत्सर्गी, वीतरागी तपस्वी है जिसने चतुर्विध संघाचार्य की शरण ली ।

376— अस्पष्ट।

377— पंचाचारी / निकट भव्य

378— लोकपूरणी आत्मस्थ तपस्वी समाधिमरण को चतुराधन से वीतरागी तपस्या द्वारा पंचमगति के लिए स्वसंयमी बनकर साधना करता है ।

379— सल्लेखी समाधिमरण में स्वसंयम रखता है ।

380— पंचाचारी, रत्नत्रयी वीतरागी तपाचारी है ।

381— पंच परमेष्ठी आराधक पुरुषार्थी वीतरागी तपाचारी है ।

382— पंच परमेष्ठी आराधक चार अनुयोगी चतुर्विध संघाचार्य की शरणागत है ।

383— पर्यायों की गिरान दर्शाता स्वस्तिक ।

384— निश्चय—व्यवहारी जम्बूद्वीप के वातावरण में सचेलक तपस्वी स्वसंयम धारण करता है ।

385— चतुर्गति भ्रमण के खण्डन हेतु एकदेश स्वसंयमी पंचाचारी बनता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

386– खंडित।

387– भवचक्र से पार उतरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी चार धर्म ध्यान धारकर पंचाचार करता है ।

388– भवघट में गुणस्थानोन्नति करते जीव ढ़ाईद्वीप में समता लाकर निश्चय–व्यवहार धर्म का पालन करते हैं ।

389– महाव्रती ने सल्लेखी चतुर्विध संघाचार्य की शरण ली ।

390– आर्यिका एवं मुनियों की गुणस्थानोन्नति स्वसंयमी अर्धचक्री के होते हुए भी संघाचार्य के समीप पुरुषार्थ से होती है ।

391– पंचमगति के लिए दो धर्म ध्यानों का स्वामी आरंभी गृहस्थ की भूमिका से उठकर तीन धर्म ध्यानों का स्वामी और स्वसंयमी बनता है ।

392– स्वसंयमी आरंभी गृहस्थ तीन धर्म ध्यानों का स्वामी चारों कषायों को त्यागकर आत्मस्थ होने के लिए मन को स्थिर करके वीतरागी तपस्या करता है ।

393– संसार में द्रव्यलिंगी पुरुष ही तीर्थंकर प्रकृति बांधते और आत्मस्थ होकर स्वसंयम धार पंचमगति हेतु संघाचार्य की शरण में व्यवहार धर्म का संयम स्वीकारते हैं।

394– अरहंत पद की प्राप्ति निश्चय–व्यवहार धर्म साधना से ही संभव है

395– पुरुषार्थ क्रमशः बढ़ाने वाले ही सल्लेखना धारकर तीन शुभ ध्यानों से सिद्ध प्रभु को ध्याते हैं और पदमासित जिन की शरण में तद्‌भवी मोक्ष बांधकर द्वादश तप तपकर पंचमगति पाते हैं ।

396– रत्नत्रय धारने वाले (जंबूद्वीप में) छत्रधारी राजा हों या सचेलक, गुणस्थानोन्नति करके सप्त तत्त्व का चिंतन करते वे अरहंत सिद्ध के निश्चय व्यवहार धर्म की शरण में वैराग्य तपस्या करते हैं ।

397– अरहंत की शरण में क्षयोपशमी जीव भवघट से तिरने वीतरागी तपस्या करते हैं ।

398– **(पं 1)** तीर्थंकर बनने के लिए आत्मस्थ अष्टापद की तरह न हार वाले बनकर भवघट से तिरने वाले को ढ़ाई द्वीप में चारों कषायों को त्यागकर आत्मस्थता रखना पड़ती है ।

(पं 2) अदम्य पुरुषार्थी सिद्धत्व के लिए छत्री (छत्रधारी राजा) हो या तपस्वी, स्वसंयम धारकर चारों गतियों को नाशने सल्लेखना धारण कर उपशम सहित वीतरागी तपस्या तपते हैं ।

399– निकट भव्य पुरुष ही गुणस्थानी सीढ़ियाँ चढ़कर तिरते हैं ।

400– निश्चय–व्यवहार धर्मी वीतरागी तपस्वी संघाचार्य ही अरहंत पद पाते हैं ।

401– बनावटी अंकन है।

402– अदम्य पुरुषार्थी ही सल्लेखना लेकर वीतरागी तपस्या पूर्ण करते हैं और (जंबूद्वीप पर) रत्नत्रयी प्रसिद्धि पाते तपस्वी बनकर पंचमगति की साधना करते हैं ।

403– भवघट से तिरने वाले दो धर्म ध्यानों के स्वामी सल्लेखना धारकर अणुव्रती से उठकर वीतरागी तपस्वी बनते हैं ।

404– सल्लेखनाधारी अंतहीन गठानों से पार होने बंधु द्वय जैसे पंच परमेष्ठी आराधना से आत्मस्थ हो पंचाचारी तप करते हैं

405– (अ) शुद्ध जीव निश्चय–व्यवहार धर्ममय होता है ।

(ब) पुरुषार्थी जीव वीतरागी तपी छत्रधारी होकर भी निरंतर पुरुषार्थ बढ़ाकर वीतराग तप करता है। जीव निश्चय–व्यवहार धर्मी होता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

406— ढ़ाईद्वीप में रत्नत्रय सेवी निकट भव्य सल्लेखना धारण करके छत्रधारी राजा होकर भी दो धर्मध्यानों से उठकर घातिया चतुष्क क्षय करके वीतरागी तपस्वी बने ।

407— शाकाहार स्वीकार करके आत्मस्थता प्राप्त दो धर्मध्यानी जीव भी रत्नत्रयधारी बन जम्बूद्वीप में शिखर तीर्थ पर निकट भव्यत्व पाकर वीतरागी तपस्या करते हैं ।

408— बनावटी है (तरतम्यता और अर्थ असम्बंधित हैं) अंकन होकर भी कला सैंधव नहीं है।

409— तपस्वी ने चार घातिया कर्म नाशने वीतरागी तपस्या की ।

410— छत्रधारी राजा हो या सचेलक तपस्वी त्रिगुप्ति धारण करके वीतरागी तपस्या तपते हैं ।

411— भवचक्र से पार होने सल्लेखी बन आरंभी गृहस्थ तीन धर्मध्यानी बनता और स्वसंयम धारता है।

412— खंडित है।

413— संसार की चतुर्गति से बचने तीन धर्म ध्यानी, चार सूनी गृहस्थ भी कछुवे की तरह पंचम गति का साधन बनाने पुरुषार्थमय उपाय करते हैं ।

414— सचेलक भी तपस्या करते हुए ग्यारह प्रतिमाऐं रत्नत्रय सहित धारते वीतरागी तपस्या करते हैं ।

415— संसार की चार गतियों से छूटने, पुरुषार्थ उठाते हुए दो शुभ ध्यानों का स्वामी पंचमगति हेतु रत्नत्रय धारकर रत्नत्रयी चतुराधक बन दूसरे शुक्ल ध्यान की प्राप्ति करता है ।

416— खण्डित।

417— निकट भव्य पुरुषार्थी, रत्नत्रय धारण हेतु अरहंत सिद्धमय वातावरण बनाकर सचेलक तपस्वी बनता है।

418— स्वसंयमी पुरुषार्थ उठाते हुए रत्नत्रय द्वारा आत्मस्थ वीतरागी तपस्वी की स्थिति से उठकर वातावरण बदलकर वीतरागी तपस्वी बनता है ।

419— भवघट से तिरने तीर्थंकर प्रकृति वाले ने सल्लेखना धारणकर, तपस्वी बनकर वीतरागी तप तपने हेतु मुनिपद धारा ।

420— केंकड़े और (हिरण के लांछन युक्त) पादपीठ पर आसीन दिगम्बर वीतरागी शांतिनाथ जिन ने रत्नत्रय शीर्ष साध योग धारा। उनके समीप वासुपूज्य के लांछन, विमलनाथ के लांछन, निकट एवं दूर भव्य तपस्वी, अजितनाथ के लांछन और श्रावक जन सब खड़े जिनवाणी सुनने आतुर थे । उन्हें लोग पशुपति नाथ समझते हैं।

उपासक वीतराग तप द्वारा 8 भवतारी भव्य 6 भवतारी बन जाते है।

421— सोलहकारण भावना भाने वाला तपस्वी निश्चय–व्यवहार धर्मी संघाचार्य है ।

422— पक्षी भी आत्मस्थ होकर तीर्थंकर की शरण पाकर चार घातिया नाश करने और कैवल्य पाकर भवचक्र को पार करने का पुण्य बांध सकते हैं।

423— छत्रधारी राजा ने निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण में स्वसंयम साधकर बारह भावना भाते हुए गृह त्यागा, तप धारा और तीन धर्मध्यानी की स्थिति में जपन करते हुए ध्यान करते गुणस्थानोन्नति की ।

424— भवघट से पार होने दो धर्म ध्यानों के स्वामी महामत्स्य संहननी ने सिद्धपद हेतु उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालार्धो में चारो गतियां (अष्ट कर्मजन्य) नाशने वीतरागी तपस्या की ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

425– अर्धचक्री का पुरुषार्थ ।

426– निश्चय–व्यवहार धर्म को ध्याते छत्रधारी और ऐलक अथवा आर्यिका ने आरंभी गृहस्थ की भूमिका से तीन धर्म ध्यानी बनकर चतुराधक सल्लेखना पूर्वक वीतरागी तप साधना की ।

427– अर्धचक्री के पुरुषार्थ से पंचम गति की साधना बारह भावना सहित भवचक्र से हर काल में "बंधु" तपस्वियों (कुलभूषण देशभूषण) को भवचक्र पार कराती और तीर्थंकर प्रकृति दिलाती है ।

428– जिनशासन के जिनलिंगी वीतरागी तपस्या द्वारा अरहंत पद के लिए मन वचन काय से आत्मस्थता का अदम्य पुरुषार्थी उद्यम करके निश्चय–व्यवहार धर्म से पंचमगति का साधन बनाते हैं ।

429– तीर्थंकर के श्रद्धानी महामत्स्य से संहननी भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी तपस्या लीन होकर निकट भव्य बनने रत्नत्रयी जिन तपस्वी बनकर वीतरागी तपस्या तपते हैं ।

431– काल के हर युगार्ध में दशधर्मों का पालन और बारह तपों का तपन साधक को इष्ट रहा है ।

432– रत्नत्रयी अरहंत प्रभादी (वातावरण) में साधना से दो धर्म ध्यानों के स्वामी को भी वैयावृत्ति दिला देती है, उसका रत्नत्रय संभाल देती है और चारों कषायों को दूर कराकर तपस्या की ओर मोड़ देती है ।

433– त्रिगुप्ति का संरक्षण गुणस्थानोन्नति का कारण बनता है ।

434– भ्रामक, बनावटी सील प्रतीत होती है ।

435– संसार से स्वयं को सुरक्षित करने का उपाय चारों कषायों का त्याग, शाकाहारी जीवन और स्वसंयम है ।

436– स्वसंयमी द्वारा को पुरुषार्थ की बार–बार जागृति और स्वसंयम की चेष्टा दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति तक (12 वे गुणस्थान के अंत तक) रखने पर भवघट से तिरने का लाभ मिलता है जैसा दूसरे धर्म ध्यान के स्वामी बंधुओं (कुलभूषण देशभूषण) को केवलत्व के लिए स्वसंयम से हुआ ।

437– दो धर्म ध्यानों से उठकर भवघट तिरने की यात्रा तपस्वी को दो शुक्लध्यानों तक आवश्यक है । (यह भी कला की दृष्टि से बनावटी लगती है)

438– भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी छत्रधारी राजा थे जो तपस्वी बनकर साधना लीन हुए ।

439– भवचक्र से पार उतरने त्रिगुप्ति का धारक तपस्वी सल्लेखना तत्पर रहता है और तीन धर्म ध्यान ध्याता है ।

440– पंचमगति के हेतु आरंभी गृहस्थ सल्लेखना और स्वसंयम तत्पर होते हैं ।

441– छत्रधारी राजा ने एकदेश स्वसंयम धारणकर तपस्या करके निकट भव्यता पाई ।

442– लोकपूरण करने वाला सल्लेखी आरंभी गृहस्थ था जिसने सल्लेखना केवलत्व और अरहंत पद हेतु की ।

443– सिद्धत्व और अरहंत पद हेतु आत्मस्थ वीतरागी तपस्वी ढाईद्वीप में रत्नत्रय पालते है ।

444– पंचाचारी ऐलक/आर्यिका निश्चय–व्यवहार धर्म पालन के साथ पंच पापों को त्यागते हैं ।

445– भवचक्र पार होने तपस्वी मुनि पंचम गति की साधना अरहंत पद हेतु जाप से करते हैं (ध्यान से)

446– गृही गुणोन्नति से भवघट तिरकर सिद्धत्व पा सकते हैं, लोकपूरन निकट भव्य को सम्यक्त्व से प्राप्त होता है, जैसे आरंभी गृहस्थ को तीन धर्मध्यान दूसरे शुक्लध्यान तक की स्थिति संघस्थ सप्त तत्व चिंतन, पंचमगति का साधन बन वीतरागी तपस्या से तप में सहायता करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

447– अरहंत सिद्ध भक्ति, भवचक्र से पार करने की दो धर्म ध्यानी माध्यम है जो दूसरे शुक्लध्यान तक केवली जिन को पंचाचार से प्राप्त होती है और रत्नत्रयी दिगंबर तपस्वी को वीतरागी तपस्या से ।

448– अरहंत सिद्ध भक्त सल्लेखनारत साधु ।

449– अर्धचक्री का पुरुषार्थ और रत्नत्रय से वातावरण को समाधिमरण के अनुकूल बनाकर वीतरागी तपस्वी तपलीन है ।

450– भवघट से पार उतरने दो धर्म ध्यानी डायनासरों (सरीसृपों) जैसे जीवों ने निश्चय--व्यवहार धर्म को अपनाया और वीतरागी तपस्या का पुरुषार्थ उठाया और उत्तरोत्तर उठाते गए ।

451– रत्नत्रय से निकट भव्य बर्र जैसी लगन से दो धर्म ध्यानों के स्वामित्व (चौथे गुणस्थान) से तीर्थंकर प्रकृति बांधने का पुरुषार्थ उठाते हैं और तपस्वी बनकर पुरुषार्थ से उठते हुए वीतरागी तपस्या करते हैं ।

452– दो धर्मध्यानों का स्वामी सल्लेखी दूसरे शुक्लध्यान तक की भूमिका एकदेश व्रती बनकर (ब्रह्मचर्य) से बांधता है ।

453– महाव्रत की पिच्छी और चतुराधन तपस्वी को ऋद्धिवान बनाते हैं भले वह वीतरागी तपस्वी तीर्थंकर प्रकृति बांध ले।

454– बाहुबलि का शार्दूलों से खेल ।

455– सल्लेखी हर कालार्ध में दो धर्म ध्यानों से उठकर वातावरण को पुरुषार्थ से तीर्थंकरत्व से जोड़ते हुए दूसरे शुक्लध्यान तक का बना सकता है यदि उसने दो धर्मध्यान तपस्या और व्रत प्रतिमाऐ धारण करके चतुर्गति नाशने कछुए जैसा सावधान बनकर वीतरागी तपस्या की ।

456– (अ) सल्लेखी बनता है।

(ब) दो धर्म ध्यानों का स्वामी त्रिलोक संस्थान का ध्यान करके (संस्थान विचय से जुड़कर) प्रतिमा संयम धारण करके वातावरण को दूसरे शुक्लध्यान का ध्येय रखकर चारों कषायों को त्यागकर तपस्या में लीन होता है, साधक है।

457– रत्नत्रयी तपस्वी पंचमगति प्राप्ति हेतु सप्त तत्त्व चिंतन करके वीतरागी तप तपते हुए पंच परमेष्ठी आराधन करता है

458– पुरुषार्थ और आत्मस्थता बढ़ाते जाना ही पुरुषार्थी का कार्य है ।

459– सल्लेखना का पुरुषार्थी आरंभी गृहस्थ वीतरागी तपस्वी बन सकता है और मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

460– जंबूद्वीप में सल्लेखी भवघट से तिरने चतुराधन "बंधु तपस्वियों" की भांति करता है ।

461– पंचमगति प्राप्त करने रत्नत्रय धारक चार अनुयोगी निश्चय--व्यवहार धर्म की शरण में दो धर्म ध्यानों का स्वामी शाकाहारी बनकर अणुव्रती बन, अष्टान्हिका व्रतों का पालन करता युगल बंधु तपस्वियों सी तप साधना करता है ।

462– खण्डित।

463– निश्चय--व्यवहार धर्म की शरणागत पुरुषार्थी रत्नत्रयी जंबूद्वीप में दो धर्म ध्यानों का स्वामी अरहंत सिद्ध आराधन करके वीतरागी तपस्या करते हैं ।

464– अरहंत पद हेतु रत्नत्रय की साधना जम्बूद्वीप में तीर्थंकरत्व दिलाती है ।

465– पंचमगति साधक सल्लेखना धार दो धर्म ध्यानी बनकर रत्नत्रयी वैयावृत्ति पाकर रत्नत्रयमय जम्बूद्वीप में रत्नत्रय सहित चतुराधन करते और पंचपरमेष्ठी आराधक होते हैं।

467– रत्नत्रयी तपस्वी का वातावरण दिगंबर मुनि के वैराग्य वाला होता है ।

468– भवघट तिरने रत्नत्रयी चतुराधक भवचक्र से पार होते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

469— छत्रधारी राजा वीतरागी तपस्या करके निकट भव्य बनता है जिसका निश्चय–व्यवहार धर्म (सम्यक्दर्शन का श्रद्धान) एकबार गिरकर फिर उठता है ।

470— जिनशासन के (पंच परमेष्ठी) सिंहासन के 5 जिनलिंगी (साधु आर्यिका ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका) अदम्य पुरुषार्थ के साथ वीतरागी तपस्या सिध्दत्व /मोक्ष के लिए तपते हैं। तीन धर्मध्याान वाले साधक को पैरों पड़ी बेड़ी रोकती है।

471— (अ) नदी के तीर, तीर्थंकर प्रकृतिवान तपस्वीरत वह आरंभी गृहस्थ निकट भव्य बन गया ।

(ब) गृहस्थ/गृही

472— शाकाहार वीतरागी तपस्वी के लिए निश्चय–व्यवहार धर्म का रक्षक बन आस्रव से रक्षण करता है ।

473— मुनियों की गुणस्थानोन्नति चतुर्गति भ्रमण में उन्हें भवघट से तिराने दो धर्म ध्यानों के स्वामित्व से संघाचार्य की स्थिति तक पहुंचाती और रत्नत्रय साधने पर आत्मस्थ कराकर चकवे सा भवघट से तिराती है ।

474— पुरुषार्थी रत्नत्रयी स्वसंयम साधने वाला तीर्थंकर प्रकृति को बांध गुणोन्नति करता हुआ भवघट से तिर जाता है।

475— संसारी व्यक्ति भी तीर्थंकर प्रकृति को बांधकर दो धर्म ध्यानों से भी जाप करते हुए वीतरागी तप कर सकता है ।

476— भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी (चौथा गुणस्थानी सम्यक्दृष्टि) पंचाचारी रत्नत्रयी साधु बनकर वीतरागी तपस्या करता है ।

477— संघस्थ प्रतिमाधारी को दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति आत्मस्थ बन जंबूव्दीप में तपस्या से चतुराधक और स्वसंयमी बनने और अरहंत पद की शरण लेते हुए दशधर्म के सेवन से होती है।

478— भवघट से तिरने, सिद्धत्व की प्राप्ति सप्त तत्व चिंतन और पंचम गति की प्राप्ति वीतराग तपश्चरण से होती है ।

479— हिरण युगल सोलहवें शांतिनाथ तीर्थंकर के लांछन है ।

480— भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी तपस्ययारत होकर दूसरे शुक्लध्यान तक तप साधना करता है । वह निश्चय–व्यवहार धर्म द्वारा वीतरागी तपश्चरण करता है ।

481— भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी सल्लेखना द्वारा ढ़ाई द्वीप में पंचाचारी समाधिमरण करके ऐलकत्व से भी वीतरागी तपस्या प्रारंभ कर सकता है (पंचम गुणस्थान से)

482— यह भी बनावटी सील प्रतीत होती है।

483— (खण्डित है) कालखण्ड उत्सर्पिणी में चतुर्गति भ्रमण नाशने वीतराग तपस्या ही प्रचलित थी ।

484— भवचक्र से पार उतरने तपस्वी निकट भव्य होकर गुणस्थानोन्नति करता है ।

485— भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी समवशरण में जाकर प्रतिमाऐं धारणकर अथवा संघस्थ होकर स्वसंयम धारण करता है ।

486— तीन धर्म ध्यानों के स्वामी निकट भव्यों द्वय ने (कुलभूषण देशभूषण) मुनियों की तरह ढाई द्वीप में निश्चय–व्यवहार धर्म पालकर आत्मकल्याण का वातावरण बनाया ।

487— खण्डित।

488— विदेश से समुद्र मार्गी संपर्क की अभिव्यक्ति बैल (ऋषभ परंपरा) समुद्री घोड़ा (समुद्र मार्ग से यात्रा और व्यापार) अंकन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

489– अणुव्रती ने दो धर्म ध्यानों की भूमिका से उठकर दो शुक्लध्यानी तपस्वी तक का पुरुषार्थ बार–बार उठाते हुए वीतरागी तपश्चरण किया ।

490– तद्भवी पंचमगति के लिए निश्चय–व्यवहार धर्मी ने चतुराधन करके दो धर्मध्यानों की भूमिका से सल्लेखना लेकर भवान्तर में चतुराधन करने स्वसंयम साधा ।

491– भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी रत्नत्रय धारण करके आरंभी गृहस्थ की भूमिका से अदम्य पुरुषार्थ के साथ सिद्धत्व की प्राप्ति करता है ।

492– चतुर्गति भ्रमण एवं अष्ट कर्मों को नाशने, सल्लेखी, आरंभी गृहस्थ ने तीन धर्मध्यानों की भूमिका से पुरुषार्थ बार–बार उठाया और महाव्रतियों के संघ में रत्नत्रय धार कर रहा ।

493– चतुर्गति भ्रमण एवं अष्ट कर्म नाशन हेतु रत्नत्रयी निश्चय–व्यवहार धर्म और तद्भवी मोक्ष के लिए महाव्रत तपश्चरण आवश्यक है ।

495– पंचमगति हेतु कैवल्य की प्राप्ति स्वसंयमी को संघाचार्य की शरण में निश्चय–व्यवहार धर्म के साथ रत्नत्रय पालन से भवघट तिरने हेतु होती है ।

496– तपस्वी दो धर्म ध्यानों का स्वामी निकट भव्य है जो वीतरागी तपश्चरण करता है ।

497– वह निश्चय व्यवहारी परम वैरागी तीन शुक्ल ध्यानों का स्वामी सिद्धत्व की साधना करता है । (यह भी बनावटी प्रतीत होती है)

498– भवघट से पार होने सल्लेखी तपस्वी आत्मस्थता से निकट भव्य बनकर वीतरागी तपश्चरण करता है ।

499– गुणस्थानोन्नति करते निर्ग्रंथों ने शिखर तीर्थ पर जाकर वीतराग तप किया।

500– जंबू व्दीप में महामत्स्य जैसे वज्र वृषभनाराच संहनन वाले ही अरहंत पद पाते हैं।

501– अदम्य पुरुषार्थी ने सल्लेखना लेकर वीतरागी तपश्चरण किया और चारों कषायों को दूर करके संघाचार्य के चरणों मे शरण ली ।

502– ऐलक (सचेलक) तपस्वी ने प्रतिमाऐं धारणकर षट् आवश्यक किए और वीतरागी तपश्चरण स्वीकारा ।

503– शिखरतीर्थ पर पुरुषार्थ करके निश्चय व्यवहारी संघाचार्य ने तपश्चरण किया जहाँ मोर भी थे ।

504– भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने तीर्थंकर की शरण में सम्यक्त्व धारण कर स्वसंयम धारा ।

505– निकट भव्यों ने वातावरण वीतरागी तपश्चरण का बनाया। (यह भी बनावटी प्रतीत होती है)

506– रत्नत्रयी जंबूद्वीप में पुरुषार्थ उठाते बढ़ाते जाने वाले ही वीतरागी तपस्या कर पाते हैं ।

507– जंबूद्वीप में भरत क्षेत्र में छत्रधारी राजा ने सम्यक्त्व स्वीकार कर तपस्या की और आरंभी गृहस्थ की स्थिति से तीन धर्मध्यानों के स्वामित्व का स्वसंयम स्वीकारा ।

508– (अ) निकट भव्य ने सल्लेखना लेकर चार गतियों के भ्रमण और अष्ट कर्मों को मेटने वीतराग तप का वातावरण बनाया

(ब) जिन सिंहासन के जिनलिंगी अष्ट कर्मों और चतुर्गति भ्रमण का नाश करते हैं ।

509– सुगति भ्रमण के जीव पर्वत पर तपस्या करने जाते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

510— व्यंतरदेव।

511— (सिद्धत्व की चाह रखने वाला) मोक्षार्थी चतुर्गति भ्रमण एवं अष्ट कर्म नाशन करने अरहंत पद अथवा कैवल्य प्राप्त करने शिखर तीर्थ पर निश्चय व्यवहारी धर्म की शरण लेता है ।

512— जंबू द्वीप में दो धर्म ध्यानों से भी वैराग्य पनपता है।

513— भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी अरहंत पद पाने रत्नत्रयी तपस्या करता तथा चारों कषायें त्याग कर तपरत् रहते समता रखता है ।

514— सिद्धत्व हेतु मोक्षार्थी तीन धर्म ध्यानों के स्वामित्व से चार अनुयोगी चतुर्विध संघाचार्य तपस्वी की शरण लेता है।

515— दो धर्म ध्यानों का स्वामी सल्लेखना लेने संघाचार्य की शरण में वीतरागी तपश्चरण हेतु समता सहित पहुंचता है ।

516— खरगोश।

517— आरंभी गृहस्थ ने वीतरागी लिंग की साधना घर में ही करके वीतरागी तपश्चरण स्वीकारा ।

518— (अ) वैय्यावृत्ती कांभर पर डोली में गुणस्थानी साधक को सल्लेखना में सेवा दे रहे हैं, जो निश्चय–व्यवहार धर्म के पालक हैं तथा जिनका समाधिमरण रत्नत्रय सहित है जो उनके वीतरागी तपके लिए एक कीर्तिवान तपस्वी माने गए हैं ।
(ब) वे चतुर्गति जन्य भवचक्र नाशक हैं ।

519— (अ) दो धर्मध्यानों से ही वह भवघट पार करने संघस्थ पुरुषार्थी है ।
(अ) तपस्वी रत्नत्रयधारी, वातावरण का निश्चय व्यवहारी तपस्वी है ।

520— वातावरण को उन्नत करता पुरुषार्थी सप्त तत्त्व चिंतक है जो सचेलक होकर भी तपस्वी है ।

521— भवचक्र से पार होने, मोक्षार्थी, सल्लेखना के भाव से पंचम गति पाने रत्नत्रयधार वीतरागी तपस्या कर रहा है जहाँ सर्प भी उनकी रक्षा करता है।

522— घाति चतुष्क को नाशने दो "धर्मध्यानी" ने सल्लेखना लेकर वैराग्य का वातावरण उत्तरोत्तर उठाया और तीर्थंकर प्रकृति बांधकर पद्मासित "जिन" का सहारा लिया। उनकी सेवा में देव प्रतिबद्ध थे।

523— भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामी छत्रधारी तपस्वी बनकर स्व संयम स्वीकारते हैं ।

524— चार धर्मध्यानी तपस्वी (मुनि) सल्लेखी आरंभी गृहस्थ स्थिति के तीन धर्म ध्यानों के स्वामित्व से स्वसंयम धारते हैं ।

525— पंचाचारी ही पंचपरमेष्ठी को ध्याते हैं ।

526— अरहंत भक्त ऐलक/आर्यिका वीतरागी तपश्चरणरत हैं ।

527— सर्प और कुत्ता दोनों ही पंचपरमेष्ठी की शरण रहे ।

528— भवचक्र से तिरने दो धर्मध्यानों का स्वामी निश्चय व्यवहार धर्म की शरण लेकर जिन सिंहासन के पांचों पिच्छीधारी लिंगों की शरण में अदम्य पुरुषार्थ के साथ पंचाचार करते हुए समर्पित होते हैं ।

529— त्रिगुप्ति धारण (रत्नत्रय सहित) कैवल्य हेतु तीन धर्मध्यानों एवं चारों अनुयोगों के ज्ञान के फलस्वरूप मन को स्थिर करने और स्वसंयमी बनाने से संसार को त्यागने का अदम्य पुरुषार्थ देता है।

530— पंचम गति का साधक चतुराधन व्दारा भवचक्र पार करने की तैयारी करता है।

531— भवघट से पार होने दो धर्मध्यान और पुनः–पुनः पुरुषार्थी वातावरण चाहिए ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

532— षट् शाश्वत द्रव्यों पर चिंतन करते हुए इस हुण्डा अवसर्पिणी काल में अब सल्लेखी छत्रधारी राजा होकर भी तपस्वी बनकर अरहंत का लक्ष्य रखते हैं ।

533— भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों वाला व्यक्ति पंचाचारी बनकर रत्नत्रय पालते हुए वीतरागी तपश्चरण करता है।

534— एकदेश स्वसंयमी रत्नत्रयी तपस्वी वीतरागी तपश्चरण रत होता है ।

535— शिखरतीर्थ पर अष्टकर्म प्रभावी चतुर्गतिक भ्रमण काटने मोक्षार्थी सल्लेखना धारते निश्चय व्यवहार धर्म की शरणागत होते वातावरण बनाते सिद्धत्व पाते हैं ।

536— निकट भव्य सल्लेखी छत्रधारी तपस्वी, स्वसंयम धारण कर निश्चय व्यवहार धर्म की सल्लेखी शरण लेता है ।

537— अदम्य पुरुषार्थी, सल्लेखी, वीतरागी तपश्चरण हेतु अरहंत सिद्धमय होता, निश्चय व्यवहार धर्म की शरण में जाकर चतुराधक तपस्वी बनता और श्रावकों को भी तारता है, जिससे महामत्स्य सा उत्तम संहननी तिर्यंच भी उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी में अष्टकर्माश्रित चतुर्गति भ्रमण काटने वीतरागी तपश्चरणरत हुआ ।

538— रत्नत्रयी सीमाऐं बांधते हुए तप करते महाव्रती तपस्वी ने सल्लेखना लेकर चतुराधन करते वीतरागी तपस्या की ।

539— आत्मस्थ साधक ने भवघट तिरने दो शुक्लध्यानों से कायोत्सर्गी भगवान के दर्शन किए और वीतरागी तपश्चरण को समता से केवली बन मोड़ने का स्वसंयम उन्नत किया ।

540— तीन धर्मध्यानों का स्वामी मन को स्थिर करके पंचपरमेष्ठी के गुणों के चिंतन में लीन होता है ।

541— निकट भव्य पंचाचारी तपस्या करता ऐसा आरंभी गृहस्थ है जिसने तीन धर्मध्यानों के स्वामित्व से निकट भव्यत्व पाकर गुणस्थानोन्नति की ।

542— अदम्य पुरुषार्थी तीन धर्मध्यानी चतुराधन करता है ।

543— प्रतिमाधारी श्रावक की तरह महामत्स्य से उत्तम संहननी ने भवघट तिरने सल्लेखना धारण की और दो धर्मध्यानों से ही सचेलक फिर अचेलक तपस्या करता हुआ सिद्ध की शरण में लीन हुआ ।

544— भवघट से तिरने के इच्छुक आरंभी गृहस्थ के तीन धर्मध्यानों से पुरुषार्थ करके उठने का वातावरण विशेष होता है ।

545— भवघट से तिरने को दो धर्मध्यानों के साथ छत्रधारी राजा आत्मस्थ तपस्वी की तरह निकट भव्य है जो गुणस्थानोन्नति करता है ।

546— पंचाचारी साधक आत्मस्थ होता है ।

547— तीसरे धर्मध्यान का स्वामी निकट भव्य है जो घर में वातावरण नौ पदार्थ चिंतन का बनाता है ।

548— पुरुषार्थी किसी भी काल उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी सल्लेखी में हो संघ में प्रतिमाऐं धारण करके चतुर्विध संघ का अंग बनकर संघाचार्य की शरण में चतुराधन करते दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से ही गुणस्थानोन्नति करते हुए शिखर तीर्थ यात्रा करते और स्व संयम से इच्छा निरोध करते हैं ।

549— महामत्स्य जैसे उत्तम संहननी ने सभी कालार्धों में चार अनुयोगी निश्चय व्यवहार धर्मी संघाचार्यों की शरण में स्थान पाया है ।

550— उल्टा स्वस्तिक पर्यायें उत्तरोत्तर हीन कराता है, अतः अमंगलकारी है ।

551— जाप करता सल्लेखी निकट भव्य बनकर गुणस्थानोन्नति करता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

552 भवघट से तिरने वाले दो धर्म ध्यानों से दूसरे शुक्लध्यान में पहुंचने वाले छत्रधारी राजा वीतरागी तपस्वी बनकर त्रिगुप्ति धारण कर पंचमगति का साधन करने सप्त तत्वों का चिंतन करते हैं।

553– वही ।

554– चतुर्गतियां ।

555– भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी निकट भव्य चातुर्मास में तपस्वी जैसे अरहंत भक्ति से अपने अदम्य पुरुषार्थ को उठाते हैं ।

556– डायनासर ने तीर्थंकर प्रकृति हेतु दो धर्मध्यानों से ही त्रिगुप्ति धारण करके वीतराग वातावरण बनाया ।

557– सल्लेखी अणुव्रती वीतरागी तपस्वी है ।

558– अदम्य पुरुषार्थ से सल्लेखी आत्मस्थ होकर वीतरागी तपश्चरण धारता है । वह छत्रधारी राजा भी आत्मस्थ होकर तपस्या करता है ।

559– पुरुषार्थी पुरुषार्थ बढ़ाते हुए भवचक्र से पार उतरने दो धर्म ध्यानों से ही चतुर्गति नाशन के उपाय करता है ।

560– तीन धर्मध्यानी आत्मस्थ श्रावक चारों अनुयोगों को निश्चय व्यवहार दृष्टि से समझकर नवदेवता श्रद्धान सहित वीतरागी तपस्या धारता है ।

562– समाधिमरणी साधक मांगीतुंगी/उदयगिरि खण्डगिरि तीर्थ क्षेत्रों पर जिनलिंगियों की शरण में वीतरागी तप लीन है ।

563– त्रिगुप्तिधारी, पंचमगति भावी पुरुषार्थी तपस्वी दो धर्म ध्यानों के स्वामी होकर भी मांगीतुंगी/कुमारी पर्वतों पर जिनलिंगियों की शरण में वीतरागी तपस्या धारता है ।

564– सचेलक तपस्वी रत्नत्रय और दशधर्म वाले वातावरण में वीतरागी तपस्या करता पंचम गति का साधन बनाने तीन धर्मध्यानों से पुरुषार्थ उठाकर दूसरे शुक्लध्यान तक उन्नति करता है ।

565– तीन धर्म ध्यानों से उठकर मोक्ष जाने हेतु तीसरे शुक्लध्यान तक उन्नति करना पड़ती है ।

566– दो धर्मध्यानी आरंभी गृहस्थ एकदेशव्रती तपस्वी सल्लेखना तत्पर रहता है तब कहीं रत्नत्रयी तपस्वी बनकर वह चतुराधक बन, कीर्तिवानी तीसरा शुक्लध्यानी बनता है ।

567– भवचक्र से पार उतरने षट् द्रव्य चिंतन तपस्वी को वीतरागी तपश्चरण पथ पर लाकर मुनिपद दिलाता है ।

558– अदम्य पुरुषार्थी सल्लेखी आरंभी गृहस्थ तीन धर्म ध्यानी होकर रत्नत्रयी साधना करने तत्पर होता है ।

569– भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी पुरुषार्थ उठाकर संघशीर्ष बनता रत्नत्रयी निश्चय व्यवहारी धर्मध्यानी चतुर्विध संघाचार्य भी बन सकता है।

570– एकदेश आत्मसंयमी सचेलक/आर्यिका दशधर्म का पालन करते हैं ।

571– पुरुषार्थी रत्नत्रयी जंबू में पुरुषार्थी पक्षी भी पंच परमेष्ठी आराधन करते हैं ।

572– सिद्धत्व हेतु भवचक्र से पार उतरने दो धर्मध्यानों से भी तीसरे शुक्लध्यान तक की प्राप्ति हेतु रत्नत्रय का पालन आवश्यक होता है ।

573– आरंभी गृहस्थ तीसरे धर्मध्यान के वातावरण से कुमारी पर्वतों पर जाकर संघ की शरण लेकर रत्नत्रयमय वीतरागी तपश्चरण करता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

574– सावधान कछुए की तरह अष्टकर्म नाशन छत्रधारी राजा भी तपस्या करते हुए वीतरागी तपस्या तपने हेतु मुनि व्रताचरण करते हैं।

575– आरंभी गृहस्थ तीन धर्मध्यानी बन स्वसंयम लेकर तप करता है ।

576– भवचक्र से पार उतरने स्वसल्लेखी तपस्वी कायोत्सर्गी आदिप्रभु के चरणो में पुरुषार्थी तपश्चरण करते तपस्वी डायनासर /सरीसृप की तरह वीतराग तप धारते हैं।

577– मन को स्थिर करके तीन धर्मध्यानों का स्वामी चौथे शुक्लध्यान की प्राप्ति हेतु वीतरागी तपस्या करता है ।

578– भवचक्र से पार उतरने दो धर्मध्यानों का स्वामी ऐलक /तपस्वी वैय्यावृत्य सहित वीतराग तप करता है ।

579– दो शुक्लध्यानों का स्वामी भवघट से पार होने घातिया चतुष्क क्षय करता है ।

580– भवघट से तिरने के लिए दो धर्म ध्यानों का स्वामी सल्लेखना को रत्नत्रयी बनाकर वीतरागी तपस्या करता है ।

581– युगल स्वसंयमी केवली भगवंतों की शरण ले दो धर्म ध्यानों से लेकर अरहंत अवस्था तक उठने में सल्लेखना लेकर निश्चय व्यवहार धर्म की शरण में साधक पंच परमेष्ठी का आराधन करते वीतरागी तपस्या धार मुनि बन जाता है ।

582– आत्मस्थ दोनों बंधुओं ने वीतरागी तपस्या की ।

583– भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी छत्रधारी राजा भी आरंभी गृहस्थ की स्थिति से तीसरे धर्म ध्यान को पाने निकट भव्यता से गुणस्थानोन्नति करते हैं ।

584– केवली पंच जिनेशी (परमेष्ठी) भक्त, बारह भावना भाकर दूसरे धर्म ध्यान से आत्मस्थ तपस्वी बनकर निकट भव्य बन वीतरागी तपस्या करता है ।

585– एकदेश तपस्वी चारों कषायें तज तपस्या घर से भी कर सकता है ।

586– उल्टा स्वस्तिक अमांगलिक होता है ।

587– (अ) अरहंत बनने के लिए तीन धर्म ध्यानों से उठकर निश्चय व्यवहारी चतुर्विध संघाचार्य की शरण में जाना चाहिए। (ब) हमें कला की दृष्टि से यह सील बनावटी प्रतीत होती है। गूदागादी है।

588– मोक्ष /सिद्ध पद की प्राप्ति के लिए तपस्वी स्वसंयमी बनकर दशधर्मों का पालन और अरहंत आराधन करके निकट भव्य बनता है ।

589– रत्नत्रयी जंबूद्वीप में आरंभी गृहस्थ तीन धर्मध्यानी भी आत्म संयम करते है ।

590– भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों का स्वामी समतावान तपस्वी बनकर स्वसंयम लेता है ।

591– भवघट से तिरने रत्नत्रयी साधना और रत्नत्रयी निश्चय व्यवहार धर्म का वातावरण पंचाचारी वीतरागी तपी का है।

592– तपस्वी युगल बंधु निश्चय व्यवहार धर्मी चतुर्विध संघाचार्य के समीप तपस्या रत रहे।

593 – अर्धचक्री के पुरुषार्थ से पुरुषार्थी की सल्लेखना डायनासर/सरीसृप जैसे जीव को भी तपस्वी जैसा पुरुषार्थ दिला, दो धर्मध्यानों की स्थिति से तपस्वी को निकट भव्यत्व दिलाकर वीतरागी तपस्वी भवांतर में बनाती है ।

594– तीन धर्मध्यानी पंचम गुणस्थानी, तपस्वी संघाचार्य की शरण में, रत्नत्रय पालकर वीतरागी तपस्या के साथ–साथ अपना वैराग्य प्रखर कर लेते हैं ।

595– पंचमगति के मोक्षार्थी को, सल्लेखना उसे दूसरे शुक्लध्यान तक संसार से उठाकर तपस्या में दृढ़ कराती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

596– अरहंतमार्ग वैय्यावृत्ति के झूले से साधक वीतरागी तपस्वी को समाधिमरण कराके ग्यारह प्रतिमाऐं धारण करा ढाईद्वीप में ही भवान्तरों में रत्नत्रयी वीतरागी तपस्या का अधिकारी बना जाता है ।

597– सिद्धत्व की प्राप्ति भवघट में वीतरागी तपस्या और निश्चय–व्यवहार धर्म की प्रभावना से साधक को पंचमगति का अधिकारी बनाती है ।

598– पुरुषार्थवान सल्लेखी पंचाचार करते हुए समाधिमरण द्वारा पुरुष भव और तीर्थंकर प्रकृति को बांधकर तपस्या करते हुए अपना पुरुषार्थ बढ़ाकर वीतरागी तपस्वी बनता है ।

599– जिन सिंहासन के जिनलिंगी अदम्य पुरुषार्थी वीतरागी तपस्वी बनकर दो भक्तियों के सहारे जीवन को निश्चय–व्यवहारमय बनाते हैं और चतुराधन से तपस्यारत होकर सिद्धत्व के लिए हरकाल में वृत्ति रखते हैं ।

600– पंचमकाल का साधक चतुराधक, वीतरागी तपस्वी होता है ।

601– पंचमगति का साधक, छत्रधारी पुरुषार्थी तीर्थंकर जिन की शरण में जाप द्वारा आत्मस्थ होकर दोनों दुर्ध्यानों को दूर करके पंचमगति हेतु तीन शुक्लध्यानों तक को प्राप्त करते हैं ।

602– महाव्रती निश्चय व्यवहारी धर्म का श्रमण होता है ।

603– स्वसंयमी का अदम्य पुरुषार्थ औपशमिक गुणस्थानोन्नति कराता प्रथम गुणस्थान से 10 तक उठाता फिर गिराता पुनः उठाता है। उसे युगलश्रृंगों पर जिनशासनलिंगियों की शरण में ले गया जहाँ उसने चतुर्गति भ्रमण को रोककर पंचमगति की राह पाने वाली गुणस्थानोन्नति की ।

604– (1) कल्पवृक्ष (2) तपस्वी ने चारों कषायों को त्यागने वाले संघाचार्य की शरण में आकर षट् द्रव्य चिंतन करके पंचमगति की साधना द्वारा अष्टकर्मजन्य चतुर्गति भ्रमण नाशने तीन धर्मध्यानी भूमिका बनायी ।
(3) षट् द्रव्यों का चिंतन निश्चय–व्यवहार धर्म स्थापित कराता है ।

605– अरहंत अवस्था के लिए दो धर्म ध्यानों से उठता तपस्वी निश्चय व्यवहार धर्म का पालन करते हुए वैयावृत्ति का झूला पाता और वीतरागी तप तपता है ।

606– नदी के तट पर भी वीतरागी तपस्वी तप तपते हैं ।

607– युगल बंधु स्वसंयमी और वीतरागी तपस्वी थे ।

608– छत्रधारी राजा ने तप द्वारा ऋद्धियाँ पाकर भी केवलत्व पाया और वीतरागी तपस्या की ।

609– बारबार पुरुषार्थ उठाते हुए वीतरागी तपस्वियों ने संघाचार्य की शरण लेकर सल्लेखना करते हुए चतुर्विध संघस्थ सेवा पाई ।

610– पंचाचारी दिगंबर जिन भक्त है ।

611– सल्लेखी ने निश्चय व्यवहार धर्म की शरण लेकर अष्टकर्म जन्य चतुर्दिक भ्रमण को नाशने के लिए अदम्य पुरुषार्थ से दो शुक्लध्यान प्राप्ति हेतु (कैवल्य) की साधना की ।

612– भवघट से तिरने, वीतरागी तपस्या लीन अणुव्रतधारी ने गुणस्थानोन्नति करके रत्नत्रयी धर्मध्यानों से सप्ततत्त्व चिंतन करते पंचमगति की साधना की ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

613— अदम्य पुरुषार्थी ने सल्लेखी बन आत्मस्थ वीतरागी तपस्वी करते चारों कषायों को त्याग पंचमगति पाई।

612 — वैय्यावृत्ति पाने वाला हर उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में चतुर्गति नाशन हेतु गुणस्थानोन्नति करता वीतरागी तपस्वी निश्चय व्यवहार धर्म की शरणागत ऐलक, दो शुभ ध्यानी तपस्वी, केवली स्वसंयमी ही होता है ।

615— पुरुषार्थी ने रत्नत्रयी चतुराधन करते दो धर्मध्यानों से आरंभ हो दूसरे शुक्लध्यान वाले उद्यम से भवघट तिरा ।

616— दिगंबर वीतरागी तपस्वी ने तीनों (मन, वचन, काय) आत्मस्थताऐं करके रत्नत्रयी केवलियों के संघ में शरण लेकर अरहंत पद की साधना की ।

617— तीर्थंकरत्व हेतु सल्लेखी अदम्य पुरुषार्थी तपस्वी आरंभी गृहस्थ होते हुए तीन धर्म ध्यानों के साथ गृह त्यागकर क्रम से दो शुक्लध्यानों का स्वामी बना ।

618— भवघट से तिरने दो धर्मध्यानी रत्नत्रयी श्रावक ने संघ के समीप प्रतिमाऐं धारण कर वीतरागी तपस्या प्रारंभ की ।

619— दो शुक्लध्यानों के लिए तीन धर्म ध्यानों से उठकर अरहंत पद की प्राप्ति (पंचाचारी को अरहंत पद प्राप्ति संभव)

620— वीतरागी तपस्या निश्चय और व्यवहार धर्मी दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति व्दारा अरहंत अवस्था से प्राप्त होती है ।

621— अरहंत पद का पुरुषार्थ रत्नत्रयी पुरुषार्थी तीर्थंकर के पादमूल में, वीतरागी तपस्या को आत्मस्थता से धारकर निश्चय व्यवहारी एक आरंभी गृहस्थ होकर भी महाव्रतियों के वातावरण में सल्लेखना धारकर वीतरागी तपस्या से करता है ।

622— सिद्धत्व के लिए अदम्य पुरुषार्थ केवली द्वारा स्वसंयमी इच्छा निरोध से ही किया जाता है ।

623— भवघट से तिरने के लिए दो शुक्लध्यानों और वीतरागी तपस्या की पंचमगति की साधना आवश्यक होती है ।

624— मांगलिक स्वस्तिक जो पंच परावर्तन की पूर्णता दर्शाता है ।

625— भवघट से तिरने हेतु सल्लेखना द्वारा तीर्थंकरत्व की प्राप्ति चारों कषायों को त्याग करके रत्नत्रयी तपस्या और सप्त तत्त्व चिंतन सहित आवश्यक होती है।

626— पंचमगति हेतु अरहंत पद की प्राप्ति दो धर्मध्यानों से आरंभ होकर तीसरे शुक्लध्यान तक रत्नत्रयी साधना द्वारा बनी

627— पुरुषार्थ, पंचाचार और रत्नत्रयी तपश्चरण पुरुषार्थवान के लिए आवश्यक हैं ।

628— आरंभी गृहस्थ भी तद्भवी मोक्ष हेतु भवचक्र से पार होने सल्लेखना धारणकर, निश्चय व्यवहारवान तपस्वी बनता है ।

629— सल्लेखी दूसरे शुक्लध्यान वाला वीतरागी तपस्वी है ।

630— भवघट से पार होने दो धर्मध्यानों के स्वामी ने स्वसंयमी बनकर सप्त तत्त्व चिंतन करते हुए वीतरागी तपस्या की ।

631— भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामी ने युगल बंधुओं की तरह महाव्रत की पिच्छी धारण करके स्वसंयम बढ़ाते हुए वीतरागी तपस्या की ।

632— पुरुषार्थी ने निश्चय व्यवहारी चतुर्विध संघाचार्य की शरण में वैय्यावृत्ति पाते, सिद्ध स्मरण करके नदी के किनारे तप करते हुए छत्रधारी होकर भी सचेलक के रूप में वीतरागी तपश्चरण आरंभ किया ।

633— घातिया चतुष्क क्षय करने तीन धर्म ध्यानों के स्वामी ने चार अनुयोगी चतुर्विध संघाचार्य की शरण में तप किया ।

634— एक कछुए की तरह स्वयं के परिणामों की रक्षा करते हुए पुरुषार्थी सीमाओं के भीतर सुरक्षित रहते, रत्नत्रयी महाव्रती बने हुए निश्चय व्यवहारी तपस्वी ने वीतरागी तपस्या की ।

635— भवघट से तिरने तीर्थंकर प्रकृतिवान सल्लेखी ने तीन धर्मध्यानी तपस्वी बनकर चार अनुयोगी निश्चय व्यवहारधर्मी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संघाचार्य की शरण ली ।

636— (अ) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने पंच परमेष्ठी की आराधना करते रत्नत्रय को धारण किया ।

(ब) आत्मस्थ तपस्वी ने दो धर्म ध्यानों से पंच परमेष्ठी की आराधना की ।

638— पंचमगति का साधक पुरुषार्थी स्वसंयमी होता है ।

639— अरहंत पद की प्राप्ति चार अनुयोगी निश्चय व्यवहार धर्मी तपस्वी दिगंबराचार्य कर सकते हैं ।

640— रत्नत्रयी वातावरण ही पुण्यकारी वीतरागी तपस्या का वातावरण होता है ।

641— पंचमगति के लिए सचेलक ने तप किया और आगे चलकर वीतरागी मुनि हुआ। पूर्व में वह देव था।

642— भवघट से तिरने दो धर्म ध्यान से तीसरे शुक्लध्यान तक की रत्नत्रयी यात्रा चाहिए ।

643— उपशमी तपस्वी वीतरागी तपस्या में आत्मस्थता सहित दो धर्मध्यानों का पुरुषार्थी, छत्रधारी, समतावान होने से उत्तरोत्तर पुरुषार्थ करता वीतरागी तपस्या करता था।

644— सल्लेखी पुरुषार्थी वैय्यावृत्ति का झूला पाकर अपने वीतरागी तप को उन्नत करता है ।

645— दो धर्मध्यानों वाले स्वसंयमी तपस्वी ने चारों कषाऐं तजकर तपस्या की ।

646— दो धर्मध्यानों को दूसरे शुक्लध्यान तक पहुंचाने में तपस्वी उपशम द्वारा वीतरागी तपस्या तपता है ।

647— भवघट से तिरने दो धर्म—ध्यानों सहित एक सचेलक ने चतुराधन किया और (भवान्तर) कालान्तर में क्रमोन्नति से रत्नत्रयधारी मुनि बनकर जंबूद्वीप के निश्चय व्यवहार धर्म का श्रमण बना ।

648— हृदय में दो धर्मध्यानों से उठकर चार शुभ—ध्यान लाने वाले पंचाचारी साधु पूर्व में गृहस्थ ही थे।

649— चार गतियों के परिभ्रमण से निकलना अत्यंत कठिन है ।

650— वनस्पति भी आत्मस्थता धारण कर सकती है, अर्ध वैराग्यमय वातावरण में नदी के किनारे वाले स्थान में, जो कालांतर में तपस्वियों की धर्मस्थली ही उनके तप हेतु बन जाता है ।

651— भवचक्र से पार उतरने संघस्थ सभी वर्ग के तपस्वियों ने षट् आवश्यक पालते हुए निकट भव्यता प्राप्त करके भवभ्रमण को छोटा किया ।

652— निकट भव्य जन गुणस्थानोन्नति करते हैं।

653— भवघट से पार उतरने दो धर्म—ध्यानों के स्वामी ने पुरुषार्थी बनकर उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए सल्लेखना ली और अपने निश्चय व्यवहार धर्मी वातावरण को वीतरागी तपस्या में बदला ।

654— जिस तरह स्वसंयमी ने अदम्य पुरुषार्थ को बढ़ाते हुए स्वसंयम से इच्छा निरोध करते हुए घातिया चतुष्क का नाश किया और भवघट से पार उतरे उसी प्रकार दो धर्म—ध्यानों के स्वामी छत्रधारी राजा ने अरहंत की शरण ले, राज छोड़कर आत्मस्थ होते हुए निश्चय—व्यवहार धर्मी आरंभी गृहस्थ की स्थिति से ही पंच परमेष्ठी की आराधना करके अपने कर्मों का नाश करने वीतरागी तपस्या स्वीकारी ।

655— रत्नत्रयी जंबूद्वीप में समताधरी स्वसंयमी ने आरंभी गृहस्थ की स्थिति से उठकर तीन धर्म—ध्यानों के सहारे निश्चय व्यवहार धर्म की शरण लेकर आत्मस्थता से सिद्धमय प्रभु में लीन हुए और वीतरागी तपस्या की ।

656— पुरुषार्थमय पंचाचार द्वारा ही भवघट से तीर्थंकर पार हुए हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

657— लोकपूरण करने वाले क्षपक का वातावरण दिगंबर तपस्वी का दो धर्मध्यानों से प्रारंभ होकर तीसरे शुक्लध्यान तक का चतुराधन से ही प्राप्त होता है ।

659— चार शुक्लध्यानों के लिए पुरुषार्थमय वीतरागी तप चाहिए ।

660— भवघट से पार तिरने दो धर्म—ध्यानों के स्वामी को संघाचार्य की शरण में रत्नत्रय धारण करके अपने वातावरण को सुरक्षित बनाने वाला गृहस्थ बनना चाहिए ।

661— पंचमगति की भावना करने वाले को आत्मस्थता और पुरुषार्थी क्षेत्रीय (सीमाओं में बंधकर) देशावकाशिक व्रती होना चाहिए ।

662— तद्‌भवी मोक्षार्थी साधक रत्नत्रयी वातावरण संभाले तीर्थंकर प्रकृति बांधता है ।

663— पंचमगति का गुणस्थानोन्नति इच्छुक व्यक्ति तीन धर्मध्यानों से उठकर रत्नत्रयी वीतरागी वातावरण बनाता है ।

664— पंचमगति भावी पुरुषार्थी, निश्चय व्यवहारधर्मी वातावरण को सल्लेखना युत बनाकर वीतरागी तपस्या करता है ।

665— अदम्य पुरुषार्थी, सिद्धत्व के लिए संघ में जाकर गृह त्याग, निश्चय व्यवहार धर्मी वीतराग तप की शरण लेता है ।

666— स्वसंयमी, रत्नत्रय धारकर दो शुक्ल ध्यानों की प्राप्ति के लिए सल्लेखना धारणकर वीतरागी तपस्या करता है ।

667— दो धर्मध्यानों के स्वामी भी तप की साधना हेतु अणुव्रती बनकर सल्लेखना ले, पंचमगति की भावना भाते हैं।

668— चतुर्गति भ्रमण नाशन ।

669— खण्डित।

670— पशु ।

671— निकट भव्य जीव वीतरागी तपस्या ही धारता है ।

674— भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानी अपने वातावरण को समतामय बनाकर रत्नत्रय का ध्यान रखकर पंच परमेष्ठी की आराधना और स्वसंयम धारता है ।

675— दो धर्मध्यानों के स्वामी (यक्ष) विद्याधर ने पंच परमेष्ठी की आराधना बाधा सहित करते हुए भी भवचक्र से पार होने हेतु तीन दुर्ध्यानों को छोड़ छत्रधारी अरहंत सम्मुख साधक बन और फिर स्वसंयम से इच्छा निरोध करते हुए क्रमोन्नति की।

676— तपस्वी, अष्टकर्मजन्य चतुर्गति भ्रमण से पार होने के लिए वीतरागी तपस्या करता है ।

677— भवघट से पार उतरने दो धर्मध्यानों का स्वामी तपस्या हेतु ग्यारह प्रतिमाओं के धारण का पुरुषार्थ करता है ।

678— सल्लेखी निश्चय व्यवहार धर्मी संघाचार्य है ।

679— संघस्थ सामान्य श्रावक और साधु श्रावक, भवघट से पार उतरने दो धर्म ध्यानों से ही बारह भावनाऐं भाकर वीतरागी तपस्या में रत हुए ।

680— भवघट से पार उतरने दो धर्म ध्यानी चतुर्थ गुणस्थानी श्रावक, क्रमशः गुणोन्नति करता हुआ शिखर तीर्थ पर जाकर वीतरागी दिगम्बरी तप करने लगा ।

681— निकट भव्य को भव बाधा आने पर उसने वीतरागी तप धारण हेतु षट् आवश्यक करते हुए तपस्या प्रारंभ की ।

682— चतुर्गति में भटकता निश्चय व्यवहारी जीव भी कभी भवघट में आत्मस्थ हो जाता है ।

684— भवचक्र से पार होने दो धर्म ध्यानों के स्वामी बंधुओं ने अंततः निकट भव्यता प्राप्त करके रत्नत्रय धारते हुए गृह त्यागा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

685— पुरुषार्थ घटाते बढ़ाते वीतरागी तपस्वी ने स्त्री और महामत्स्य पर्यायें धारण करते लंबे उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी काल में अष्टकर्म जनित चार गतियों में भ्रमण करते वीतरागी तपस्या अंततः धारी ।

686— तीर्थंकर प्रकृति कर्म बांधना वीतरागी तपस्वी पुरुष के लिए इष्ट है ।

A. मनुष्य ने कर्मार्जन करते अनादि काल से अपनी पर्यायें कर्मफल चेतना के आधीन आत्मस्थ तपस्वी होकर भी भोगी हैं और दस से चौदह भवी भव्यता पाई है, किन्तु रत्नत्रय साधने पर तपस्वी बन आदिनाथ ने तप किया तब भरत उनकी पूजन को पहुँचे। उनके साथ वृषभ भी था। जहाँ पहले से ही अन्य तपस्वी (सात) वीतरागी तप तप रहे थे।

B. तीन सिरों का पशु एक क्षेत्रपाल देव है।

C. भवघट से तिरने तीर्थंकर प्रकृतिवान ने दो धर्मध्यानों सहित नदी तट पर वीतराग तप किया।

687— (अ) दो शुक्लध्यानी रत्नत्रयी तपस्वी आत्मस्थ वीतरागी तप करके सिद्धत्व की इच्छा करने वाला ऐसा आरंभी गृहस्थ है जो वीतराग तपस्यारत है ।

(ब) तीर्थंकर वीतरागी तपस्या से ही भवघट तिरते हैं ।

688— पुरुषार्थवान तपस्वी अपनी मर्यादाऐं बांधकर ही वीतरागी तप तपता है ।

689— भवचक्र से पार होने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने रत्नत्रय की शरण में अपनी अंतहीन गठान को छोटा बनाने का वातावरण वीतरागी तप से बनाया ।

690— अष्टकर्मों से प्राप्त चार गतियों में घूमते सल्लेखी ने महामत्स्य की तरह उत्तम संहनन पाकर हर उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में उन्हीं अष्ट कर्मों से उपजी चार गतियों को छत्रधारी राजा की तरह भी भोगा । अष्ट कर्मों से उपजी उन्हीं चार गतियों को मरते हुए सल्लेखी ने रत्नत्रय से भी झेलकर अंत में वीतरागी तपस्या की।

691— भवचक्र से पार होने दो धर्म ध्यानों का स्वामी सप्त तत्त्व का चिंतन करते पंचम गति को पाने की भावना करके वीतरागी तपस्या करता है ।

692— भवचक्र से पार होने (कुलभूषण देशभूषण युगल मुनियों की तरह) भव–भव में वीतरागी पुरुषार्थ करना पड़ता है।

693— अष्टकर्मों से उपजी चार गतियों को पार करने के लिए सल्लेखी ने पुरुषार्थ किया ।

694— पंचमगति पाने उठते गिरते पुरुषार्थ से दो धर्मध्यानों के स्वामी छत्रधारी राजा और रानी भी वीतरागी तपस्वी बनकर महाव्रत धारते हैं ।

695— गुणस्थानोन्नति का आधार सप्त तत्त्व चिंतन और वीतरागी तपस्या है ।

696— (अ) सिद्धआत्मा की शरण में रत्नत्रयी तपस्वी पुरुषार्थ से और पक्षी अपुरुषार्थ से रहते हुए भी वीतरागी तपस्या तपते हैं।

(ब) चतुर्गति वाला वातावरण प्रदर्शित है ।

697— चार शुक्लध्यानों की प्राप्ति पंचाचार और बारह भावना से /दो शुक्लध्यानों तक वीतरागी तपस्या से होती है ।

698— चार शुक्लध्यानों को चतुर्विधी, चार अनुयोगी वीतरागी तपस्वी साधु ही प्राप्त करते हैं ।

699— रत्नत्रयी वीतरागी तपस्वी तीसरे धर्म ध्यान से ही अपने रत्नत्रय को संभालता है ।

700— दो धर्मध्यानों का स्वामी स्वसंयमी तपस्वी अथवा आर्यिका केवलज्ञान के भावी अरहंत पद की प्राप्ति करने की इच्छा रखते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

701— त्रिलोकीनाथ और तीर्थंकर प्रकृति की अवस्थिति में दो धर्मध्यानी साधक भी निश्चय व्यवहार नय संभालते हुए निकट भव्य बनकर रत्नत्रय धार भक्ति करते हैं।

702— केवली भगवान और तीर्थंकर प्रकृति बांधने वाले तद्‌भवी भी मुनिव्रत धारणकर मोक्षार्थी वीतरागी तपस्यारत रहते हुए पंच परमेष्ठी स्मरण करते हैं ।

703— चतुगर्तियों में जीव सदैव ही स्थित है ।

704— निकट भव्य भी रत्नत्रय संभालते गिराते आगे बढ़ते हैं ।

ताम्रपट्टियाँ—

(1) पुरुषार्थी एकदेश संयम लेकर पुरुषार्थ बढ़ाते हुए वीतरागी तपस्वी बन सकता है ।

(2) पुरुषार्थी एकदेश संयमी से उठकर केवलत्व तक पहुंच सकता है किंतु वीतरागी तपस्या के द्वारा ही ।

(3) (अ) अंतहीन भटकानों के स्वामी को गिराने वाली 4 गतियां हैं । (उल्टा स्वास्तिक)

(ब) सप्त तत्त्व चिंतन करते हुए पंचम गति के साधक का मन स्थिर और तपस्या वीतरागी होती है ।

(4) तीसरे धर्मध्यान के ज्ञानी को चार अनुयोगों का अध्ययन मदद करता है ।

(5) तपस्वी अपनी प्रगति को आरंभी गृहस्थ बनकर रोक लेता है और तीन धर्म ध्यानों के साथ भी ढ़ाईद्वीप में कभी आत्मस्थ और कभी विषम होता है । उसका चतुराधन भी जिन सिंहासन को अप्रभावना से अस्थिर बनाता है ।?

(6) पुरुषार्थी आरंभी गृहस्थ ने तीन धर्मध्यानों के साथ ढाई द्वीप में आत्म स्थिरता और विषमता के बीच गृहस्थ बने रहते हुए भी गृह त्यागा और रत्नत्रय की उपासना की ।

(7) गुणस्थानोन्नति के लिए नवदेवता भक्ति और वीतराग तप ही एक मात्र मार्ग है ।

(8) गुणस्थानोन्नति हेतु नवदेवता पूजन, वीतरागी दिगंबर जिन मुद्रा और वीतरागी तपस्या ही साधन हैं ।

(9) निकट भव्य (सचेलक) ऐलक/आर्यिका भी ढाईद्वीप में चार गतियों को नाशने पंचाचार का पालन करते थे।

(10) वीतरागी तपस्वी ने मन वचन काय की समता से सल्लेखना धारण करके संघस्थ प्रतिमा धारियों का महाव्रती के रूप में उत्साह बढ़ाया । समाधिमरण चतुर्विधी संघ के साधुओं के पुरुषार्थी आचरण से संभव होता है और अष्टान्हिका तप के द्वारा तीर्थंकर प्रकृतिकर्म दिलाता है ।

(11) आरंभी गृहस्थ के तीन धर्मध्यान पुरुषार्थ बढ़ाते हुए वीतरागी तपस्या से जोड़ते हैं ।

(12) गुणस्थानोन्नति का मार्ग नवदेवता पूजन, व्रत तथा दिगंबरत्व द्वारा वीतरागी तपस्या हैं।

(13) महामत्स्य की तरह उत्तम संहनन पाकर भी उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में अष्ट कर्म वाली चतुर्गति भ्रमण करते हुए अंत में वीतरागी तपस्वी बन सल्लेखना धारण का पुरुषार्थ बनाने तीन धर्मधारियों ने चारों अनुयोगों का अध्ययन किया।

(14) दूसरे शुक्लध्यानी चतुराधन करते हैं।

(15) चतुर्गति भ्रमण में वीतराग तप देवत्व दिलाता है ।

सिक्के—

(1) रत्नत्रयी भरत क्षेत्र में आत्मस्थता रत्नत्रयी सल्लेखना लेने में मदद करती और वीतरागी तप में सहयोग करती है।

(2) रत्नत्रयी भरत क्षेत्र में छत्रधारी राजा भी वैभव त्यागकर एकदेश स्वसंयम लेकर आरंभी गृहस्थ होकर तीन धर्मध्यानों से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी पंचमगति का साधन बनाकर चतुराधन करता है ।

(3) आत्मस्थ तपस्वी सप्त तत्त्व चिंतन करते हुए पंचम गति की साधना करता निश्चय व्यवहारी दिगंबर तपस्वी बनता है और स्वसंयम अपना कर तीर्थंकरत्व हेतु चतुराधन करता है ।

(4) गुणस्थानोन्नति करता साधक नवदेवता पूजन और नवग्रह व्रत पालता वीतरागी दिगंबरी तपश्चरण करता है ।

(5) पंचाचारी तपस्वी ढ़ाई द्वीप में ही चतुराधन करता है ।

कुछ सीलें अस्पष्ट होने के कारण छोड़ दी गई हैं।

चूँकि यह सीलें वर्तमान कराची नगर के समीपवर्ती क्षेत्र मोहन्जोदड़ो से प्राप्त हुई हैं और इनमें से कुछ अत्यंत विशेष हैं जो इतिहासकारों की भ्राति दूर कराने में सक्षम प्रतीत होती हैं अतः उन पर यहाँ चिन्तन करना आवश्यक लग रहा है। श्री मैके एवं श्री मार्शल के सील केटेलॉग मोहन्जोदड़ो से प्राप्त पुरासामग्री दर्शाते हैं जिनमें मार्शल की सील कमांक 371 एक विशालकाय हाथी 'मैमथ' को रस्सों में बंधा अर्थात पाला हुआ दिखलाती है। अर्थात उस काल का मानव हाथी जैसे पशु से हिला मिला था, भयभीत नहीं था। वहीं सील कमांक 349 एक डायनासर के समान प्राणी को लिपि अंकन सहित दर्शाती है अर्थात उस काल में डायनासर भी मानव का सहज सहजीवी बना

371

349

556

यहीं इसी धरती पर रहा है। उस विशालकाय जीव को लिपि रूप में श्री मैके की सील कमांक 556 में तथा श्री वत्स की लगभग ऐसी ही सील कमांक 619 में हड़प्पा पुरावशेषों में दिखलाया है जहाँ सरीसृप को 'फील्ड मॉडल' के रूप में देखा जा सकता है। ये स्पष्ट करा देती हैं कि वह सैंधव सभ्यता कितनी प्राचीन रही है। समझ नहीं आता कि इतनी स्पष्ट सीलों के अंकनों को क्यों अब तक अनदेखा किया गया ? उस वेदपूर्व कालीन संस्कृति को जो कि वैदिक संस्कृति से सर्वथा अनभिज्ञ थी क्यों सारे ही पुराविदों व्दारा मात्र वैदिक आधार पर पढ़ने का पूर्वाग्रह किया गया। ?

पुरालिपि अंकनों व्दारा की गई वे अभिव्यक्तियाँ एक पूर्व से चली आ रही ऐसी गूढ़ परम्परा को भी उजागर कर रही हैं जो उस काल में वर्तमान के ग्रीस से लेकर इंडोनेशिया तक मध्यपूर्वी देशों और संपूर्ण भारतवर्ष में ही व्याप्त थी। इसीलिए उन सभी भू भागों पर उसके पुरावशेष प्राप्त होते रहे हैं। लौकिक संदेशों से परे अलौकिक रहस्यों का उदघाटन संकेतों में करती वह ऐसे मानव जगत की धरोहर है जिसने पर्वतीय कंदराओं, शैलीय विस्तारों, शैल शिखरों, नदियों के किनारों और वनों को अपना ठौर बनाया भले उन दिनों चाक और जलपोतों व्दारा आवागमन और व्यापार के साधन सुलभ थे, कृषि थी, पशुपालन था, कुशल वास्तु और शिल्प था, पकी ईंटों और मृद भांड़ों का निर्माण था, धातु की भट्टियाँ थीं, पकाया भोजन था, मुद्रा थी, बांट थे, सुव्यवस्थित बसे नगर थे, बंदरगाह थे, तकनीक थी, कलाऐं थीं, वस्त्र थे, आभूषण थे, भक्ति थी, अध्यात्म था, नीति थी, जनपद थे, प्रजातंत्र था, सर्वसम्मत नेता था, अमन चैन प्रिय मनुष्य थे, लेखन था और हिसाब भी। निश्चित ही सुदृढ़ भाषाऐं भी रही होंगी और लिपियाँ भी जो अब भूली जाकर भी शोध का विषय हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर जॉन मार्शल की मोहन्जोदड़ो पर हुई शोध आधारित सीलों के अंकन ।

page No. C III - (1-18)

(1) कालचक्र के अवसर्पिणी—उत्सर्पिणी आरों के बीतते ऐलकों, आर्यिकाओं, रत्नत्रयी सम्यक्त्वी तपस्वियों मुनियों ने दिगम्बरी वीतरागी तपस्या क्रमशः की है ।

(2) जंबूद्वीप के धर्म संघ में चार लिंग हैं ।

(3) अरहंत की शरण में आत्मस्थ अष्टापद प्राणी भवघट तिरने दो धर्मध्यानों से प्रगति करते बारह भावना भाते सम्यक्त्व धारण करके आरंभी गृहस्थ भी तीन धर्म ध्यानों से स्वसंयम धारण करता है ।

(4) तपस्वी ने पंचम गति पाने 22 परीषह जय करके वीतरागी महाव्रत धारण कर अदम्य पुरुषार्थ का यश पाया और 57 प्रकार से आस्रव निरोध करके अपने मूलगुणों को प्रशस्त किया ।

(5) प्रतिमा पुरुषार्थ से दिगंबर वीतरागी तपस्यारत होते हैं ।

(6) त्रिगुप्ति धारण करके पुरुषार्थी पक्षियों की तरह दो धर्म ध्यानी जीव भी निश्चय—व्यवहार धर्म की शरण ले लेते हैं और छत्रधारी राजा बनकर कुछ भवों में आरंभी गृहस्थ की स्थिति से उठकर अरहंत पद पाने के लिए गृह त्यागकर दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति करके केवली की शरण में सल्लेखना, चतुराधन पूर्वक करते हैं ।

(7) अरहंत बनने वाले दो शुक्लध्यानी रत्नत्रयी हैं ।

(8) मृत भंवरे को देख तीर्थंकर बनने वाले दो क्रमोन्नतिक शुक्लध्यानी पूर्व भवों में सामान्य तपस्वी तथा आर्यिका थे जो आरंभी गृहस्थ होकर भी अरहंत भक्त, स्वसंयमी थे ।

(9) कुछ नहीं ।

(10) भवचक्र से पार होने दो शुक्लध्यानी पंचाचारी सल्लेखी पंचाचार लीन रत्नत्रयी श्रमण थे जो वीतरागी तपस्यारत थे।

(11) भवघट से तिरने वाले दो धर्म ध्यान धारी सचेलक तपस्वी ने पुरुषार्थ उठाकर प्रथम प्रतिमाएं धारण की पश्चात् रत्नत्रयी महाव्रती का पुरुषार्थ किया। पुनः पुरुषार्थ उठाकर वे वीतरागी तपस्या में लीन हुए और स्वसंयमी बनकर ढ़ाईद्वीप में चतुराधक बने।

(12) अर्धचक्री ने सल्लेखना लेकर ढाईद्वीप में चारों कषायों को समूल नाश किया और पंचपरमेष्ठी भक्ति के आधार पर ही बढ़ते हुए महामच्छ सा उत्तम संहनन प्राप्त करके हर उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में अष्टकर्मों को नाशने चार गतियों में वीतरागत्व की महिमा को जानते हुए अष्टकर्मों को सल्लेखना से नाशने रत्नत्रयी जम्बूद्वीप में वीतरागी तपस्या की ।

(13) महामत्स्य के संहननी जीव हर उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में अष्ट कर्माधीन चार गतियों में खोते अंततः आत्मस्थ हो वीतरागी तपस्या तपते रहे हैं।

(14) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों से दो शुक्लध्यानों तक की साधना तपस्वी तपस्विनी/ऐलक, पंचमगति की प्राप्ति के लिए वीतरागी तपस्या करते हैं ।

(15) पंचमगति की भावना भाते हुए अर्धचक्री ने अष्टापद जैसा पुरुषार्थ बनाया ।

(16)(अ) 12 तप तपते युगल बंधु तपस्वियों ने वीतरागी साधना, मन वचन काय की आत्मस्थता से छत्रधारी राजा होकर भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार गतियों से बचने का उपाय करके पंचमगति पाने हेतु पुरुषार्थ द्वारा की।

(ब) यह हर कालार्ध के दो आरों में घटा है।

(17) निकट भव्य ने अंतहीन गठान मेटते हुए पंचम गति के लिए वीतरागी तपस्या हेतु मन वचन काय से आत्मस्थता स्वीकारते चातुर्मास में पंचाचारी तपस्या त्रिलोकीनाथ सिद्धप्रभु के चरणों में की ।

(18) अरहंत की शरणागत स्वसंयमी एक आरंभी गृहस्थ था जिसने चार धर्मध्यानों सहित संघ नेतृत्व किया ।

<u>page No. CIV 19 -40</u>

(19) भवघट तिरने दो धर्मध्यानी भी चार शुक्लध्यानों की भावना भाते तपस्वी बनकर स्वसंयम और इच्छा निरोध करते हैं ।

(20) रत्नत्रयी जंबूद्वीप में शिखर तीर्थ पर रत्नत्रयी वातावरण में आरंभी गृहस्थ ने संथारा लेकर पंचम गति हेतु सल्लेखना धारी और रत्नत्रयी पंचाचारी सल्लेखना वीतरागी तपस्या सहित की ।

(21) पुरुषार्थी सल्लेखी आत्मस्थता से वीतरागी तपस्या करते हुए छत्रधारी राजा, सचेलक ऐलक/आर्यिका बनकर भी महामत्स्य के उत्तम संहनन की तरह दृढता से उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी में अष्टकर्मों द्वारा उपार्जित चार गतियों के कष्ट झेलता वीतरागी तपस्या करता है ।

(22) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने गुणस्थानोन्नति करके रत्नत्रयी वीतरागी दिगम्बर जिनलिंगियों की शरण में वीतरागी तपस्या की ।

(23) निकट भव्य ने दो शुक्ल ध्यानों की प्राप्ति हेतु रत्नत्रयी तपस्वी बनकर (महाव्रत धारण) चतुराधकी समाधिमरणी सल्लेखना का पुरुषार्थ उत्तरोत्तर बढ़ाया और वीतरागी तपस्या की ।

(24) अदम्य पुरुषार्थी बनकर सल्लेखी ने आत्मस्थता सहित वीतरागी तप किया और सम्यक्त्वी तपस्वी बन छत्रधारी राजा से भी रत्नत्रय धारी महाव्रती बनकर वीतरागी तपस्या की ।

(25) सप्त तत्त्व चिंतन द्वारा चतुराधन करना ।

(26) पंचमगति हेतु अतिदृढ़ स्वसंयमी बन दो शुभध्यानों के धारी आरंभी गृहस्थ ने भी निश्चय –व्यवहार धर्म आराधक बनकर वीतरागी तप साधना की ।

(27) निकट भव्य ने सल्लेखना धारण कर महामत्स्य सा वज्रवृषभनाराच संहनन पाकर उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालों में वीतरागी महाव्रती तपस्या समाधिमरण चतुराधन सहित करते वीतरागी तप किया है।

(28) अरहंत पद के भावी ने जम्बूद्वीप के भरत ऐरावत क्षेत्रों में दो धर्म ध्यानों से ही समाधिमरण चतुराधन सहित भाते रत्नत्रयी महाव्रत धारणकर वीतरागी तपस्या की है।

(29) अदम्य पुरुषार्थी ने सल्लेखना धारणकर आत्मस्थ वीतरागी तपस्या निश्चय–व्यवहार धर्म सहित तीसरे शुक्लध्यान में तीर्थंकर प्रकृति को पाया ।

(30) आरंभी गृहस्थ ने तीन धर्म ध्यानों सहित स्वसंयम धारण कर सल्लेखना करते निश्चय–व्यवहार धर्म की चारों अनुयोगों के अध्ययन सहित शरण ली ।

(31) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने चारों धर्मध्यान प्राप्तकर स्वसंयम धारा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(32) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने स्वसंयम धारा और स्वसंयम बढ़ाते हुए (युगल बंधुओं की तरह) पंचाचार करते तपस्वी बनकर स्वसंयम बढ़ाया ।

(33) निकट भव्य ने रत्नत्रय बढ़ाते घटाते अष्ट कर्म जन्य चतुर्गति भ्रमण को निश्चय व्यवहार धर्म की शरण में चतुराधन से दो धर्मध्यानी भूमिका से समताधारी तपस्वी बन, निकट भव्यत्व बढ़ाते हुए वीतरागी तपस्या की ।

(34) संघस्थ/प्रतिमाधारी ने वीतरागी तपस्या की ।

(35) निकट भव्य ने भरतक्षेत्र में पंच परमेष्ठी आराधना तीन धर्म ध्यानों से करते हुए रत्नत्रय पाला ।

(36) पक्षी ने भी तीर्थंकर के पादमूल में चारों कषाऐं त्यागकर तपस्यारत होने का पुरुषार्थ उठाया और भवघट से तिरा।

(37) निश्चय-व्यवहार धर्म की तुला की शरण लेकर पंच परमेष्ठी आराधक ने महाव्रती बन पंचाचार पालते हुए भवचक्र को पार किया ।

(38) संघस्थ हो षट् आवश्यक करते स्वसंयमी ने आरंभी गृहस्थ की भूमिका को भी धर्म ध्यान द्वारा उन्नत किया ।

(39) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामी ने केवली की तप साधना में निश्चय-व्यवहार धर्म सहित चार धर्म ध्यानों तक उठकर अंत में चारों शुक्लध्यान पाने का पुरुषार्थ किया ।

(40) छत्रधारी राजा ने संघाचार्य बनकर चतुराधन करते हुए वीतरागी तपस्या की ।

page No. CV 41 - 69

(41) पुरुषार्थवान सल्लेखी ने वीतरागी तपस्या आत्मस्थ होकर तीन धर्म ध्यानों से तपस्वी बनकर स्वसंयम धारा ।

(42) आरंभी गृहस्थ होकर महाव्रती की सेवा करते दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने सम्यक्त्वी तपस्वी बनने महाव्रत की पिच्छी धारने का पुरुषार्थ उठाया और दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति हेतु वीतरागी तपस्या की ।

(43) पुरुषार्थी ने प्रतिमा पुरुषार्थ और सामान्य पुरुषार्थ से निश्चय-व्यवहार धर्मी संघाचार्य की शरण ली ।

(44) छत्रधारी राजा ने निकट भव्य बनकर वीतरागी तपस्या की ।

(45) पुरुषार्थी अपने रत्नत्रय को सुरक्षित करते हुए निश्चय-व्यवहार धर्म वाले संघ में राजा के संरक्षण में सुरक्षित रहा ।

(46) आर्यिकाओं की गुणस्थानोन्नति स्वसंयम और पंच परमेष्ठी आराधना से होती है ।

(47) अष्टापद जैसा भव्य जीव दो धर्म ध्यानों से रत्नत्रय का आधार बनाकर अपने भव को सुरक्षित करके निश्चय-व्यवहार धर्म की शरण में चतुराधन करता दो धर्म ध्यानों से उठकर दूसरे शुक्लध्यान तक समताधारी तपस्वी और रत्नत्रयी, तपस्वी बन निकट भव्य बनता है ।

(48) अष्टकर्म जन्य चतुर्गतियों से पार पाने रत्नत्रय साधना हेतु दो धर्म ध्यानों से दूसरे शुक्लध्यान तक जाने के लिए तपस्वी को चारों कषाऐं त्यागना पड़ती हैं ।

(49) रत्नत्रयी साधक भी पंचम गति को भाते कभी-कभी आर्त रौद्र परिणामों से संघ के नेता रूप को धर्म ध्यानी सचेलकों की तरह अपने परिणामों कों आत्मस्थता के बनाकर महामत्स्य सा उत्तम संहनन रखता है और महाव्रती बनकर निश्चय-व्यवहार धर्म का वीतराग तप करता है ।

(50) निश्चय-व्यवहार धर्म की शरण और पंच परमेष्ठी आराधन स्वसंयमी अणुव्रती तपस्वी को दो धर्मध्यानों से ही चतुराधन तक ले जाती है और वह रत्नत्रयी महाव्रती बनकर वीतरागी तपस्या करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(51) पंच परमेष्ठी आराधन द्वारा रत्नत्रय से पंचमगति और गुणस्थानोन्नति भी संभव हो जाती है और दो धर्मध्यान वाले राजा का संरक्षण रत्नत्रयी तपस्वियों को प्राप्त होता है ।

(52) वीतरागी तपस्वी के रत्नत्रयी वातावरण में निकट भव्य, निश्चय–व्यवहारी धर्म की शरण और चतुराधन का सहारा लेकर समाधिमरण कर्ता दो धर्मध्यानों के रहते भी तपस्वी छत्रधारी राजा एवं संघाचार्य की रत्नत्रयी शरण पा जाता है ।

(53) सचेलक ऐलक भी समता भावी तपस्वी बनकर वीतरागी तपस्या द्वारा चतुर्गति भ्रमण पर रोक लगा सकता है ।

(54) खड़गासित कायोत्सर्गी तपस्वी का समाधिमरण शिखर तीर्थ पर षट्द्रव्यों का चिंतन करते भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामित्व से पंच परमेष्ठी की शरण में पहुंचा देता है ।

(55) अरहंत और सिद्ध अवस्थाऐं पंचाचार से ही प्राप्त होती हैं ।

(56) भक्तिरत साधक आरंभी गृहस्थ है जो छत्रधारी राजा की शरण में सल्लेखना धार अरहंत भक्ति में लीन तीसरे धर्मध्यान में लीन होता है।

(57) भवघट से तिरने वाले दो धर्मध्यानों के स्वामी ने छत्रधारी की शरण ली और वीतरागी तपस्वी का तप करते हुए चतुर्गति भ्रमण को रोकने का उपाय किया ।

(58) समाधिमरण के साधक ने सिद्धप्रभु की शरण लेकर चतुराधन करते हुए दो धर्मध्यानों से चतुराधक सल्लेखना ली और युगल श्रृंगी, मांगीतुंगी तीर्थ में जिनलिंगी बनकर वीतरागी तपस्या की ।

(59) चार घातियों को नाश करने दो धर्मध्यानों से साधक ने पुरुषार्थ उठाया और स्वसंयमी बना ।

(60) अष्टापद की तरह पुरुषार्थ उठाते अर्धचक्री ने रत्नत्रय धारण करके दो धर्म ध्यानों से उठ वीतरागी तपस्वी की शरण ली और रत्नत्रयी वातावरण बनाते हुए वीतरागी तप किया ।

(61) भवचक्र से पार उतरने और सिद्धत्व की शरण में आरंभी गृहस्थ ने गृहत्याग कर चतुराधन किया ।

(62/63/64) अंकन रहित है।

(65) घातिया चतुष्क को क्षय करने अर्धचक्री ने दिगम्बरी मुनि की शरण में जाकर दो धर्मध्यानों से ऐलक व पश्चात् मुनिव्रत धारणकर आरंभी गृहस्थ की स्थिति से तीन धर्मध्यानों द्वारा भी स्वसंयम साधा ।

(66) गुणस्थानोन्नति करके तद्भवी मोक्षभावी ने तीर्थंकरत्व के लिए दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण ले चारों कषायों को त्यागकर तपस्या की । गुणस्थानोन्नति हेतु उसने षट् द्रव्य चिंतन और सल्लेखनामय वातावरण में वीतरागी साधना की ।

(67) त्रिलोकीनाथ सिद्धप्रभु की शरण में महामत्स्य जैसा संहननी भवघट तिरने तथा तीर्थंकर प्रकृति बांधने और सिद्धत्व प्राप्त करने की योग्यता बना सकता है ।

(68) केवलत्व पाने दो धर्मध्यानों के स्वामी ने तपस्वी बन आरंभी गृहस्थ की तीन धर्मध्यानी स्थिति से उन्नति की ।

(69) अर्धचक्री ने रत्नत्रयी पंचाचार द्वारा तीर्थंकर प्रकृति कर्मबंध की तप साधना की ।

<u>page No. CVI 70 -104</u>

70) वीतरागी तपस्वी की चतुराधन प्रभावित अर्धचक्री ने पंचपरमेष्ठी आराधना की।

(71) भवघट तिरने आर्तरौद्र ध्यानी आरंभी गृहस्थ ने अणुव्रती तपस्वी के चरणों में नौ पदार्थों और चतुराधन का ज्ञान पाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(72) गुणस्थानोन्नति करते मुनि एवं आर्यिका पंच परमेष्ठी की शरणागत उत्तरोत्तर पुरुषार्थ बढ़ाते और रत्नत्रयी तपस्वी बनकर पुरुषार्थमय सीमाऐं बना आत्मस्थ वीतरागी तपस्या करते हैं और क्रमोन्नति से रत्नत्रयधारी तपस्वी बनते हैं।

(73) अस्पष्ट।

(74) भवचक्र से पार उतरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने (आयु को छोड़) 7 कर्मों के नाशन का पुरुषार्थ करने के लिए वीतरागी तपस्या की ।

(75) एकदेश स्वसंयमी ने मन को स्थिर करते हुए गुणस्थानोन्नति की ।

(76) भवचक्र से पार उतरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने चार धर्म ध्यान की स्थिति हेतु रत्नत्रय का पालन किया ।

(77) दो धर्मध्यानों के स्वामी ने सल्लेखना का वैयावृत्ति झूला पाकर रत्नत्रयी साधना के भाव किए। उसका पुरुषार्थ पक्षी सा निरीह उठने गिरने लगा, वह दो धर्मध्यानों सहित तपस्या करता ढाईद्वीप में दूसरे शुक्लध्यान तक उठकर षट् आवश्यक पालने की इच्छा करता है ।

(78) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानी सल्लेखी ने अणुव्रत धारण करके वीतरागी तपस्या की ।

(79) भवचक्र से पार उतरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने दूसरे शुक्लध्यान की भूमिका तक तपस्वी, आर्यिका बनते हुए बारह भावनाऐं भाईं और शासक की छांह में निश्चय–व्यवहार धर्मी संघाचार्य के रूप में संरक्षण पाया ।

(80) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों से ही प्रारंभ करते हुए, जम्बूद्वीप में रत्नत्रय सेवी तथा आर्यिका बन आत्मस्थ हो ढाई द्वीप में रत्नत्रय धारण करते हैं।

(81) संघाचार्य के रत्नत्रय और आत्मस्थ वीतराग वैराग्य से दो धर्म ध्यानों के स्वामी प्रभावित होकर रत्नत्रयधारी एकदेश व्रती, सल्लेखी और वीतरागी तपस्वी बनते हैं ।

(82) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी उन्नति करके दूसरे शुक्लध्यान की स्थिति तक पहुंचने के लिए तपस्या करके पुरुषार्थ उन्नतकर वीतरागी तपस्या करते और ध्यानोन्नति करते हैं ।

(83) अष्टापदों के पुरुषार्थ की तरह (युगल बंधुओं ने) वीतराग तपस्या की ।

(84) दोनों तपस्वी युगलों ने वीतराग तपस्या करते मनवचनकाय की समता से पंचमगति की साधना की ।

(85) भवघट से तिरने दो शुक्लध्यान आवश्यक होते हैं ।

(86) भवघट से तिरने दो शुक्लध्यान और सल्लेखना सहित वीतराग तपस्या आवश्यक होती है ।

(87) अरहंत और संघ के चारों घटों को अर्धचक्री ने रत्नत्रय पूरित होने वातावरण दिया और दो धर्मध्यानों की भूमिका छत्र धारी राजा और ऐलक बनकर धर्मध्यानी से उठकर तपस्वी बन महामत्स्य जैसा संहनन बना हर कालार्ध में चतुर्गति नाशने वीतरागी तपस्या की।

(88) भवचक्र से पार उतरने दो धर्मध्यानों के स्वामी ने रत्नत्रय साधना से आर्यिका, ऐलक, मुनिपद धारते हुए स्वसंयमी इच्छा निरोध स्वीकारा ।

(89) तपस्वी मांगीतुंगी युगल श्रृंगी पर स्थित निश्चय–व्यवहार धर्मी वीतरागी तपस्वी है ।

(90) पंचमगति का साधक आरंभी गृहस्थ है जिसने वीतरागी तपस्या स्वीकार करके एक भवतारी गुणस्थानोन्नति की ओर मोक्ष हेतु तीर्थंकरत्व और सिद्धत्व का पुरुषार्थ किया ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(91) भवघट से पार उतरने दो धर्मध्यानों के स्वामी ने तीन शुक्लध्यानों तक उठकर क्रमोन्नति से केवली पद पाया ।

(92) अर्धचक्री ने रत्नत्रय धारते हुए अपने वातावरण को सुरक्षित, संकीर्ण कर लिया और पंच परमेष्ठी आराधना से पुरुषार्थ बढ़ाकर वीतरागी तपस्या की ।

(93) (1) उस वीतरागी की स्थिति स्वसीमित बतख पक्षी के समान थी जो वैराग्य में वीतरागी दिगम्बर के समान प्रभावी था।

(2) सचेलक तपस्वी

(3) रत्नत्रयी वातावरण वीतराग तप का था ।

(94) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने पंचाचार करते हुए तपस्या स्वीकारी और आरंभी गृहस्थ होते हुए भी तीन धर्मध्यानों से स्वसंयम स्वीकारा ।

(95) अष्टकर्मों से प्रभावित चतुर्गति में भ्रमण कर रहे जीव ने सल्लेखना स्वीकार कर आत्मस्थ तपस्वी होकर निश्चय–व्यवहार धर्मी बनकर वीतरागी तपस्या स्वीकारी ।

(96) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने ऐलकत्व स्वीकारा और भव्यत्व पा गुणस्थानोन्नति की ।

(97) सिद्धत्व की शरण लेकर भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों की भूमिका से उठकर ऐलकत्व धारने वाले तपस्वी ने रत्नत्रयी दस धर्मों का रत्नत्रयी सेवन करते हुए वीतरागी तपस्या की ।

(98) भवघट से तिरने निकटभव्य ने दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से छत्रधारी प्रभु की रत्नत्रयी वातावरणी शासकीय रक्षा दी।

(99) (अ) दो धर्मध्यानों से ढ़ाईद्वीप में वीतरागी महाव्रती द्वारा पंचमगति और रत्नत्रय की साधना से तपस्वी वीतरागी तपस्या का वातावरण बना ।

(ब) निकट भव्य का रत्नत्रयी भव ।

(100) अष्टकर्म जन्य चतुर्गति से बचने सल्लेखी ने पुरुषार्थ उठाकर महामत्स्य सा संहनन बनाकर वीतराग तप धारा।

(101) (अ) स्वसंयमी बन महामत्स्य सा संहनन बनाकर 15 प्रमादों को टाल 12 व्रतों की तपस्या की ।

(ब) अष्टकर्म जन्य चतुर्गति भ्रमण को जिनलिंगियों ने क्षत किया।

(102) शिखर जी / कैलाश जैसे शिखरों पर ही अष्टकर्म जन्य चतुर्गति को तप द्वारा क्षय किया जाता है ।

(103) भवघट से तिरने तीर्थंकर प्रकृति वाले तपस्वियों ने स्वसंयम धारा ।

(104) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण में सम्यक्त्वी आत्मस्थ तपस्या धारकर आरंभी गृहस्थ के तीन धर्म ध्यान प्राप्त करके रत्नत्रयी दशधर्म सेवन करते हुए वीतराग तपस्या को तपा।

<u>page No. CVII 105 -142</u>

(105) भवचक्र से पार उतरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने बारह भावना भाते निश्चय–व्यवहार धर्म के सहारे सम्यक्त्वी तपस्या के भाव बनाते हुए आरंभी गृहस्थ की स्थिति से तीन धर्मध्यान उठाते हुए स्वसंयम धारा ।

(106) अष्टकर्म जन्य चार गतियों में भटकते संसारी ने पंचम गति का साधन बनाकर वीतरागी तपस्या में आत्मस्थता की और लोकपूरण किया।

(107) समाधिमरण करते सल्लेखी ने आत्मस्थ वीतरागी तपस्वी भाव से सम्यक्त्व धारते निकट भव्यत्व पाकर वीतराग तप किया।

(108) पुरुषार्थी ने तीर्थंकर प्रकृतिदायी सल्लेखना हेतु ऐलक रहकर निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण में गृह त्यागकर वीतरागी तप किया ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(109) भवचक्र से छुटकारा पाने और सिद्धत्व पाने के लिए छत्रधारी राजा ने ऐलकत्व धारणकर क्रमशः वीतराग तपस्या हेतु मुनिव्रत धारा ।

(110) भवचक्र से पार होने दोनों निकट भव्यों (युगल बंधुओं ने) तीर्थंकर प्रकृति प्राप्त करने का उद्यम किया और आत्मस्थता पाने पंच परमेष्ठी आराधन किया ।

(111) रत्नत्रय को पालते हुए स्वसंयमी ने चार गतियों को शेष करने, पंचमगति पाकर भवघट से पार उतरने का साधन किया।

(112) वीतरागी तपस्वी दिगम्बर मुनि थे ।

(113) तीसरे शुक्लध्यान को प्राप्त करने वाले ने सप्त तत्त्व का चिंतन करते हुए पंचमगति पाने वीतरागी तपस्या की ।

(114) भवचक्र से तिरने वाले पूर्व में दो धर्मध्यानों के स्वामी ने दूसरे शुक्लध्यान (तक की गुणस्थानोन्नति) के लिए तपस्वी बन पुरुषार्थ उत्तरोत्तर करते हुए वीतरागी तप किया ।

(115) भवघट से तिरने वाले दो धर्मध्यानों के स्वामी ने आरंभी गृहस्थ का संहनन महामत्स्य जैसा उत्तम वज्रवृषभनाराच पाकर वीतरागी तपस्या करते मुनिव्रत धारा ।

(116) तीन धर्मध्यानों के स्वामी ने स्वसंयमी बनकर रत्नत्रयी महाव्रत धारा और वीतरागी तपस्या करते हुए षट् द्रव्यों का चिंतन किया ।

(117) दशधर्मों के सेवी सम्यक्त्वशील तपस्वी ने महाव्रत धारण करके निश्चय व्यवहारी चतुर्विध संघाचार्य के पास शरण ली

(118) घातिया चतुष्क नाश द्वारा भवचक्र से पार होने वालो ने अणुव्रत धार अष्ट मदों को त्याग वीतरागी तप किया ।

(119) समाधिमरण करने वाले वीतरागी तपस्वी वीतरागत्व वाले निकट भव्य थे ।

(120) दो धर्मध्यानों के स्वामी ने तपस्या को पुरुषार्थ से उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए वीतरागी तप किया ।

(121) नवदेवता पूजक निकट भव्य ने दो धर्म ध्यानों के स्वामी होते हुए रत्नत्रय पालकर निश्चय व्यवहारी चतुर्विध संघ को स्थापित किया ।

(122) गृहस्थ ने वीतरागत्व के प्रभाव में अरहंत पद के सम्मुख चारों कषाऐं त्यागकर चार धर्मध्यानी पुरुषार्थ उठाकर वीतरागी तपस्या की।

(123) गुणस्थानोन्नति के लिए सप्त तत्त्व चिंतन और वीतरागी तप आवश्यक है ।

(124) लिपि रहित है।

(125) समाधिमरण करने वाले चतुराधक वीतरागी तपस्वी हैं जिन्होंने आत्मस्थ होकर निश्चय--व्यवहार धर्म की शरण लेकर चारों कषाऐं त्याग महाव्रत धारा ।

(126) भवचक्र से पार उतरने रत्नत्रयी वातावरण हेतु दो धर्म ध्यानों से दूसरे शुक्लध्यान तक की यात्रा शाकाहार और वीतरागी तपस्या से ही संभव होती है ।

(127) भवघट तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी सल्लेखना तत्पर चतुर्दिक संघीय निश्चय व्यवहारी धर्माचार्य की शरणागत है।

(128) आरंभी गृहस्थ भी चतुराधन और रत्नत्रय को अंगीकार करके तीर्थंकर प्रकृति बांधता है ।

(129) मुनि एवं आर्यिका की गुणस्थानोन्नति पुरुषार्थ और तीन धर्म ध्यानों से उठती है जो वे निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में वीतरागी तपस्या करके प्राप्त करते हैं ।

(130) दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से दूसरे शुक्लध्यान तक के स्वामित्व की यात्रा रत्नत्रय के सहारे नदी तट पर तीर्थंकर के पादमूल में तप करते तपस्वी को पंचम गति का साधन जुटाने, घातिया चतुष्क को नाश कराने वाला मात्र वीतरागी तप मार्ग है ।

(131) भवघट से तिरने चारों कषायें त्याग सल्लेखी ने दुर्ध्यानों को त्याग रत्नत्रय धारा ।

(132) निश्चय व्यवहार धर्मसंघीय तीनों साधु वर्ग रत्नत्रय का सेवन करते निश्चय–व्यवहार धर्म सहारे वीतरागी तप करते हैं

(133) चार धर्मध्यानी रत्नत्रयी कीर्तिवान होता है ।

(134) भवचक्र से पार उतरने सल्लेखी तपी निकट भव्य वीतरागी तपस्वी बनता है ।

(135) जंबूद्वीप में, छत्रधारी राजा भी आत्मस्थ होकर निकट भव्यत्व पाकर पंच परमेष्ठी की आराधना करता हैं ।

(136) निकट भव्य ने सल्लेखना धारण कर चतुर्गति को नाश करके पंचमगति का प्रयास किया ।

(137) अदम्य पुरुषार्थी रत्नत्रयी तपस्वी वीतरागी तपस्या ही तपते हैं ।

(138) पुरुषार्थी पंच परमेष्ठी आराधक ही धर्म सेवी है ।

(139) (अ) पंचमगति हेतु सल्लेखी दो धर्म ध्यानों से रत्नत्रय धारकर शिखर तीर्थ जाकर निकट भव्यत्व प्राप्त कर वीतरागी तपस्या करता है।

(ब) षट् आवश्यक ही वीतराग धर्म का सार है जो भवघट पार कराते हैं।

(140) पुरुषार्थी सल्लेखी आत्मस्थ वीतरागी तपस्वी है और उपशमी तप साधना हेतु मांगीतुंगी युगल श्रृंगी पर जिनलिंगियों की सेवारत वीतरागी तपस्या करता है।

(141) अरहंत (खण्डित सील) ।

(142) अर्धचक्री ने आरंभी गृहस्थ होकर जिनशासन के जिनलिंगियों की तरह कभी हार न स्वीकारते दो धर्मध्यानों से निश्चयव्यवहारी रत्नत्रयी झूले में सम्यक्त्वी बने चतुराधक को सेवा देते दशधर्मों वाली तपस्या की और वीतरागी तप का वातावरण बनाया ।

<u>page No. CVIII</u>

(143) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामित्व से उठकर चारों धर्म ध्यानों का स्वामित्व और रत्नत्रय की साधना चाहिए।

(144) सिद्धत्व के लिए तीर्थंकर प्रकृति बांधने वाली गुणस्थानोन्नति चाहिए जो भवघट से तिरावे ।

(145) अदम्य पुरुषार्थी सल्लेखी की वीतरागी आत्मस्थता देखकर आरंभी गृहस्थ भी निश्चय–व्यवहार धर्म में शरण ले वीतरागी तपस्वी बनता है ।

(146) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामी ने सप्त तत्त्व चिंतन करते हुए पंचमगति भाई और ढाई द्वीप में दूसरे शुक्ल ध्यान हेतु महामत्स्य सा संहनन उपार्जित कर साधना की ।

(147) रत्नत्रयी जंबूद्वीप में दुर्ध्यानों को त्याग, राजा ने तीर्थंकर प्रकृति को बांध आरंभी गृहस्थ होते हुए तीन धर्मध्यानों से उठकर महाव्रत धारा ।

(148) भवचक्र को पार करने तीन धर्मध्यानी ने लोकपूरणी (केवली के) समुद्घात से पुण्य का पुरुषार्थ बढ़ाते वीतरागी तप किया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(149) चार गतियों को हटाने सल्लेखी ने निश्चय–व्यवहार धर्म के द्वारा सम्यक्त्वी तपस्वी बन आत्मस्थता ली और पुरुषार्थ बढ़ाते हुए वीतरागी तपस्या से सल्लेखना का पुरुषार्थ किया ।

(150) सल्लेखी भवान्तरों में रत्नत्रयी दूसरे शुक्लध्यान का स्वामी बना जिसने शाकाहारी बनकर वीतरागी तपस्या की है।

(151) स्वसंयमी चतुराधक, कैवल्य भावी है जिसने दूसरे धर्म ध्यान के स्वामित्व से क्रमोन्नति से पंचाचार करते तपस्या की और घातिया चतुष्क नाशने वीतरागी तपस्या की ।

(152–153) खण्डित है ।

(154) तपस्वी निकट भव्य वीतरागी साधक है ।

(155) सल्लेखी वीतरागी जिन शासन द्वारा संरक्षित आर्यिका एवं तपस्वी हैं जिन्होंने स्वसंयम धारा ।

(156) सम्यक्त्वी आत्मस्थ तपस्वी है जिसने चारों कषाऐं त्याग कर बारह भावना भाते वीतरागी तप किया है ।

(157) भवघट से तिरने वाला दो धर्म ध्यानों का स्वामी पंच परमेष्ठी आराधक एवं रत्नत्रयधारी था ।

(158) भवघट से तिरने के लिए दो धर्म ध्यानों के स्वामित्व से छत्रधारी राजा (छत्री) ने निकट भव्यत्व पाकर बाधा के रहते भी गुणस्थानोन्नति की ।

(159) दशधर्मों और व्रतों को साधते हुए आत्मस्थ वीतरागी साधक ने चौथे धर्मध्यान और रत्नत्रय की साधना की ।

(160) पुरुषार्थी सल्लेखी ने आत्मस्थ वीतरागी तपस्या द्वारा शिखरतीर्थ पर वीतरागी तपस्या द्वारा अरहंत पद पाया।

(161) रत्नत्रयी जम्बूद्वीप में जिनशासन के जिनलिंगी पुरुषार्थी,मन को संयमित करने वाले आत्मस्थ,वीतरागी तपस्वी होते हैं।

(162) भवघट से पार उतरने, सिद्धत्व पाने, सल्लेखी ने वैयावृत्य का झूला पाया (सेवा पाई) और चारों कषायों को त्यागकर निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण लेकर वीतरागी तपस्या की।

(163) गुणस्थानोन्नति करते हुए शिखरतीर्थ पर छत्रधारी स्वसंयमी (राजा) ने पंचपरमेष्ठी की आराधना की ।

(164) खण्डित है ।

(165) वातावरण को सहेजते युगल तपस्वी बंधुओं ने महाव्रत धारण करके दो धर्मध्यानों के स्वामित्व की स्थिति से ही सम्यक्त्व संभाला था।

(166) जम्बूद्वीप में रत्नत्रय पालन।

(167) रत्नत्रयी जम्बूद्वीप में वैराग्य तप इच्छुक आरंभी गृहस्थ।

(168) अरहंत की शरणागत आरंभी गृहस्थ तीन धर्मध्यान युत होकर इच्छा निरोध करते हैं।

(169) जम्बूद्वीप और धातकीखण्ड में वीतराग तपस्वी तप करते हैं।

(170) निकटभव्य सल्लेखी आत्मस्थ तपस्वी, आरंभी गृहस्थ तीन धर्मध्यानी है जिसने स्वसंयम धारा।

(171) अरहंत भक्ति वाले निश्चय व्यवहारधर्मी संघाचार्य है।

(172) पुरुषार्थी महाव्रती पंचमगति इच्छुक वीतरागी तपस्वी है जिसने निश्चय व्यवहार धर्म की शरण लेकर तपस्या हेतु इच्छा निरोधी स्वसंयम स्वीकारा।

(173) रत्नत्रयी जम्बूद्वीप में सम्यक्त्वी तपस्वी इच्छानिरोधी और पंचाचारी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(174) सर्पसीढ़ी खेल जैसी गुणस्थानोन्नति करते सल्लेखी ने दो धर्मध्यानों की भूमिका से संघाचार्य की शरण ली और रत्नत्रय को पालने लगा।

(175) वीतरागी आत्मस्थ तपस्वी 15 प्रमाद रहित बनकर 15 योगों को टालकर रत्नत्रयी जम्बूद्वीप में रत्नत्रय और चतुराधक बनकर साधना करता है।

(176) रत्नत्रयधारी तपस्वी एवं जिनसिंहासन के जिनलिंगी, अदम्य पुरुषार्थ से स्वसंयम धारते हैं।

(177) षट् द्रव्य चिंतक चारों कषायों को त्याग कर तपस्वी बनते हैं।

(178) भवचक्र से पार होने दो धर्मध्यानों के स्वामी चार अनुयोगी निश्चय–व्यवहार धर्मी संघाचार्य की शरण में जाकर रत्नत्रय दशधर्म का पालन करते वीतरागी तप तपते हैं ।

(179) महामत्स्य सा उत्तम संहनन पाकर कैवलत्व की प्राप्ति आत्मस्थ वीतरागी तपस्वी तीन धर्मध्यानों से प्रारंभ हो जाती है और चतुर्गति भ्रमण को वीतराग तपस्या द्वारा मेटा जाता है।

(180) चतुर्गति भ्रमण नाशने दशव्रतों को पालते युगल बंधुओं जैसी दूसरे धर्मध्यान से सचेलक साधकों ने तपस्वी बनकर निकट भव्यता पाई।

(181) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानी आरंभी गृहस्थ ने महामत्स्य सा संहनन पाकर वीतरागी तप किया ।

(182) बर्र जैसी लगन से तद्भवी मोक्षार्थी ने आत्मस्थ वीतरागी बन पंचाचारी छत्र धार तपस्या की ।

(183) गृह से ही शाकाहार अपना कर आत्मस्थी ने वीतरागी तपस्या के लिए महाव्रत धार वीतराग तप किया।

(184) लिपि रहित।

(185) अरहंत पद के लिए इस अवसर्पिणी में पुरुषार्थी ने तीर्थंकर प्रकृति बांधी।

(186) अदम्य पुरुषार्थी ने "तीर्थंकर प्रकृति" के लिए पुरुषार्थी सल्लेखना धारकर शिखरतीर्थ पर भवचक्र से पार होने का उद्यम किया ।

(187) अरहंत की शरण में रत्नत्रयी सल्लेखी ने वीतरागी तपस्या की ।

(188) निकट भव्य आत्मस्थ तपस्वी अपने वातावरण को पुरुषार्थ से वीतरागी तपस्या की ओर ले जाता है ।

(189) भवचक्र से पार होने सल्लेखी ने अरहंत और तीर्थंकर पद पाए ।

(190) अवसर्पिणी के मध्य में पुरुषार्थी अर्धचकी ने रत्नत्रयी साधना करके त्रिगुप्ति द्वारा रत्नत्रयी तपस्या की ।

(191) अरहंत की शरणागत मुनि एवं आर्यिका अपनी गुणस्थानोन्नति करते स्वसंयमी बनकर पुरुषार्थी सल्लेखना धारते हैं और घातिया चतुष्क क्षय करके तीसरे शुक्लध्यान को पाकर सिद्धत्व की ओर बढ़ते हैं ।

<u>page No. CIX 192 - 257</u>

(192) भवचक्र से पार होने सल्लेखी ने पंचमगति हेतु वीतरागी तपस्या को उन्नत किया ।

(193) अष्टकर्म जन्य चतुर्गति का वातावरण संसारी ही होता है ।

(194) महामत्स्य और पशु सारे उपसर्ग पक्षियों की तरह झेल लेते हैं ।

(195) रत्नत्रयी सल्लेखी, वीतरागी, तपस्यावान हर उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में हुए हैं ।

(197) शिखर तीर्थ पर महाव्रती रहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(198) निश्चय–व्यवहार धर्मस्थ भक्त चतुराधक तपस्वी, स्वसंयमी होता है ।

(199) छत्रधारी तपस्वी (राजा तपस्वी), निकटभव्य, वीतरागी तपस्या करता है ।

(200) भवचक्र से पार होने दो धर्मध्यानों का स्वामी मन को स्थिर करके वीतरागी तपस्या करता है ।

(201) कैवल्य के लिए शिखरतीर्थ पर वीतरागी तपस्या की जाती है ।

(202) अरहंत पद के लिए आरंभी गृहस्थ और छत्रधारी राजा दोनों ही भावना भाते हैं ।

(203) भवघट से तिरने वाले तीर्थंकरों और सिद्धों ने चार गतियों को रत्नत्रय और चतुराधन से पार किया है ।

(204) रत्नत्रयी युगल बंधु (कुलभूषण–देशभूषण) पंचपरमेष्ठी आराधक थे ।

(205) सुमर्यादित ढाई द्वीप में चार अनुयोगी चतुर्विध संघाचार्य निश्चय व्यवहार धर्मी होते हैं ।

(206) दो धर्मध्यानों का स्वामी भी अपने वातावरण से समवशरण में पहुँचकर वीतरागी तपस्या करता है ।

(207) मुर्गे की बांग वाला ब्राह्म मुहूर्त्त चार धर्मध्यानों के स्वामी रत्नत्रय से बिताते हैं ।

(208) सम्यक्त्वी तपस्वी पुरुषार्थ उठाते हुए वीतरागी तपस्या करता है ।

(209) (1) दो धर्मध्यानों वाला वातावरण तीन धर्मध्यानों के स्वामी पंचम गुणस्थानियों को षट् आवश्यकों के प्रति जागृत करता एवं रत्नत्रयी वैराग्यमय वीतरागी तपस्या के लिए प्रेरित करता है ।

(2) पंचमगति के लिए महाव्रती वीतरागी तपस्या करते हैं ।

(211) समाधिमरणी सल्लेखी ने अगले भव में तपस्या करके पुनः सल्लेखना समय सप्त तत्त्व चिंतन करके पंचमगति का साधन बनाने वाली वैराग्यमय तपस्या की ।

(212) पुरुषार्थी सल्लेखी वीतरागी तपस्या से पंचमगति का साधन वीतरागता से बना लेता है

(213) छत्रधारी (राजा) भी रत्नत्रयी शासन में वीतरागी तपस्या तपते हैं ।

(214) लोकपूरणी केवली और अरहंत दूसरे शुक्लध्यान के ध्यानी तपस्वी रत्नत्रय आराधक महाव्रती वीतरागी तपस्या को निश्चय–व्यवहार धर्म से तपते हैं ।

(215) भवघट से तिरने त्रिगुप्ति धारण कर वीतरागी तपस्वी ने ढाईद्वीप में दूसरे धर्म ध्यान के स्वामी को भी वीतराग तपस्या की ओर मोड़ा ।

(216) लिपि अंकन रहित ।

(217) रत्नत्रयी साधना और वीतरागी तपस्या यही जीवन का लक्ष्य हो ।

(218) अरहंत भक्ति महाव्रती को निश्चय–व्यवहारमय धर्म से संघाचार्य की शरण में ले जाती है ।

(219) पंचमगति के लिए पंचपरमेष्ठी का ज्ञान न रखने वाला पुरूषार्थी पक्षी भी भावना भा (सकता) ता है ।

(220) तीन धर्मध्यानों वाले भी रत्नत्रय (पंचम गुणस्थान) तक की उन्नति कर सकते हैं ।

(221) भवचक से तिरकर सिद्धत्व/शुद्धत्त्व की ओर ढाईद्वीप में से ही जा सकते हैं ।

(222) गुणस्थानोन्नति, वीतरागी तपस्या, आत्मस्थता वाले को दो शुक्लध्यानों की ओर ले जाने में संघ शीर्ष के चरण, रत्नत्रय और निश्चय–व्यवहार धर्म आत्मा के संरक्षक बनते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(223) लिपि अंकन नहीं ।

(224) रत्नत्रयी वातावरण को उन्नत पुरुषार्थी वीतरागी तपस्या से जोड़ते हैं ।

(225) अदम्य पुरुषार्थ केवली पद के लिए आत्मसंयमी ही करता है ।

(226) वैयावृत्ति सल्लेखना और वीतरागी तपस्या ही इष्ट हैं ।

(227) भवभीत अष्टकर्मों को नाशने कछुए की भांति षट्द्रव्यों का चिंतन करके रत्नत्रय पालता और षट् आवश्यकों को युगल बंधुओं की तरह करता है।

(228) आरंभी गृहस्थ दो धर्मध्यानी पक्षी की भांति चार अनुयोगी, निश्चय–व्यवहारी चतुर्विध संघाचार्य की शरण में जाते हैं।

(229) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामी (चतुर्स्थानी गृहस्थ), चार धर्मध्यानी (सप्तम गुणस्थानी) रत्नत्रयी बन जाते हैं (महाव्रत धारण कर लेते है) ।

(230) ढाईद्वीप में दो धर्मध्यानों का स्वामी वीतरागी तपस्वी और महाव्रती बनने हेतु पंचपरमेष्ठी आराधन से प्रारंभ करता है

(231) पुरुषार्थमय सप्त तत्त्व चिंतन पुरुषार्थ बढ़ाते हुए वीतरागी तप से जोड़ता है ।

(232) भवघट से तिरने दूसरे शुक्लध्यान का स्वामी पंचाचारी सल्लेखना करते हुए भी वीतरागी तपस्यारत रहता है ।

(233) निकट भव्य सल्लेखी, पंचमगति की साधना वीतरागी तप और निश्चय–व्यवहार धर्माचार सहित करता है ।

(234) पुरुषार्थी सल्लेखी, आत्मस्थता से वीतरागी तपस्या दस धर्म पालते हुए वीतराग तप तपता है ।

(235) अष्टकर्म जन्य चतुर्गति भ्रमण का सल्लेखी छत्रधारी राजा, ऐलक/आर्यिकादि चारों कषायें त्यागकर तपस्या करते हैं।

(236) आत्मस्थता और वीतरागी तप ही श्रेष्ठ हैं ।

(237) (अ) घातिया चतुष्क क्षय हेतु तीर्थंकर सल्लेखी तपस्वी को महामत्स्य जैसा संस्थान वीतरागी तपस्या हेतु प्राप्त हुआ।
(ब) एक पक्षी की तरह निरीह किंतु रत्नत्रयी वातावरण वीतरागी तपस्वी का होता है।

(238) चतुर्गति भ्रमण को नाशने वाले वातावरण में गुणस्थानोन्नति हो जाती है ।

(239) भवघट से तिरने दो धर्मध्यान भूमिका हेतु परमावश्यक हैं ।

(240) षट् आवश्यकरत आरंभी गृहस्थ भी कभी घातिया चतुष्क का नाश क्रमोन्नति से कर लेता है ।

(241) लिपि अंकन खण्डित है।

(242) अवसर्पिणी के मध्य में दशधर्म व्रत पालने वाले पंचमगति की भावना भावी महाव्रती होते हैं ।

(243) षट् द्रव्य चिंतन और रत्नत्रय धारण ही श्रेय है ।

(244) मन की स्थिरता गुणस्थानोन्नति कराती है ।

(245) निकट भव्य भी भवघट से तिरने वीतरागी दिगम्बरी तपस्या करता है ।

(246) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामी चार धर्मध्यानों के स्वामी मुनि महाराजों की शरण में बैठ चतुराधन करते हैं।

(247) (अ) दो धर्मध्यानी आरंभी गृहस्थ आत्मस्थ पिच्छी धारियों की शरण में जा रत्नत्रय धार पर्वत शिखरतीर्थ पर ठहरता है।
(ब) वीतरागी तपस्वी निकट भव्य हैं।

(248) बारह व्रत, बारह तप साधते हुए युगल बंधुओं ने तीन धर्मध्यानों की स्वामित्व स्थिति से सप्त तत्त्व चिंतन करते आत्म साधना की ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(249) षट् द्रव्य चिंतन रत्नत्रय को दृढ़ करता है ।

(250) अंकन रहित।

(251) एक तपस्वी आरंभी गृहस्थ की भूमिका से उठकर तीन धर्मध्यानी बन स्वसंयम धारण करके पंच परमेष्ठी की आराधना करता है । (उनके गुणों का चिंतन करता है)

(252) जाप करना ही वीतराग तपस्या को दृढ़ करता है ।

(253) (अ) निश्चय--व्यवहार धर्म की शरण ले उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में वह शुद्धात्म श्रद्धान से आत्मस्थ हो केवली के पादमूल में शिखर तीर्थ पर जाकर वीतरागी तपस्या करता है ।

(ब) तीन धर्मध्यानों का स्वामी गृह में ही उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में भी रहा है ।

(254) आत्मस्थता एकदेश तपस्वी को स्वसंयमी बनाती है ।

(255) भवचक्र / कालचक्र (में जीव अनादि काल से भटक रहा है)

(256) अंकन नहीं ।

(257) क्रोध मान माया को त्यागकर ढाईद्वीप में वीतरागी तपस्वी तपोन्नति करते हैं।

<u>page No. CX 260 - 325</u>

(258--259) कुछ नहीं ।

(260) गुणस्थानोन्नति परक वैय्यावृत्ति हेतु सल्लेखना का झूला थामे तपस्वी ।

(261) सम्यक्त्वी की स्वसंयम साधना ।

(262) गृहस्थ का महामत्स्य जैसा संहनन वाला वीतरागी तप एवं पंचमगति साधना ।

(263) तीर्थंकर प्रकृति उच्च श्रावक व्दारा दो धर्मध्यानों से ही तप प्रारंभ हो वीतराग तप से होती है।

(265) संघाचार्य की शरण ले सल्लेखी ने तीर्थंकर प्रकृति बांधी।

(266) पंचाचार व्दारा स्वसंयमी साधक ने भवचक्र पार करने दूसरा शुक्लध्यान पाया।

(267) सल्लेखी हर उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में हुए हैं।

(268) दशधर्म पालन और निश्चय व्यवहार धर्मी चतुर्विध संघाचार्य की शरण ही तारक हैं।

(269) पंचपरमेष्ठी आराधक ने तपस्वी बन निकट भव्यत्व पाया और यथाख्यात गुणस्थानोन्नति की।

(270) तीन धर्मध्यानी रत्नत्रय पालता है।

(271) तितली जैसे चंचल मन को स्थिर करें।

(273) नवदेवता पूजन दो धर्मध्यानों से भी किया जाता है

(274) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यान भी क्रमशः केवली पद दिला देते हैं।

(275) सल्लेखी आर्यिका तीन धर्म ध्यानों के स्वामित्व से पुरूषार्थ बढ़ाकर वीतरागी तप (अगले भव में) तपने तत्पर है ।

(276) चार आराधना लीन अष्टापद जीव जैसा दृढ़ अपरास्त होने वाला, चार धर्मध्यानों का स्वामी, साधक मुनि है

(277) छत्रधारी राजा पंचाचारी तपस्वी बनकर स्वसंयमी बना ।

(278) अस्पष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(279) चतुराधक सल्लेखी वीतरागी तपस्वी है ।

(280) लिपि रहित ।

(281) दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से भी रत्नत्रय संभव है ।

(282) तीन धर्मध्यानों के स्वामी निकटभव्य ने चतुराधन किया ।

(283) छत्रधारी राजा क्षयोपशमी वीतरागी तपस्वी है ।

(284) लिपि रहित ।

(285) चार घातिया कर्मों को नाशने सल्लेखी तीर्थंकर प्रकृति वाले ने वीतरागी तपस्या की ।

(286) भवचक्र से पार होने रत्नत्रयी वैय्यावृती सल्लेखी ने वीतरागी तपस्या अरहंत पद तक पहुंचाने वाली रत्नत्रयी साधना पंच परमेष्ठी आराधना और स्वसंयम से की ।

(287) अरहंत उपासक चार अनुयोगी निश्चय व्यवहार धर्मी, चतुर्विध संघाचार्य होते हैं ।

(288) सर्प जैसे तिर्यंच ने भी आत्मस्थ होकर वीतरागी तपस्या गुणस्थानोन्नति हेतु शिखर तीर्थ पर की ।

(290) दो धर्मध्यान भी तपस्वी की भूमिका बनाते हैं ।

(291) भवघट तिरने दूसरे शुक्लध्यान तक की स्थिति आवश्यक है (12 गुणस्थान तक)

(292) संपूर्ण संघ चारों कषायों का त्यागी, प्रत्याख्यानी, यथाख्याति है ।

(293) निकट भव्यत्व आत्मोद्धारक है ।

(295) सम्यक्त्वी ने चतुराधकी सल्लेखना लेकर वीतरागी तप किया और पंचम गति का साधन केवलत्व को निश्चय–व्यवहार धर्म से किया।

(296) दो धर्मध्यानों का स्वामी पुरुषार्थी सल्लेखी वीतरागी तपस्वी है ।

(297) अस्पष्ट, बनावटी कला अंकन प्रतीत होता है ।

(298) भवघट से तिरने निश्चय–व्यवहार धर्मी जन वीतरागी तपस्या को उत्तरोत्तर बढ़ाते हैं ।

(299) रत्नत्रयी वातावरण वीतरागी तपस्वियों का ही होता है ।

(300) निश्चय व्यवहार धर्मी संघाचार्य रत्नत्रय पालते वीतराग तपस्वी होते हैं।

(301) स्वसंयमी इच्छा निरोधी पंच परमेष्ठी की आराधना करते रत्नत्रय पालते हैं

(302) (अ) पुरुषार्थी गृहस्थ सल्लेखी को वातावरण सीमित करके रत्नत्रय पालना चाहिए ।
(ब) अंतहीन भटकन से उबारने वाला एक मात्र मार्ग वीतरागी तपस्या है ।

(303) कल्पकाल से ही पिच्छीधारी निश्चय व्यवहार धर्मी पंच परमेष्ठी की आराधना करते सिद्ध की शरणागत हैं ।

(304) लिपि रहित किन्तु भैंसे (वासुपूज्य का लांछन) वाली सीलें प्रारंभ। इससे पूर्व युनीकार्न वाली थीं ।

(305) अर्धचक्री भी पंचमगति की भावना भाते, भवघट तिरने वीतराग तप तपते हैं

(306) प्रतिमाधारी घर में ही सप्त तत्व चिंतन करते पक्षी की तरह पुरुषार्थ उठाते तीन धर्मध्यानों का आधार ले तपस्वी सी साधना करने छत्रधारी की तरह निकट भव्यत्व पाकर अपने वातावरण को रत्नत्रय हेतु अनुकूल बना उठते गिरते हैं।

(307) अपठ्य, कला बनावटी प्रतीत होती है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(308) आत्मस्थ तपस्वी (युगल बंधुओं) की तरह चारों कषायें त्यागकर रत्नत्रयी वातावरण बनाते हैं ।

(309) षट् द्रव्यों का श्रद्धानी तीर्थंकर प्रकृति का पुरुषार्थी साधक सिद्धत्व (शुद्ध आत्मा) की शरण ले महामत्स्य सा श्रेष्ठ संस्थानी तपस्वी जिनसिंहासन का पाया, एक जिनलिंगी बन जाता है ।

(310) संघाचार्य की शरण में आरंभी गृहस्थ भी दो धर्म ध्यानों के स्वामित्व से उठकर चार धर्मध्यानी चतुराधक तीर्थंकर प्रकृति कर्मउपायी और रत्नत्रयी तपस्वी बनकर वीतराग तपस्या की ओर मुड़ते हैं ।

(311) चारों घातिया कर्मो का नाश पंच परमेष्ठी आराधन, पुरुषार्थ और वीतराग तपस्या से होता है ।

(312) पुरुषार्थी वातावरण पुरुषार्थी जिम्मेदार मुनि ही दे पाता है ।

(313) ऐलक / आर्यिका भी सम्यक्त्वी तपस्वी होते हैं ।

(314) चंचल हृदय रागमय होकर भी दशधर्मों का सेवन करते करते दो धर्म ध्यानों को पाकर षट् द्रव्य आस्थावान व्रती और तपस्वी बनकर स्वसंयम बनाता है ।

(315) लोकपूरणी सल्लेखी दो धर्मध्यानों से भी संघाचार्य की शरण ले रत्नत्रय धारते निश्चय व्यवहारी संघाचार्य की शरण में रहते हैं (316) चारों कषायों को त्याग करके छत्रधारी राजा तपस्या प्रारंभ करता है ।

(317) तीन धर्मध्यानों वाले वातावरण में छत्रधारी (भगवान् "जिनेश" की भक्ति करता) राजा भी तपस्या कर लेता है, और गुणस्थानोन्नति करता हुआ उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी काल भवान्तरों में निकाल देता है ।

(318) भवचक्र से पार उतरने पंचाचार करते भव्य का वातावरण वीतरागी तपस्या का होता है ।

(319) अष्टापद की तरह अपराजेय रत्नत्रयी चतुराधक पंचमगति भावी निकट भव्यत्व पाकर गुणस्थानोन्नति करता है।

(320) एकदेश तपस्वी और क्षत्री तपस्वी दोनों ने पंचमगति के लिए चतुर्गति भ्रमण छेदने रत्नत्रयी वीतरागी तप धारा ।

(321)(अ) पुरुषार्थ बढ़ाकर अरहंत के चरणों में रहने वाले छत्रधारी तथा सामान्य तपस्वी पंचमगति हेतु गुणस्थानोन्नति करते चतुर्गति भ्रमण को नाश करने सल्लेखना लेकर केवलत्व पाने वीतरागी तपस्या करते हैं ।

(ब) चार धर्मध्यानों के स्वामी (दिगम्बर मुनि पुरुष) तपस्वी निकट भव्यत्व से ढाईद्वीप को चारों कषायों रहित बनाते हैं

(322) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामी रत्नत्रयी उपासना लीन जम्बुद्वीप में शिखरतीर्थ पर जाकर निकटभव्य बनते, पंचाचार करते, रत्नत्रयधारी तपस्वी बनकर वीतरागी तप धारते हैं।

(323) खरगोश की तरह भले धीमी गति से ही किंतु कर्मों का घेरा लगातार काटते रहने वाला व्यक्ति दोनों दुर्ध्यानों को दूर करता है । वह छत्रधारी राजा हो या सामान्य तपस्वी, नदी के किनारे भी वह वीतरागी तप तपता रहता है।

(324) गृहस्थ भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी बनकर दो शुक्लध्यानों तक की तपस्या पुरुषार्थी (युगल बंधुओं की तरह) तपस्वी बनकर स्वसंयम धारण करके करता है ।

(325)(अ) पुरुषार्थी अरहंत उपासक प्रत्येक उत्सर्पिणी7अवसर्पिणी में निश्चय–व्यवहार धर्म द्वारा चारों अनुयोगों के प्रयोग से दो धर्मध्यानी होकर भी छह / षट आवश्यक पालन करके साधना प्रारंभ करता है।

(ब) जंबूद्वीप की तरह ही पुरुषार्थवान ढाईद्वीप में इस अवसर्पिणी में अरहंत आराधक, वीतरागी पंचाचारी तपस्वी बनकर रत्नत्रयी वीतराग तप तपते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(326) भवघट तिरने हेतु दो धर्मध्यानों का स्वामी सम्यक्त्वी स्वसंयमी अणुव्रती हो अथवा छत्रधारी राजा, आरंभी गृहस्थ की भूमिका से उठकर तीन धर्मध्यानों का स्वामी बनकर इच्छा निरोध स्वसंयम द्वारा करता है ।

(327) भवचक से पार उतरने हेतु दो धर्मध्यानों का स्वामी आत्मस्थ तपस्वी होकर स्वसंयम को इच्छा निरोधी बनाता है ।

(328) सल्लेखना झूले में चल रहा सल्लेखी अदम्य पुरुषार्थी तीर्थंकर प्रकृति उपायी तपस्वी है जिसने दो धर्मध्यानों के स्वामित्व की भूमिका से तीर्थंकर होने का पुरुषार्थ तथा पंचमगति हेतु भवचक से पार अदम्य पुरुषार्थ वाली सल्लेखना को उठाया और चतुराधन में लीन हुआ ।

(329) (अ) अडिग जिनलिंगी श्रावक कछुए की तरह अपने उपयोग को (आत्मा की ओर) अंदर की ओर करके वीतराग तपस्या आत्मस्थता से करते हुए सिद्ध/शुद्ध आत्मा की ओर लक्ष्य रखकर स्वसंयमी बना ।

(ब) रत्नत्रयी जंबूद्वीप के वातावरण में मकर/कर्म फल चेतना से भक्ष होने पर भी तपस्वी /मछली अडिग है।

(330) रत्नत्रयी वातावरण में केवली की शरण में चतुराधन देख दो धर्मध्यानों के स्वामी भी महामत्स्य सा संहनन पाकर अदम्य पुरुषार्थ उठाते वीतरागी तपश्चरण धारण करते हैं ।

(331) चतुराधकी आरंभी गृहस्थ दो धर्मध्यानों के साथ स्वसंयमी बनकर वीतरागी तपस्या करता है ।

(332) काल द्रव्य की तरह षट् द्रव्यों का श्रद्धानी, निकट भव्य तीर्थंकर पद भावी सल्लेखना धारण करके सम्यक्त्वी तपस्वी बनने चारों कषाऐं त्यागकर चतुराधन करता है ।

(333) अष्टकर्मजन्य चतुर्गति भ्रमण को नाशने प्रतिमा पुरुषार्थ धारक तीन धर्म ध्यानों का स्वामी बनकर वीतरागी तपस्या द्वारा निकट भव्यत्व पाता और वीतरागी तपस्या बढ़ाता है ।

(334) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने पंचमगति के लिए द्वादश तप तपते वीतरागी तप किया ।

(335) भवचक से पार होने पुरुषार्थी सल्लेखी ने निकट भव्यत्व पाकर रत्नत्रय उठाया और वीतरागी तपस्या को महाव्रत से जोड़ा ।

(336) मुनि एवं आर्यिका गुणस्थानोन्नति का अंतिम लक्ष्य तीर्थंकर प्रकृति पाते हैं (पुण्य) ताकि उनका रत्नत्रय जम्बूद्वीप में पंचपरमेष्ठीमय होकर उनके वीतरागी तपश्चरण में निर्ग्रंथता (12 वें गुणस्थान) का निखार लावे ।

(337) दश प्रतिमाऐं धारण करने वाले गुणस्थानोन्नतिशील आरंभी गृहस्थ ने रत्नत्रयमय वातावरण बनाया और घर में ही गुण ग्राह्यता हेतु निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण लेकर भवचक से पार होने के लिए सिद्ध प्रभु/शुद्ध आत्मा की शरण ली

(338) युगल तपस्वियों ने पक्षियों की तरह निरीह होकर तप करके घातिया चतुष्क का क्षय किया।

(339) तीन धर्मध्यानों के स्वामी उच्च श्रावक ने स्वसंयमी बनकर ऐलक/आर्यिका जैसा वीतरागी तपश्चरण किया ।

(340)(अ) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों का स्वामी, सल्लेखना का गुणस्थानोन्नति वाला झूला पाने आरंभी गृहस्थ की स्थिति से भी पुरुषार्थ उठाकर साधना करता है ।

(ब) पंचमगति का साधक महाव्रती ही होता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(341) एक गृहस्थ भवचक से पार होने दो धर्मध्यानों का स्वामित्व ले दशधर्मों का पालन करता हुआ वीतरागी तप करता है

(342) दूसरे शुक्लध्यान द्वारा घातिया चतुष्क क्षय करते आत्मस्थ तपस्वी को देख देशव्रती आत्मस्थ. पक्षी की तरह निरीह बनकर निश्चयी व्यवहार धर्म के पक्षों का चिंतन करते वीतरागी तपस्या में लीन होते हैं ।

(243) केवली जिन का ध्यान करके अणुव्रती आठ मदों को त्यागकर वीतरागी तपस्या द्वारा पंडितमरणी सल्लेखना मोक्ष गामी कायोत्सर्ग द्वारा शिखरतीर्थ पर करते हैं ।

(344) भवचक से पार होने दो धर्मध्यानों के स्वामी ने सप्त तत्त्वों का चिंतन करते हुए पंचम गति का साधन बनाने वीतरागी तपस्या की ।

(345) भवचक्र से पार होने सल्लेखी ने छत्रधारी राजा के रूप में देशव्रती संयमी बनकर आरंभी गृहस्थ की स्थिति से तीन धर्मध्यान प्राप्त करके इच्छा निरोध स्वसंयम अपनाया ।

(346) वीतरागी खड़गासित सल्लेखी आत्मोन्नति की सीढ़ियाँ पार करने वाला दो धर्मध्यानों का स्वामी था जिसने पंच परमेष्ठी आराधन करके रत्नत्रय संवारा है ।

(347) प्रतिमा पुरुषार्थ धारण करके व्यक्ति ऐसा ही निरीह बनने का प्रयत्न करता है जैसा कि एक पक्षी, जो वीतरागी तप को तपते हुए सल्लेखना तत्पर रहता है और ऐलक/आर्यिका बनकर स्वसंयम धारता है।

(348) स्वसंयमी अदम्य पुरुषार्थ द्वारा पंचमगति का साधन यदि करता है तब वह तपस्वी बनकर चारों कषाऐं त्यागता हैं ।

(349) वह सरीसृपों /डायनासर का काल था। जब तपस्वी सल्लेखी बन चार गतियां नाशने आत्मस्थ होकर तीर्थंकर प्रकृति कर्माजन के लिए दो धर्मध्यानों का स्वामी होते हुए छत्रधारी राजा जैसी सल्लेखना तत्पर थे ।

(350) छत्रधारी तपस्वी सम्यक्त्वी बनकर निकट भव्यता पाता और गुणस्थानोन्नति करता षट् द्रव्य चिंतन करता है ।

(351) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों का स्वामी ऐलक अथवा आर्यिका बनकर पुरुषार्थ उठाते हुए वीतरागी तपस्या करता है।

(352) पुरुषार्थी रत्नत्रयधारी है।

(353) व्यंतरदेव।

(354) कुछ नहीं।

(355) निकटभव्य उपशमी गृहस्थ है जिसने दो धर्मध्यानों से वीतरागी तप किया । वह पूर्व में व्यंतर देव भी रहा।

(356) व्यंतरदेव।

(357) सल्लेखी रत्नत्रयधारी चतुराधक निकट भव्य है जिसका रत्नत्रय एक गति में छूटा किंतु उसने पुनः संभलकर दूसरे शुक्ल ध्यान तक की तप यात्रा तय कर ली है ।

(358) अस्पष्ट।

(359) पुष्पदंतनाथ का लांछन।

(360) भवघट को भेदने वाला आत्मस्थ तपस्वी दशधर्म सेवी कर्मोन्नति से अब रत्नत्रयी निश्चय--व्यवहार धर्मी संघाचार्य है ।

(361) अदम्य पुरुषार्थ उठाकर सल्लेखी ने तीन धर्म–ध्यानों के साथ रत्नत्रय संभाला ।

<u>page No. CXII</u>

(362) सल्लेखी ने रत्नत्रय धारकर जम्बूद्वीप में आत्मस्थ होते हुए स्वसंयम संभाला और रत्नत्रयी वातावरण बनाया ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(363–364) खण्डित हैं।

(365) तीन धर्म ध्यानों के स्वामी ने तपस्वी बनकर स्वसंयम साधा ।

(366) रत्नत्रय के साथ–साथ ढ़ाईद्वीप में वीतरागी तपस्या स्थापित हुई ।

(367) भवघट से पार होने दो धर्मध्यानों के स्वामी ने ऐलकत्व स्वीकार कर रत्नत्रय साधा और पंचमगति हेतु उद्यम किया।

(368) रत्नत्रयी, तीर्थंकरत्त्व का उद्यमी निश्चय और व्यवहार धर्म का तपस्वी वातावरण वाला साधक है ।

(369) भवघट से तिरने निश्चय–व्यवहार धर्म की भूमिका में दो धर्मध्यानों के छत्री स्वामी को ढाईद्वीप धर्म साधना प्राप्त कराती है कि क्रमोन्नति से तपस्वी जीव दूसरे शुक्लध्यान तक की ऊंचाई प्राप्त कर सके ।

(370) एकदेश तपस्वी महामत्स्य सा उत्तम संहनन पाकर उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी कालार्धों में अष्टकर्म जन्य चार गतियों को काटने में लीन रहने हेतु वीतरागता सहित आत्मस्थ हुआ है ।

(371) मैमथ हाथी भी तब पालतू था जो रस्सों से बंधा होता था ।

(372) भवघट से तिरने तीन धर्म ध्यानों का पंचम गुणस्थानी इच्छा निरोध स्वसंयम धारता है ।

(373) तपस्वी ने पुरुषार्थ सहित चारों कषायों को त्यागकर पंचमगति हेतु कर्मक्षयी तपस्या प्रारंभ की तथा दो शुभ ध्यानों के स्वामित्व के साथ रत्नत्रयी उपशम द्वारा वीतरागी तपस्या की ।

(374) छत्रधारी राजा ने रत्नत्रयी दशधर्म को सेवने वाला वातावरण बनाया और वीतरागी तपस्या में रम गया ।

(376) तीन धर्मध्यानों के स्वामी ने तपस्वी बनकर वीतरागी तपस्या की ।

(378) जाप जपते वीतरागी तपस्वी ने पुरुषार्थमय रत्नत्रय साधा ।

(379) छत्रधारी राजा ने आत्मस्थ ऐलक बनकर पुरुषार्थ से स्वसंयम साधकर पंचपरमेष्ठी की आराधना की ।

(380) स्वसंयमी ने आत्मस्थ तपस्वी बनकर स्वसंयम धारण करके पुरुषार्थ को उठाया ।

(381) पुरुषार्थी स्वसंयमी ने ढाईद्वीप में पुरुषार्थ को और उठाया ।

(382) रत्नत्रयी सप्त तत्त्व चिंतन (मूल श्रमण संस्कृति) में तीन सिरों के व्यंतरदेव को भी श्रध्दान था।

(383) स्वसंयम की भावना भाता छह सिरों वाला व्यंतरदेव।

(384) अस्पष्ट।

(385) रत्नत्रयी वातावरण में वीतरागी तपश्चरणी ही होता है ।

(386) गृहस्थ ने पुष्प के अंदर भंवरा फंसा देख मुनिव्रत धारण करके यशस्वी वीतरागी तपस्या की ।

(387) घातिया कर्मों का नाश करके भवचक्र से पार होने सल्लेखी ने रत्नत्रयी जीवन को (शाकाहारी) महाव्रती बनकर पंच परमेष्ठी आराधन, सप्त तत्त्व चिंतन, नौ पदार्थ अवलोकन, निश्चय–व्यवहार धर्म पालन करते तपस्वी जीवन स्वीकार कर स्वसंयम धारा और गृह त्यागा ।

(388) पंचमगति के लिए संघाचार्य ने वीतरागी तपश्चरण धारकर पुरुषार्थमय सल्लेखना को जपन और स्वसंयम से साधा।

(389) रत्नत्रय का विरोध और मोह की स्थिति (अस्थिरता लाकर त्रिगुप्ति का नाश करती है) आरंभी गृहस्थों के जंबूद्वीप में जीवनचक्र और संघाचार्य के प्रतिमाधारियों पर भी प्रभाव करते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(390) उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी में अष्ट कर्मजन्य चतुर्गति, वीतरागी तपश्चरण लाती है ।

(391) रत्नत्रय हर काल में दो धर्म ध्यानों के स्वामी को पंचमगति की ओर प्रेरित करता रहा है और स्वसंयम से जोड़कर वीतरागी तपस्या में लगाता आया है ।

(392) सल्लेखी दो प्रतिमाधारी रत्नत्रयी है ।

(393) दूसरे शुक्लध्यान वाले की पंचम गति चतुर्गति नाशक वीतरागी तपस्या से प्राप्त होती है जिसमें अष्टकर्मों का क्षय कराने वाली वीतरागता प्रधान होती है ।

(394) केवली, तीर्थंकर, अरहंत और सिद्ध रूप, यही इष्ट हैं ।

(395) वीतरागी आत्मस्थता क्षुल्लक (क्षुल्लिका, ब्रह्मचारी) जैसे उच्च श्रावक को सल्लेखना के समय दो धर्मध्यानों से उन्नत करा चार धर्मध्यानों (मुनित्व) में स्थापित कराती है और रत्नत्रय धराती है ।

(396) (अ) घातिया चतुष्क नाशने हेतु दो धर्मध्यानों का स्वामी वह छत्रधारी राजा है ।

(ब) अर्धचक्री भवघट तिराती है ।

(397) पुरुषार्थी तीर्थंकर के पादमूल में वैयावृत्ति आरंभी गृहस्थ भी रत्नत्रय और चतुराधन के साथ राजसी संरक्षण में रत्नत्रय पालकर चार दुर्ध्यानों को ढाईद्वीप से दूर करता है ।

(398) अस्पष्ट।

(399) जम्बूद्वीप के साधक अष्ट अनंत वैभव पाने तपस्या करते हैं ।

(400)(अ) भवचक्र पार करने दो धर्म ध्यानों का स्वामी छत्रधारी राजा, या ऐलक/आर्यिका आत्मस्थता हेतु स्वसंयम धारता है ।

(ब) पंचमगति के लिए चारों कषायों का त्याग करके आरंभी गृहस्थ रत्नत्रयी वातावरण बनाता और वीतरागी तपश्चरण उत्तरोत्तर बढ़ाता है ।

(स) तीन धर्मध्यानी आत्मस्थ तपस्वी रत्नत्रयी वातावरण में अर्धचक्री होकर भी रत्नत्रय पालने की चेष्टा करते भवघट से तिरने तीर्थंकर प्रकृति हेतु अदम्य पुरुषार्थ करते हैं।

(401) भवचक्र पार करके सिद्धत्व प्राप्त करने रत्नत्रयी जंबूद्वीप में ऐलक/आर्यिका रत्नत्रय से पंचमगति पाने का प्रयास करते हैं फिर भी वह प्रयास छूट–छूट कर पुनः बनता है। रत्नत्रयी तपस्वी उसे शीष साधकर वीतरागी तपश्चरण करते हैं

(402) संघाचार्य वीतरागी तपस्वी हैं जिनकी वीतरागी तपस्या मन वचन काय से युत उन्नति कारक सिद्धत्व/शुद्ध आत्मा से उन्हें जोड़ती है तब वे पंच परमेष्ठी की आराधना और चतुराधन करते हैं ।

(403) अर्धचक्री ने पुरुषार्थ द्वारा दो धर्म ध्यानों के साथ पुरुषार्थी छत्रधारी राजा रहते हुए भी चारों कषायों को त्यागा और ढ़ाई द्वीप में सम्यक्त्व प्रसारा। चतुराधन करते हुए तपस्वियों के वातावरण को सुरक्षा देकर वीतरागी तपस्या की ओर मुड़े।

(404) संघाचार्य वीतरागी तपस्वी है, जिसने मन वचन काय की वीतरागता से तपश्चरण करते हुए छत्रधारी राजा से ऐलकत्व स्वीकारा और द्वादश अनुप्रेक्षा भाते हुए उपशम द्वारा वीतरागी तपस्या पंचाचार सहित की ।

(405) भवचक्र से पार होने और शुद्धात्म रूप पाने त्रिगुप्ति धारी ने पंचमगति हेतु रत्नत्रयी वीतरागता से वैराग्यमय तपश्चरण किया ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(406) स्वसंयमी ने अदम्य पुरुषार्थ से भवचक्र से पार होने दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से अर्धची के रत्नत्रयी पुरुषार्थ से चार धर्म ध्यान संवारे और संघाचार्य से समीप प्रतिमा धारणकर पंच परमेष्ठी आराधन करने लगा ।

page No. CXIII 407 - 470

(407) (आत्मस्थता के द्वारा दो धर्मध्यानों का स्वामित्व चतुराधन और रत्नत्रयी वीतरागी तप सब प्राप्त हो जाते हैं) अस्पष्ट है।

(408) तीर्थकर प्रकृतिवान अदम्य पुरुषार्थी रत्नत्रय को वातावरण में सदैव बनाए रखता है ।

(409) तपस्वी ढ़ाईद्वीप में सम्यक्त्व बनाए रखते हुए चतुराधन करता है ।

(410) वीतरागी तपस्वी स्वसंयम को सदैव जागृति से साधे रखता है। पंचमगति उसका लक्ष्य और पंचाचार उसका आचरण होता है ।

(411) तीन धर्मध्यानों का स्वामी रत्नत्रय आराधक होता है (पंचम गुणस्थानी)

(412) निकट भव्य सल्लेखना लेकर अष्ट कर्मजन्य चार गतियों को नाशने वीतरागी तपस्या करता है ।

(413) जिन सिंहासन के छहों पाए जिनलिंगी है (साधु, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका एवं 11 प्रतिमाधारी) जो अष्टकर्म जन्य चतुर्गति नाशने तत्पर हैं ।

(414) छत्रधारी राजा और आरंभी गृहस्थ भी तीन धर्मध्यानी बनकर बारह भावना भाते हुए वीतरागी तपस्या की ओर मुड़ सकते हैं ।

(415) एकदेश धारी स्वसंयमी बारह भावनाऐं भाकर अर्धचक्री सा पुरुषार्थ उठाकर और तीर्थ यात्री सा पुण्य बनाकर निश्चय व्यवहारी वीतरागी तपस्या की भूमिका बना सकता है ।

(416) चार घातिया कर्म नाश करके भवचक्र से पार होने दो धर्म ध्यानों का स्वामी गुणस्थानोन्नति करता हुआ शिखरतीर्थ पर वीतरागी तपस्या कर लेता है ।

(417) अर्धचक्री तीन गुप्ति धारण करके वीतरागी तपस्या करके पंचमगति का लक्ष्य रखते हैं ।

(418) छत्रधारी (राजा) संघाचार्य की शरण में जाकर (मांगीतुंगी / कुमारी पर्वत / श्रवणबेलगोला युगल श्रृंगी पर) रत्नत्रय का पुरुषार्थ साधकर वीतरागी तपस्या से अरहंत पद प्राप्ति के लिए पंचाचार करता है । उसका संदेश रत्नत्रयी और पंचाचारी पुरुषार्थ का ही है ।

(419) आत्मस्थ वीतरागी तपस्वी निश्चय–व्यवहार धर्मी होकर तपस्यारत रहते हैं, वे पंचाचारी तपस्वी सल्लेखना में वैयावृत्त्य व्दारा गुणस्थानोन्नति उत्तरोत्तर करते हुए रत्नत्रयी पुरुषार्थ करते हैं ।

(420) समवशरणी शिखर तीर्थ पर हर उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में तीन धर्मध्यानों से निकट भव्य के रूप में छत्रधारी होकर भी त्रिगुप्ति धारण करके वीतरागी तपश्चरण करते हैं।

(421) निकट भव्य सल्लेखी ऐसा तपस्वी है जिसने घर से ही प्रतिमा व्रत धारे थे और अष्ट कर्म नाशने, भवघट तिरने ढाईद्वीप में सम्यक्त्व धारण करके अपनी प्रतिमा व्रत सुरक्षित रखते हुए पंचम गति के द्वारा मोक्ष धाम के लिए उद्यत हुआ ।

(422) पंचपरमेष्ठी आराधन और चतुराधन बस यही इष्ट हैं।

(423) तीन धर्मध्यानी दिगम्बर तपस्वी बनकर साधक ने चतुराधन करते वीतरागी तपस्या की ।

(424) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने अणुव्रत के साथ–साथ घर में ही रहते हुए षट् आवश्यक पाले ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(425) छत्रधारी (राजा) चारों कषायें त्यागकर आरंभी गृहस्थ की स्थिति से तीन धर्म ध्यानों का स्वामित्व लेकर सल्लेखी बना (पंचम गुणस्थानी बनकर) सल्लेखना ली और चतुराधन करने लगा ।

(426) सल्लेखना का गुणस्थानोन्नति वाला झूला पाने वाले निकट भव्य (युगल बंधु) भवघट को दो धर्मध्यानों से पार होने चतुराधन करते रत्नत्रयी साधना से समाधिमरण करते यक्ष हुए और फिर क्रमोन्नति से वीतरागी तपस्या की ।

(427) चारों शुक्लध्यानों के स्वामी स्वयं तीर्थ कुमारी पर्वत से विश्व में धर्म की पताका फहरा रहे हैं । वह पर्वत भी धर्म पताका फहरा रहा था। (यह सैंधव चिन्ह आज भी कुमारी पर्वत पर गुफा में भीमबैटिका कला वाला शैल चित्रांकित है) ।.

(428) तपस्वी एकदेश स्वसंयमी है और पंचमगति हेतु चतुराधन लीन है ।

(429) भवघट से तिरने दो प्रतिमाऐं धारण करके दो धर्मध्यानों के स्वामी निकट भव्य ने चतुराधन करते हुए तपस्वी बन आरंभी गृहस्थ को सप्त तत्त्व चिंतन कराया और आत्मस्थ वातावरण में अरहंत पद भाते संघाचार्य के शरणागत पंचाचार करते हुए वीतराग तपस्या में लीन हुआ ।

(430) भवचक से पार उतरने साधक ने दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से रत्नत्रय पालते, संघाचार्य के निश्चय-व्यवहार धर्ममय संयमी आदेश में रत्नत्रय पालते, हुए वीतरागी तपस्या की ।

(431) मधुमक्खी / बर्र को मृतक देख तीन धर्म ध्यानों के स्वामी का मन निश्चय-व्यवहार धर्म में लीन होकर विरक्त हो गया और उसने रत्नत्रयी तपस्वी ऐलक बनकर देशसंयम धारकर ढ़ाई द्वीप में रत्नत्रय पाला और चतुराधन किया।

(432) तीन धर्मध्यानों से दो शुक्ल ध्यानों तक उन्नति करके घातिया चतुष्क नाश किया जाता है ।

(433) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी छत्रधारी राजा ने संघाचार्य की शरण में रत्नत्रय धारण कर वीतरागी तपस्या की ।

(434) पाँचवीं प्रतिमा पुरुषार्थ के द्वारा मन वचन काय से वीतरागी तपश्चरण द्वारा निकट भव्यत्व पाने वाले ने पुरुषार्थ किया और मोक्ष का भाव रखा ।

(435) निकटभव्य ने सप्त तत्त्व चिंतन से पंचम गति का लक्ष्य रखकर वीतरागी तपश्चरण किया और चारगतियों में भ्रमण को रोकने का प्रयास किया ।

(436) भवचक से पार होने दो धर्मध्यानों के स्वामी ने अरहंत पद भाते, पंचमगति की साधना को रत्नत्रय द्वारा साधने और रत्नत्रयी वातावरण बनाकर चार अनुयोगी निश्चय-व्यवहारमय धर्मसंघ की शरण में गया ।

(437) अणुव्रती ने द्वादश तप, द्वादश व्रतों के साथ युगल बंधुओं की तरह किए ।

(438) भवचक से पार उतरकर सिद्धत्व पाने समाधिमरणी चतुराधक ने क्षयोपशम से मांगीतुंगी / कुमारी पर्वत पर अपने आवश्यक करते हुए वीतरागी तपस्या की ।

(439) पुरुषार्थी ने वीतरागी तपश्चरण के लिए सप्त तत्त्व चिंतन करते हुए चतुराधन किया ।

(440) चतुर्गति भ्रमण को मेटने वीतरागी तपस्वी ने पंचमगति पाने का उद्यम किया ।

(441) पंच परमेष्ठी आराधक पंचम गति की साधना निश्चय-व्यवहार धर्म से करता है ।

(442) अदम्य पुरुषार्थी सल्लेखना लेने वाले ने आत्मस्थ होकर वीतरागी तपस्या की और सप्त तत्त्व चिंतन करके सिद्ध भक्ति में लीन हुआ ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(443) उत्तरोत्तर पुरुषार्थ करने वाला वीतरागी तपस्वी है ।

(444) भवचक्र पार करने सल्लेखी चार गतियों को क्षयोपशम से नाश करने का अदम्य पुरुषार्थ करता है ।

(445) घातिया चतुष्क क्षय करने दो धर्मध्यानों का स्वामी (यथा गुणस्थानी) रत्नत्रयी साधक बना ।

(446) मन को स्थिर करके ही वीतरागी तपस्या होती है ।

(447) निकट भव्य सचेलक ने आत्मस्थता धारणकर निकट भव्यत्व पा गुणस्थानोन्नति की ।

(448) पंचमगति के लिए उत्तरोत्तर वीतरागी तपस्या तथा पुरुषार्थी सल्लेखना और चतुराधन करते हैं। /करके देखो ।

(449) पुरुषार्थी अणुव्रती तपस्वी अपने पैरों (चारित्र) की सभी बेड़ियों को तोड़ चारों धर्मध्यानों सहित चतुराधन करता अपने वातावरण को श्रेष्ठ बनाता है ।

(450) चतुराधक तपस्वी स्वसंयमी उपशमी बनकर सल्लेखना तत्परता से करता है ।

(451) भवघट से पार तिरने हेतु दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से केवलत्व तक चतुराधना पहुंचाती है।

(452) तीन प्रतिमाधारी अदम्य पुरुषार्थ से तीन धर्म ध्यानों के साथ ही सिद्धत्व (शुद्धत्व) का लक्ष्य रखकर रत्नत्रय साधक तपस्वी बनता है ।

(453) तीन धर्मध्यानों का स्वामी शुद्धात्मा का लक्ष्य रखकर रत्नत्रय पालता है ।

(454) चारों कषायों को त्याग करके आत्मस्थ तपस्वी रत्नत्रय धारकर तीन धर्मध्यानों के स्वामित्व से पुरुषार्थ बढ़ाता है ।

(455) भवचक्र से पार होकर सिद्धत्व पाने आत्मस्थता और एकदेश स्वसंयम आवश्यक है ।

(456) भवघट से तिरने दो धर्मों का ध्यानी एक देश--स्वसंयमी आरंभी गृहस्थ स्वसंयमी बनकर तीन धर्मध्यानों की भूमिका से निकट भव्य बन गुणस्थानोन्नति करता है ।

(457) अदम्य पुरुषार्थी नवदेवताओं का पूजन करते हुए वीतरागी आत्मस्थ तपस्वी बनकर पुनः अदम्य पुरुषार्थ बढ़ा कैवल्य को स्वसंयम से ही पाते हैं ।

(458) निकट भव्य पंचाचार करने तपस्यारत हो ढाईद्वीप में एकदेश संयमी बनकर चतुराधन करता है ।

(459) दो धर्मध्यानों वाला वीतरागी तपस्वी अपनी गुणस्थानोन्नति करके शिखरतीर्थ पर वीतरागी तपस्या धारता है।

(460) पंच परमेष्ठी आराधक पुरुषार्थ बढ़ाकर वीतरागी तपस्या करता है ।

(461) गृहस्थ भी शुद्ध आत्मा के आराधन से तीन धर्म ध्यानों का स्वामी बनकर वीतरागी तपस्या करता हुआ अपना पुरुषार्थ उत्तरोत्तर बढ़ाता है ।

(462) अदम्य पुरुषार्थी वातावरण को निश्चय–व्यवहार धर्मी वीतरागी तपस्या से जोड़कर रत्नत्रय पालता और कैवल्य भक्ति रखता है ।

(463) आरंभी गृहस्थ भवचक्र से पार होने संघाचार्य के पास प्रतिमाऐं धारण करता है ।

(464) आरंभी गृहस्थ सल्लेखना वैय्यावृत्ति करता गुणस्थानोन्नति करने मन को स्थिर करके निश्चय--व्यवहार धर्म की शरण चारों अनुयोगों की धारणा से लेता है ।

(465) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों का स्वामी चतुराधन करता समवशरणी वीतरागी तपस्या तपता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(466) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से गुणस्थानोन्नति करने सप्त तत्त्व का चिंतन और वीतरागी तपस्या ही मार्ग है।

(467) चतुराधना हेतु एकदेश स्वसंयमी ढाईद्वीप में संयम संजोता है--जंबूद्वीप में सम्यक्त्व धातकी खंड में भी सम्यक्त्व और पुष्करार्ध में चतुराधन, तब चतुराधन द्वारा वह लक्ष्य पाता है ।

(468) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों का स्वामी दूसरे शुक्लध्यान तक तपस्वी या एकदेश स्वसंयमी से आरंभ करके ध्यानस्थ प्रभु की वीतरागी रत्नत्रयी अवस्था तक का मार्ग वीतरागी तपस्या से तय करता है ।

(469) अदम्य पुरुषार्थी सल्लेखी निश्चय–व्यवहार धर्मी वीतरागी तपस्वी पंचाचार करके भगवान की वीतरागी रत्नत्रयी ध्यानस्थ अवस्था तक वीतरागी तपस्या से ही बढ़ता है ।

(470) बारह भावनाऐं भाते छत्रधारी (राजा) स्वसीमित हो एक देश स्वसंयमी, क्षयोपशम बढ़ाते वीतरागी तपस्या करता है ।

(471) **(अ)** चार धर्मध्यानी जीव गृह को त्याग पंचाचार पालता है ।

(ब) संघस्थ अदम्य पुरुषार्थी स्वसंयमी महाव्रती अदम्य पुरुषार्थ सहित संघ में रहते हैं ।

(472) सिद्धत्व (शुद्ध आत्मस्वरुप) के लिए अरहंत पद बड़े पुरुषार्थ से मिलता है ।

(473) **(अ)** तीन धर्मध्यानों के स्वामित्व से ही सिद्धत्व लक्ष्य बन जाता है ।

(ब) भवघट से तिरने उपशमी, क्षयोपशमी दोनों को ही पुरुषार्थ करना पड़ता है । (सील उल्टी है)

(474) चार गतियों से पार होने के लिए रत्नत्रयी जीवन पंचमगति साधना, सल्लेखना और दिगंबर वीतरागी तपस्या रत्नत्रय साधना से करना आवश्यक है ।

(475) पंचाचारी सल्लेखी चार अनुयोगों के ज्ञानी और निश्चय–व्यवहार धर्म मार्ग के संघाचार्य है ।

(476) निश्चय–व्यवहार धर्म का वातावरण भवघट से पार कराने वाला दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से प्रारंभ होता है ।

(477) वही (उल्टी सील है)।

(478) भवचक्र से पार होने सल्लेखी दो धर्मध्यानों की भूमिका से आत्मस्थ होते हुए स्वसंयमी बनकर चारों कषायों को त्यागते हुए संघाचार्य की शरण में जा बारह भावनाऐं चिंतन करता है ।

(479) निकट भव्य स्वसंयमी पंच परमेष्ठी आराधक है ।

(480) चारों कषाऐं त्याग कर ही तपस्वी बनते हैं ।

(481) ओखल मूसल आरंभी गृहस्थ की मूल भूमिका है (सील उल्टी है)

(482) (एक वस्त्रधारी जिनमार्गी ऐलक/आर्यिका) सचेलक तपस्वी हैं।

(483) युगल बंधु तपस्वी (कुलभूषण–देशभूषण मुनि श्रमण) हैं।

(484) तपस्वी साधक पुरुषार्थी हैं ।

(485) अस्पष्ट ।

(486) भवघट में शुद्धात्मा का मक्खन सी तिरती है। । (सील उल्टी दर्शायी है)

(487) सल्लेखी पंचाचारी वीतरागी तपस्वी है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(488) गृही का रत्नत्रयी वातावरण में वीतरागी तपस्वी होना है ।

(489) जंबूद्वीप में तीन धर्मध्यानों के स्वामी (उच्च श्रावक) रहते हैं / रहते थे ।

(490) भवचक्र (प्रत्येक जीव का अलग–अलग होता है) (युगल बंधु के भवचक्र) को वीतरागी तपस्या से पार किया जाता है

(491) दो धर्मध्यानों का स्वामी दूसरे शुक्लध्यान तक की यात्रा तपस्वी बनकर और उत्तरोत्तर पुरुषार्थ बढ़ाकर करता है ।

(492) दो धर्मध्यानी वह तपस्वी छत्रधारी राजा है / था। उसी के साथ कोई दूसरा तपस्वी आंशिक दृष्ट है।

(493) भवघट से पार तिरने दो धर्मध्यानों का स्वामी कैवल्य प्राप्ति के लिए चतुराधन करता है ।

(494) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने सल्लेखना मरण द्वारा निश्चय धर्म को पाला और भव–भव में क्रमोन्नति वाली वीतरागी तपस्या तथा शुद्धात्माराधना करने दशधर्म सेवी बना ।

(495) शिखर तीर्थ ।

(496) आरंभी गृहस्थ का स्वसंयमी बनना ।

(497) हरेक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में जिन सिंहासन के चारों जिनलिंगियों का अदम्य पुरुषार्थ से निकट भव्यत्व उपार्जन।

(498) भवचक्र से पार कराने वाले (चतुर्थ गुणस्थानी) दो धर्मध्यानों के स्वामी ।

(499) भवचक्र से पार कराने वाले उत्तरोत्तर पुरुषार्थ और वीतरागी तपस्या ।

(500 / 501) उल्टा स्वस्तिक भव पतोन्मुखी है।

(502 / 503) – सही स्वस्तिक भवोन्नति कराने की दिशा सूचक है जो चतुर्गति भ्रमण और पंचम गति भी दर्शाता है।

(516) साधक की अंतर्यात्रा ।

(518) अंतर्यात्रा।

(517 / 520) – चतुर्गति भ्रमण ।

(521–523) अस्पष्ट।

(526) (ब) गुणस्थानोन्नति से शिखर तीर्थ पर वीतराग तपस्या का धारण और वृद्धि चतुराधन सहित ।

(527) (अ) चतुर्गति से पंचमगति हेतु युगल श्रृंगों पर तीसरे शुक्लध्यानी पुरुषार्थ।

page No. CXV 534 -560

(534) त्रिगुप्तिधारी ।

दो धर्मध्यानों के स्वामी ऐलक ने एकदेश स्वसंयमी बनकर, स्वसंयम धारण गृह त्याग से किया ।

(535) सल्लेखी, निश्चय–व्यवहारी वीतरागी तपस्वी है जिसने चारों कषायें त्यागकर तपस्या की है ।

(536) चार नयों से पंचमगति को लक्ष्य रखता आत्मस्थ वीतरागी तपस्वी ढाईद्वीप में दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति तक वीतरागी तपस्या करता है। हर उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी में यही हुआ है ।

(537) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी, निश्चय–व्यवहार धर्म का आराधक, वीतरागी तपस्वी है जो गुणस्थानोन्नति करता हुआ रत्नत्रय पालता है।

(538) चार घातिया कर्मों को नाशने वाला सल्लेखी वीतरागी तपस्वी है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(539) संघस्थ चतुराधक तपस्वी ने तीर्थंकर प्रकृति कर्म बांधकर तीसरे शुक्लध्यानों की प्राप्ति अरहंत बनकर गृहत्याग से की।

(540) उत्सर्पिणी में पुरुषार्थी सल्लेखी पंचमगति का लक्ष्य बनाकर दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से रत्नत्रय पालते छत्रधारी (छत्री) राजा ने चतुराधन से तपस्या करने तपी बन दो धर्मध्यानों के स्वामी का पुरुषार्थ बढ़ाते हुए वीतरागी तपस्या की।

(541) निकट भव्य ने आरंभी गृहस्थ की स्थिति से तीन धर्म ध्यानों के स्वामित्व को पाकर ढ़ाई द्वीप में दूसरे शुक्लध्यान तक की वीतरागी तपस्या की ।

(542) तीन धर्मध्यानी निकट भव्य पाँच महाव्रत और षट् आवश्यक पालते हैं ।

(543) भवचक से पार होने सल्लेखी ने षट् आवश्यक करते हुए तपस्या की और स्वसंयम लिया ।

(544) पंचमगति आराधक रत्नत्रयधारी छत्रधारी है जिसने अष्टापद की तरह हार न मानते हुए सल्लेखना लेकर छत्रधारी होकर भी सचेलक / ऐलक बन त्रिगुप्ति धारी ।

(545) सल्लेखी ने जापें की हैं (युगल बंधुओं की तरह) मौनव्रती रहकर।

(547) भवचक।

(548) द्वादश अनुप्रेक्षी, वीतरागी तपस्वी, चतुराधक धर्मरक्षक है जिसे अनेक बाधाऐं झेलना पड़ीं ।

(549) भवचक से पार उतरने सल्लेखी ने गुणस्थानोन्नति करते हुए दो धर्मध्यानों से दो शुक्लध्यानों तक तपस्वी बन महामत्स्य जैसा उत्तम संहनन पाकर हर काल में चतुराधकी सल्लेखी बन पंचमगति के लिए तप किया ।

(550) गृहत्यागी ऐलक तपस्वी प्रतिमाधारी पुरुषार्थी है जिसने वीतरागी तपस्या की ।

(551) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने दूसरे शुक्लध्यान तक की तपस्या हेतु स्वसंयम धारा ।

(552) दो धर्मध्यानों के स्वामी ने ढ़ाईद्वीप में रत्नत्रयी चतुराधन और रत्नत्रयों से तीन धर्मध्यानी बनकर जंबूद्वीप में पाँच व्रत षट् आवश्यक पाले ।

(553) रत्नत्रयी केवलत्व के लिए तपस्वी ने भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से सचेलक पद धारण करके वीतरागी तपस्या की और सप्त तत्त्व चिंतन करते हुए पंचम गति हेतु वीतरागी तपस्या की ।

(554) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों का स्वामित्व लिए तपस्वी ने स्वसंयमधारा और तपस्या हेतु गृह त्यागा ।

(555) स्वसंयमी ने रत्नत्रय के साथ वीतरागी तपस्या आत्मस्थ होकर की । छत्रधारी राजा ने भी रत्नत्रयी तप सम्मेद शिखर पर निकट भव्य बनकर किया और आत्मस्थता से वीतरागी तपस्या की ।

(556) तपस्वी चतुर्गति खंडन संकल्प धार करके गुणस्थानोन्नति वाली वीतरागी तपस्या में लीन हुआ । वह संघाचार्य था जिसने चतुराधन करते हुए वीतरागी तपस्या की ।

(557)(अ) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी निकटभव्य ने सचेलक बन आरंभी गृहस्थी को त्यागकर तीन धर्मध्यान सहित सप्त तत्व चिंतन करके पंचमगति के लिए वीतरागी तप किया।

(ब) भवघट से तिरने दो धर्मध्यान वाले ने चतुराधन सल्लेखी बन निश्चय व्यवहार धर्मी संघाचार्य की शरण ली ।

(558) चतुराधक रत्नत्रयी कैवल्य उपासक है ।

(559) रत्नत्रयी निकटभव्य शुक्लध्यानी केवली है ।

(560) आरंभी गृहस्थ का आराधन भवघट तारक है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(1) छह तपस्वी खडगासित कायोत्सर्गी ।

(2) दो धर्मध्यानी सल्लेखी तपस्वी की पंचमगति साधना का वातावरण अरहंतमय है ।

(3) दिगम्बरत्व और आरंभी गृहस्थ।

(5)(अ) अस्पष्ट।

(ब) पुरुषार्थ बढ़ाते हुए ढ़ाईद्वीप में दो धर्मध्यानों के स्वामी का रत्नत्रय पालन और स्वसंयमी बनकर भवघट में आत्मकेंद्रित होना ।

(6) अष्टकर्मों से उपजी चतुर्गति को रत्नत्रय से एक आरंभी गृहस्थ भी सल्लेखना द्वारा महाव्रती अवस्था तक पहुंचकर मेट सकता है ।

(7)**(अ)** शिखर तीर्थ ।

(ब) वैय्यावृत्य पाकर दो धर्मध्यानी सल्लेखी भी वीतराग तपस्वी बन जाता है ।

(8)**(अ)** दो धर्मध्यानों से ढ़ाईद्वीप में दो शुक्लध्यानों की प्राप्ति हेतु लोकपूरण द्वारा स्वसंयमी भव को संभालता है ।

(ब) दो धर्मध्यानों से शिखर तीर्थ पर पंचाचार संभव हो जाता है ।

(9) लोकपूरणी के लिए तीन शुक्लध्यानों और पंचमगति की आवश्यकता ढाईद्वीप में होती है ।

(10/13) – **(अ/ब)** पुरुषार्थ से कायोत्सर्गी तपस्वी, पक्षी जैसा निरीह हो जाता है ।

(12) दो शुक्लध्यानों वाला वातावरण ।

(15) रत्नत्रयी जंबूद्वीप में छत्रधारी (राजा) छत्री संघाचार्य बनकर चतुराधन करते वीतरागी तपस्या लीन हुए षट् द्रव्यों का चिंतन करते हैं ।

(16) (अ) तीन धर्मध्यानी सचेलक तपस्वी ने पंचाचार द्वारा ऐलकत्व/आर्यिका पद से वीतरागी तपस्या करके गृहियों/ गृहस्थी में तीन धर्मध्यान डाले (प्रभावना की) ।

(ब) तीन धर्मध्यानी ने पुरुषार्थ उठाकर ऐलकत्व/आर्यिका पद धारकर महामत्स्य सा अपना संहनन बनाया और चतुराधन सहित समाधिमरण किया जिससे उसे अरहंत पद का तीसरा शुक्लध्यान प्राप्त हुआ ।

(21) भवघट से तिरने के लिए दो धर्म ध्यानों का स्वामी निकट भव्य पंचाचारी तपस्वी बन सप्त तत्व चिंतन करता वीतरागी तपस्या उत्तरोत्तर बढ़ाता है (वर्द्धमानी होता है) ।

(22) रत्नत्रयी जंबूद्वीप में कैवल्य सल्लेखी को दिगम्बरी निरीहता और वीतरागी तपस्या से मिलता है ।

(23) (अ) अस्पष्ट ।

(ब) आत्मस्थ जीव निकट भव्य चतुराधक सल्लेखी, वीतरागी तपस्यारत है जिसने निश्चय–व्यवहार धर्मी संघाचार्य बनकर उत्तरोत्तर वातावरण उन्नत किया और रत्नत्रयी केवली बना ।

(30) गृहस्थ पुरुषार्थी वीतरागी तपस्वी है जिसने पंचाचार द्वारा रत्नत्रयी तपस्वी बनकर वीतरागी तपस्या की ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

page No. CXVII 1 . 15

(1) जंबूद्वीप में समता पुरुषार्थ और वीतरागी तप की भूमिका है ।

(2) जंबूद्वीप में एकदेश स्वसंयमी और केवली हैं जिन्होंने वीतरागी तपस्या की ।

(3) सप्त तत्व चिंतन पंचम गति के लिए मन की स्थिरता के साथ वीतराग तप लाता है ।

(4) (अ) तीन धर्म ध्यानी को चारों अनुयोगों से परिचित होना चाहिए ।

(ब) दो धर्म ध्यानों का स्वामी अर्धचक्री, आरंभी गृहस्थ है जिसने वातावरण को वीतरागी तपस्या से जोड़ दिया ।

(5) तपस्वी आरंभी गृहस्थ तीन धर्मध्यानी है जो ढाईद्वीप में यशस्वी चतुराधक है और जिन सिंहासन के चारों लिंगी भी आराधना लीन, अरहंत भक्त चतुराधक हैं ।

(6) पुरुषार्थ बढ़ाते घटाते आरंभी गृहस्थ तीन धर्मध्यानों को ढ़ाईद्वीप में हरकाल में गृह में और गृह त्यागने पर रत्नत्रय को पा सकता है ।

(7) गुणस्थानोन्नति बारह व्रतों के पालन और वीतराग तपस्या में ही संभव है ।

(8) गुणस्थानोन्नति नवदेवताओं की आराधना, दिगंबरत्व और ब्रह्मचर्य द्वारा वीतरागी तपस्या से ही संभव है ।

(9) चातुर्मास सचेलक को ढ़ाईद्वीप में एकदेश समता से चारों गतियों को मेटने में पंचाचार की राह दिखलाते हैं ।

(10) वीतरागी तपस्या मन वचन काय की स्थिरता और रत्नत्रय के साथ सल्लेखना के वैयावृत्य में गुणस्थानोन्नति लातीहै जिससे तपस्वी, प्रतिमाऐं धारण करके सल्लेखना के साथ चतुर्गति नाशने को घर त्याग, अष्टान्हिका व्रत धारण करने तत्पर होता है ।

(11) आरंभी गृहस्थ तीन धर्मध्यानी से, पुरुषार्थ उठाते जाने पर वीतरागी तपस्वी बनते हैं ।

(12) गुणस्थानोन्नति और नवदेवता आराधन वातावरण में गुणस्थानोन्नति लाकर वीतरागी तपस्या में बदलते हैं ।

(13) महामत्स्य जैसा उत्तम संहनन पा उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी में अष्टकर्म जन्य चतुर्गति से वीतरागी तपस्या द्वारा पुरुषार्थी सल्लेखना होने पर अगला भव तीन धर्म ध्यानी और चार अनुयोगों के ज्ञानी होने का बनाता है

lpage No. CXVIII 1 - 8

(1) रत्नत्रयी जंबूद्वीप में एकदेश संयमी भी रत्नत्रयी सल्लेखना द्वारा वीतरागी तपस्या करता है ।

(2) रत्नत्रयी जंबुद्वीप में छत्रधारी राजा (छत्री) एकदेश संयमी बनकर आरंभी गृहस्थ की भूमिका में तीन धर्मध्यानी श्रावक बन पंचमगति की प्राप्ति हेतु चतुराधन करता है ।

(3) आत्मस्थ तपस्वी सात तत्वों का मनन करके पंचमगति के लिए निश्चय–व्यवहार धर्म और स्वसंयम को धारकर दो शुक्लध्यानों की प्राप्ति के लिए क्रमोन्नति करता पंचाचार पालता है ।

(4) गुणस्थानोन्नति करते हुए नवदेव आराधना करता निश्चय–व्यवहार धर्मी वीतरागी तपस्या करता है ।

(5) **(ब)** पंचपरमेष्ठी निकट भव्य है जिसका मोक्ष छह भवों में निश्चय से है ।

(अ) अंतहीन गठान पुर्नजन्म की ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पिराक से प्राप्त अंकन

पी के– 1 अ– वीतरागी तप सल्लेखी के चतुराधन को आत्मस्थता से गहराता हुआ पंचमगति का लक्ष्य रत्नत्रय से बढ़ाता है

पी के– 6 अ– चतुर्गति में स्थित चारों गतियों के जीव ।

पी के– 10 अ– गतियाँ पांच होती हैं।

पी के– 22/23/33 अ– संसार में चतुर्गति भ्रमण है ।

घारो भीरो से प्राप्त अंकन

(1) आत्मस्थता से पुरुषार्थी वातावरण को उन्नत करता है

धोला वीरा से प्राप्त अंकन

(1) निकट भव्य युगल बंधुओं ने भवचक्र को अरहंत पद की प्राप्ति और पंचमगति से भव को कालचक्र के पार मन की स्थिरता करके मानस्तंभ सा भवचक्र पार करते भवघट तिरा ।

(401) जिनध्वजा की शरण में निश्चय व्यवहारी धर्मस्थों ने सल्लेखना लेकर दो धर्मध्यानों से ही त्रिगुप्ति साध चारों अनुयोग पढ़कर दूसरे शुक्लध्यान तक का मार्ग साधा ।

अलाहदिनों से प्राप्त पुरा अंकन

बालाकोट– 4 अ– गुणस्थानोन्नति करते हुए निकट भव्य ने वातावरण को निश्चय व्यवहार धर्म से चतुराधन द्वारा उन्नत कर तीर्थंकरत्व का पुरुषार्थ किया और प्रतिमाऐं धारण की ।

बालाकोट– 5 अ– स्वसंयमी पंचाचार करता है ।

अद 2 अ– तीन धर्म ध्यानी अर्धचक्री ने रत्नत्रय से तीर्थंकरत्व पाया ।

अद 3 अ– वीतरागी तप को पुरुषार्थ बढाते हुए तीन धर्म ध्यानों के स्वामी आरंभी गृहस्थों ने छत्रधारी राजाओं के ही तरह किया।

अद 4 अ– गुणस्थानोन्नति करके छत्रधारी राजाओं ने वीतरागी तपस्या आत्मस्थ होकर उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी कालों में की ।

अद 5 अ– निश्चय व्यवहार धर्मी संघाचार्य ने शिखर तीर्थ पर सिद्धत्व (मोक्ष) पाया ।

अद 6 अ– केवलत्व/कैवल्य की प्राप्ति निश्चय–व्यवहार धर्म से गुणस्थानोन्नति द्वारा वीतरागी तप करने पर ढ़ाईद्वीप में रत्नत्रय से होती है ।

अद 7 अ– वीतरागी तप करते तपस्वी सल्लेखना को निश्चय–व्यवहार धर्म से मन को स्थिर करके अरहंत पद पाने करते हैं ।

अद 9 अ– त्रिगुप्ति तीन धर्मध्यानी भी करते हैं ।

बालाकोट से प्राप्त अंकन

बालाकोट– 11 अ– चारों कषायों को त्यागकर तपस्वी ने पंच परमेष्ठी आराधन को रत्नत्रयी चतुराधन से

बालाकोट– 2 अ– रत्नत्रय से गुणस्थानोन्नति वाले सल्लेखना झूले द्वारा सल्लेखी ने दो धर्मध्यानों की भूमिका से उठकर तीर्थंकरत्व पाने प्रतिमाऐं धारण की ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नौशारो से प्राप्त अंकन

नौशारो– 5– महाव्रती की वीतरागी तपस्या से प्रभावित होकर सामान्य गृहस्थ भी तपस्वी बनकर अष्टकर्म नाशकर भवचक्र से पार होने को उद्यत हुए ।

नौशारो– 6– स्वसंयम के द्वारा तपस्वी ने पुरूषार्थमय सल्लेखना धारण करके निश्चय व्यवहार धर्म में पुरुषार्थ बढाया ।

नाशारो– 7– आरंभी गृहस्थ ने तीन धर्मध्यानों के स्वामित्व से दूसरे शुक्लध्यान तक की यात्रा करके भवचक्र को पार करने तत्पर हुआ ।

नौशारो– 8– वीतरागी तपस्वी ने तीन धर्मध्यानों के स्वामित्व से गुणस्थानोन्नति की ।

नाशारो– 9– **(अ)** सल्लेखी अणुव्रती था जो वीतरागी तपस्या में रत था ।

(ब) दो धर्मध्यानों की स्वामिनी ने रत्नत्रय खोकर पुनः रत्नत्रय उठाया और गुणस्थानोन्नति करके क्रम से गुणस्थानोन्नति करते हुए निकट भव्यता और आत्मस्थता पायी ।

निन्दोवारी दाम्ब से प्राप्त अंकन

नद– 1 अ–(अ) भवघट से तिरान ।

(ब) तपस्वी ने छत्रधारण (राजा का संरक्षण पाकर) 6 प्रतिमाऐं धारण की और वीतरागी तपस्या में रत हुआ । रत्नत्रय संभालते उसने षट् द्रव्यों का चिंतन किया और सल्लेखना धारण कर गुणस्थानोन्नति करता हुआ समाधिमरण को प्राप्त किया ।

नद– 2 अ– षट् आवश्यकों को जानने वाले निकट भव्य का संहनन महामत्स्य जैसा उठा ।

तरकाई किला से प्राप्त अंकन

तरक– 2 अ– चतुर्गति के प्रमादी घेरे ।

तरक– 3 अ– गतियाँ पाँच होती है ।

जे. एम. केनोअर द्वारा घोषित कुछ पुरालिपि अंकन

(1) शुद्ध/सिध्द जीव बनने और भवचक्र पार करने हेतु प्रतिमाऐं बढ़ाते संघस्थ मनुष्य रत्नत्रय का वातावरण बनाते हैं और आरंभी गृहस्थ होकर घर से ही आत्मा के दश धर्मो को पालते हैं जिसे ऋषभ देव का वृषभ उन्हें दिखाता है।

(2) आदि सल्लेखी बारह भावनाऐं भाते शुद्धात्मा (सिद्धत्व) हेतु अपनी मानव जन्म की पात्रता और स्वात्मरक्षा हेतु जिम्मेदारी जानकर पंचमगति पाने सप्त तत्त्व चिंतन करते पंचाचारी बारह व्रतों को पालते हैं। जैसा कि तपस्वी ने भी पुरुषार्थ से दशधर्म पालकर आत्मधर्म की रक्षा करती सल्लेखना लेते हुए पंच परमेष्ठी का स्मरण किया है ।

धोलावीरा से प्राप्त अन्य सामग्री

(3) सल्लेखी दो धर्म ध्यानों का स्वामी पंचाचारी तपस्वी स्वसंयमी है ।

(4) सल्लेखी ने निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण ली ।

(5) पंचाचारी ने सल्लेखना की वैयावृत्ति दो धर्मध्यानों से की ।

(6) महामत्स्य की तरह संहनन पाकर हर काल में अष्टकर्म जनित चार गतियों को क्षय करने वीतरागी तपस्या हुई है

(7) वातावरण ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहन्जोदड़ो के शासकों एवं व्यापारियों से संबंधित सामग्री

(1) चतुर्गतिक भ्रमण रोककर वीतरागी तपस्या और चतुराधन करते समाधिमरण हेतु सचेलक तपस्वी ने चातुर्मासी शरण लेकर दो धर्मध्यानों से ही भवघट तिरने का संकल्प लिया ।

(2) श्रेयांसनाथ तीर्थंकर की शरण में भक्त ने अंतहीन भटकान शेष करने अपने भव को षट् आवश्यकों में सीमित कर संघ के दो अंगों के रूप में भवचक्र पार करने का संकल्प लिया ।

(3) आदिजिन के मार्ग पर गुणस्थानोन्नति करते निकट भव्य ने दो शुक्लध्यानों के लिए रत्नत्रयी चतुराधन करते अष्टापद सा पुरुषार्थ उठाया ।

(4) वीतरागी तपस्वी ने पुरुषार्थ उठाकर पक्षियों जैसा निरीह बनकर स्वसंयमी होने का पुरुषार्थ किया और चतुर्गति भ्रमण को रोका (नोट–जैसा पक्षी वर्ष में कभी–कभी सल्लेखना हेतु चिली में मृत्यु करते हैं)

(5) श्री अजितनाथ के भक्त ने चारों कषायों को त्यागकर ऐलक पद धारण किया और वीतरागी तपस्या हेतु निश्चय व्यवहार धर्म की शरण लेकर सल्लेखना धार कर अपना वातावरण जंबूद्वीप में संभाला ।

(6) रत्नत्रय तीसरे धर्मध्यान से प्रारंभ होता है ।

(7) चतुर्गतिक भ्रमण रोकने भक्त ने अंतहीन भटकान शेष करने भव को अष्टान्हिका व्रतों से सीमित करते हुए संघ के दो अंगों के रूप में भवचक्र पार करने का संकल्प किया ।

(8) **(अ)** सुमतिनाथ जिन के भक्त की नौका भवसागर तिराने वाली जिनसिंहासनी थी जिसमें गुणस्थानोन्नति अंकन है।

(ब) कर्मफल चेतना तपस्वी जीव को भी ग्रसती है छोड़ती नहीं। सब अपना–अपना कर्मफल भोगते ही हैं ।

(स) रत्नत्रयी वातावरण में तीन धर्म ध्यानों से तपस्वी वीतरागी तपस्या करके आत्मस्थ (युगल बंधुओं जैसा) वीतरागी तप करता हुआ साधक बनता है ।

(9) ऋषभदेव की परम्परा में वीतरागी तपस्वी ने पुरुषार्थ उठाकर पंचपरमेष्ठी आराधना द्वारा चार घातिया कर्मों को नाश करने का उद्यम किया ।

(10) नंद्यावर्त ।

(11) जिनध्वज की शरण में तपस्वी के पैरों में (जलती) बेड़िया डली होने पर भी उन्होंने आत्मा में स्वयं को स्थिर करके निश्चय–व्यवहार धर्म की शरण में अपने आप को संयमित रखकर रत्नत्रय आराधन किया और त्रिगुप्ति धारे रहे ।

(12) ध्यानमग्न आदिनाथ ।

चिलास से प्राप्त अंतहीन गठान का संकेताक्षर।

(13) चित्र 7.8 : "जिन" का खंडित कायोत्सर्गी धड़ ।

(14) अजित प्रभु के भक्त ने स्वसंयम धारकर तपस्या करके 2 धर्मध्यानों से ही भवघट तिरने की तैयारी की ।

(15) शाकाहार ही वीतरागी तपस्वी की आहार चर्या का आधार है।

(16) पंच परमेष्ठी को आधार बनाकर त्रिगुप्तिधारी ने पंचमगति का ध्येय रखकर गुणस्थानोन्नति की ओर मांगी–तुंगी/कटवप्र/कुमारी/उदयगिरि खण्डगिरि पर संघस्थ हो क्षयोपशमिक तपस्या की और अदम्य पुरुषार्थ उठाते हुए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वसंयमी बने ।

(18) जिनवाणी द्वारा वीतरागी तपस्वी ने क्षयोपशम किया ।

(19) निश्चय व्यवहारी धर्म को अध्यात्मी ने आत्मस्थ होकर रत्नत्रयी वातावरण में आत्मस्थता और तीन धर्म ध्यानों से भव घटाया ।

छानुदारो से प्राप्त पुरालिपि संकेतः इनमें अनेक गंभीर त्रुटियां पुरासंकेतो को पढ़ने वालों ने की है उन्हें संशोधित करके ही यहाँ प्रस्तुत किया गया है ।

(1) तीन धर्मध्यानी वीतरागी तपस्वी का संहनन महामत्स्य का था ।

(2) तपस्वी ने पंचम गति को प्राप्त करने वीतरागी तपस्या की ।

(3) निकट भव्य ने सल्लेखना पुरुषार्थ किया ।

(4) छत्रधारी तपस्वी ने पुरुषार्थ उठाकर पंचपरमेष्ठी आराधन द्वारा स्वसंयम धारा और सल्लेखना लेकर अरहंत पद पाया ।

(5) वातावरण ही पुरुषार्थमय था ।

(6) पंचपरमेष्ठी के शरणागत स्वसंयमी ने दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से भवचक्र पार करने दूसरे शुक्लध्यान को पाया।

(7) भवघट तिरने को दो धर्मध्यानों की भूमिका से (चतुर्थ गुणस्थानी ने) प्रारंभ किया ।

(8) सचेलक भी प्रतिमाऐं धारणकर वीतरागी तपस्या की ओर बढ़ सकते है ।

(9) त्रिगुप्तिधारी ने पंचमगति हेतु वीतरागी तपस्या करते आत्मस्थता ली और निकट भव्य बनकर दूसरे शुक्लध्यान को पाकर भवघट पार होने बढ़ा ।

(10) सल्लेखना से ही अरहंत पद मिलता है ।

(11) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के लिए अर्धचक्री आगे बढ़ा ।

(12) जंबूद्वीप में रत्नत्रय से ही तीर्थकरत्व है ।

(13) दूसरे शुक्लध्यान का स्वामी रत्नत्रय से पंचमगति पाता है ।

(14) संसार से पंचमगति के लिए सिद्ध/शुद्ध आत्म प्राप्ति हेतु दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से दूसरे शुक्लध्यान के स्वामित्व तक की यात्रा तपस्वी चारों कषाऐं त्यागकर करता है ।

(15) दो धर्मध्यानों का स्वामी अपने वातावरण को तीन धर्मध्यानों का बनाकर वह अर्धचक्री भी रत्नत्रय का धारक बन जाता है ।

(16) अष्टकर्म जन्य चतुर्गति भ्रमण ।

(17) निश्चय व्यवहारी संघाचार्य सल्लेखना लेकर अरहंत बनने की साधना करता है ।

(18) चतुर्गति में भ्रमण करता जीव ही सल्लेखना लेकर निकट भव्य युगल बंधुओं जैसा वीतरागी तप लीन है ।

(19) शाकाहार और वीतरागी तप यही जिनधर्म का मार्ग है ।

(20) रत्नत्रयधारी तपस्वी वीतरागी तपस्वी होता है ।

(21) मुनि दिगंबर ही तपस्वी होता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(22) षट् आवश्यकरत रत्नत्रयधारी 5,6,7, गुणस्थामी पंचरपमेष्ठी आराधक अपनी सल्लेखना स्वयं सीमाओं में बंधकर करते हैं ।

(23) भवघट से तिरने वाले दूसरे धर्मध्यानी छत्रधारी तपस्वी पुरुषार्थी तीर्थंकर प्रकृति वाले तपस्वी पुरुषार्थ बढ़ाकर वीतरागी तपस्या करते हैं ।

(24) सल्लेखना से तीर्थंकरत्व ।

(25) चार धर्मध्यानों का स्वामित्व एक तिर्यंच (पक्षी) भी पाकर तीर्थंकर प्रकृति का पुण्य प्राप्त कर लेता है तब दो धर्म– ध्यानों का स्वामित्व रखकर पुरुषार्थी रत्नत्रयी बन स्वयं का पुरुषार्थ बढ़ा (युगल बंधुओं की तरह) वीतरागी तपस्या करने स्वसंयमी बनकर ढ़ाईद्वीप को समता से भरे और पंचाचार करे यह भी संभव है ।

(26) अदम्य पुरुषार्थ के साथ सल्लेखी ने पंचाचारी बन तपस्या की और चतुराधक सल्लेखी बन पंच परमेष्ठी की आराधना की ।

(27) सचेलक तपस्वी ने आरंभी गृहस्थ जीवन तीन धर्म ध्यान प्राप्तकर रत्नत्रय साधना प्रारंभ की और देशव्रती बनकर निश्चय व्यवहारी चतुर्विध संधाचार्य की शरण ले ली ।

(28) संघाचार्य चतुराधक वीतरागी तपस्वी हैं ।

(29) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने दो शुक्लध्यानों की प्राप्ति हेतु तपस्वी से आत्मस्थ तपस्वी बनकर वीतरागी तपस्या की ।

(30) सल्लेखी रत्नत्रयधारी ही तीर्थंकरत्व और सिद्धत्व पाते हैं ।

(31) चतुर्गति निरोध। पंचमगति का उद्यम ।

(32) आत्मस्थ वीतरागी तपस्वी रत्नत्रयी चतुराधन करके दो धर्म ध्यानों की भूमिका से ही गुणस्थानोन्नति की सल्लेखना करके स्वसंयमी बनकर वीतरागी तपस्या करते हैं ।

(33) **(अ)** अदम्य पुरुषार्थी ने पुरुषार्थवान सल्लेखना से अरहंत पद की प्राप्ति हेतु चारों कषायों रहित संघाचार्य की शरण ली ।

(ब) दो धर्मध्यानी वातावरण ढ़ाईद्वीप से चारों कषायों रहित था ।

(34) अर्धचक्री का पुरुषार्थ चार गतियों पर आधारित होता है। उसने आत्मस्थ वीतराग तपस्या सल्लेखना सहित की और पुनः अगले भव में वीतराग तपस्या (उद्धारक) की ।

(35) छत्रधारी तपस्वी ने ऐलक बनकर वीतरागी तपस्या हेतु निश्चय व्यवहारी चतुर्दिक संघाचार्य की शरण ली ।

(36) सल्लेखना से ही अरहंत पद की प्राप्ति संभव ।

(37) चार धर्मध्यानी, अष्टकर्म जनित चतुर्गति को मेटकर भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों की भूमिका में भी सल्लेखना लेकर अरहंत पद की आराधना करता है ।

(38) मन वचन काय सहित ढ़ाईद्वीप में रत्नत्रय आराधना की जाती है ।

(39) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों का स्वामी छत्रधारी (राजा) तीर्थंकर का पुरुषार्थ बनाने हेतु तपस्या करते हुए पुरुषार्थ उठाकर वीतरागी तपस्या करता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(40) तीर्थंकरत्व की प्राप्ति (पूर्वभव में) सल्लेखना से ही संभव ।

(41) तीर्थंकरत्व प्रकृति का पुरुषार्थ करते तपस्वी ने पुरुषार्थ बढ़ाकर वीतरागी तपस्या की और श्रमण बना ।

(42) उन दोनों युगल बंधुओं के समवशरण लगे और वे भवघट तिरे ।

(43) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी रत्नत्रय अपना कर छत्रधारी राजा होकर भी इच्छा निरोधी स्वसंयम धारण कर लेता है ।

(44) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी निकट भव्य ऐलक आरंभी गृहस्थ से उठकर तीन धर्म ध्यानी बनने के लिए स्वसंयम अपनाता है ।

(45) भवचक्र पार करने के लिए दो धर्म ध्यानों वाले चतुर्थ गुणस्थान से साधना प्रारंभ करते हैं ।

(46) क्षुल्लक भी चार अनुयोगी चतुर्विध संघाचार्य की शरण में रहते हैं ।

(47) गुणस्थानोन्नति निश्चय–व्यवहार धर्म की तुला पर निश्चय व्यवहार धर्मी श्रमण करते हैं ।

(48) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यान का स्वामी, दो शुक्लध्यानों तक की यात्रा चारों कषाऐं त्यागकर तपस्या करके करता है ।

(49) अरहंत पद अदम्य उत्साही को पंच परमेष्ठी आराधन और वीतरागी तपस्या से प्राप्त होता है ।

(50) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी तीन धर्मध्यानों को प्राप्त कर रत्नत्रय धारण करता है

(51) ऐलक भी आरंभी गृहस्थ से तीन धर्म ध्यानी बनकर रत्नत्रय को पालते तपस्वी बनता है ।

(52) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी अरहंत की शरण में निकट भव्य बनता है ।

(53) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों का स्वामी रत्नत्रय की प्राप्ति एकदेश (अणुव्रत) संयम से स्वयं ही इच्छा निरोध करके करता है ।

(54) रत्नत्रयी वातावरण बनाकर (युगल बंधु) आत्मस्थ होकर वीतरागी तपस्या कर रहे थे ।

(55) सल्लेखी को ही अरहंत पद की प्राप्ति होती है ।

(56) भवघट से तिरने वाले दो धर्मध्यानों के स्वामी दो शुक्लध्यानों की प्राप्ति के लिए तपस्वी, ऐलक, आर्यिका (रूप में तप करते) होते हैं ।

(57) अदम्य पुरुषार्थी सल्लेखना पुरुषार्थ से सिद्धत्व/शुद्धात्म की प्राप्ति के लिए सचेलक तपस्वी बनकर चारों कषायों के त्यागी तपस्वी बनते हैं ।

(58) स्वसंयमी नवदेवता पूजन और व्रत करके संघाचार्य की शरण में रहते हैं ।

(59) मांगीतुंगी/कुमारीपर्वत/विन्ध्यगिरि चन्द्रगिरि का वातावरण पुरुषार्थी सल्लेखियों का दो शुक्ल ध्यानी तपस्वी वाला होता है/था ।

(60) अदम्य पुरुषार्थी सल्लेखी आत्मस्थता से वीतरागी तपस्या को तीन धर्मध्यानों से प्रारंभ करते और निश्चय व्यवहार धर्मी चारों अनुयोगों का आधार रखते हैं ।

(61) गुणस्थानोन्नति वाला वैयावृत्य का झूला पंचमगति आराधक पुरुषार्थवान सल्लेखी को ढाईद्वीप के "धर्मी जन" तथा वह स्वयं रत्नत्रय से पालते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(62) भवघट तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी दो शुक्लध्यान तक की यात्रा चतुराधन के साथ की गई सल्लेखना और वीतरागी तपस्या से करता है ।

(63) बारह भावना भाते छत्रधारी राजा भी सन्यास लेकर निश्चय–व्यवहार धर्म वाले चतुर्विध संघ का आचार्य बना ।

(64) छत्रधारी राजा तपस्या लीन उपशमी बनकर वीतरागी तप करता है ।

(65) प्रतिमाधारी ने पंचमगति साधक बनकर अदम्य पुरुषार्थ उठाकर वीतरागी तपस्या आत्मस्थ होकर की। एकदेश संयमी बनकर वह रत्नत्रय पालता रहा और वीतरागी तपस्यारत रहा ।

(66) ऐलक, आर्यिका/रत्नत्रयी मुनि वीतराग तप तपते निश्चय–व्यवहार धर्मी चतुर्विध संघाचार्य की शरण में रहते हैं ।

(67) चार धर्मध्यानी मुनिगण अष्टकर्म जन्य चतुर्गति से छुटकारा पाने रत्नत्रय पालते और चतुराधन करते हुए दो धर्म–ध्यानों से ढाईद्वीप में दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति वीतरागी तपस्या से करते हैं।

(68) गुणस्थानोन्नति करते अदम्य पुरुषार्थी ने दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से षट् आवश्यक करते वीतरागी तपस्या की ।

(69) अदम्य पुरुषार्थी ने सल्लेखना धारण करके आत्मस्थ हो वीतरागी तपस्या की और अरहंत की शरण लेकर संघ में रत्नत्रय पालते निश्चय–व्यवहार धर्म की शरणागत हुआ ।

(70) मन की स्थिरता गुणस्थानोन्नति लाती है ।

(71) तपस्वी रत्नत्रय पालने वाला दो धर्मध्यानों से उठकर तपस्वी बना स्वसंयमी है जो ढाईद्वीप में आत्मस्थता को रत्नत्रय और सल्लेखना से अरहंत पद प्राप्ति का साधन घोषित करता है ।

(72) अरहंत लीन आरंभी गृहस्थ पंचम गति साधक ब्रह्मचारी है ।

(73) चतुराधन से ही वीतरागी तपस्या होती है ।

(74) चतुराधक सल्लेखी वीतरागी तपस्वी है ।

(75) अंतहीन भटकान संसार की ।

(76) महामत्स्य सा सहनन कैवल्य हेतु स्वसंयम और इच्छा निरोध से प्राप्त होता है ।

(77) बारह भावना वीतरागी तपस्वी को सुहाती है । (वीतरागत्व लाती है)

(78) वातावरण निज का/जंबूद्वीप

(79) षट् आवश्यकरत तपस्वी रत्नत्रयी पिच्छीधारियों के साथ है जो निरीह मन से तीन छत्रधारी जिनेंद्र प्रभु की शरण में पंचपरमेष्ठी आराधन करता श्रमण बन रत्नत्रय पालता है ।

(80) उत्सर्पिणी में पुरुषार्थी अरहंत भक्त, छत्रधारी तपस्वी, ऐलक ढाईद्वीप में दूसरे शुक्लध्यान की प्राप्ति हेतु वीतरागी तपश्चरण करते थे।

(81) मन की स्थिरता तीन धर्म ध्यानों के स्वामी को उसके अंतरंग वातावरण में उन्नत करके अर्धचक्री को भी रत्नत्रय सेवी बना देती है ।

(82) रत्नत्रयी चतुराधन से दो शुक्लध्यान तक प्राप्त हो जाते हैं ।

(83) चक्री भवघट तिरने को प्रयासरत है ।

(84) दो धर्मध्यानी व्यक्ति (चतुर्थ गुणस्थानी) प्रतिमाऐं धारण करके ढाईद्वीप में रत्नत्रयी चतुराधन करके दो शुक्लध्यानों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की प्राप्ति करता है ।

(85) दो धर्मध्यानी शाकाहारी वीतरागी तपस्या करता सल्लेखना लेकर अरहंत लीन होता है ।

(86) महामत्स्य सा सबल संस्थान पंच परमेष्ठी आराधन से ही प्राप्त होता है ।

कालीबंगन लोथल से प्राप्त पुरा लिपि संदेश

(1) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों के स्वामी ने एकदेश संयम धारणकर रत्नत्रयी जंबूद्वीप में वीतरागी तप किया।

(2) अर्धचक्री संघाचार्य के चरणों में रत्नत्रय धारण हेतु पहुंचा जहाँ दो धर्मध्यानों के स्वामी छत्रधारी राजा सल्लेखनारती की वैयाव्रत्य कर रहे थे । तपस्वी युगल पर्वत पर स्वयंतीर्थ बन तपस्यारत थे तथा नव देवताओं के नवव्रती रत्न त्रय को धारण किए वीतरागी तपस्या में लीन थे ।

(3) पंचाचारी चारों कषायों को त्याग करने वाला तपस्वी और पंचपरमेष्ठी का आराधक है ।

(4) छत्रधारी राजा दो धर्मध्यानों का स्वामी चार घातियों का नाश करने वीतरागी तपस्या में लीन हुआ ।

(5) सप्त तत्त्वों का चिंतन करता पंचमगति को पाने वाला वह वीतरागी तपस्वी ही होता है ।

(6) रत्नत्रयी चतुराधक ।

(7) छत्रधारी राजा, तपस्या तत्पर ।

(8) स्वसंयमी का अदम्य पुरुषार्थ उसे संघाचार्य के चरणों में रत्नत्रयी पुरुषार्थ के लिए प्रेरक होता है ।

(9) चार नयों से धर्म की अभिव्यक्ति ।

(10) तीन धर्मध्यानों के स्वामी का तपस्वी वातावरण अरहंत उपासना वाला होता है जहाँ संसारी आत्मस्थ हो वीतरागी तपश्चरण करने के लिए दो धर्मध्यानों से तपस्या प्रारंभ करते हैं ।

(11) सप्त तत्त्व चिंतन पंचाचारी तपस्वी का होता है ।

(12) सप्त तत्त्व चिंतन पंचाचारी तपस्वी का होता है ।

(13) सप्त तत्त्व चिंतन पंचाचारी तपस्वी का होता है ।

(14) भवघट से तिरने दो धर्म ध्यानों का स्वामी सिद्धत्व की/शुद्धात्मा की भावना से भींगकर ऐलक और देशसंयमी बनकर जिन सिंहासन के जिनलिंगियों के समीप अदम्य पुरुषार्थ उठा वीतरागी तपस्या में लीन होता है ।

(15) वातावरण अर्धचक्री का पुरुषार्थवान था जहाँ दो धर्मध्यानों के स्वामी दो शुक्लध्यानों तक की यात्रा रत्नत्रयी पंचाचार से कर रहे थे ।

(16) दशधर्मों का सेवी तपस्वी ।

(17) अरहंत भगवान संसार को पार कर जाते हैं ।

(18) भवचक्र से पार उतरने अर्धचक्री ने रत्नत्रय धारा और दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से चार धर्मध्यानों के स्वामित्व की स्थिति को पाने रत्नत्रय धारा ।

(19) आत्मस्थ वीतरागी तपस्वी ने रत्नत्रयी जंबूद्वीप में रत्नत्रय धारण करके सल्लेखना लेते हुए वीतरागी तपस्या की ।

(20) निकट भव्य की पंचमगति साधना चातुर्मास में वैयावृत्य सहित।

(21) आत्मस्थ वीतरागी तपस्वी का भवघट ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(22) षट्काल / भवचक

(23) आत्मस्थ का वीतरागी तपश्चरण ।

(24) आरंभी गृहस्थ का निकट भव्य बनकर वीतरागी तपश्चरण करते हुए जाप के साथ तपश्चरण ।

(25) आरंभी गृहस्थ पुरुषार्थ बनाकर सप्त तत्त्व चिंतन करता और वीतरागी तपस्या की भावना भाता है ।

(26) रत्नत्रयी कैवल्य ।

(27) गुणस्थानोन्नति पंचाचार और पंचमगति का आधार है / गुणस्थानोन्नति से ही पंचाचार और पंचमगति है।

(28) आरंभी गृहस्थ अर्धचक्री होकर सल्लेखना का पुरुषार्थ बनाकर चतुराधन सहित समाधिमरण करते वीतरागी तपस्वी जैसा निकट भव्य बनकर गुणस्थानोन्नति कर लेना है ।

(29) भवघट से तिरने दो धर्मध्यानों का स्वामी अरहंत की शरण में महाव्रती ले निश्चय--व्यवहारी चतुर्विध संघाचार्य है।

(30) तपस्वी के पैरो में बंधन / बेड़ी भी उसे रत्नत्रयी चतुराधन से नहीं रोक सकते। वह दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से ही चारों कषायों को त्यागकर तपस्वी बना और अरहंत भी बन सकता है ।

(31) भवघट से तिरने की यात्रा दो धर्मध्यानों से प्रारंभ होती है । अथवा भवघट से तिरने के लिए दो शुक्लध्यान (अरहंत अवस्था) आवश्यक हैं।

(32) भवघट से तिरने की यात्रा दो धर्मध्यानों से प्रारंभ होती है । अथवा भवघट से तिरने के लिए दो शुक्लध्यान (अरहंत अवस्था) आवश्यक हैं ।

(33) सप्त तत्त्व (जीव अजीव (कर्म), आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष) चिंतन ।

(34) रत्नत्रय (सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक् चारित्र)

(35) अष्टकर्म जन्य चतुर्गति भ्रमण पुरुषार्थी के तीन धर्म ध्यानों का कारण बनता है जब वह चारों अनुयोगों का आश्रय लेकर ज्ञानार्जन करता है ।

(36) पुरुषार्थी क्षयोपशमी सरागी पुरुषार्थी भी महाव्रती बन चार अनुयोगी निश्चय-व्यवहारी चतुर्विध संघाचार्य की शरण में जाकर पंचपरमेष्ठी आराधन करता तपस्वी बन पुरुषार्थ उठाते गिराते तपस्या में ध्यानस्थ हो गया ।

(37) रत्नत्रयी वातावरण से भव सीमित करके रत्नत्रयी चतुराधक ने सल्लेखना ली ।

(38) आरंभी गृहस्थ ने तीन धर्मध्यान प्राप्त कर ऋद्धिधारी गुरु की शरण में स्वसंयम उठाया और उपशम द्वारा गुणस्थानोन्नति करके रत्नत्रय में झुका ।

(39) चातुर्मास में आत्मस्थ होकर तपस्या करते निकट भव्य ने गुणस्थानोन्नति की ।

(40) बारह भावना भाते महामत्स्य जैसे संहनन वालो ने हर उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी में अष्टकर्म जन्य चतुर्गतियों को नाश किया है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पश्चिमी एशिया से प्राप्त लिपि अंकन

(1) दशधर्मो का सेवन करते श्रमणों ने सिद्धत्व/शुद्ध आत्मत्व के लिए बारह भावना भाई और जिनसिंहासन के दोनों प्रमुख लिंगियों ने सिद्धत्व के लिए संयम पुरुषार्थ उठाकर बर्र जैसा अथक उद्यम किया ।

(2) चक्री ने आरंभी गृहस्थ की भूमिका से दो धर्मध्यानों के स्वामित्व से चार धर्मध्यान प्राप्त करने रत्नत्रय धारा ।

(3) ऐलक ने छह आवश्यक करते हुए वीतरागी तपश्चरण किया ।

(4) दशधर्म सेवन करके ढाईद्वीप में पुरुषार्थी सल्लेखी ने तीन धर्मध्यानों के साथ तपस्या प्रारंभ कर संघाचार्य के पास रत्नत्रय धारा और वीतरागी तपश्चरण किया।

(5) गुणस्थानोन्नति करते क्षुल्लक ने पुरुषार्थी प्रतिमा संयम एक साल में बढ़ाया फिर वे रत्नत्रयी तपस्या करते संयम उठाते, जिनलिंगियों के पास ध्यानस्थ होकर तद्भवी तपस्वी मोक्षगामी बने ।

(6) वीतरागी मुनि ने तपस्या से प्रसिद्ध केवलत्व पाया और मोक्ष गए।

(7) अयोगी केवली।

(8) रत्नत्रयी जंबूद्वीप में निश्चय--व्यवहार धर्म को पालते संघाचार्य जिन सिंहासन का अंग होते हैं।

(9) जंबूद्वीप

(10) पंचाचारी ने रत्नत्रयी जंबूद्वीप में शुद्धात्म स्मरण से गुणस्थानोन्नति वाला सल्लेखना का झूला पाया और पंचपर--मेष्ठी का स्मरण करते रहे ।

(11) मन को स्थिर करके पंचमगति के लिए रत्नत्रय पालते चतुराधक सल्लेखी ने समाधिमरण हेतु चार अनुयोगी निश्चय--व्यवहारी चतुर्विध संघाचार्य की शरण ली ।

(12) महामत्स्य जैसा संहनन पाकर मनवचनकाय से वीतराग तपश्चरण करते अर्धचक्री ने वीतरागी तपस्या उन्नत की ।

(13) औपशमी ने रत्नत्रय से गिरते हुए भी भवतारी बन चातुर्मास में शुद्धात्मतत्व के लिए वीतरागी बंधुओं जैसी तपस्या की।

(14) छत्रधारी तपस्वी ने युगल तपस्वी बंधुओं जैसा उत्तम श्रमण तप किया और नव व्रत किए ।

(15) तपस्वी साधु ने तीन धर्मध्यानों के स्वामी जैसे तपस्वी हो शुद्ध आत्म तत्व के तपस्वी बनकर पुरुषार्थ पुनः--पुनः उठाते हुए पंचमगति के लिए तीसरे शुक्लध्यान तक की प्राप्ति की ।

(16) श्रमी श्रमण शाकाहार की प्रभावना करते हुए दोनों रत्नत्रय धारी बंधु तपस्वियों की तरह पंचमगति आराधक थे ।

(17) युगल बंधु--तपस्वी पंचाचारी थे ।

(18) गृहस्थ ने स्वसंयम धारण करके तपस्या करते महाव्रत लिया और सल्लेखना द्वारा घातिया चतुष्क क्षय करके भवचक से पार हुए ।

(19) गृहस्थ ने वीतरागी तपश्चरण करते हुए चातुर्मास किए और आत्मस्थता की स्थिति बनाई आत्मस्थ वीतरागी तपश्चरण किया और निश्चय--व्यवहारधर्म सहित सल्लेखना करके संसार को शेष किया ।

(20) दो धर्मध्यानों के स्वामी ने वीतरागी तपश्चरण द्वारा सल्लेखना लेकर अदम्य पुरुषार्थ बनाया ।

(21) **(अ)** वीतरागी तपश्चरण से गुणस्थानोन्नति करते रत्नत्रयी ने पंचमगति का साधन बनाते दो शुक्लध्यानों को प्राप्त कर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवचक्र पार किया

(ब) सल्लेखीय निकट भव्य है।

(22) सल्लेखना करते निकटभव्य ने वैयावृत्य झूला पाया ।

(23) तीन धर्मध्यानों के स्वामी तपस्वी ने संघाचार्य के समीप पंचाचार करते वीतरागी तपस्या स्वीकारी ।

(24) संसारी की अंतहीन गठान ।

(25) भवघट से पार होने तीर्थंकर के चरणों में स्वसंयमी अणुव्रती ने घर से ही सीमाऐं बनाई ।

(26) छत्रधारी राजा ने आत्मस्थता का वैराग्य धारण कर ढाईद्वीप में वीतराग तपस्या किया ।

(27) बारह व्रत तपते जिन लिंगी गुणस्थानोन्नति रत्नत्रय सहित जिनशासन के अंतर्गत संघाचार्य की शरण में करते हैं।वे

साधु/आर्यिका श्रावक श्राविका होते हैं।

बनावली क्री खुदाई से प्राप्त सीलों पर के अंकन कुंथुनाथ के प्रभावना काल के प्रतीत होते हैं।

(1) सप्त तत्व चिंतक तीर्थंकर कुंथुनाथ के प्रभावना काल में षटद्रव्यों में आस्था रखते हैं/थे।

(2) कुंथुनाथ के प्रभावना काल में रत्नत्रय पालते वीतरागी तपस्वी चातुर्मास करते हैं/थे ।

(3) कुंथुनाथ काल में दो धर्मध्यानों के स्वामी भी वीतरागी तपश्चरण सहित सल्लेखना तत्पर होते थे ।

(4) कुंथुनाथ के काल में रत्नत्रयी, चार धर्मध्यानी होते थे (महाव्रती)।

(5) जिनध्वज की शरण में ऋषभ परंपरा में, तपस्वी वीतरागी तपश्चरण करते या ऐलक होकर दो धर्मध्यानों से तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके निकट भव्य युगल बंधुओं सा भवचक पार करते थे ।

(6) स्वसंयम द्वारा तपस्वी ऋषभ काल में चारों दुर्ध्यान त्यागते थे ।

(7) वीतरागी तपस्वी का वातावरण रत्नत्रयी शुद्धात्म शरणी होता है ।

(8) तपस्वी कुंथुनाथ का भक्त है और निश्चय व्यवहारी तपस्वी है। तथा हर काल में जिन का भक्त रहा है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सैंधव लिपि परिचय

प्राच्य भारत की उन्नत संस्कृति में जो धर्म. अध्यात्म. भाषा और जीवन चर्या की गूंज है वह हमें वर्तमान में संपूर्ण रूप से क्षत विक्षत दिखाई देती है । वर्तमान उस प्राचीन से इतना दूर हट चुका है कि अब वह प्राचीन हमें पहचान में भी नहीं आता । हम उसे वर्तमान के ऐनक से देखने की चेष्टा करते हैं तो वह और भी दूर चला जाता है । टीलों, खंडहरों, भूगर्भों और चट्टानी उकेरों में उसकी झलक कभी–कभी दिखलाई पड़ती है तो हम उन उकेरों, उस काल की दैनिक उपयोगित सामग्री को देखकर भी अनदेखा करने की चालाकी करते हैं । हम क्योंकि शनैः शनैः पाश्चात्य प्रभाव में इस प्रकार घिर चुके हैं कि ना हम अब भारतीय रहे हैं ना ही पाश्चात्य । आहार, धर्म, भाषा और रीति रिवाजों में तब हम आदिवासी कहे जाने वाले समूहों में अपनी परम्पराओं को खोजते हैं कि उन्होंने ही उन्हें अशों में संजो रखा है भले तब भी हम भूल रहे होते हैं कि वे आदिवासी भी इतने लंबे काल के अंतराल को भला बद्दू जीवन के साथ अंततः कितना ढो पाए होंगे ? उन्होंने तो हर दिन नए दबाब झेले हैं ।

भारतीय पुरालिपि के साथ भी यही सब घटित हुआ है । मूल में वह कैसी रही होगी और कालांतर में किस प्रकार बदलती गई इस पर कतिपय विद्वानों ने गहन अध्ययन किया है। **अल्बर्टाइन गौर** ने अपनी किताब **ए हिस्ट्री ऑफ राइटिंग** में विश्व धरातल पर लिपियों की खोज करके सूमेर और ईजिप्त की संकेत लिपि **3000 ई. पू. की लिपि** को भारतीय पुरा सैंधव लिपि से कुछ अंशों में समान पाया है । वह लिपि बेबीलॉन और एसीरिया में कुछ बदले परिवेष में उन्हें दिखी । उस काल की लिपि को उन्होंने चित्रांकन (पिक्टोग्राम), स्वरांकन (फोनोग्राम) तथा संकेताक्षरों (डिटरमिनेटिव्स) में विभाजित करके उनका मूल्यांकन किया । **श्री ग्रेगेरी एल. पोसेल** ने अपनी पुस्तक "**द राइटिंग सिस्टम 1996** में कुछ हटकर अभिव्यक्ति दी है । उनकी **एन्शियेंट सिटीज ऑफ द इंडस** (नई दिल्ली, 1979) में उन्होंने मोहन्जोदड़ो, हड़प्पा, चानुदारो, कोटदीजी, अम्री, कालीवंगन, लोथल, रंगपूर सभी से प्राप्त सामग्री को अपना अध्ययन का विषय बनाया है । श्री इरावथम महादेवन ने संपूर्ण उपलब्ध सामग्री विशेष कर **श्री एम. एस. वत्स, कर्नल जे. एम. मार्शल** तथा **श्री मैके** के ज्ञापित केटालॉगों में तथा अन्य उपलब्ध लिपिक सामग्री पर अपने **इंडेक्स** तथा **कान्कोर्डेन्स** प्रकाशित किए हैं। भारतीय लिपिविदों में **श्री एस. आर. राव** लिपि के अत्यंत परिपक्व शोधकर्ता माने जाते हैं । अपने उत्खनन अभियानों में उन्होंने लोथल तथा हड़प्पा **(द कोलेप्स ऑफ द इंडस स्क्रिप्ट)** के अलावा अन्य खुदाईयों से प्राप्त 2400–1600 ई. पू. लिपियों के ऊपर विशेष अध्ययन करते हुए अपने अभिमत दर्शाए हैं जो विश्व में अत्यंत मान्यता प्राप्त हैं । भारतीय पुरालिपि के जाने माने विद्वानों में **डॉ पी. एल. गुप्ता** का भी उल्लेख सदैव किया जाता है जिनके लिपि चार्ट ख्याति प्राप्त हैं । विश्वविद्यालयों में लिपि विज्ञान में इन चार्टों को अत्यंत विशेष मानकर पढ़ाया जाता है जो गिरनार, ब्राह्मी, पाली अक्षरों पर विशेष ध्यान आकर्षित करते हैं ।

श्री झा एवं राजाराम जी का भी बड़ा योगदान लिपि विज्ञान में माना गया है किंतु वे उपरोक्त परंपरा से कुछ हटकर जाने जाते हैं । एक ओर जहाँ **श्री राव, गुप्ता** आदि भारतीय पुरा लिपि को वेद प्रभावित जानते हैं वहाँ **श्री झा, राजाराम** उसे पूर्व वैदिक मानते हैं । **श्री जे. एम. केनोअर** वर्तमान में (ईरानी) अग्रणी पुराविद् हैं जो पाकिस्तान के सिंधु घाटी पुरा वैभव पर शोधकर्ता अमेरिका वि. वि. में कार्यरत हैं । उनके दर्शाए अति विशेष चिन्हों में एक "वूम्ब स्केच" और दूसरा चतुर्दिक त्रिआवर्ति भारत के शैलांकनों में दृष्ट अति सामान्य अंकन हैं । ये सिद्ध कर देते हैं कि जहाँ–जहाँ ये अंकन दृष्ट हैं वहाँ–वहाँ कभी पुरा वैभव जीवंत था। **श्री वाकणकर** ने भी भारतीय पुरा अवशेषों और मानव सभ्यता, विशेष कर भीमबैठिका संबंधी संपन्न शोधकार्य किए हैं । किंतु श्रमण परंपरा पर किसी ने ध्यान नहीं दिया ना ही ध्यानाकर्षण पर उसे दृष्टिकोण में लिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

डॉ **राकेश प्रकाश पाण्डेय** ने अपनी पुस्तक "भारतीय पुरातत्व" (म. प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी प्रकाशन 1989) में पुरातत्व को परिभाषित करते हुए दर्शाया है कि मानव सभ्यता के पुरा अवशेष प्रागैतिहासिक काल (Pre-history) से चलकर आद्य इतिहास (Proto history) और वर्तमान इतिहास तक कैसे पहुंचे हैं । संस्कृति मानव समाज का ऐसा दर्पण है जो मनुष्य के प्राचीन काल से वर्तमान तक के जीवन यापन की झांकियों से संबंध रखता है । मनुष्य के जीवन यापन, वैचारिक आदान–प्रदान, परम्पराओं, आमोद–प्रमोद, सामाजिक समूह व्यवस्था, जन्म–मरण, आस्थाओं, आवश्यकताओं अन्य जीवों के साथ उसका अस्तित्त्व उत्सव बौद्धिक विकास, आवागमन, शव अन्त्येष्टि आदि की झलक उस संस्कृति में हमें स्पष्ट दिखलाई दे जाते हैं । ये अपने ऐसे प्रमाण छोड़ते हैं जो "काल" के आधार पर मानव सभ्यता के विकास की झांकी दिखला देते हैं । कभी कल्पनाओं तो कभी खोखली मान्यताओं, अथवा डारविन जैसे सिद्धांतवादियों की चर्चाकर, तो कभी स्वयं को वैज्ञानिक कहकर अपनी मान्यता को समर्थन दिलाने की जिद करते ये आगे बढ़ते हैं ।

सबसे बड़ी बात यह है कि ये **सभी पूर्व पुराविद् या तो भगवान को "सृष्टि रचेता" मानते आने के कारण संस्कृति और सभ्यताओं को वैदिक और वैष्णव आधार पर ही तौलते हैं** याकि स्वयं को वैज्ञानिक मानने वाले धरती की उत्पत्ति शनैः शनैः गैस का गोला ठंडा होने से जिस पर जल के कारण जीवन आया और अचानक (?) जीव पैदा हो गए (सूक्ष्मतम जीवन से .... कमशः आकार बढ़ाते हुए) ! उस जीव विकास में सबसे पहले काई/फफूंद आए और फिर मछलियाँ (कहाँ से ?) पश्चात् उन्हीं से बदलते हुए पक्षी और अन्य जानवर यहाँ तक कि बंदर से मनुष्य बन गया । ये बातें लंबे काल लगभग 100–200 वर्ष तो प्रभाव बनाए रखीं परन्तु अब अविश्वसनीय सी हो चुकी हैं ।

वर्तमान वैज्ञानिक "जीन्स थ्योरी" चुनौती बनकर सामने आने से अब **जैन दर्शन का सिद्धांत ठोस आधार** पाने लगा है जिससे **यह संसार स्वनिर्मित शाश्वत् षट् द्रव्यों से बना** माना गया है (शाश्वत द्रव्यों में **5 अजीव तथा 1 जीव (आत्मा) है जो** 5 अजीवों में से एक **पुदगल द्रव्य से संयोग करके पर्यायें बनाता** है । शेष चार अजीव आकाश, काल, धर्म, अधर्म उन पर्यायों को अवगाह देते हुए स्पर्श करते हैं किन्तु **सभी छह अन्यथा स्वतंत्र सत्तावान हैं** । इनमें **"काल" चक्रीय है** और **उसका प्रवाह अग्रमुखी सर्प** जैसा सुख और दुख की लहर दर्शाने वाला अतः **उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी** रूपी है जिसमें **प्रत्येक में 6 काल खंड हैं** । उन्हीं काल खण्डों की अपेक्षा से जीवन और संस्कृति प्रभावित होती आई है । फलस्वरूप प्रथम काल खण्ड को **वर्तमान अवसर्पिणी के परिप्रेक्ष्य में सुषमा सुषमा अथवा कल्प युग** कहा गया है जिसमें 10 प्रकार के कल्पवृक्ष मनुष्य का जीवन सुख पूर्ण रखते रहे हैं । उसके बाद का युग **युगलिया /सुषमा** कहलाता है क्योंकि तब भी कल्पवृक्ष थे किन्तु कुछ कम। भले युगलिया जन्म का प्रचलन अब भी था और जीवन सुखद अथवा सुषमा कालखण्ड था । इसके बाद कल्पवृक्षों की सर्वथा कमी हो जाने से मानव जीवन को कर्मठ बनना पड़ा और उसे **कर्मयुग** नाम मिला । यह तीसरा कुछ सुख देने वाला दुषमा सुषमा युग था । **इसके ही अंत में ऋषभदेव का जन्म हुआ** । इसके बाद का युग **सुष्म दुषमा** का बतलाया गया है **जब शेष तीर्थंकरों का जन्म हुआ** ।इस प्रकार ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर हुए । **इन तृतीय और चतुर्थ काल खण्डों में कठिनाइयाँ, जीवन संबंधी अति कठिन हो गई** थीं और **क्षेत्रों पर तपस्या हेतु अध्यात्मी जाने लगे** थे । तृतीय कालखण्ड के आरंभ से चौथे के अंत तक 24 तीर्थंकर हुए हैं आगमानुसार जिनके बीच में लंबा अंतराल वर्णित है। चौदह मनुओं की परम्परा में नाभिराय अंतिम थे । तीर्थंकरों में ऋषभदेव (इनके ही पुत्र, और अजनाभ से भारत अर्थात अजनाभवर्ष) के प्रपौत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम और महावीर अंतिम तीर्थंकर थे और उनके ही बाद पंचम दुषमा/दुखमा का वर्तमान काल का प्रारंभ हुआ । इस दुखमा कालखण्ड के 30,000 वर्ष बीतने पर अत्यंत दुखद छठवां कालखण्ड दुखमा–दुखमा का आवेगा जिसमें सामान्य मनुष्य जी नहीं पाएगा अतः उसमें बहुत से परिवर्तन आऐंगे । उसके बीतने पर उत्सर्पिणी के छह काल खण्ड विपरीत कम में होंगे । ऐसे परिवर्तन निरंतर आए हैं और आते रहेंगे । उत्सर्पिणी से उत्सर्पिणी तक एक काल कहा गया है ⊛⊛ / ∽ जो सर्प की तरह निरंतर अपनी गति से आगे बढ़ता अन्य **सह द्रव्यों पर अपना प्रभाव दर्शाता है विशेष कर पुदगल पर पुरानापन लाकर** ।

इतिहास और पुरातत्त्व इन्हीं परिवर्तनों को अवशेषों के माध्यम से आंकता है । कभी मिट्टी,, पाषाण, धातु, काष्ठ, हड्डी, के अवशेष, तो कभी अस्थियां/कंकालों की प्राप्ति । कभी गुफाओं, ईंटों के ढेरों, झोपड़ियों, कुंओं, चूल्हों, भट्टियों, जले अनाजों से तो कभी जेवरों, माला मनकों से कभी शैलांकनों तो कभी चित्रांकनों से । संपूर्ण भारत में ही ऐसे पुरा प्रतीक प्राप्त हुए हैं जिनका प्रचलित मान्यताओं से कभी मेल बैठता है और कभी नहीं । बहु संख्यक हिन्दु धर्मी भारत में खींचतान कर साम्य बैठाने की बेहद कोशिश की गई है किन्तु पुराविदों को संतुष्टि नहीं मिली जबकि अल्प संख्यक जैन धर्म के प्रचलित सिद्धांतों से जिनका मूल सनातनी कहा गया है और प्रतीत भी होता है वह संपूर्णता से सामंजस्य रखता है । तब ऐसा लगता है कि वह सम्पूर्ण प्राच्य सभ्यता और संस्कृति वास्तव में जैन श्रमण संस्कृति ही थी जिसे लगभग सारे जैनों ने भी भुला दिया है । मात्र श्रमण वर्ग उससे परिचय रखता है । चूंकि श्रमण मार्ग सामान्य जन मार्ग से भिन्न है अतः हमारी वही पुरा परंपरा हमारे लिए अपरिचित सी हो गई है ।

पुरातत्त्वज्ञ जिस काल को तथा कथित "पाषाण युग" कहते हैं उसमें उनकी मान्यतानुसार धातुओं का प्रचलन नहीं हुआ था और मानव आखेटी/जंगली था अतः शिकार द्वारा उदर पोषण करता था । कल्पना किसी भी तरह की की जा सकती है किन्तु ऐसी मान्यता सहज स्वीकार्य नहीं होती । वे सिल लोढ़े, कूटक, चक्की पेषणी के रूप में आज भी उपयोग में हैं।

मानव प्रकृति से शाकाहारी है । प्रकृति का कोई भी शाकाहारी प्राणी स्वभाव से आखेटी नहीं होता है । नैसर्गिक स्थिति में मनुष्य तैयार भोजन सामग्री सहज ग्रहण करता है यथा, कंदमूल फल जिनकी बड़ी ही व्यापक उपलब्धि है । कच्चे चने/मटर/मूंगफली/भुट्टे भी खाता है । ककड़ी की तरह बैंगन भी खाते देखा गया है । उसका दूसरा प्रयास होता है इन्हीं सब वस्तुओं तथा धान्यों को भूनकर, होला बनाकर खाने का । इसके लिए उसे ना तो चूल्हे की आवश्यकता होती है ना पात्रों उपकरणों की । कहीं भी साफ सा सूखा स्थान देख, थोड़ा सूखा घास फूस रखकर चकमक पत्थर से चिनगारी पैदा करके उसमें सहज ही चना, गेहूँ की बालें भूनी जाती हैं और हाथ से मींडकर फूंक से साफ कर के खा ली जाती हैं । आसपास के कुछ सूखे गोबर लीद लकड़ी से अग्नि बढ़ाकर बाटियां और भुर्ता तैयार करना, शकरकंद आदि भूनना सहज हो जाता है । लगभग समूचे वर्ष ही स्वादिष्ट फल वनों बागों में प्राप्त हो जाते हैं । तब मानव का हिंसक बनकर शिकार भूनना अस्वाभाविक सा लगता है । आखेट और शिकार उसने सर्वप्रथम अपनी और अपने बच्चों/आश्रितों की सुरक्षा हेतु ही किए होंगे । जब–जब इस प्रकार आग लगाई जाती है आसपास की मिट्टी पकती है और उसमें मौजूद धातु तत्त्व पिघल कर उसे मजबूती देता है । धातु का अविष्कार ही इस प्रकार हुआ है और पानी की लहरों ने उसे किनारे छोड़ दिया है । आज जैसे प्रगतिवान वैज्ञानिक युग में भी सहज ही आदिवासियों का जीवन पाषाण युगीन ही दिखाई देता है। इसका अर्थ कदापि नहीं है कि जो पाषाण अवशेष पुरातत्त्वज्ञों ने काल की अगाध गहराई में जहाँ कहीं पाए हैं वे सब किसी "पाषाण युग" के ही द्योतक हैं । पाषाणी उपकरण आज भी देहातों में घर–घर ही नहीं शहरों में भी दिखाई देते हैं और आर्थिक जटिलताऐं आज भी मनुष्य को नैसर्गिक जीने के लिए प्रगतियुग को चुनौती देती उसी पाषाण युगीन शैली से परिचित करा जाती हैं । भारत का मौसम ही इतना अनुकूल है कि जीवन सहज चलता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लताओं के मंडपों में सागौन के पत्तों का वितान कुछ लकड़ी की थुनियों पर आज भी निरापद आश्रय दे देता है जिसे कटाई के लिए निकलने वाले "चैतुए" अब भी अपनाते हैं । भारत सदैव से ही कृषि प्रधान देश रहा है जहाँ जलवायु को देखते हुए कभी भी अट्टालिकाओं की आवश्यकता नहीं रही। समृद्धि के साथ यहाँ "वैराग्य" भावना प्रधान रही है। कथानकों में ही मानें तो रामायण, महाभारत काल में भी जहाँ सम्राट और साम्राज्य थे, उनके विमान जैसे आवागमन के साधन थे तब भी ऋषि मुनि और तपोवन थे। शबरी और निषाद जैसे आदिवासी थे । आज भी बस्तर के अबूझमाड़ में पाषाण युगीन सभ्यता जीवंत है। छिंदवाड़े के तांबिया/पातालकोट में वह जीवन जिया जा रहा है। पुरातत्त्व में संस्कृति का बहुत महत्त्व है जिसे वर्तमान में नष्ट करने का अत्यंत विस्तार से प्रयास और प्रभाव जारी है । ऐसे में जैन संस्कृति बहुत हद तक सुरक्षित सी दीखती है (तो श्रमणों द्वारा)। आरंभ में पुरातत्त्व सतही अवलोकनों पर ही निर्भर करता था । **सर मार्टिनर व्हीलर** ने भू तत्त्व के स्तरीकरण द्वारा उत्खनन के सर्वेक्षण का महत्त्व सामने लाकर भू उत्खननों द्वारा सर्वेक्षण को प्रधानता दी है।

पिट्ट राइवर्स, डे तेरा, पैटरसन्, ज्योइनर आदि ने अपने–अपने क्षेत्रों में कार्य किया और **सांकलिया** ने नए पुरातत्व को रूप दिया। जिसमें भू–गर्भ शास्त्र, रसायन शास्त्र, भू आकृति विज्ञान, मृदा विश्लेषण विज्ञान, नृतत्व विज्ञान, पुराप्राणि एवं पुरा वनस्पति विज्ञानं के साथ–साथ प्राच्य संस्कृतियों को भी महत्त्व दिया । सैंधव लिपि और प्रतीकों को आद्य इतिहास के अंतर्गत माना जाने लगा । प्रागैतिहासिक संस्कृति के साथ–साथ आद्य ऐतिहासिक सैंधव संस्कृति और पुरापाषाण कालीन हड़प्पा संस्कृति मानी जाने लगी, किन्तु आश्चर्य है कि इन सभी तथा कथित संस्कृतियों में "जैन श्रमण संस्कृति" की अमिट छाप दिखाई देती है । चूंकि हमारे पुराविद् अपनी पूर्व कुंठाओं के कारण उससे परिचित नही हैं अतः वह उनकी दृष्टि से चूक जाती है । कसूर उनका भी नहीं है । हमारे मान्यवान् न्यायविद् और नेता भी अपनी कुंठाओं के कारण खींचतान करके जैन धर्म को उसकी स्वतंत्र सत्ता का ना मानकर "हिंदू" की छाप लगाना चाहते हैं । ऐसा करते हुए वे जैन संस्कृति की अनमोल स्वतंत्र परंपराओं को दूर अंधियारे कोने में फेंककर उनसे हमेशा के लिए अपना ध्यान हटा लेना चाहते हैं । और फिर लड़खड़ाकर सैंधव युगीन सभ्यता और संस्कृति को पकड़ना चाहते हैं जो उन्हें तीन काल में भी उपलब्ध नहीं होगी क्योंकि उनकी ऐनक तो भ्रमित है ।

"पाषाण युग" के बाद जिस "लौह युग" को प्रधानता दी जाती है उससे भी अलग एक "चक्रयुग" दिखलाई पड़ता है। जिसमें काष्ठ और लोह दोनों ही साथ–साथ हैं। उस चक्र युग का अस्तित्व ऋषभ काल में भी था (जिसे हिंदू खींचतान कर 'आदि शिव' पुकारने का प्रयत्न करते हुए विष्णु का 8 वाँ अवतार मानते हैं) और भरत काल में भी। राम और कृष्ण के काल में भी था और आज भी है । जिस घोड़े का अस्तित्व पुरातत्वज्ञ भारत में बहुत बाद में आया मानते हैं और श्री **राजाराम एवं झा** के विचारों से असहमति रखकर खण्डन करते हैं वही घोड़ा श्री राम द्वारा अश्वमेघ यज्ञ में विचरने छोड़ा गया था । वह तो उस समय बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ का काल था। कृष्ण और महाभारत के काल में भी था जो कि 22 वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि का काल था और सिंधु घाटी काल में भी था जो इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नमिनाथ का काल कहा जाता है। उससे भी पूर्व पुरा पाषाण काल में घोड़े को मानव शव के साथ दफनाने के कंकाल भी प्राप्त हुए हैं । (**डॉ राधा कान्त वर्मा** तथा) चूल्हों के प्रमाण भी मिले हैं। (**प्रो. जी. आर. शर्मा**) पुरातत्वज्ञों की ये कुछ ऐसी "अटकलें" और "अनुमान" हैं जो भारतीय संस्कृति को अस्तित्व हीन करते हैं जबकि सैंधव लिपि अंकन में घोड़ा जैसा पशु उसी पाषाण युगीन शैली से परिचित करा देता है। पशु तो दिखलाई देता ही है शैलांकनों और सीलों से प्राप्त अंकन में भी स्पष्ट दिखलाई देता है। एक ओर **Dr. V. S. वाकणकर** जैसे पुराविद् भीम बैठिका को उसी पाषाण युगीन शैली के काल का बतलाते हैं तो अनेक सीलें भी इसी तथ्य से परिचित करा देती हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री वाकणकर तो भीमबैठिका के शैल चित्रों को 10,000 से 90000 वर्ष तक का प्राचीन ठहराना चाहते हैं । लौहयुग के बाद के तथाकथित "ताम्रयुग" का अस्तित्व भी हमें संभवतः ना मिलता किंतु मुद्राओं की प्राप्ति से इस पर हमें भी सोचने को राह मिली । राजस्थान के बयाना की मुद्रानिधियां और गंगाघाटी से प्राप्त ताम्रनिधि ऐसी ही खोज का उदाहरण हैं। धार्मिक ग्रंथों में वर्णित कुरुक्षेत्र, अहिच्छित्र, कम्पिला, हस्तिनापुर, द्वारका, अयोध्या, चित्रकूट आदि पहचान में आए । आगन्तुकों की डायरियों से (**फाह्यान, व्हेन्सांग**) भी कनिंघम ने निर्देश लेकर जगहों की सार्थक खोजें की ।

पाषाण युग के अध्येता लगभग संपूर्ण भारत में उस सभ्यता का विस्तार दर्शाते हैं जिसमें पाषाण के पेबल (लुढ़ियों) से बने औजार एकधारी और दुधारी प्रयोग में लाए जाते थे । हाल ही में घोषित **महादेवन** व्दारा चर्चित एक कूटक (देखें चित्र) भी **तमिल नाडु के एक शिक्षक को खुदाई में प्राप्त हुआ है**। उस काल की सभ्यता को दक्षिण भारत की अनेक नदियों के किनारे तथा गुफाओं में देखा गया है, किंतु विचारने का विषय है कि एक सुनामी जैसा तूफान ही संपन्न आधुनिक संसार को 10' नीचे मिट्टी की परतों में दबाने और पेबल बनाने में सामर्थवान होता है तब नैसर्गिक आपदाओं के चलते कितनी ही सभ्यताऐं ना आई और मिटी होंगी इसे काल परिधि में बांधना भ्रामक भी है और असंभव भी । दक्षिणी पठार लंबे काल तक रुक रुक कर लावा फेंकता रहा है । महाराष्ट्र के कई स्थलों पर लावा की राख के नीचे (Volcanic ash) भी पुरा पाषाण कालीन उपकरण प्राप्त हुए हैं जो **अल्चिन** द्वारा लगभग 1.4 मिलियन (14 लाख) वर्ष पूर्व के माने गए हैं अर्थात् मानव अस्तित्व उस पुरा प्राचीन काल में भी था । वह भी कदाचित् अपनी विभिन्न स्थितियों में रहा होगा । कुर्नूल क्षेत्र के चूल्हे आग का आविष्कार उस काल में भी सिद्ध करते हैं। काश्मीर और राजस्थान में भी ऐसी संस्कृति के पुरा अवशेष उपलब्ध हुए हैं । मनुष्य के साथ–साथ तब पशु भी भरपूर जीवित रहे हैं। वृक्षों की तरह पशुओं के जीवाश्म भी प्राप्त हुए हैं । कुर्नूल से प्राप्त उपकरणों के साथ–साथ बिल्ली, नेवला, चमगादड़, गिलहरी, चूहे, खरगोश, सूअर, लंगूर, हिरण, नीलगाय, गाय, बैल, शेर, चीते, गधा, भैंस, गेण्डा आदि के जीवाश्म (Fossils) प्राप्त हुए हैं [आश्चर्य कि मनुष्य का फॉसिल प्राप्त नहीं हुआ] बेलनधारी से इसी प्रकार गाय, बैल, हरिण, भेड़, बकरी दरियाई घोड़ा एवं हाथी के जीवाश्म प्राप्त हुए हैं । अर्थात् वे सब उस पाषाण काल में भी उसी प्रकार थे जैसे कि आज बिना परिवर्तन हुए। आश्चर्य है कि उस काल में भी आदि मानव के खाद्य पदार्थों में चौकी, माण्डव से चावल के दाने मिट्टी के टुकड़े में फंसे प्राप्त हुए हैं। गांधार में चूल्हों की प्राप्ति है जो स्पष्ट करा देते हैं कि मानव तब भी कृषि आश्रित चावल तथा अन्य धान्य उगाता पकाता रहा है और अपनी नैसर्गिक प्रवृत्ति के अनुसार सिल लोढ़ों का उपयोग करते हुए शाकाहारी रहा है। भारत को बर्बर और जंगली दर्शाने वाले पुराविद् जो भी दलीलें दें यह सिध्द है कि पाषाण युग में भी मनुष्य अपना अस्तित्व कृषक रूप में स्थापित कर देता है। राजस्थान और गुजरात के बीच में डायनासर के अण्डों के जीवाश्म ही पशुपालन दर्शा देते हैं कि कभी उस क्षेत्र में बेहद हरियाली रही किंतु पुराविदों ने काल को हिम युग फिर पाषाण युग में बांटते हुए पाषाण युग को भूधरा बनावट के युग से दो युगों, मध्य पाषाण और उत्तर पाषाण युग में बांट दिया है। उसे भूधरा युग इसलिए दर्शाना पड़ा कि उसके विचार में कुदरती शाकाहारी एनाटामी फीजियालॉजी के बावजूद मानव ने आहार हेतु अनुमानित आखेट किया होगा ! । पशु पालन किया होगा और फिर खेती की ओर प्रवृत्त हुआ होगा जिसे वह मीसोलीथिक अथवा मध्य पाषाण युग पुकारते हैं। (**कारलाइल, जी. आर. हन्टर., बी**. एन. **मिश्र**) जब शैलाश्रयों में न केवल शैल चित्र बल्कि कुछ उपकरणों के अवशेष भी प्राप्त हुए । ऐसे मृद भाण्ड **श्री आर बी गौशी** ने मध्य पाषाण युगीन बतलाए हैं जो लगभग 29 जगहों से प्राप्त हुए हैं । उसके बाद के विकास का युग चाक पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बने पात्रों का माना गया है जिनमें कटोरे लाल रंग के तथा नुकीले औजार भाला तीर आदि बने जिसे क्रांति युग (Paleolithic से Meso और Neolithic revolution) पुकारा गया है (मखौली लगते हैं !) आगे तब उसने खेती की, मिट्टी के बर्तन बनाए और ईटों के आवास, कुऐं,उद्योग आदि । पुराविदों के अनुसार गुफाओं में रहने वाला आखेटी मानव अब कृषि के आश्रित होकर बस्तियों में रहना चाहता था । ये बहुत बड़ी क्रांति थी अतः इसे उसने क्रांति युग पुकारा है। जबकि शैलाश्रयों में अंकित वे चित्र मात्र आखेटी और भागते पशुओं के ही नहीं कलात्मक जियामिंती से अंतहीन भटकान और अध्यात्म के भी हैं। भीम बैठिका एवं हाथी गुम्फा के शैल चित्र इसके प्रमाण दर्शाते हैं किंतु वैसे ही प्रमाण खारवेल की गुफा के अनदेखे कर दिए गए है।

उत्तर पुरा पाषाण कालीन संस्कृति के अवशेष आसाम (गारोहिल), बिहार (पलामू क्षेत्र), उड़ीसा (इंद्रावती घाटी), उत्तर प्रदेश (बेलन घाटी, बरियारी बांदा क्षेत्र), मध्यप्रदेश (बैनगंगा, बाजनेर, भीमबैठिका, सोनघाटी), छत्तीसगढ़ (महानदी क्षेत्र), राजस्थान (बुधा पुष्कर क्षेत्र), महाराष्ट्र (प्रवरा नदी, पाटने, इनामगांव, भोकट क्षेत्र), आन्ध्रप्रदेश (नागार्जुन, कुर्नूल, रेनीगुण्टा, कडप्पा, पलेरुघाटी), कर्नाटक (सालबड़गी, मेराल भावी क्षेत्र) आदि में प्राप्त हुए हैं।

मध्य पाषाण कालीन पुरा स्थलों पर मानव सभ्यता के अवशेष ढूंढने के लिए उत्खनन किए गए और लगभग 30 स्थानों में **श्री बी. एन. मिश्र** के अनुसार पुरा पाषाण संस्कृति के अवशेष मिले। उत्कृष्ट मध्य पाषाण कालीन संस्कृति के पुरा स्थलों में चित्रकूट क्षेत्र, बस्तर, जगदलपुर, कोटराकूट, उड़ीसा (महानदी क्षेत्र), रायपुर,, बिलासपुर आदि विशेष हैं। आश्चर्य की बात है कि इन पुराविदों को ऐसी एक भी सामग्री प्राप्त नहीं हुई कि ऊँचे वृक्षों से फल तोड़ने अथवा पालतू पशुओं के लिए उन्हें पत्ती जुटाने का कोई भी साधन प्राप्त हुआ हो यथा लग्गी, बांस, हंसिए आदि। कदाचित् उनका ध्यान आखेटी जीवन की ओर अधिक तथा मानव की नैसर्गिक प्रवृत्तियों की ओर उपेक्षामय रहा। एक ओर तो पुराविद् गेहूं, मटर, जौ, मसूर के दानों की उपस्थिति से कृषि की ओर संकेत करते हैं दूसरी ओर द्विछिद्र युक्त ऐरो हेड और गोले सिल लोढ़े एवं तकुए, तीसरी ओर पात्रों में कटोरे, सकरे मुंह के घड़े, लाल व चटक काले रंग के मृद पात्र (थालियां, प्लेटें भी हैं) जिन्हें लगभग 2373 "ई. पू." का मानते हैं ।

पाषाणीय क्रांति में अन्न भण्डारन की शुरूआत हो गई थी जिसके लिए उपयुक्त मृद भाण्ड एवं कृषि, पशुपालन, नदियों के किनारे, झरनों के आसपास तथा कुंओं के द्वारा बस्तियां बसा कर दिखाई दिया है। संभवतः ऐसी बस्तियां अनेक बार बसीं और प्राकृतिक आपदाओं में उजड़ी होंगी । पुराविदों की दृष्टि में तब मानव गुफाओं से उतरकर मैदानों में आया होगा किंतु हमें ऐसा प्रतीत नहीं होता क्योकि गुफाओं और शैलांकनों से कुछ भिन्न संकेत मिलते हैं। विदेशी विद्वानों **(बेडवुड, बिन्फोर्ड)** को भारतीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का सही ज्ञान ना होने से ऐसी भ्रांतियां स्वाभाविक थीं। खाद्य उत्पादन, मृद भाण्ड, वस्त्रों, जेवरों का निर्माण ,स्थाई निवास, हस्त उद्योग आदि कुछ ऐसे आधार हैं जो पुराविदों के अनुमानों को चुनौती देते प्रश्न खड़े करते हैं। कुम्हार का चाक, कुल्हाड़ी, बसूला, रुखानी, छिद्रित सिरे वाले हथियार, हथौड़ा आदि के साथ सिल लोढ़ा, ओखल मूसल, मानव के परिष्कृत जीवन की झांकी देते हैं । वह जीवन आज भी गांवों में प्रचलित है । मानव विकास के गहन अवलोकन एवं अध्ययन हेतु उन अवशेषों को क्षेत्रीय आधार पर 6 भागों में **जयनारायण पाण्डेय** ने बांटा हैः–

1 : **उत्तरी क्षेत्र**–बुर्जहोम, मार्तक एवं गुफकरार (1962.63) । बुर्जहोम (झेलम) में 1959–1964 उत्खनन हुआ जो काल दृष्टि से 2375 ई. पू. से 1700 ई. पू. का है (1962–63)। बुर्जहोम से प्राप्त सींग युक्त बैल का चित्रण तथा कुछ पिन लगे शीर्ष इस बात का संकेत देते हैं कि कला भी उस काल में काफी उन्नत थी। **अलचिन एवं अलचिन** के अनुसार वह संपन्न समाज का परिचय देते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

2 : विन्ध्य क्षेत्र–गंगा के मैदानी भाग से मध्यप्रदेश तक के बांदा, सीधी, कोलडिहवा, पंचोह, महमढ़ा, इन्दारी, बेलाधारी एवं कुनझुन क्षेत्र हैं, जहाँ उत्खनन 1969–70, 77–76', 77–78 में क्रमशः चला । यहाँ से प्राप्त मृद भाण्डों की सुंदरता, टोंटी युक्त कटोरे, घड़े, तश्तरियाँ विशेष रहीं । पशुओं के लिए बांसों से बना दरवाजेमय बाड़ा, मिट्टी के बर्तन में रखे हुए तथा जले हुए अनाज के दाने आदि C_{14} अध्ययन द्वारा 4440–4530 ई. पू. के आंके गए हैं ।

3 : दक्षिण भारत–चिताल दुर्ग (ब्रह्मगिरि), बेलारी (संगठनकल्ल), रायचूर (टी. नरसीपुर, पिक्लीहल, मास्की), धारवाड़ (हल्लूर), मैसूर (हेम्मिगे), बीजापुर (तेरदल), गुलबर्गा (कोटेकल), कर्नाटक (अरकोट) तमिलनाडु आदि में अनेक स्थलों पर खुदाई की गई। यहाँ भी अन्य सामग्री के साथ लिपि पुते मकानों के फर्श और चना, मूंग, रागी, कुलकी प्राप्त हुए। अध्ययन से सामग्री का काल 2500–1000 ई. पू. का प्राप्त हुआ । किंतु **अलचिन अलचिन** के अनुसार मेहरगढ़ (3500 ई. पू.) से प्राप्त सामग्री की तुलना में यहाँ की सामग्री अधिक प्राचीन प्रतीत होती है । इसलिए **वी. डी. कृष्णस्वामी** एवं **वी. के. थापर** ने इस संस्कृति की उत्पत्ति दक्षिण भारत से मानी है ।

4 : मध्य गंगाघाटी तथा गंगा के कछार में पुरावशेषों की भरमार दिखती है जहां उत्खनन अधूरे पड़े हैं।

5 : मध्य पूर्व क्षेत्र–इनमें गंगा का कछार, बिहार, उड़ीसा (सिंहभूमि) का इलाका विशेष हैं जहाँ अन्य सामग्री के साथ गेहूँ, जौ, मूंग, मसूर आदि के साथ धान की प्राप्ति वहाँ कृषि का उन्नत संकेत देती है । C_{14} अध्ययन से इसे 2400–2500 ई. पू. आंका गया है ।

6 : पूर्वोत्तर भारत–आसाम, नागालैंड, मणीपुर, मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश, सिक्किम, के क्षेत्र इसके अंतर्गत लिए गए। छोटे–छोटे उत्खननों से लगभग वही सामग्री बसूले, छैनी, हथौड़े, सिल लोढ़े आदि, भारतीय संस्कृति के प्रतिपादक प्राप्त हुए हैं।

रफीक मुगल के अनुसार इसके उत्तर कालीन प्राक् हड़प्पा संस्कृति मानी गई है जो हड़प्पा मोहन्जोदड़ो से कदाचित् पूर्वकाल में समृद्ध रही किंतु **अलचिन दम्पत्ति** उसे प्रारंभिक सैंधव ही मानते हैं। इनके अंतर्गत मुंडीगाक, देहमोरासी, (घुण्डई अफगानिस्तान में) नाल, किलेमोहम्मद, दंवसादात, पेरिवानो घुण्डई, अंजीरा, सियाह दम्ब, नून्दरा, कुल्ली, मेही, पीराक दम्ब, मेहरगढ़, आम्री, कोट दीजी, हड़प्पा और कालीबंगा आते हैं । इनमें से कुछ **क्वेटा संस्कृति वाले** कहलाते हैं जहां से प्राप्त पुरावशेषों में विशेष प्रकार के गुलाबी लिए मृद पात्रों पर काले सफेद रंग का चित्रण मिला है । सारे चित्र ज्यामिती और कलात्मक हैं जिनमें हरिण, बेल बूटे अंकित हैं। आम्री, कोटदीजी, झौव, कालीबंगा की कला की अपनी–अपनी विशेषताऐं हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण सांड़ का सुडौल अंकन है। कालीबंगा से प्राप्त मृद पात्रों पर पेड़, पौधे, मछली, बतख, तितली, हरिण, बकरे, सांड़, बिच्छु एवं त्रिकोण हैं। यहाँ के पुरानगर की नाली युक्त सड़कों की आवासीय योजना, दीवारों के अवशेष, भवन, प्रस्तर सामग्री, धातु प्रयोग, चूल्हे, भट्टियाँ, आभूषण सभी परिष्कृत जीवन प्रणाली दर्शाते हैं। वाणिज्य के प्रतीक बांट, मुद्राऐं, आवागमन के साधन के साथ–साथ व्यापार का रहस्य भी खुला है जिसमें उत्पादित सामग्री का विनिमय अवश्य रहा दिखता है ।

धार्मिक दशा का ज्ञान उत्खनन से प्राप्त विभिन्न मृद मूर्तियों, जिनमें माता प्रधान है मिलता है। श्रृंगी देव पर्वत पर स्थित पुरुष है जिनमें अनेक नाग युक्त देवी मूर्तियां भी हैं जो किसी नाग पूजकों का भान कराती हैं । अनेक बांटों को पूर्वाग्रहवशात शिवलिंग और योनि माना गया है जिसमें अनेक पुराविदों तथा **कल्याणव्रत चक्रवर्ती** जैसे विव्दानों व्दारा असहमति है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संभवतः ब्रह्माणीदेवी का मंदिर ऋषभजा ब्राह्मी के तपस्विनी आर्यिका होने का द्योतक है। यहीं सुंदर सरस्वती की मूर्ति भी प्राप्त हुई है। **अनेक नारी मुद्राऐं नमस्कार और योगासन में** प्राप्त हुई हैं । मेवाड़ के कुछ स्थलों पर हुए उत्खननों में भी **हड़प्पा पूर्व पुरा सामग्री** के प्राप्त होने के संकेत मिले हैं। लिपि अंकन लगभग सारे ही पात्रों पर बहुतायत से है जो कि सैंधव लिपि से ही मेल रखती है। अनेक पुरालिपि विशेषज्ञों ने उसे पढ़ने का प्रयास किया है किंतु उन्हें सफलता नहीं मिल सकी है ।

सन् 1856 में जब लाहौर कराची रेल लाइन बिछ रही थी तब खुदाई के समय ईटों के टुकड़ों के दिखने से अनुमान लगा (क्योकि 1826 में **चार्ल्स मेसन** द्वारा पूर्व में ही घोषणा की गई थी) कि वहाँ हड़प्पा का अवशेष टीला था। उन ईटों के टुकड़ों से जनरल **एलेक्जेंडर कनिंघम** ने स्थल निरीक्षण करके बतलाया कि वह तो विशाल पुरावशेष था जहाँ से लोग मकान बनाने के लिए पकी ईंटें उठा-उठा ले जाते थे। 1921 से वहाँ **सर् जान मार्शल** के निर्देशन में उत्खनन प्रारंभ हुआ जो आठ वर्ष चला । जो अनपेक्षित पुरावशेष प्राप्त हुए उन्हें सहेजकर **श्री दयाराम साहनी** द्वारा अध्ययन किया गया। 1922 में **डॉ. राखालदास बनर्जी** ने सिंधु नदी के तट पर एक नए टीले मोहन्जोदड़ो को खोज निकाला । वहाँ से भी हड़प्पा जैसी ही पुरावशेष सामग्री प्राप्त हुई । 1922-1930 तक मोहन्जोदड़ो का उत्खनन चला और 1931 में वह रुक गया किंतु भारत पाकिस्तान विभाजन के बाद 1950 में **मार्टिनर व्हीलर** के निर्देशन में उसे पुनः प्रारंभ किया गया । **जॉन एफ डेल्स** ने 1963-64 में पुनः उत्खनन कराया । इस तरह काम प्रगति पर रहा और भरपूर तथ्य प्रकाश में आए । **ई. जे. मैके** ने 1935-36 में चानूदाड़ों नामक स्थान पर उत्खनन कराया । बड़ा आश्चर्य माना गया, कि उस सभ्यता का विस्तार उत्तर से दक्षिण 1400 कि. मी. और पूर्व से पश्चिम 1600 कि. मी. निकला । वह बलूचिस्तान, ईरान, तक भी फैला था । इधर भारत में भी थोड़े बहुत उत्खनन हुए और यहाँ भी उसी सभ्यता का विस्तार मिला । **उसमें सबसे महत्वपूर्ण नग्न पुरुष के गुलाबी पत्थर के धड़ थे जो कायोत्सर्गी मुद्रा से साम्य रखते हैं** (चित्र)। वैसे ही धड़ मथुरा कंकाली टीला तथा पटना लोहानीपुर से प्राप्त हुए थे ।

वे सभी धड़ अपने आप में जिस संस्कृति और सभ्यता की उद्घोषणा करते थे उसे उस समय अनेक पुराविदों ने **"जैन संस्कृति"** से सम्बंधित बतलाया । **श्री रामप्रसाद चंद्रा, प्राणनाथ विद्यालंकार, आर. डी. बैनर्जी** आदि अनेक पुराविदों ने उन्हें स्पष्ट रूप से **जैन मुद्राऐं घोषित करने के संकेत दिए** परन्तु पुराविदों की भीड़ उस पर मौन हो गई । जो सीलें और मृद पात्रों के अवशेष मिले थे उन पर अंकित लिपि को सभी ने अपने-अपने तरीके से पढ़ने के प्रयास किए । वो सारे अंकन आदि से अंत तक सही पूछा जाए तो श्रमण जैन सिद्धांतों की मौन भाषा में उपदेश हैं । **मुनि विद्यानंद** तथा अनेक पुराविदों के स्पष्ट अभिमतों के बाद भी की गई उपेक्षा समझ से परे है। अर्थ और परिश्रम तो व्यर्थ गए ही। कुछेक तो अत्यंत नए अंकन हैं जो अब तक भी किसी ने नहीं देखे पहचाने हैं। उन्हें सही अंकित कर लेना भी अपने आप में बहुत बड़ी उपलब्धि और विशेषता मानी जाना चाहिए। पूरी शताब्दी बीत गई । किंतु अनभिज्ञ विद्वान उनको पढ़ने का प्रयास वैदिक और गायत्री मंत्रों के आधार पर करते हुए समय खोते रहे। सभी का **बहाना था** कि कोई कुंजी प्राप्त ना होने से उन्हें उसे ब्राह्मी के आधार से पढ़ना पड़ रहा है जबकि वह मात्र बहाना था । भारत की प्रचीन तम/**पुरा संस्कृति में जैनत्व लगातार अवस्थित रहा फिर भी उसको उपेक्षित किया गया**। यह बात समझ में आना कठिन है। ब्राह्मी ने उस पुरालिपि के 27 अक्षर अवश्य लिए हैं किन्तु नातिन भाषा के आधार पर नानी भाषा के ह्रदय की गहराई को आंकना भ्रामक होगा । उस पुरालिपि की प्रथम बेटी थी मूल प्राकृत जिसकी बेटी ब्राह्मी हुई । इसे हम अब आगे देखेंगे ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूल सैंधव पुरालिपि (संकेत–चित्रलिपि)

↓

मूल प्राकृत (संकेत+ मूल देवनागरी)

↓

ब्राह्मी (27 पुरा संकेत)

↓

वैदिक संस्कृत,

↓

संस्कृत और क्षेत्रीय प्राकृत

↓

आधुनिक संस्कृत, प्राकृत, पाली

↓

फारसी, उर्दू एवं अन्य प्रांतीय लिपियां

उसी पुरा लिपि की प्रथम कुंजी श्रवणबेलगोल की एक विशाल पाषाण शिला पर दिखने से (चित्र) समस्या का हल दिखाई दिया जिसे कांफ्रेंसों में (इतिहास/एपीग्राफी में) प्रयत्न रूप प्रस्तुत भी किया गया किंतु आधुनिक पुराविदों ने भी कोई ध्यान नहीं दिया । अचानक एक केलैंडर में बैठी जिन मुद्रा के पैरों पर अंकित उसी लिपि को देख ठोस आधार मिल गया कि वह पुरालिपि जिस संस्कृति को दर्शाती है वह मूल भारतीय संस्कृति अन्य कुछ नहीं मात्र **जिन श्रमण संस्कृति** ही है । इसलिए उसकी वर्णमाला पाठकों के लिए प्रस्तुत की है । उसी के आधार पर यह पुस्तक है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

❖जैन पुरा–कथाकोष से साम्य❖

डॉ. पूर्णानंद वर्मा ने बेहद निर्भीकता और सहजता से स्वीकारा है कि बिना हिंदु बने एक जैनी श्रेष्ठ जैनी तो बन सकता है परन्तु बिना जैन संहिता को अपनाये एक अच्छा हिन्दु नहीं बना जा सकता । अर्थात् **हिन्दुत्व की भूमिका का मूल आधार जैनत्व** है। भारत की मूल संस्कृति को "हिन्दु" संस्कृति पुकारने वालों को भी श्री वर्मा की यह स्वीकृति मान्य होनी चाहिए। भारतीय संस्कृति में सिन्धुघाटी सभ्यता जिस तरह रची पची है उसे कुछ विद्वान द्रविड़ प्रभावी पुकारते हैं तो कुछ वेद प्रभावी, कुछ उसे गायत्री पाठ प्रभावी और कुछ उसे **आर्य प्रभावी** बतलाते हैं। किन्तु सभी उसे खींचतान कर बैठाने का प्रयास करते हैं जबकि अनभिज्ञ विद्वानों को जैन पुरा–अध्यात्म कथाओं से साम्य इसलिए दिख नहीं सका क्योंकि उन्होने उसे कभी जाना ही नहीं। प्राप्त जैन संदर्भानुसार आचार्य पूज्यपाद के शिष्य वज्रनन्दिनन्दि ने विक्रम 526 में द्रविड़ संघ की स्थापना की थी जिसके समर्थक/अनुयायी द्रविड़ कहलाने लगे। मूल में तो वह एक श्रमण संघ ही था जिसने उपसर्गों के बावजूद संस्कृति सहेजी। जैन कथाकोष तथा जैन साहित्य के अनेक प्रसंग सैंधव लिपि अभिलेखों में दिखलाई पड़ते हैं जबकि अन्य धर्मकथाओं के नहीं। जैसे कि –

(1) *पूर्व जैन पुरा कथाओं में जिन युगल बंधुओं के तप का वर्णन आता है उनका वर्णन हम* कुलभूषण–देशभूषण मुनियों के संदर्भ में कर ही आये हैं। सैंधव लिपि में ये बार बार झलकते है ।

(2) भरत–बाहुबली कथा जैन साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है, कि मल्लयुध्द मे बाहुबलि ने भरत को हराया था ।

(3) भरत–आदिनाथ वर्णन यों है कि जब आदिनाथ वन में 4000 तपियों के साथ तपलीन थे तब भरत उनके पूजन को पहुंचे

(4) एक विशेष वर्णन स्वयंभूरमण समुद्र के महामत्स्य और तंदुल मत्स्य का रोचक सामने आता है जिसमें महामत्स्य के वज्र वृषभनाराच संहनन के कारण उसकी सहन क्षमता अगाध हो जाती है, किन्तु हिंसक प्रवृत्ति के कारण वह रौरव नरकगामी होता है। उस जैसे संहनन के धारक मनुष्य यदि तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्राप्त करते हैं तो तदभवी मोक्षगामी होते हैं। जैनपुरा कथा कोष में इनका वर्णन भरपूर मिलता है। आधुनिक वैज्ञानिक रहस्यों ने भी उदघाटित किया है कि महामच्छों का संहनन उग्र नैसर्गिक आपदायें न केवल झेल लेता है बल्कि चुनिंदा क्षेत्रों में मत्स्यों का जमाव और मरण भी देखा जाता है।

(5) चिली में पक्षियों का सामूहिक मृत्यु आमंत्रण सामान्य नैसर्गिक प्रक्रियाऐं नहीं अति विशेष अवलोकन कहे जा सकते हैं। साथ ही उनके संज्ञित्व को दर्शाते हैं। सैंधव लिपि ने भी पक्षियों को उन्हीं तप और समाधिमरण के संदर्भो में दिखलाया है।

(6) एक कथा के अनुसार कुत्ते को मृत्यु के समय णमोकार मंत्र सुनाये जाने पर उसे देवगति प्राप्त हुई थी, वर्णन मिलता है।

(7) इसी प्रकार शार्दूल का जैनत्व से जुड़ाव न केवल सैंधव सीलों में बल्कि वर्तमान के जैन संदर्भो में भी भरपूर मिलता है। खरगोश, कछुवा, मोर, बतख, चकवा, कबूतर, मुर्गा, तोता, मैना बर्र, बिच्छु, मक्खी, तितली, सर्प, डायनासर, (सरीसृप) आदि का वर्णन सैंधव सीलों में किसी न किसी कथानक से जुड़ा दिखता है। अन्य अनेक प्राणी, तीर्थंकरों के लांछन स्वरूप भी दिखलाई देते है।

(8) अष्टापद नामक प्राणी जो किसी भी तरह पटके जाने पर अपने चार पैरों पर खड़ा रहा आता है और परास्त नहीं होता, एक वीतरागी साधु की दृढ़ता को भी वैसा ही माना गया है, सो भी सैंधव अंकन में बार बार दिखता है।

(9) सेठ सुदर्शन की कहानी "चिर ब्रह्म तत्व का" द्योतक बनती भी दिखलाई देती है।

(10) ॐ का स्पष्ट दर्शन भारतीय दर्शन का स्तंभ है जिसे उत्तरकालीन सभी भारतीय धर्मों ने अपनाया तो, किन्तु उसकी सैंधव झलक मात्र जैन पुराअंकनों तथा पाण्डुलिपियों में दिखती है। उस ॐ की सत्ता को और महत्ता को सबने स्वीकारा, है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु उसका उद्‌गम मात्र जैन "मूलमंत्र" में सिद्ध होता है। भूवलय ग्रंथ उसकी व्यापक अभिव्यक्ति देता है। तीर्थंकरत्व की महिमा कि उसे क्यों **मात्र नरभव से ही जीव द्वारा प्राप्त किया जा सकता है**, जीव की नारी पर्याय अथवा नपुसंक पर्याय से नहीं, की अभिव्यक्ति भी बेहद सजीव होकर सैंधव पुराअंकनों में उभरी है जो जैनधर्म के सिवाय किसी भी अन्य धर्म संदर्भो से मेल नहीं खाती है। ये सब विशेषतायें जैन पुरा अध्यात्म के अति समीप सैंधव पुराअंकनों को ला देती हैं।

[illegible]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन अध्यात्म साहित्य और सैंधव संकेतों में साम्य

भाषा की उत्पत्ति संबंधी कुछ विशेष उल्लेख जैन साहित्य में धवला ग्रंथ मे हैं और मूल णमोकार मंत्र संबंधी उल्लेख निबध्दमंगल नामक ग्रंथ में दिखलाई देता है । श्वेताम्बर आम्नाय के महानिशीथ सूत्र. अध्याय 5 में पंच मंगल सूत्र को भगवान वीर (महावीर) व्दारा रचा माना गया है। भगवती सूत्र (श्वे.) में भी उसे पाया गया है ।जहां णमो लोए सव्व साहूणं की जगह णमो बंभीए लिबीए (ब्राह्मी लिपि को नमस्कार) कहा गया है जो ऋषभजा ब्राह्मी के नाम से जुड़ी सैंधव लिपि की समकालीन अथवा उत्तरकालीन बैठती है । खारवेल की मूल गुफा के शिरो शिलालेख में भी "णमो (नमो नहीं) अरहंताणं। णमो सव सिधाणं" अंकित है जो उस काल की लिपि को दर्शाता है। **उसी गुफा के नैसर्गिक भाग में छत पर भीमबैठिका जैसी शैली के शैल चित्रांकन भी दिखे हैं** जो अब तक अनदेखे रहे हैं।

पंचपरमेष्ठी का बीजाक्षर **उं /ओंकार** स्वर माना गया है जो सैंधव पुरा लिपि में **तीन सांकेतिक रूपों** में आया है।

–**ओं एकाक्षरं पंचपरमेष्ठिनायादिपदम** । (द्रव्यसंग्रह टीका 49/207/11) यह दिव्य ध्वनि है जो मूल बीजाक्षर है।

–**छद्दवणवपयत्थे पंचट्ठीकायसत्ततच्चाणि । णाणाविहहेदूहिं दिव्वझुणी भणइ भव्वाणं** । तिल्लोय पण्णत्ति 4/905

भाषा की अभिव्यक्ति शब्दों से तो है किंतु शब्द के ही अर्थ क्षेत्र परिवर्तन से बदलते जाते हैं अतः आगमानुसार अर्थ ग्रहण करने की 5 विधियो में से संकेत एक **भाव ग्रहण** करने का निर्देश भी देती है । शब्द ध्वन्यात्मक भी हो सकता है और संकेतात्मक भी क्योंकि श्रुत शब्द प्रमाण तो है ही किंतु अगाध है । अक्षरों की सीमा से परे वह श्रुत ज्ञान है । अक्षर यों तो मात्र 64 माने हैं (33 व्यंजन +27 स्वर + 4 अयोगवाह) किंतु उनके संयोगों से बने शब्दों की गणना अति विशाल है इसी.लिए संकेतों को भी बहुत महत्व दिया गया है जो अट्ठारह भाषाओं और सात सौ कुभाषा स्वरूप व्दादशांगात्मक बीजपदों का अर्थ कर्ता है ।

–संखित्त सद्दरयणमणं तत्थावगम हेदू भूदाणेगलिंग संगयं बीज पदंणाम । तेसि मणेयणं दुव्वाल संगप्प्यणं अट्ठारसत्तसयभास कुभासा सरूवणं परूवाओ अट्ठकत्तारोणाम। धवला, 9/4.1.44/127/1

इस प्रकार जैनागम संकेत भाषा का समर्थक है और वह पध्दति आज भी दैनिक जैन पूजा में उसी रूप में प्रचलित है। अर्हत की महत्ता को ऋग्वेद ने भी स्वीकारा है क्योंकि अर्हत अथवा जिन परम्परा वेदपूर्वकालीन रही है। वह परंपरा आज भी जिन श्रमणों व्दारा जीवंत है । आगमानुसार हम पाते हैं: –

–जोइंदिये जिणित्ता णाणसहावाधिअं मुणदि आदं। तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू। **सर्वार्थसिध्दि 31**

–जिद कोह माण माया जिदा लोह तेण ते जिणा होंति। मूलाचार, 261

–अनेक जन्माटवीप्रापणहेतून समस्तमोहरागव्देषादीन जयतीति जिन : । नियमसार, 1

–खविय घाइकम्मा सयलजिणा । के ते। अरहंत सिध्दा । अवरे आयरिय उवज्झाय साहु देसजिणा तिव्व कसाइंदिय मोह विजयादो । धवला, 9/4.1.1/10/7

–सकल जिनस्य भगवत्सतीर्थधिनाथस्य पादपद,मोपपेविनो जैनाः परमार्थतो गणधरदेवादयः इत्यर्थः । तात्पर्य वृत्ति, 139

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(तप मार्गी पंचपरमेष्ठी वीतरागी होने से कायोत्सर्ग लीन दिखते हैं । उनकी ध्यानस्थ मुद्रा ख्डगासन और पदमासन में सैंधव सीलों में भरपूर व्यक्त हुई है। इसका साम्य एलोरा गुफाओं के जिन मंदिर में दो प्राचीन अंकनों में स्पष्ट दिखाई देता है भले ही उन पर पुरातत्वज्ञों की दृष्टि कभी ना गई हो।

तप का मूल कारण चतुर्गति भ्रमण कराने वाले अष्ट कर्म जनित संसार को शेष करना है । वे चतुर्गतियां क्रॉस और स्वस्तिक के रूप में सैंधव अंकन में बारबार दिखलाई देती हैं । जहां कहीं भी ये स्वस्तिक शैलांकित दिखा है वहां वहां वह पुरा काल में जिनधर्म के होने का संकेत देता है । इतना ही नहीं चतुर्दिक त्रिआवर्ति का एक ऐसा शैलांकन **चित्र** है जो जिन श्रमणों व्दारा पुरा काल में की गई तप सामायिक की घोषणा करता है। अन्य विशेष पुरा चिन्हों में दिगंबरत्व /मुनि लिंग तथा गुणस्थानोन्नति के अंकन भी वहां पुरा काल में जैनत्व होना दर्शाते हैं। कुबेर का दर्शाया जाना (महालक्ष्मी लैणी) , अष्टमंगल अंकनों का होना (कार्ला गुफाऐं) , युगल चरणांकन, शार्दूल अथवा चक्र का होना मूल में जैनत्व की घोषणा करते हैं भले ही उन्हें बाद में अशोक के काल से बौध्दों ने भी अपना लिया । जिनत्व का मूल आधार अहिंसा है । आगमानुसार–

–**अहिंसैव जगन्माता अहिंसैव पध्दति :। अहिंसैव गतिः साध्वी श्रीर हिंसैव शाश्वती** । ज्ञानार्णव, 8/32

सैंधव संकेत लिपि में इसे एक चौपाए के पैर को सीमांकित करके दर्शाया है जो बतलाता है कि किस प्रकार के पशुओं को सुरक्षा में रखकर पाला जाना चाहिए । वह हिंसा का संकेत नहीं था जैसा कि पुराविदों ने अब तक मान रखा है। वह पशु पालन का द्योतक है, लगभग वैसा ही जैसा महाव्रती को उनकी स्वसंयम की सीमाओं में दर्शाया गया है।

"जिनों" के अनुयायी, श्रध्दानी, समर्थक और सेवक जिनधर्मी/जैन कहलाते हैं जो समूचे पुरा भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड के ' अजनाभवर्ष ' अथवा भारतवर्ष में वेदपूर्व काल से ही अवस्थित थे। यही सैंधव प्रमाण भी दर्शाते हैं। जिनानुयायी जैन है।

–**जिनस्य संबंधीदं जिनेन प्रोक्तं वा जैनम** । प्रवचनसार, तात्पर्य वृत्ति, 206

अर्थात जैनत्व ही हमारे मानव समाज की मूल संस्कृति' थी और है। उसे खोकर हम मानवता सुरक्षित नहीं रख सकते।

जैनों के आराध्य नौ देव हैं –

–**अरहंत सिध्द साहु तिदयं जिणधम्म वयण पडिमाहु जिण णिलय इदिराए नवदेवता दिंतु मे बोहिं**। रत्नकरण्ड श्रावकाचार.119/168

उर्ध्वलोकवासी देव, शासन देवी देवता रूप जिनालयों में अरहंतदेव की सेवा में सैंधव सीलों में भी दिखाई देते हैं जैसे कि आज के जिनालयों में। पुरा जिनबिंबों में भी वे वैसे ही दिखलाई देते हैं । आश्चर्य है कि पुराविदों एवं मूर्त्ति विज्ञानियों ने ऐसे जिन बिंबों को मध्ययुगीन कहकर उन्हें अनदेखा छोड़ दिया ठीक कुण्डलपुर के बड़े बाबा की तरह। जबकि उस जिन बिंब पर **पुरालिपि अंकित** है। कदाचित उन विशेषज्ञों का भी दोष नहीं है क्योंकि वह लिपि मात्र **कैमरा** पकड़ पाता है। कुण्डलपुर का वह पुरा कालीन जिनबिंब अब अपने नए आयतन में भक्तों व्दारा सुरक्षित कर लिया गया है इसी मान्यता के आधार पर कि वह एक अर्वाचीन मध्ययुगीन, नित्य पूजित जिन बिंब है । किंतु यह कार्य पुरा धरोहर के संरक्षण की दृष्टि से अत्यंत सराहनीय हुआ है। **(चित्र)** बिंब के सिर के पास ही दो दरारें अब स्पष्ट देखी जा सकती हैं जो बिंब के पुराने जिनायतन में दीवार में जड़े होने के कारण अदृष्ट थीं। पिछले वर्षों में दो बार उनमें पानी संभवतः पुरानी दीवार के पीने से, भरने से इतना रिसाव हुआ कि लोगों मे इसे **अतिशयमय अभिषेक** जानकर शोर मच गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहां जिसने सुना दौड़ पड़ा कुण्डलपुर की ओर । दर्शकों की भीड़ लग गई। बिंब का पत्थर गुलाबी लाल बलुआ परतदार शिला है। सारे ही प्राचीन जिन बिंब इसी पत्थर में अथवा दक्षिण भारत के ग्रेनाइट में दिखते हैं । यह बात भी सर्व विदित है कि ऐसे पाषाण में एक बार परत में पानी घुसने पर परतें बहुत तेजी से खुलती हैं। दो बार वही घटित हो चुकने पर संभावना यही थी कि वे परतें कभी भी बढ़कर बिंब की चेहरेवाली परत को सामने फेंक देतीं और वह पुरा धरोहर काल कवलित हो एक अतिशयी प्रकोप माना जाकर भुला दिया जाता जैसे कि आज **अंजनेरी का पुरा जिन बिंब** सड़क के किनारे उपेक्षित पड़ा है। अच्छा हुआ कि समय रहते भक्तों ने उसे चूने की चुनाई वाले प्राचीन जिनालय से निकालकर नव निर्माणाधीन जिनालय में बिना उसका पुरा वैभव पहचाने भी सुरक्षित करा कर **जिन पूजकों** पर उनकी अनमोल पुरा संपदा बचाने का गुरुतम उपकार किया। इस उत्तम कार्य के लिए उनसे न पूछे जाने के कारण कुछ लोगों का मान आहत हो गया जिससे रुष्ट हो उन्होंने विरोध दर्शाते उस उध्दार प्रकरण की सराहना के बजाय उसे विवाद बनाकर न्यायालय में बिना सचाई जाने ही पहुंचा दिया । सुरक्षा में भी उन्हें दोष ही दिखाई दिए। किंतु भारतीय ही नहीं विश्व पुरानिधि की सुरक्षा में यह सराहनीय कार्य भक्तों ने किया है। ऐसे पुरा लिपि अंकित 12 जिन बिंब अब तक हमारी दृष्टि में सर्वेक्षण के व्दारा आ चुके हैं किंतु उनका उदघाटन करने में यहां इसलिए संकोच है कि कहीं वे भी बड़े बाबा की तरह ही भारतीय पुरातत्व विभाग व्दारा बेवजह किन्ही अहंकारियों की सनक का शिकार बनकर कानूनी उलझनों में उलझा न दिए जावें कि उन्हें मैंने यथोचित मान सम्मान से पूछा क्यों नहीं । वे सब नित्य पूजित जिनबिंब हैं। बड़े बाबा प्रकरण में माननीय न्यायविदों का निर्णय सुनकर ही अपनी अगली कृति में उन्हें प्रगट करूंगी ।

इस संसार में कर्म जनित चतुर्गति के दुःखों से छुटकारा पाने ही तपस्वियों ने स्वसंयम से तप धारकर अपनी सहनशक्ति को हृदय में निर्मलता रखते हुए उन्नत किया जिसे सैंधव लिपि में भरपूर अभिव्यक्त किया गया है। इसे उत्तरकालीन सभी धर्मों ने थोड़े बहुत रूप में अपनाया। **कल्याणव्रत चक्रवर्ती** ने अपनी पुस्तक इमर्जेंस ऑफ हिंदुइज्म में दर्शाया है कि यह हिंदु धर्म और उसकी ईश्वर संबंधी कल्पना मात्र पांचवीं शती ई.पू. की ही हैं अन्यथा पूर्व काल में मानव ही उस आत्मिक उच्चता को प्राप्त करता था, (अर्थात मनुष्य ही तीर्थंकर पद तप व्दारा पाता था) और यह हिंदुत्व जैनत्व से ही जन्मा एक दर्शन है ।

–**व्यवहारेण चतुर्गतिजनक कर्मोदयवशेनोर्ध्वधःस्तिर्यग्गति स्वभावः**। द्रव्य संग्रह, टीका, 2/9/5

–**जिस्से गइए आउअं बध्दं तत्त्थेव ण्चिछएण उपज्जति त्ति** । धवला, 10/4,2,4/40/239/3

–दुक्खहं कारणु मुणिवि जिय दव्वहं एहु सहाउ। होयवि मोक्खहं मग्गि लहु गम्मिजइ परलउ। परमात्म प्रकाश, 2/27

–**गतिश्चतुर्भेदा नरकगतिस्तिर्यग्गतिर्मनुष्यगतिर्देवगतिरिति** । सर्वार्थ सिध्दि, 2/6/159/2

इनसे अलग एक पंचम गति मोक्षदायी है, जो उर्ध्वगाति/सिध्दगति कहलाती है –

–**आदेसेण गदियणुवादेण अत्तिथ णिरयगदि तिरिक्खगदि मणुस्सगदि देवगदि सिध्दगदि चेदि**। षटखण्डागम । 1/1,1/24/201

जिन अथवा जितन्द्रियों ने 28 मूल गुणों को धारकर 22 परीषह अत्यंत पुरुषार्थ उठाते हुए जय किए । अतः इसे वीर मार्ग और वीर धर्म पुकारा गया जिसकी उदघोषणा शार्दूल ने की । श्री वत्स की सील नंबर 306 इसे दर्शाती है। कायोत्सर्गी जिन के विषय मे जैनागम के सूत्र **'मेरा कुछ भी नहीं, यह तन भी नहीं'** दर्शाते हैं ।

–**समस्त बहिर्द्रव्येच्छा निवृत्ति लक्षण तपश्चरण** । द्रव्य संग्रह, 21/63/4

–**तवो विसय णिग्गहो जत्थ** । नियमसार, 6/15

–**कर्म क्षयार्थं तप्यत इति तपः** । सर्वार्थ सिध्दि, 9/6/412/11

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

–विषयाशावशातीतो निरारम्भो अपरिग्रहः, ज्ञान ध्यान तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते । रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 1/1

–खवणायं विलणिव्वियडि ण पुरिमण्डलेयट्ठा णाणि तवो णाम। धवला,8/5,4,26/61/5 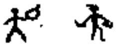

वह तप छह बाहर और छह अंतरंग इस तरह बारह प्रकार का बतलाया गया है जो सैंधव संकेत भी बतलाते हैं।

–दुविहो य तवाचारो बाहिर अब्भंतरो मुणेयव्वो । एक्केक्को विछध्दा जधाकम्मं तं परुवेमो । मूलाचार, 345

–बारस विहेण तवसा णियाणरहियस्स णिज्जरा होदि। वेरग्गभावणादो णिरहंकारस्स णाणिस्स। कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा,102

–व्दादश विधं तपः तेनैव साध्यं शुध्दात्म स्वरूपे प्रतपनं विजयनं निश्चय तपश्च । द्रव्य संग्रह टीका, 57/228/11

–विसय कसाय विणिग्गह भावंकाउण झाण सिज्झीए। जो भावइ अप्पाणं तस्स तवं होदि णियमेण। बारस अणुवेक्खा, 77चरदि

–तस्माव्दीर्यं समुद्रेकादिच्छारोधस्तपो विदुः। बाह्यं वाक्काय संभूतमान्तरम मानसं स्मृतं । मोक्षपंचाशत, 48

तप हेतु संयम, उत्साहमय पुरुषार्थ और दृढ़ता चाहिऐ क्योंकि शरीर का अपना धर्म और इंद्रियां हाथी सी प्रबल होती हैं ,दोनों पर नियंत्रण कर पाना अच्छे अच्छे वीरों को भी डिगा देता है । स्वयं लिया हुआ नियम थोड़ी सी चूक में टूट जाता है किंतु गुरु के सम्मुख लिया गया छोटे से छोटा संकल्प गुरु एवं शिष्य दोनों पर अपना प्रभाव और दबाव रखता है। सैंधव संकेतों में संयम को भाले से और पुरुषार्थ को अर्ध धनुष से दर्शाया गया है। इसका चरम समाधिमरण /संथारा/सल्लेखना है ।

–संयममाराहंतेण तवो आराहियो हवे णियमा। आराहंतेण तवं चारित्तं होइभयणिज्जं। भगवती आराधना मूल 6/32

–तिण्णं रयणाणं विब्भावड्ढ मिच्छाणिरोहो । धवला, 13/5,4,26/54/12

जीवन के चार पुरुषार्थ कहे गए हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अर्थात धर्म से ही प्रभावित शेष तीन हैं और धर्म सबसे प्रधान और मूल है। धर्म अर्थात नैसर्गिक धारण सत्य है।

–धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चेति महर्षिभि, पुरुषार्थों अयमुद्दिष्टश्चतुर्भेदः पुरातनैः। ज्ञानार्णव, 3/4

–धम्महं अत्थहं कम्महं वि एयहं सयलहं मोक्खु ।उत्त्मुपभणहिं णाणि जिय अण्णें जेण ण सोक्खु । परमात्म प्रकाश . 2/3

–असुहा अत्था कामा य ।.......एओ चेवसुभो णवरि सव्वसोक्खायरो धम्मो । भगवती आराधना मूल,1813

–पुंसो अर्थेषु चतुर्षु निश्चलतरो मोक्षः पर सत्सुखःशेषास्तव्दिपरीत धर्मकलिता हेया मुमुक्षोरतः । पद्मनंदि पंचविंशति, 7/25

–सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः । तत्त्वार्थ सूत्र, 1/1 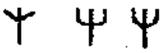

षट द्रव्य, सप्त तत्व, नौ पदार्थ ही मात्र नैसर्गिक हैं जिनमें **जीव/मेरा अपना आत्मा** हरेक के लिए **स्व** है शेष सब **पर** है।

शाश्वत षटद्रव्यों से यह संपूर्ण संसार बना है जिसे त्रिलोक संस्थान कहा गया है ।इसके मध्य लोक में मात्र ढाई व्दीप के व्दीप समुद्रों में मनुष्य लोक है जिसमें मनुष्य का अस्तित्व बताया गया है और जहां से नर को मुक्ति तप व्दारा ही होती है। यही वह क्षेत्र है जहां पुरुषार्थ संभव है। ढाई व्दीप से बाहर क्षायिक सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं कही गई है।

–अढाइज्जादीवेसु दंसण मोहणीय कम्मस्स खवण माढवेदि त्ति णो सेसदीवेसु । धवला,6/1,9,8,11/244/2

तप मार्ग पुरुष स्त्री दोनों ही के लिए खुला है किंतु तीर्थंकर प्रकृति कर्म का अर्जन मात्र नरभव से ही संभव है । मोक्षार्थी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तप के लिए तो अंतिम समुद्र / स्वयंभूरमण समुद्र के महामत्स्य जैसा सहनशील संहनन वज्र वृषभ नाराच संहनन चाहिए और फिर उत्कृष्ट तप करके क्षायिक गुणस्थानोन्नति चाहिए जो बारहवें गुणस्थान के अरहंत पद तक पहुंचाऐ तब मोक्ष प्राप्ति तदभवी निश्चित हो जाती है। इसकी अभिव्यक्ति सैंधव प्रतीकों में अत्यंत सुंदर हुई हैं। 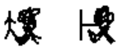

–तस्स मणुसगदीएचेव तित्थयर कम्मस्स बंध पारंभो होदि, ण अण्णत्थेत्ति। धवला,8 / 3,38 / 74 / 4
–आर्हन्त्यकारणं तीर्थकरत्वनाम । सर्वार्थ सिध्दि, 8 / 11 / 392 / 7
–**जस्स कम्मस्स उदएण जीवस्स तिलोग पूजा होदि तं तित्थयर णाम**। धवला,6 / 1,9–1,30 / 67 / 1
–सकलभुवनैकनाथस्तीर्थकरो वर्ण्यते मुनिवरैरिष्ठैः विधु धवल चामराणं तस्यस्याव्दै चतुःष्टिः । धवला,1 / 1,1,1 / 44 / 58
–पारध्द तित्थयर बंध भवादो तदियभवे तित्थयरसंत कम्मिया जीवाणं मोक्ख गमण णियमादो । धवला, 8 / 3,38 / 75 / 1

सामान्य संसारी जीव अष्ट कर्मों के जाल में फंसा अपने ही बोए कर्मों के फल भोगता कोध, मान, माया, लोभ की अनुभूति से रोता हंसता आत्मा को 16 कषायों और 9 नोकषायों व्दारा कसता, ही चला जाता है और कर्मो का घेरा बढ़कर उसका भवचक्र बढ़ा देता है।इसे सैंधव लिपि में स्पष्ट दर्शाया गया है।

उन अष्ट कर्मों में प्रधान मोहनीय कर्म होता है जो दो प्रकार का, दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय होता है। दर्शन मोहनीय के कारण वह सत्य नहीं देख पाता और 'मेरापने' के मिथ्या भाव में डूबा कषाय करता रहता है। वह कषाऐं कोध,,मान, माया,लोभ सैंधव लिपि में त्यक्त चार बूंदों के रूप में दिखलाई गई हैं। इनसे उपजे आर्त्त रौद्र ध्यान दो बूंदों के रूप में, यथा दिखते हैं जो राग व्देष उपजाते हैं । ज्ञानी के लिए इन्हें त्यागना आवश्यक है।

–सत्तु मित्त मणि पाहाण सुवण्ण मट्टियासु राग देसाभावो समदा णाम । धवला, 8 / 3,41 / 84 / 1
–यत्सर्वद्रव्यसंदर्भे रागव्देष व्यपोहनं। आत्मतत्व निविष्टस्य तत्सामायिकमुच्यते । योगसार. / अ. / 5 / 47
–अकसायं तु चरित्तं कसायवसियो असंजदो होदि । मूलाचार, 182
–समता सर्व भूतेषु संयमे शुभ भावना। आर्त्तरौद्रपरित्यागस्तध्दि सामायिकं व्रतम । पद्मनंदि पंचविंशति, 6 / 8
–स्व शुध्दात्मानुभूतिबलेनार्त रौद्र परित्यागरूपं वा, समस्त सुख दुःखादि मध्यस्थ रूपं वा । द्रव्य संग्रह टीका, 35 / 147 / 7

दर्शन मोहनीय के हटते ही वह गुणस्थानोन्नति करता **चतुर्थगुणस्थान** में पहुंचता है और सम्यग्दृष्टि बन जाता है । उसके पास दो धर्मध्यान ।| होते हैं अतः **आत्मकल्याणी सच्चे** गुरु की शरण में पहुंचकर वह **श्रावक** बन जाता है। यहां से ही वह अपने चारित्र मोहनीय कर्मों को कम से नष्ट करने हेतु स्वसंयम धारण के लिये गुरु सन्मुख नियम लेना प्रारंभ करता है। ये नियम पुरुषार्थ सहित वह धारण करता है जो आगे प्रतिमा धारण सहित बढ़ते जाते हैं । उठते उठते वह उच्च श्रावक बन जाता है 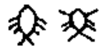 ब्रहमचारी, क्षुल्लक अथवा ऐलक / आर्यिका और रत्नत्रय धारण करके पंचमगुण स्थानी हो जाता है। वह रत्नत्रयी बन चुके हैं और एकदेश / अणुव्रती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहां से तप पुरुषार्थ बढ़ाने पर कर्म निर्जरा से उन्नति प्राप्त कर सप्तम गुणस्थानी महाव्रत धारकर वे मुनि बन उच्चकोटि का तप करते हैं। यह 14 गुणस्थानी व्यवस्था भी सैंधव प्रतीकों में अति सुंदर दर्शाई गई है । ध्यान से देखें तो केवली जिन 13 वें 14वें गुणस्थान पर तदभवी तीर्थंकर जिन | के साथ ही हैं। 14वें गुणस्थन से पंचमगति है।

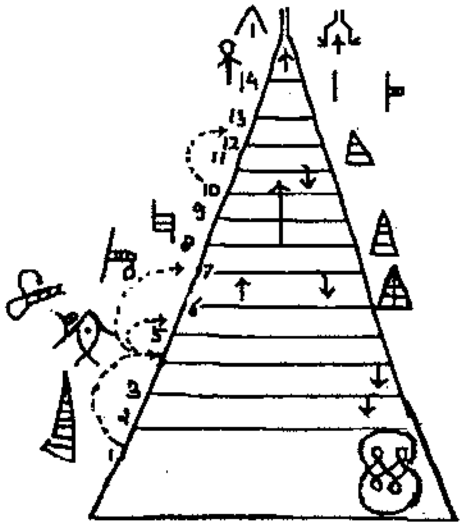

शेष व्यवस्था अन्य गुण स्थानों की 4, 5, 7, 12, ,13, 14 वाली है। साधुओं व्दारा सर्प सीढ़ी का खेले जाने वाला खेल तथा उनकी उठान गिरान आर्यिकाओं का कमिक भवों में आरोहण ,दिगम्बरत्व से ही पुंसवेदी को तीर्थंकरत्व , चतुर्थ गुणस्थानी श्रावक को ही तीर्थंकर प्रकृति कर्मोपार्जन, प्रथम गुणस्थानी कुलाचरणी जिनभक्त का अनादिकाल से अंतहीन गठान में भ्रमण, आदि सारे जैनागमी सिध्दांत सैंधव लिपि ने सुंदरतम रीति से संजो कर रखे हैं।

तप व्दारा अष्टकर्मो के भी चार घातिया कर्म नष्ट करके ही भवघट तिरने की स्थिति रत्नत्रय से बनती हैं, को भी आश्चर्यजनक प्रस्तुति दी गई है। और तो और अष्टकर्मो का नाश चार शुक्लध्यानों से ही है को भी हाथ से दर्शाया गया है। साधकों की उपशम , क्षयोपशम और क्षायिक स्थितियों का भी अंकन है जहां भाव तलछंट को छांटा है।

–गत्यादि मार्गणा स्थानैर विशेषतानां चतुर्दश गुणास्थानानां प्रमाण प्ररूपणमोघ निर्देशः । धवला,3/1,2,1/9/2

–संखियो ओधेत्ति य गुणसण्णा स च मोहजोगभाव । गोम्मटसार जीवकाण्ड, 3/22

–उक्कस्सणु भागेण सः आउव बंधे संजदासंजदेदिहेत्थिं गुणट्ठाणाणं गमण भवदो। धवला,12/4,2,7,19/20/13

–तस्य संवरस्य विभावनार्थं गुण्स्थान विभाग वचनं कियते । राजवार्तिक, 9/1/10/588/6

–लिंग देहाश्रितं दृष्टं देह एवात्मनो भवः,ण मुच्यते भवात्तस्मात्ते ये लिंगकृताग्रह । समाधि शतक, मूल, 87

–भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताइ य दोस चइउणं पच्छ दव्वेण मुणी पयडाडि लिंगं जिणाणाए। भाव पाहुड, 73

–रत्नत्रय भावनाए स्वात्मानं साध्यतीति साधुः । प्रवचनसार, तात्पर्यवृत्ति 2/345/16

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

–द्रव्यलिंगमिदं ज्ञेयं भावस्य लिंग कारणं। तदध्यात्मकृतम स्पष्टं ना नेत्र विषयं यतः। भाव पाहुड, 2/129

–णिव्वाण साधए जोगेसदा जुंजुंति साधवो। सदा सव्वेसु भूदेसु तम्हा ते सव्व साधवो । मूलाचार, 512

–जिनेन्द्र मुद्रया गाथाम ध्यायेत प्रीतिव्किस्वरे। हरितपंकजे प्रवेश्यांतर्निरुध्य मनसानिलम। प्रथम व्दिद,येक गाथांश चिन्तान्ते रेचयेच्छनैः नवकृत्वा पृथोक्तैवं दहत्यन्हः सुधीरमतः। अनगाार धर्मामृत, 9/22–23/866

जिनभक्त पंचपरमेष्ठियों को आराधते एकदेशव्रती और फिर महाव्रती बनकर चतुराधन से कर्मजालों से छुटकारा पाने उद्यम करते हैं। वे घर में रहते हुए जीविकोपार्जन सहित धर्म सेवन और साधुओं की सेवा करते हैं।

–मूलोत्तर गुणनिष्ठमधि तिष्ठन पंचगुरुपद शरण्यः दान यजन प्रधानो ज्ञान सुधं श्रावकः पिपासु स्यात। सागार धर्मामृत,1/15

–अणुव्रतो आगारी। तत्त्वार्थ सूत्र,

वह **सम्यकदृष्टि** आगारी जिनवाणी श्रध्दानी तथा षट द्रव्य, सप्त तत्व चिंतक है।

–जीवा पोग्गल काया धम्म अधम्मा य काल आयासं। तच्चत्त्था इदि भणिदा णाण गुण पज्जयेहिं संजुत्ता। नियमसार,9

–दव्वं जीवंजीवं जीवो पुणचेदणोवओगमऔ। पोग्ग्ल दव्वप्पमुहं अचेदणं हवदि य अज्जीवं । प्रवचनसार,127

–क्रिया च कालस्य। तत्त्वार्थ सूत्र, 5/22

–स च कालो व्दिविधः उत्सर्पिणी अवसर्पिणी चेति। तिल्लोय पण्णत्ति, 4/313

–तत्रावसर्पिणी षटविधा सुषमसुषमा, सुषमा, दुष्षमसुषमा,सुषमदुष्षमा अति दुष्षमाचेति । धवला,9/4,1,44/119/10

–पज्ज्रत्तौ जीवदौ मिच्छादिट्ठी हवइ। बंधइ बहुविधकम्मणि जेण संसारे भमति। परमात्म प्रकाश, 1/77

मिथ्यादृष्टि जीव संसार प्रवृत्त रह लौकिक वैभव की ओर दौड़ते जीवन व्यर्थ गवांकर 'मेरा–तेरा' करता रहता है। कर्मास्रव करता वह आत्मा के अस्तित्व को नहीं जानता। ना ही जानना चाहता है । वह चंचल चित्त आकुल व्याकुल रहता है।

–निज परमात्मप्रभृति षड,द्रव्य पंचास्तिकाय सप्ततत्व नवपदार्थेषु मूढ़त्रयादि पंचविंशति मल रहितं वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत नय विभागेन यस्य श्रध्दानं नास्ति स मिथ्यादृष्टिर्भवति। द्रव्य संग्रह टीका, 13/32/10

–अप्पणि पुनरत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो। लिप्पदिकम्मरयेण दुकंद मज्झे जह लोइं । समयसार, 129

–सममैत्थी कालं बीलै वेरग्गणाण भावेण। मिच्छैट्ठी वांछा दुब्भावालस्सकल्हेहि । रत्नकरंण्ड श्रावकाचार, 57

प्रत्येक **श्रावक** भावना भाता है कि वह व्रत धारण करके अपनी भव भटकान कम कर ले। यह जीवन व्यर्थ न चला जाए।

–तपसा निर्जरा च। तत्त्वार्थ सूत्र, 9/3

–अप्पा अप्पाम्मि राओ रायादिसु सहल दोस परिचित्तो संसार तरण हेदू धम्मो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठो । भाव पाहुड़, 85

–णिसंगो णिरारंभो भिक्खचरिएइ सुध्दभावो य एगागि ज्झाणरदो सव्वगुड्ढो हवे समणो । मूलाचार, 1000

–जीवितान्ते तु साधनं। देहादेर्हित त्यागात ध्यान शुद्धात्म शोधनं । महापुराण,39/149

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गृहस्थ को जीवन यापन करते हुए **आरंभी हिंसा** का दोष तो लगता ही है **विषय कषाय जनित कर्मास्रव** भी सदैव बना रहता है। इसलिए **घर में रहकर मुक्ति असंभव** है। गृहस्थ घर में रहकर **संयम की भूमिका** अवश्य बना सकता है।

–खण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुंभ प्रमार्जनी पंचसूना गृहस्थस्य तेन मोक्षं न गच्छति । मोक्ष पाहुड़,12 / 313

–असि मसि कृषि वाणिज्यादिभिर्गृहस्थानां हिंस्यसंभवेपि पक्षः। चारित्रसार, 40 / 4

–कर्मार्यास्त्रेधा सावद्यकर्मार्या अल्प सावद्यकर्मार्या असावद्यकर्मार्याश्चेति। सावद्यकर्मार्याः षोढ़ा असि मसि कृषि विद्या शिल्प वणिक्कर्म भेदात । राजवार्तिक, 3 / 36 / 2 / 200 / 32

–षडप्येतेअविरति प्रवणत्वातसावद्यः कर्मार्याः अल्प सावद्यकर्मार्याः श्रावकःश्राविकाश्च विरत्यविरति परिणत्वात। राजवार्तिक, 201 / 6

–उहयगुणवसन भय मल वैराग्गैचार भत्तिविग्गहं वा। एदे सत्तरिया दंसण सावय गुण भणिया। रयणसार, 8

–एयारस दस भेयं धम्मं सम्मत्तं पुव्वयं भणियं ।सागार अनगाराणं उत्तम सुह संपजुत्तेहिं ।बारस अनुवेक्खा, 68

–आज्ञापायविपाक संस्थान विचयम धर्म्य । तत्त्वार्थ सूत्र, 9 / 36

–अद्योतम क्षमा यत्र सो धर्मो दश भेद भाक। श्रावकैरपि सेव्यौसो यथाशक्ति यथागमं। पदमनंदि पंचविंशति,6 / 59

–धम्मे एग्गामणो जो णवि भेदेदि पंचहः विसयं । वेराग्गमओ णाणी धम्मज्झाणुम हवे तस्स। कार्तिकेयानुप्रेक्षा, 479

ध्यान की आरंभिक अवस्था जघन्य **सामायिक है** और ध्यान बारह तपों में से एक **तप** है।

–राग दोसो णिरोहित्ता समदा सव्व कम्मसु। सुत्तेसु अपरिणामो सामाइयं उत्तम जाने। मूलाचार, 523

–सामायिकं सर्व जीवेषु समत्वं । भाव पाहुड़, टीका, 27 / 221 / 13

–चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुःप्रणामस्थितो यथाजातः।सामायिको द्विनिषद्यास्त्रियोगा शुध्दस्त्रिसंध्यंभिवंदी ।रत्नकरण्डश्रावकाचार,139

–जीवित मरणे योगे वियोगे विप्रिए प्रिए शत्रौ मित्रे सुखे दुक्खे समयं सामायिकं विदुः। अमितगति श्रावकाचार 8 / 31

–धर्मध्यानं बाहयध्यात्मिक भेदेन द्विप्रकारं ।चारित्रसार,, 172 / 3

–मूलोत्तर गुणनिष्ठमधितिष्ठन पंचगुरुपद शरण्यः। दानयजनप्रधानो ज्ञानसुधं श्रावकः पिपासु स्यात ।सागार धर्मामृत, / 15

–कम्मजिज्जरा नष्ठमत्थि मज्जनुगयस्य सुदणाणस्स परिमल मणुपेक्खणा णाम । धवला, 9 / 4,1,55 / 263 / 1

–पंचमहाव्रत धरास्त्रिगुप्ति गुप्ताः अष्टादश शील सहस्त्रध्राश्चतुरशीति शत सहस्त्र गुण ध्राश्च साधवः। धवला,1 / 1,1,1 / 51 / 2

–उज्जोवणं मुज्जवणं णिव्वाहणं साहणं च ण्च्छिरणं । दंसण णाण चरित्तं तवाण माराहणा भणिया। भगवती आराधना,2

–गोप्तं रत्नत्रयात्मानं स्वात्मनं प्रतिपक्षतः, वापथोगान्ति गृहीयाल्लोक पंक्त्यादि निस्पृहः। अनगार धर्मामृत, 4 / 154

–चारित्त मोह उवसामगा मदा देवेसु उववज्जंति । धवला,2 / 1,1 / 430 / 18

अदृष्ट आत्मा संसारी की समझ में न आने से आत्ममय होकर भी वह उसे नकार कर मात्र शरीर को ही 'स्व' पुकारता है और वह कुछ अंशों में सही भी है । आत्म प्रदेश संपूर्ण शरीर में व्याप्त होने से ही संपूर्ण शरीर संवेदना अनुभवन करता है, 'मैं' पने की स्मृति भी रहती है जो मरण के उपरान्त शव में नही रहती। यही आत्मा का अस्तित्व दर्शाता है कि वही 'मैं' है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन दर्शन उस आत्म तत्व को ही धुरी मानकर संसार को देखता है क्योंकि शाश्वत षटद्रव्यों में मात्र एक वही जीव द्रव्य मेरा 'स्व' है। शेष सब 'पर' हैं इसका उसे भान रहता है । यह शरीर उसके ही सहारे स्वयं को 'मैं' पुकारता अहं भाव रखता है। **सैंधव संस्कृति भी अपनी लिपि से यही साम्य दर्शा रही है।**

—अक्षणोति व्याप्नोति जानातित्यक्ष आत्मा । सर्वार्थ सिध्दि, 1/12/103

—मतिश्रुतावधिमनःपर्यय केवलानि ज्ञानं, त.सू. 9, मतिश्रुतावध्यो विपर्ययश्च। तत्त्वार्थ सूत्र, 31 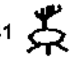

—चैतन्य शक्त्तेव्द विकारौ, ज्ञानाकारो ज्ञेयकारश्च। राजवार्तिक,1/6/5/34/29

—इत्यादि भेदात पंचधा, इत्येवं संख्येयासख्येयानंत विकल्पं च भवति ज्ञेयाकार परिणति भेदात। राजवार्तिक,1/7/14/41/2

—स्वप्रभाव भासणसमर्थ सविकल्पं गृहीत ग्राहकं सम्यग्ज्ञानमेव ज्ञानमर्थे निवर्तमत्प्रमाण मित्यार्हतं मतं। न्याय दीपिका, 1/28/22

जिनशासन /सिंहासन के चार पैर साधु, आर्यिका, श्रावक, श्राविका कहे गए हैं जो पैरों की गणना कर लेने पर बढकर कमशः सात हो जाते हैं। वे सभी गुणस्थानोन्नतिरत रहते हैं।
ये सभी सम्यकदर्शन के आठ अंग पालते हैं जिनमें एक धर्मवात्सल्य है जो विनय और वैयाव्रत्य दोनों को पैदा करता है। दोनों सोलहकारण भावनाओं में भी समाहित हैं और तीर्थकर प्रकृति उपार्जन में भी कारण हैं ।
वैयाव्रत्य व्दारा गुणीजनों की सेवा की जाती है।सैंधव लिपि संकेतों में ये सभी दृष्ट हैं।

—व्यापृते यत्क्रियते तव्दैय्यावृत्त्यं । धवला, 8/3,41/88/8

—व्यापत्ति व्यपनोदः पदयोःसंवाहनं च गुणरागात। वैय्यावृत्त्यं व्यापानुपग्रहौ अन्योपि संयमिनां ।रत्नकरंण्ड श्रावकाचार,112

—कायचेष्टा द्रव्यान्तरेण चोपासनं वैय्यावृत्यम । सर्वार्थ सिध्दि, 9/20/439/7

—गुणधीए उवज्झाए तवस्सि सिस्से य दुब्बले। साहुगणे कुले संघे समणुण्णे य चापदि । मूलाचार, 390

जैनागमानुसार आत्मोन्नति का यह पथ आदि काल से गुरु शिष्य परंपरागत चला आ रहा है जहाँ चतुर्दिक संघ में रहकर पुरुषार्थवान मनुष्य संघाचार्य एवं तपो वृध्द तपस्वियों की चर्या देखकर अनुकरण करते हुए, उनसे ज्ञानमय उपदेशित मोक्षपथ को यहाँ तक सुरक्षित ले आए हैं। सैंधव संकेत उसे भी दर्शाते हैं।पंचेन्द्रिय के विषय कितने ही लुभावने क्यों न हों उनका रत्नत्रय दृढ़ बना रहता है।

—चरदि णिबध्दो णिच्चं समणो णाणम्मि दंसणमुहम्मि।पयदो मूलगुणेसु य जो सो पडिपुण्णसामण्णो प्रवचनसार मूल,214

—स्वद्रव्यं श्रध्दानस्तु~~शु~~ध्यमानस्तदेव हि। तदेवोपेक्षमाणश्च निश्चयान्मुनिसत्तमः। तत्त्वार्थसार, 9/6

—अणंतणाणदंसणवीरिय बिरइखइयसम्मत्तादीणं साहया साहू णाम। धवला, 8/3,41/87/4

—आयारं पंचविहं चरदि चरावेदि जो णिरदिचारं,उवदिसदि य आयारं एसो आयारवं णाम।भगवती आराधना 419,

—संगह णिग्गह कुसलो सुत्तत्थ विसारओ पहिय कित्ती। सारण वारण साहण किरियुज्जुत्तो हु आयरिओ। धवला, 111—1/31

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

–संगह णिग्गह कुसलो सुत्तत्थ विसारओ पहिय कित्ती। सारण वारण साहण किरियुज्जुत्तो हु आयरिओ। धवला, 111–1/31

–दसविहठिदिकप्पे वा हवेज्ज जो मुट्ठिदो सयायरिओ। आयारवं खु एसो पवयणमादासु आउत्तो ।भगवती आराधना मूल,420

–पंचस्वाचारेषु ये वर्तन्ते परांश्च वर्तयन्ति ते आचार्याः । भगवती आराधना वि० 46/154/12

–दंसणणाणचरित्ते तव्वे विरियाचरम्हि पंचविहे। वोच्छं अदिचारे हं कारिदं अणुमोदिदे अ कदो। मूलाचार,199

अपने व्रतों को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए वे आत्मसंयमी श्रावक तथा साधुगण व्दादश अनुप्रेक्षा तथा वैराग्य भावना भाते और उनपर पुनः पुनः चिंतन करते थे। इस प्रकार अपनी जागृति बनाए रखते थे । वह पद्यति आज भी चालू है।

–स्वाख्यातत्त्वानुचिन्तन, मनुप्रेक्षा । तत्त्वार्थ सूत्र 9/7

–अधिगतार्थस्य मन साध्यासो अनुप्रेक्षा। सर्वार्थ सिध्दि, 9/25/443

–शरीरादीनां स्वभावानुचिंतन मनुप्रेक्षा। सर्वार्थ सिध्दि 9/2/409

–कम्मणिज्जरणट्ठमट्ठि मज्जाणुगयस्स मुदणाणस्स परिमलणमणु पेक्खणा णाम। धवला, 9/4,1,55/263/1

साधु संघ विहार करके तीर्थ भ्रमण करते और एकान्त शिखरों पर तप करने जा ठहरते। श्रावक भी वहीं उनकी वैय्यावृत्ति करते ध्यान करते, जाप देते पुरुषार्थ बढ़ाते और सल्लेखना कराते/करते अपना इहभव सार्थक करते थे जैसा अब भी होता है

–तज्जगत्प्रसिध्दं निश्चयतीर्थप्राप्तिकारणं मुक्तमुनिपादस्पृष्टं तीर्थ उर्जयन्त शत्रुंजय लाटदेश पावागिरि ....तीर्थंकर पंचकल्याणस्थानानि चेत्यादि मार्गे यानि तीर्थानि वर्तन्ते तानि कर्मक्षयकारणानि वन्दनीयानि । बोध पाहुड़ टीका, 27/93/7

तप की चरम स्थिति **सल्लेखना** या सतलेखना है जिसके बिना सारे जीवन के तप और संयम निरर्थक रह जाते हैं। सच ही कहा है कि अंत भला सो सब भला। किंतु वह सल्लेखना एक संयमी के व्दारा जितनी सहज देखने में आती है वही एक असंयमी की कल्पना में अत्यंत दूभर हो जाती है इसलिए भ्रमवश उससे संबंधित तरह तरह की शंकाऐं बताई जाती हैं। जब

–वृध्दावस्था से शरीर अत्यंत दुर्बल होकर अपने षटआवश्यक ना कर सकने की स्थिति में पहुंच जावे अथवा

–रोग की भीषणता जीवन का असंयममय अंत दिखलाती होवे अथवा

–जीवन का अंत लाने वाला कोई गंभीर उपसर्ग अथवा दुर्घटना घट गई हो अथवा

–संकल्पित धर्म के धारण में बाधा करने वाली अटल विपत्ति आ गई हो तब.......!

–तपस्वी अपने संयम और संकल्पों की सुरक्षा के लिए सल्लेखना स्वयं सोत्साह धारता है जिसमें वह अपनी कषाय तथा नोकषाय दोनों को कमशः आहार जल सीमित करते हुए क्षीण करता है। सैंधव संकेत वही दर्शाते हैं। जहाँ छोटी लकीर नोकषाय और बड़ी लकीर कषाय दर्शाने वाले प्रतीत होते हैं। इसे **संथारा** भी कहते हैं । तपस्वी की सल्लेखना मुद्राऐं कितना मेल रखती हैं यह विशेष ध्यान देने का विषय है। पीछे की लकीरें अदृष्ट भाव अभिव्यक्ति ही होना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सैंधव लिपि की दृष्ट पुरा कुंजियाँ

सिंधु घाटी लिपि को पुराविदों ने संकेतों, चित्रों की बनावट के आधार पर उनके प्रत्यय उपसर्ग वाले संदर्भों सहित पहचान पहचान कर उन्हें केटेलॉगों में सुरक्षित तो कर लिया किंतु वे उसके पाठन हेतु एक भी कुंजी ना ढूंढ़ सके। जिस पुरा संपदा को उन्होने उसके नैसर्गिक भंडारों से खोज निकाला था उसकी वे कुंजी भी तो पा सकते थे। वे एक एक संकेताक्षर पहचानते थे, गुहा मंदिरों और शैलांकित कला चित्रों को भी खोज चुके थे। सिर उठाकर ऊपर दृष्टि तो डाली किंतु पैरों तले क्या रौंद गए इस पर ध्यान नहीं दिया। मात्र **जे. एम. केनोअर** ने पाकिस्तान के कुछ शैलांकनों को सैंधव घोषित किया और उन्हें लगभग 1500 ई.पू प्राचीन बतलाया। उनमें से एक चतुर्दिक त्रिआवर्ति का ऐसा संकेत है जो न केवल श्रवण बेलगोला की दोनों पहाड़ियों पर बल्कि तमिलनाडु के कुछ जैन मंदिरों के फर्श और पहाड़ियों पर भी अंकित दिखा है और यह दर्शाता है कि या तो वह मंदिर ही सैंधव युगीन है या कि फिर वह सैंधव युगीन मन्दिर के अवशेषों से निर्मित है जैसे कि चित्तौड़ का मीरा मंदिर तथा श्रमण बेलगोला का गोम्मटेश मंदिर जो पुराकालीन जिनायतनों की सामग्री से ही निर्मित प्रतीत होते हैं । (श्रवण बेलगोला का वास्तविक नाम **श्रमण बेलगोला** ही होना चाहिए श्रवण नहीं क्योंकि वहाँ उनसे ही संबंधित अपार लेख अंकित हैं।)

श्रमण बेलगोला की बड़ी पहाड़ी पर जो कि एक विशाल शिला है, दिगम्बरत्व, स्वस्तिक की पांच गतियाँ, गुणस्थानोंन्नति, चतुर्गति, चतुर्दिक त्रिआवर्ति, के अलावा श्रावकों और साधुओं संबंधी विस्तृत जानकारी वहाँ की पाषाणी धरा पर अंकित कालीन सी बिछी है। वैय्यावृत्ति, वातावरण, पुरुषार्थ), सल्लेखना, पंचम गति, तीन छत्र, सुंदर जिनालयों की रचना संबंधी अंकन, वूम्ब स्केच/भूवलय ग्रंथ संबंधी अंकन, तपस्वी मुद्राऐं, राजाओं का वैभव सहित हाथी पर आगमन, जिन सिंहासन और कायोत्सर्गी मुद्रा का हाथी पर दर्शन, उछलता घोड़ा,, भद्रबाहु चंद्रगुप्त से भी पूर्वकाल में बना सुदृढ़ चार घेरों के अंदर स्थित पर्वत का शीर्ष जिनालय, प्राचीन पहुंच मार्ग दिखलाता यक्ष, अनेक सिरों वाले पशु के रूप में क्षेत्र पर निगरानी रखता यक्ष आदि तो हैं ही, सैंधव आदितम कुंजी के रूप में आदि शिला के ऊपर जहाँ बाहुबलि मंदिर उसमें ही जड़ा गया है, पुरा कालीन **(चित्र)** कायोत्सर्गी जिन अंकन दिखता है जिसका आधा भाग अज्ञानवश उस मंदिर के निर्माण के समय नष्ट हो गया। चूंकि उस पुराकालीन मंदिर का अस्तित्व उन चार घेरों वाले शैलांकन से स्पष्ट हो जाता है जिसके अंदर अंकित संकेत – जिनध्वजा, त्रिछत्र, डुलते चंवर बतला देते हैं कि 'ऊपर त्रिलोकीनाथ का सुंदर जिनालय था जो कदाचित नैसर्गिक आपदा ज्वालामुखी अथवा भूकंप से ध्वस्त हो गया"। उसका पाषाण, सैंधव लिपि अंकित शिलाऐं और श्रमण शायिकाऐं वर्तमान खड़े चामुण्डराय वाले मंदिर में यव्दा तव्दा लगी दिखाई देती हैं। आदि शिला में टंकित बाहुबलि मंदिर, बीच वाला वह दरवाजा तथा साथ वाला भरत जिनालय एक ही विशाल शिला के अंश हैं जो उस पुरा कालीन मूल जिनालय का एक घेरा बनाते थे। दरवाजे के दोनों ओर उन दोनों भाईयों के जिनालय इस बात के द्योतक हैं कि ऊपर चोटी पर आदिनाथ जिनालय ही रहा होगा जहाँ पर्वत को काटकर बाद में गोम्मटेश को रूप दिया गया है। अब भी उस पावन परिकर के बाहरी घेरे की शिलाओं पर घनी पुरालिपि अंकितशिला को काटकर वह बाहरी प्रदक्षिणा बनी है जहाँ पूर्वकालीन, दूसरे कला चरण काल का एक छोटा सा जिनालय अब भी अंकित है। उसमें ऊपर के खण्ड में अरहंत देव और नीचे के खण्ड में आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठी दृष्ट हैं **(चित्र)** । उस ध्वस्त जिनालय में लंबे काल अंतराल के बाद संभवतः अचानक गुरु नेमिचंद्राचार्य को वीतरागी छवि दर्शन के भाव हुए हों और समर्पित शिष्य चामुण्डराय ने उसे पूर्णता दी जैसा कि इतिहास बतलाता है। ;;

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चामुण्डराय के काल तक भी **शिथिलाचारी जैनाभासी परम्परा** दक्षिण भारत में प्रचार नहीं पा सकी थी भले ही सम्प्रति के काल से लेकर तब तक कुछेक शासकों और श्रेष्ठियों से संरक्षण पाकर उसने उत्तरी भारत में कई मूल क्षेत्रों; जूनागढ, गिरनार, पालीताना आदि मे अपनी पकड़ बना चली थी। आचार्य भद्रबाहु प्रथम के **मूल संघ के विघटन के बाद दोनों ही परम्पराओं** के आचार्य अपनी अपनी परम्परा की प्रभावना में जुटे हुए थे । मूल परम्परा के क्षेत्रों की सुरक्षा के लिये भद्रपुर से भट्टारक परम्परा प्रचलित होकर उज्जयिनी, चन्देरी, भेलसा / वर्तमान विदिशा, भोपाल, कुण्डलपुर / दमोह, वारां, ग्वालियर, अजमेर, दिल्ली, चित्तौड़, नागौर, ईडर और सूरत आदि गद्दियां प्रस्थित हुईं। पुरा कालीन परम्परा की सतघोषणा हेतु कदाचित आदिनाथ की बैठी मुद्रा न बनवाकर आचार्य ने उस लंबे काल से चले आ रहे **विवाद को अंत कराने के विचार से तपलीन बाहुबलि मुद्रा** को ही वहाँ उन्नत चोटी पर प्रगट कराना चाहा हो। संयोग था कि उसमें वीर जननी का भी भावनात्मक सहयोग जुड़ गया ।

जैन इतिहास में मात्र बाहुबलि ही एक ऐसे तपस्वी दिखते हैं जो **एकबार तपरत हुए तो फिर कभी बैठे नहीं।** उनकी तपलीन मुद्रा का दर्शन मात्र खड़गासन में ही संभव था जो चिरकाल के लिए सैंधव युगीन शाश्वत परम्परा को दिग दिगन्त तक भारतीय मूल संस्कृति की सुगंधि सा– अहिंसा, सत्य, करुणा, शील, त्याग और तप की गूंज के रूप में देने में समर्थ था। वह अटल बिंब समूची पर्वत शिला होने से न तो हिलाया जा सकता था ना ही हटाया जा सकता था। उसका वहाँ प्रगट होना मात्र कारीगर की अनुपम कला का प्रदर्शन ही नहीं, भारतीय मूल संस्कृति की अभिव्यक्ति मात्र भी नहीं आदिकालीन चले आ रहे आत्म पथ के रहस्य को उदघटित करने वाली **चिर घोषणा** के रूप में था। वह एक बहुत बड़ी घटना थी जिसे चामुण्डराय जैसा शूर योध्दा ही संपादित करा सकता था अन्यथा उस समय तक तो जिनश्रमण जैसी सहनशील संस्कृति ने विकटतम आरोपित संकट झेले थे, एलोरा के **गुफा चित्र** जिसका आंशिक उदघाटन करते हैं। **सैंधवांकित पुरा जिन बिंब तो अकाट,य कुंजियाँ** हैं।

सैंधव कुंजी 1 :

सैंधव लिपि की उस विशाल धरोहर के कारण गोम्मटेश का वह विन्ध्यगिरि एक जैन शाश्वत तीर्थ होने का परिचय देता है कि वह एक शाश्वत तीर्थ निरंतर रहा इसीलिए **कटवप्र** (सल्लेखना पर्वत) कहलाया। भरत बाहुबलि के उन मंदिरों से भी पूर्व काल में अंकित वह क्षत कायोत्सर्गी जिन रेखांकन सैंधव युगीन अत्यंत ठोस प्रमााण कुंजी के रूप में है क्योंकि उसके समीप ही उसी से संदर्भित चार स्पष्ट और एक धूमिल सैंधव संकेताक्षर भी उससे साम्य रखते हुए अंकित हैं **(चित्र) भाला, पिच्छी, त्रिशूल सात खड़ी लकीरें और एक धूमिल खड़ी मछली,** जो बाऐं से दाऐं पढ़े जाने पर दर्शाते हैं कि :

'**स्वसंयम** की साधना करने वाला ही **महाव्रत** की पिच्छी लेकर **रत्नत्रय** को धारण करता और **सप्त तत्त्वों** का चिंतन करता **तपस्वी** है। वही **अरहंतजिन** का भक्त है।'

श्री महादेवन जैसे पुराविद भी इस महत्वपूर्ण अंकन को देखकर मौन रहे **(चित्र)** जबकि उनकी लेखनी ने तमिल नाडु में खुदाई से प्राप्त एक कूटक पर **(चित्र)** लिखे चार संकेताक्षरों को शताब्दी की उपलब्धि लिखा था। वही नहीं केन्द्रीय भारतीय पुरातत्त्व विभाग को भी लिखित सूचना देने पर भी कोई प्रतिकिया प्राप्त नहीं हो सकी। भारतीय इतिहास कान्फ्रेंस में इसपर विस्तृत जानकारी प्रस्तुत किए जाने पर भी आश्चर्य है कि पुराविदों की दृष्टि इस सैंधव कुंजी की ओर नहीं आई। इसके ज्ञापन हेतु एक शोधग्रंथ "द सीड इंडस रॅाक ऑफ कर्नाटका" के रूप में उसे कतिपय विश्वविख्यात पुरातत्त्वज्ञों के पास भी भेजा किंतु उनसे भी कोई टिप्पणि न पाकर यह स्पष्ट हुआ कि पुराविदों को वास्तव में कुंजी न मिलने का मात्र एक बहाना था। वे सब उसे अपने अपने तरीकों से ही पढ़ना चाहते थे ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम लिपि कुंजी को कदाचित पुराविज्ञों ने इसलिए ध्यान नहीं दिया क्योंकि वे लिपि अंकन उस शिला पर जिन बिम्बांकन के समीप होकर भी अलग थे। शीघ्र ही हमें दूसरी लिपि कुंजी भी मिल गई।

सैंधव लिपि कुंजी 2

वहीं विंध्यगिरि के मंदिर प्रांगण में जे. एम. केनोअर व्दारा घोषित एक पुरा अंकन जो उन्होंने पाकिस्तान में शैलांकित पाया था अनेक स्थलों पर दिखाई दिया। समीप की पहाड़ी चंद्रगिरि पर भी यह अनेक स्थलों पर दिखा। ऐसा ही एक अंकन देवगढ़ के मंदिर नंबर 24 में एक पाषाण निर्मित मानस्तंभ के शीर्ष भाग पर जिसमें चारों दिशाओं में एक एक चित्र अंकित है, में से एक फलक पर अंकित दिखा। मानस्तंभ पर अंकित होने के कारण इसका जिन धर्म से संबंधित होना निश्चित हो गया। श्रमण बेलगोल में प्रचुरता से दिखलाई देने के कारण **कटवप्र** पर संपूर्ण अंकन वीतराग परम्परा से ही संबंधित होना जतला गया। तभी चंद्रगिरि पर इसी संकेत को चरण, चकरी और सल्लेखनारत तपस्वी के सैंधव अंकन के साथ में भी देखा जो **चतुर्दिक त्रिआवर्त्ति** का संकेत पहचाना गया है। यह अंकन मेवाड़ के चित्तौड़ तथा दक्षिण भारत में करंदई मुनिगिरि में, तिरुपनमूर,में, मदुरै के समीप तिरुवनकुंद्रम तथा पेरुमलमलै में जैन गुफाओं मे भीं अंकित दिखा है।

सैंधव लिपि कुंजी 3

कुंजी 2 से ही तीसरी लिपि कुंजी का सूत्र मिला जो **चकरी** के रूप में सैंधव लिपि में बार बार दिखाई देता है। **चरणों के साथ अंकित होने से इसे जैन प्रतीक से अन्य नहीं कहा जा सकता।** पुरा अंकित सारे चरण सिध्दगति के द्योतक हैं और वे सारे ही निर्वाण क्षेत्रों में अंकित हैं पूजित हैं। नए निर्मित चरण कभी कभी भ्रम पैदा कर देते हैं क्योंकि वे तप दर्शाते हैं। चंद्रगिरि पर चरणों के साथ दृष्ट चकरी तेरहवें गुणस्थानी सयोग केवली के समुदघात के लोकपूरण की प्रतीक ही होना संभव लगी। सैंधव लिपि में चकरी को लोकपूरण के संदर्भ में पढ़ना सार्थक लगा ।

सैंधव लिपि कुंजी 4

चंद्रगिरि पर ही एक अन्य स्थल पर चरणों के साथ दिगम्बरत्व का प्रतीक **पुरुष लिंग** का संकेत अंकित दिखा । वहीं साथ में एक अकेला चरण, सेवक का भी अंकित दिखता है। चूंकि यह संकेताक्षर सैंधव लिपि में प्रचुरता में उपयोग किया गया है और विन्ध्यगिरि तथा चंद्रगिरि दोनों पर भी शैलांकित है अतः इसे भी कुंजी रूप में स्वीकार किया गया। सर्वेक्षण के दौरान यह संकेताक्षर गिरनार की चढ़ाई में प्रचुर संख्या में दिखा है जो उस तीर्थक्षेत्र को सैंधव युगीन श्रमण तप क्षेत्र होने की घोषणा करता है। उस क्षेत्र के पुरा तत्त्व को गुजरात सरकार की अज्ञानता तथा कौटिल्य के कारण पुरातत्व विभाग ने पंडों के रूप में वहाँ असामाजिक और अपराधी तत्वों को स्थापित कराकर वहाँ के पुरावैभव को बुरी तरह नष्ट कराया है। जैनों से उनका वह तीर्थक्षेत्र छीनकर इतिहास को भरमाने का प्रयास आराजक पद्यति से करने की कुटिल चाल तो चली ही है जिसमें भारतीय पुरातत्व विभाग की सहभागिता भी स्पष्ट दृष्ट है किंतु सैंधव पुरानिधि को इस प्रकार की घोर उपेक्षा व्दारा नष्ट कराकर उन सभी संबंधित संस्थाओं ने विश्व की अनमोल प्राचीनतम पुरा धरोहर को घोर क्षति पहुंचाई है जिसकी भरपाई कर सकना बेहद कठिन है।

यह अंकन अत्यंत स्पष्ट कलिंग की खारवेल जैन गुफा के नैसर्गिक भाग की छत पर भी अंकित है जो उसके जिन संदर्भित ही होने का प्रमाण है।

सैंधव लिपि कुंजी 5

चंद्रगिरि तथा विन्ध्यगिरि दोनों ही पहाड़ियों पर एक और अंकन गुणस्थानोन्नति का भी दिखलाई देता है जिसे लोग मात्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खेल मानते हैं । वास्तव में वह साधुओं व्दारा स्वावलोकन हेतु उपयोग किया गया सांप सीढ़ी खेल जैसा साधन था जिससे वे स्वयं के भावों की परिणिति को आंककर अपना आत्म गुणस्थान सुरक्षित करते थे। वह अंकन विभिन्न गुणस्थानों की स्थिति दर्शाता भिन्न भिन्न रूपों में सैंधव लिपि में अंकित हुआ है। यह अंकन भी व्यापक रूप से चित्तौड़, करंदई मुनिगिरि, वीलकम, किलसात्तमंगलम, मेरसित्त्मूर, तिरुपनकुन्डरम, पेरुमलमलै की जैन गुफाओं में शैलांकित दिखा है।

सैंधव लिपि कुंजी 5

जे.एम. केनोअर ने जिस अंकन को **वूम्ब स्केच** नाम देकर सैंधव पुरा लिपि अंकन माना है वह भी विन्ध्यगिरि पर शैलांकित किंतु उपेक्षित दो स्थलों पर दिखलाई देता है। एक अंकन के केन्द्र में चतुर्गति और दूसरे में **ॐ** का आभास होता है। चूंकि **ॐ**को जगत की संपूर्ण श्रुत, भाषा और लिपियों का बीज माना गया है अतः इस अंकन के घुमावदार घेरों की तुलना भूवलय यंत्र जैसी प्रतीत होती है जिसके अनुसार यंत्र के जिस भी बिंदु स्थित अक्षर से उसे प्रारंभ किया जावे जैनागम के किसी न किसी संपूर्ण ग्रंथ की रचना उससे खुलती है। चंद्रगिरि की तरह विन्ध्यगिरि पर भी व्यापक लेखन पुरा लिपि में अंकित देखने को मिलता है। उसके विषय में पूछे जाने पर वहाँ के कर्मचारी उसे मजदूरों की हाजिरी बतलाते हैं किंतु हमने उसमें 155 से अधिक सैंधव संकेताक्षर और चित्र देखे हैं और प्रकाशित भी किये हैं। वह तथाकथित वूम्ब स्केच जैन तपस्थली पर होने से ही जैन संदर्भित हो जाता है।

सैंधव लिपि कुंजी 6

हड़प्पा और मोहन्जोदड़ो से प्राप्त सीलों में से तीन सीलें एक **तीन सिर वाला पशु** दिखलाती हैं । ठीक वैसा ही तीन सिरों वाले एक पशु का सुंदर बड़ा चित्रांकन विन्ध्यगिरि के शैल फर्श पर उपेक्षित अनदेखा पड़ा था। श्रमण बेलगोला की दोनों पहाड़ियां भारतीय पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में हैं जो चुपचाप वहां के पुरा अवशेषों को नष्ट होते देखता रहता है ठीक खण्डगिरि उदयगिरि, गिरनार की तरह। यह तीन सिरों वाला पशु चित्रांकन जैन तीर्थ पर होने से जैन संदर्भित हो जाता है।

सैंधव लिपि कुंजी 7

सैंधव संकेताक्षरों में तीन सीलें **ॐ"** को अलग अलग तीन रूपों में दर्शाती हैं जिनमें से एक सिर से लटकने वाला रूप धवला ग्रंथ की पाण्डुलिपि में भी उपयोग हुआ है। आश्चर्य की बात है कि वही सिर से लटका रूप चंद्रगिरि के शैलफर्श पर अंकित दिखता है । उसके ही सामने पंचम गति का भी संकेताक्षर है। पंचम गति की आस्था एकमात्र जैन धर्म की मान्यता और अभिव्यक्ति है जो विश्व के किसी अन्य धर्म में दृष्ट नही है। भारतीय अन्य धर्मों में स्वस्तिक को संसार बढ़ाने वाला मांगलिक माना गया है जबकि जैन दर्शन में उसे चेतावनी मानते हुए केन्द्र की उर्ध्व गति के लक्ष्य हेतु जागृति संकेत माना है।

सैंधव लिपि कुंजी 8

सैधव लिपि में **पंचम गति** का संकेताक्षर बहुत रूपों मे दिखाई देता है जिसमें से कई रूप विन्ध्यगिरि चंद्रगिरि पर ही शैलांकित हैं। सैंधव लिपि पाठन के लिए वह संकेत भी एक कुंजी बन जाता है।

सैंधव लिपि कुंजी 9

सामान्य स्वस्तिक अंकन के प्रचलन को देखते हुए उसे पुरा अंकन मान लेना कठिन हो जाता है किंतु **पंचम गति दर्शाता** स्वस्तिक अंकन सामान्य न होने से अपनी विशेषता रखता है । यह पुरा अंकन भी विन्ध्यगिरि पर दिखने से कुंजी है।

सैंधव लिपि कुंजी 10

ढाई व्दीप की जैन मान्यता वाला अंकन धाराशिव की महावीर पूर्वकालीन जैन गुफाओं के प्रांगण वाले पाषाण व्दार पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंकित होना भी सैंधव लिपि के पाठन हेतु जैन संदर्भित कुंजी बन जाता है।

सैंधव पुरा लिपि की कुंजियाँ 11 से 20 वे जिनबिंब हैं जिनके पादपीठ पर गहरे उकेरित पुरा कालीन संकेताक्षर हैं अथवा पैरों पर उभरे सैंधव संकेताक्षर हैं। इनके चित्र तथा अंकन इस प्रकार हैं।

कुंजी–10 उस्मानाबाद की धाराशिव जैन गुफाव्दार पर ढाईव्दीप, जंबूव्दीप एवं भवघट में आत्मस्थता अंकन

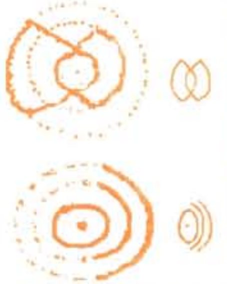

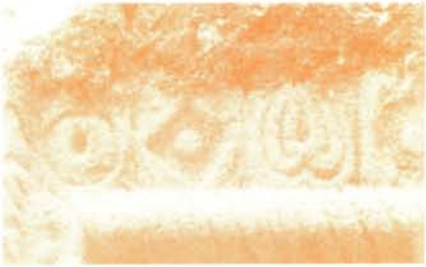

ढाईव्दीप संबंधी दो सैंधव कल्पनाओं में से प्रथम वाली अंकित

कुंजी 11

कुंजी 12

कुंजी 13

कुंजी 14

कुंजी 15

कुंजी 16

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुंजी 17

कुंजी 18

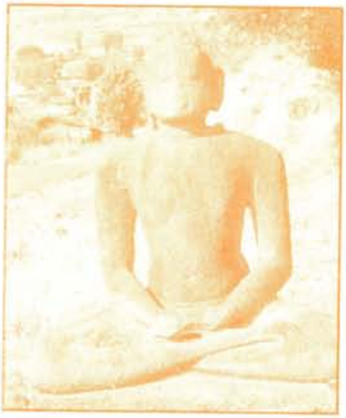

कुंजी 19

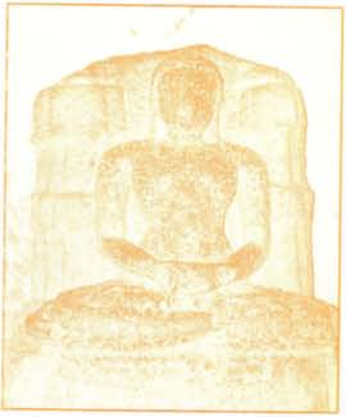

कुंजी 20

11 – यह किसी तीर्थंकर का लांछन नहीं किंतु एक सैंधव संयुक्ताक्षर है। वीतरागी तप चिन्ह के भीतर रखी खड़ी पिच्छी ऊपर भगवान के दो छत्रों से ढंकी है।

12 – यह लांछन के स्थान पर अंकित सैंधव अक्षर, अंतहीन गठान खुलती दिखलाई है जिसे तपस्वी ने तप से खोलकर मुक्ति पाई है।

13 – तीर्थंकर आदिनाथ के पादपीठ पर अंकित यह एक पूरा प्रशस्ति है जिसके इतने ही अक्षर बचे हैं शेष नई प्रशस्ति से ढक चुके हैं। अर्थ : पुरुषार्थी स्व संयमी निश्चय व्यवहारी धार्मिक वातावरण। भव से पुरुषार्थी केवली ने रत्नत्रयी पुरुषार्थ बढ़ाते पंचमगति पाई ऐसा भक्त उड़ता वृक्ष कह है जो निश्चय व्यवहार धर्मी स्वसंयमी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

14 – तीर्थंकर आदिनाथ के पादपीठ पर अंकित ये सैंधवाक्षर दर्शाते हैं कि दिगम्बरी वातावरण मे निश्चय व्यवहार धर्मी अर्धचक्री ने पुरुषार्थ किया।

15 – पादपीठ पूर्वअंकित प्रशस्ति के मात्र यही दो अक्षर बचे हैं शेष सब नई प्रशस्ति से ढक चुके है। ये दर्शाते हैं कि अदम्य पुरुषार्थी ने अरहंत पद की गुणस्थानोन्नति की।

16 – उभरा भाला, जो किसी भी तीर्थंकर का लांछन नही है किंतु स्वसंयम का संकेत है जिस पर आरूढ होकर ही जिन तपस्या करते हैं।

7 – यह उभरा अंकन पार्श्वनाथ के पाषाण बिंब के पैरों पर अंकित हैं। जो संकेत देता है कि पिच्छीधारी स्वसंयमी वीतरागी तपस्वी ने पुरुषार्थ करके सप्त तत्वचिंतन व्दारा शुध्दात्म वैभव पाया।

8 –

उभरा हुआ यह अंकन भी बिम्ब के पैरों पर अधूरा ही पढा जा सका है। इन संकेताक्षरों से ज्ञात होता है कि रत्नत्रयधारी निकट भव्य ने चंचल मन को बांधकर तप करने हेतु

– यह उभरा अंकन पाषाण निर्मित जिन बिम्ब के पैरों पर दिखता है जो दर्शाता है कि एक राजा ने भाटद्रव्य श्रध्दान से तपस्वी बनकर क्षयोपशमी सल्लेखना की। अंतहीन गठान को ऊँ स्मरण सहित दिगंबरत्व धारण कर घातिया चतुष्क नाशने उसने शांतिनाथ जिन की शरण ली।

– यह उभरा अंकन विशाल पाषाण आदिनाथ बिंब के पैरों पर अंकित है किंतु सामान्य चक्षुदर्शन में दृष्ट नही आता। कलेंडरों के प्राचीन चित्रों में अत्यंत स्पष्ट दिखता है और जूम कैमरा भी इसे पकड़ता है। यह सैंधव लेख दर्शाता है कि शाकाहारी बनकर छत्रधारी राजा ने उपयोग को अंतर्मुखी किया। शार्दूल/जिनवाणी सुनकर उसने रत्नत्रयधारी इसी बैठे महापुरुषो बिम्ब के दर्शन किए। भवचक्र से पार उतरने उसने वैभव को त्यागकर महाव्रत की पिच्छी ग्रहण की और स्वसंयम का पुरुषार्थ उठाया। चार शुक्लध्यानों की प्राप्ति के लिए पंचपरमेष्ठी की आराधना करते वह तीर्थराज शिखर जी पर जा विराजा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बड़े बाबा सुरक्षित अब नए आयतन में !

दीवार में जड़े भाग में खुलती 3 परतें दर्शाती हैं कि जीर्ण शिला को समय रहते सुरक्षा मिल गई

कुंजी – 21 कुण्डलपुर में पुराकालीन पाषाण में निर्मित गंधकुटी

कुंजी 23 ऐलोरा गुफा का उपेक्षित पुराअंकन

कुंजी 22 धाराशिव मंदिर में गुणस्थान दर्शाते समाधि चरण

कुंजी 24 विन्ध्यगिरि पर कायोत्सर्गी जिनश्रमण शायिका, लोकपूरणी समाधिचरण एवं गुणस्थानोन्नति अंकन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तमिल नाडु की नई खोज : **हाल ही में तमिल नाडु के ग्राम सेम्बिअन कन्दिउर,** मयलादुथुराई, नागपट्टिनम

अ **श्री महादेवन व्दारा पढ़े गए संकेताक्षर** **ब**

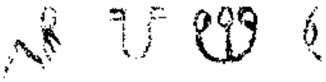

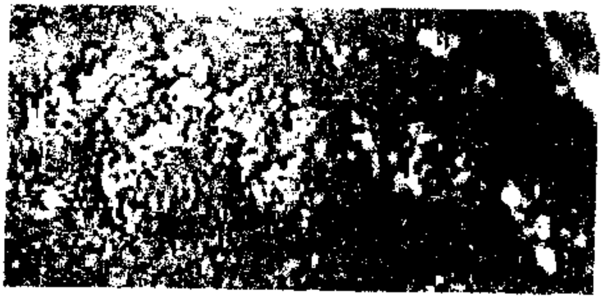

के एक शिक्षक **व्ही षण्मुगनाथन** को उसके घर के पीछे केले नारियल की पौध फैलाने के लिए किए गए गड्ढों की खुदाई में एक कत्थई रंग की मुट्ठी की पकड़ में समाने वाली पत्थर की लुढ़िया **ब** मिलने पर उस पर कुछ अस्पष्ट लिखा देख उसने उसे प्रादेशिक पुरातत्व विभाग को दिखलाया। उसका सूक्ष्म अवलोकन किए जाने पर ऊपर दर्शाए चार अक्षर पढ़े गए **अ**

जो मुझे कुछ हद तक दिखे । समाचार पत्रों ने इसे खासा महत्व देकर प्रचारित किया और इस पर विश्व के पुरालिपिविदों ने उत्साह पूर्वक अभिव्यक्तियाँ दीं। किसी ने उसे महत्वपूर्ण पुकारा तो किसी ने गत वर्ष की महानतम खोज बताया। किसी ने उसे पिछली समूची शताब्दी की उपलब्धि मानकर पुरा पाषाण युग कुल्हाड़ माना जबकि उसके दो में से एक भी सिरा चोट खाया अथवा उपयोग हुआ नहीं लगता। यदि उसे हम हथकुल्हाड़ पुकारें तो भी काटने वाले सिरे के दोनो बाजू कुछ ऐसी बैल के सींगों जैसी टूटन है कि वह कुल्हाड नहीं कही जा सकती।

उस पर लिखा अंकन हमारे बाऐं से दाहिने पढ़ने पर दर्शाता है कि – "चतुराधक सल्लेखी वीतरागी तपस्वी एक रत्नत्रयीगणी है जिसने तीर्थंकर प्रकृति उपार्जन की।" प्रथम संकेताक्षर दिखता है। दूसरा 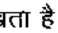 है । पुरा कालीन सीलें अत्यंत दक्ष कला दर्शाती हैं संकेताक्षर भी और चित्रण भी। जबकि यह तथाकथित हथकुल्हाड़ का अंकन सैंधव कलाकार के व्दारा किया प्रतीत न होकर अर्वाचीन दिखता है। अतः मेरे मत से **प्रथम** तो यह हथकुल्हाड़ नहीं **कूटक** संभव है जो ईख के छिले पोरों को कुचलकर उन्हें छन्ने में रखकर ऐंठकर आहार रस निकालने हेतु उपयोग किया जाता होगा अथवा इमली के बीज हटाने में। किंतु इसे कभी उपयोग किया गया हो ऐसा नहीं दिखता। **दूसरे,** इस पर अंकित संदेश दर्शाता है कि यह एक पवित्र पत्थर है जिस पर किसी तपस्वी श्रमण का परिचय लिखा है अतः इसे बहुत सम्मान से रखा जाता रहा होगा। **तीसरे,** संभवतः किसी जैन गुफा अथवा उपाश्रय के व्दार पर इसे टेक लगाने हेतु उपयोग किया जाता रहा हो। वहां इसका सही स्थान रहा होगा। **चौथे,** इसे कितनी गहराई पर पाया गया यह संकेत देगा कि वहां यह कैसे पहुंचा और किस काल का है। यदि यह पाषाण युगीन है तो वह पुरा अंकन जहां जहां दिखता है वे सब उसके ही समकालीन हुए माने जाने चाहिए ।

कर्नाटक, तमिल नाडु, केरल और श्री लंका में पुरा कालीन जैन गुफाऐं अब भी हैं । मात्र हमारे पुरातत्त्वज्ञ उन्हें पहचानने में चूक करते हैं। कार्ला, जोगेश्वरी, बाबा प्यारा गुफा, खापरा कोडिया की धारागढ़ गुफाओं की तरह अनेक गुफां, मंदिरों,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्रों को अशोक और उत्तर वर्ती राजाओं के काल में विहार करते बौध्द श्रमणों के आवास हेतु भी उपयोग में लिया जाता रहा। कलिंग विजय के बाद सम्राट अशोक के मानसिक परिवर्तन की झलक हमें उसके व्दारा जूनागढ़ में लिखवाए 14 शिलालेखों में देखने को मिलती है जिसमें उसने बार बार लिखवाया है कि 'प्रियदसि ने जीवों और प्रजा के हित में अपनी कर्त्तव्य पूर्ति हेतु सड़कें बनवाईं, कुऐं खुदवाए, पशुओं मनुष्यों की सुखसुविधा के लिये वृक्ष लगवाए। माता, पिता की सेवा, ब्राम्हणों, श्रमणों (जैन श्रमण एवं बौध्द भिक्खु) तथा साधुओं जो अनारंभी हैं के लिये **दान की व्यवस्था** धर्मार्थ उसने उसके पुत्र, पोते और, प्रपौत्र की सह भागिता से की' । कलिंग का नरसंहार उसकी विजय नहीं आत्म पराजय थी, पतन था, जिसे वह मेटना चाहता था।

इतिहासकार, पुराविद एवं भाषाविद किस आधार पर श्रमण का अर्थ मात्र बौध्द श्रमण लेते हैं वे ही बता सकेंगे किंतु ऐतिहासिक आधार पर गृह त्यागकर सिध्दार्थ ने **जिन श्रमण पिहितास्रव** से दिगम्बरी दीक्षा लेकर श्रमण बनकर कठोर तप छह वर्ष किया था । 'उपवास करते, दुर्बल, ज्वर पीड़ित और निराश होकर वे श्रमण संघ छोड़कर अलग अकेले विचरने लगे। उनके श्रमण साथी भी उनसे दूर हट गए। तब उन्हें आहार में जब, जो, जिससे मिला उन्होने उसे बिना प्रश्न किए स्वीकार करके खाया '। वे तब **श्रमण नही भिक्खु** थे । कदाचित उनके 6 वर्षों के उस श्रमणत्व को ध्यान करके ही बौद्ध भिक्खुओं को अब भी श्रमण ही समझा जाता है किंतु वह सही तो नही है। इसी भ्रम में अधिकांश जैन गुफाओं तथा गुफा मंदिरों को उनमें जैन प्रमाणों के बावजूद पुराविद बौध्द गुफाओं के रूप में घोषित कर चुके हैं। कतिपय बचे जो जैन क्षेत्र और गुफाऐं हैं वह भारतीय पुरातत्व विभाग के संरक्षण में होकर भी पंडों, महंतों व्दारा विदूपित की जाकर पुरातत्व विभाग के मौन प्रोत्साहन पर हथिया ली गई हैं यथा–गिरनार, बाबा प्यारा गुफाऐं जूनागढ़, अंजनेरी, धाराशिव, कळगुमलै, तिरुपन्कुंड्रम पेरुमळमलै, भुवनेश्वर, कोलुहा पहाड़ के पार्श्वनाथ जिन्हें जबरन **काल भैरव** घोषित कर रखा है।

उस पार्श्वनाथ पदमासित बिम्ब को किसी भी लक्षण से काल भैरव नही कहा जा सकता है किंतु पुरातत्व विभाग के उस समर्थक ज्ञापन लेख के कारण अज्ञानी आदिवासी प्रतिवर्ष उसके सामने पर्वत पर ले जाकर लाखों बकरे काटते हैं और गिरनार, खण्डगिरि, केशरिया जी की तरह प्रशासन उन स्वेच्छाचारियों के अनाचार को वोटनीति के कारण मौन समर्थन और छूट देकर प्रोत्साहन देता है। प्रजातंत्र का ऐसा मखौल अन्य किसी धर्म के साथ इसलिए नहीं है क्योंकि उनका बहुमत है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दमन और प्रतारण व्दारा उस सैंधव युग से ही जिस प्रकार जीवन में पाप, पुण्य पर हावी होने की जैसे निरंत चेष्टा करता आया है उसी तरह प्रमादियों ने हिंसा व्दारा इसे सदैव धरती से मिटाने के प्रयास किए। प्रमादी जगत की उसी भीड़ में से किसी निखरी आत्मा ने महावीर, गौतम और गांधी जैसा इस त्याग पथ को निरंतर आगे बढ़ाया है।

आज भी प्रजातंत्र का मुखौटा लगाकर उस मूल संस्कृति को मिटाने का प्रयास चालू है। किंतु शाश्वत सत्य अमिट और अमर होता है। विश्व की तरह भारत में भी **अल्पतम संख्यक** होकर भी जिनधर्मी स्वधर्म और धरोहर की रक्षा के लिए जागृत हैं प्रयत्नशील हैं। प्रत्येक बार के ऐतिहासिक दमन ने छोटे छोटे समूहों में उस संस्कृति के आराधकों पर अत्याचार करके उन्हें गृहविहीन किया। या तो वे अहिंसक मार डाले गए या उनपर दबाव डालकर उनका धर्मपरिवर्तन कराकर उनसे उनके मंदिर छीन लिए गए। संपूर्ण भारत में ऐसे अनेक मंदिर, मठ, मस्जिदें और चर्च हैं जो भारत की मूल अहिंसात्मक इसी जिनधर्मी संस्कृति के आयतन रहे हैं । इसी कारण संपूर्ण भारत मे जहाँ तहाँ खुदाई पर वह पुरा सम्पदा के रूप में सप्रमाण हाथ आ लगती है भले ही सतह पर उसका नाम निशान भी न हो।

दमन किए गए उन्ही समूहों में सराक, आदिवासी, मण्डल, मांझी, नैनार, शेट्टियार/चेट्टियार, शिवपिल्लै, मुदलियार,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भील आदि जो स्वयं को द्रविड़ कहने में गौरव रखते हैं मूल में जिन परम्परा की शाखाऐं हैं जिन्हें आरोपित अत्याचारों ने उनके मूल से विलग करके दूर तो कर दिया किंतु उनमें से अधिकांश ने अपनी मूल संस्कृति को किसी न किसी रूप में संजोऐ रखा। कुछ ने उसे संपूर्ण रूप से खोकर भी आराध्य बिम्बों को कुलआराध्य के रूप में अज्ञानवश बलि देकर, अन्यथा अलग रस्म से *पूजाविधि से संजोए रखा यथा– अहार जी क्षेत्र के शांतिनाथ, बावनगजा के आदिनाथ, कम्मदल्ही के समस्त जिन,* छत्तीसगढ़ के बूढ़ा देव, नागरकोविल के सुपार्श्वजिन, केशरिया जी के कालादेव, कोलुहा के पार्श्वनाथ, अंजनेरी के अरहनाथ, खण्डगिरि के पार्श्वनाथ,केदारनाथ के आदिनाथ, गिरनार के अधिकांश जिन, बालाजी के नेमिनाथ, धाराशिव जिन, कळगुमलै के गुफा जिन आदि।

पाश्चात्य धारणाओं के आधार पर लिखित इतिहास पर हम विश्वास करें या कि प्राप्त पुरा आधारों पर अथवा हमारे प्राचीन साहित्य पर करें, इसका निर्णय हमें स्वयं लेना है। पुरा प्रमाणों को झुठलाया नहीं जा सकता उसी प्रकार हमारा प्राच्य साहित्य भी ठोस प्रमाण है। सर्व प्राचीन ग्रंथ स्वयं ऋग्वेद ऋषभ और अरिष्टनेमि की चर्चा करता है अर्थात न केवल उनको पूर्व कालीन घोषित करता है बल्कि उनके प्रति श्रध्दा और समर्पण भी दर्शाता है। उत्तरकालीन सारा प्राचीन भारतीय साहित्य अरहंतों और तीर्थंकरों संबंधी स्तुति के वचन लिखता है। मात्र पार्श्वनाथ और महावीर वेदकालीन तीर्थंकर हैं जिनके विषय में भी वेदों, पुराणों में स्तुत्य ही वर्णित है तब जिनधर्म **ही सनातनधर्म स्वयं घोषित हो** जाता **है। फिर भी पढ़ाए** जा **रहे इतिहास के पाठ,यक्रमों में जैनधर्म संबंधी सही इतिहास की उपेक्षा करते हुए भ्रामक बातें पढ़ाई** जाती **हैं।** इस तरह सचाई को अनदेखा करके जैन धर्म को अर्वाचीन बतलाने का मात्र एक **प्रपंची पूर्वाग्रह** प्रतीत होता है जो भारतीय इन सैंधव प्रमाणों के आधार पर भी गलत ही सिध्द हुआ है अतः अविलम्ब सुधारे जाने योग्य है।

दूसरी ओर स्वयं को द्रविड़ कहने वाला समाज उतना ही मूल भारतीय है जितना कि आर्य कहा जाने वाला क्योंकि प्राचीन जैन साहित्य में उल्लिखित जैन भूगोल के आधार पर **जंबू व्दीप के भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड के भारतवर्ष में सारे ही निवासी आर्य अर्थात भद्रजन कहलाते थे** । ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि दिगम्बराचार्य पिहितास्त्रव की परम्परा में (जिनसे गौतम बुध्द ने दीक्षा ली थी) पूज्यपाद प्रथम /नागार्जुन के मामा प्रसिध्द आचार्य हुए हैं जिनके शिष्य **वज्रनन्दिनन्दि** ने विक्रम सं 536 में **द्रविड़ संघ की नींव डाली थी** जिसके समर्थक द्रविड़ कहलाए। चूंकि वे भी मूल से जिनधर्मी ही थे अतः प्राकृत ही उनकी भाषा थी जो संपूर्ण भारत मे क्षेत्र के अनुसार बदलती गई है। मूल जैन साहित्य उसी भाषा मे लिखा पाया जाता है भले लिपि कोई भी हो। तमिल भाषा में उसका साहित्य होना या कुछ शब्दों का पाया जाना भी आश्चर्य की बात नही है। ब्राम्ही ही नहीं तमिल, कन्नड़, मरहठी, सिन्धी, राजस्थानी ही नहीं भारतीय हर भाषा ने उस सैंधव प्राकृत से शब्द लिए हैं ।

दक्षिणी पठार सम जलवायु और गुफाओं कन्दराओं के कारण श्रमणों के चातुर्मास और विहार के लिए अनुकूल रहा होगा इसीलिए तमिलनाडु, केरल, श्रीलंका में जिनश्रमणों का अशोकपूर्व कालीन होना जैन साहित्य में चर्चित है। आज भी तमिलनाडु में लगातार शिलाऐं काटे जाने के बाद भी देश की सर्वाधिक जैन मंदिर गुफाऐं वर्तमान हैं जिनमें से अनेकों में **पुरा संकेताक्षर** हैं। विशेष ध्यान देने वाली बात यह है कि शैलांकित तीर्थंकरों में प्रधानता पार्श्वनाथ नहीं **पांचफणी सुपार्श्वनाथ** की है जो वहाँ के पुरा अंकनों के अनुकूल सैंधव युगीन आंकी जाना चाहिए। महाराष्ट्र में प्रधानता सात, नौ और अनेक फणी **पार्श्वनाथ** की है। तीर्थंकरों के विहार पूरे भारत में हुए अतः अनुगामी तपस्वियों ने उनके तप तीर्थों पर तपस्या चालू रखीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनाचार्य पूज्यपाद ने वर्षों विश्व विख्यात नालंदा विद्यापीठ में रहकर विश्व से आए शिक्षार्थियों को ज्ञान दान दिया था क्योंकि वह एक प्राचीन जैन विहार और शिक्षा केंद्र था । वह क्षेत्र पूर्व में महावीर की ननिहाल थी। वहीं के उत्खनन से प्राप्त सामग्री में पकी मिट्टी का लाल रंग का एक **नंद्यावर्त्य** तो मिला ही है कुछ **जिन बिंब भी मिले** थे जिन्हें वहीं म्यूजियम में रख दिया गया है। एक प्राचीन **खड़गासित, हिरण चिहिंत शांतिनाथ हैं और एक बैठे पार्श्वनाथ।** बैठे सप्तफणी धरणेन्द्र को वहाँ नागराज और शांतिनाथ को ऋषभदेव दर्शाया गया है। नालंदा में 52 तालाब हैं। अवशेषों में 8 विहार दिखलाई देते हैं जिनमें प्रत्येक में एक एक पुराकालीन कुआं और एक एक मंदिर उनके जैन विहार होने को प्रमाणित करते हैं। कुओं की प्रधानता सैंधव युगीन मात्र जिन श्रमण परंपरा के कारण ही रही है जो आज भी नलों, ट्यूब वैलों के युग में भी वैसी ही जीवंत बनी है। उस बड़े नंबर 3 स्तूप वाले मंदिर के बाद भी प्रत्येक तथाकथित विहार का मंदिर वहाँ के आवासियों के षट आवश्यक हेतु रहा गया होगा। प्रत्येक में विद्यार्थी वहीं गुरुओं की छांह में रहकर विद्यार्जन करते और गुरुओं की भक्ति करते थे। तब वह बड़ा मंदिर विहार करते श्रमणों हेतु रहा होगा। विशाल उसी पंचशिखरी जिनमंदिर को बाद में स्तूप/समाधि स्थल बनाकर ईंटों से ढंक दिया गया (चित्र)।महावीर के लगभग 900 वर्ष बाद उस विहार को बौध्दों ने ले लिया। जब ऊँचे विशाल मंदिर को स्तूप में परिवर्तित करके समूचा मंदिर ही ईंटों से ढंक दिया गया उसके बाद तो फिर वहीं देखते देखते छोटे छोटे स्तूपों की भीड़ लगा दी गई क्योंकि वह जिनश्रमणों के विहार के लिए बचने ही नहीं दिया गया था। कनिंघम ने भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तक उत्खनन करवाकर आंशिक ऐतिहासिक अवशेषों को ही निकलवा पाया था। **यदि वह बौध्द मंदिर होता तो उसे समूचा उघाड़कर विश्व के बौध्दों के दर्शनार्थ पूरा खोलकर रखा जाता।** उस के **समीप पहुंचने से रोका नहीं जाता।** वहाँ के 108 टीलों में से मात्र 11 की खुदाई की जा सकी है। कहा जाता है कि उस परिवर्तन की आँधी मे वहाँ के ग्रंथागार को भस्म करने के लिए सैनिकों ने ग्रंथों को जला जलाकर छह माह तक आग की लपटों को जीवित रखा था बुझने नहीं दिया। अब वह समूचा वैभव पुरातत्व विभाग व्दारा प्राचीन जैन नहीं बौध्द अवशेष प्रचारित तो किया जा रहा है आचार्य पूज्यपाद को भी उनके व्दारा लिखे गए अनेक जैन ग्रंथों के बावजूद बौध्द परंपरा का ही घोषित किया जाता है। भ्रामक इस इतिहास को सुलझाने में किसी में भी रुचि नहीं दिखती।

टी.एन. रामचंद्रन के अनुसार महावीर और बुध्द से भी पूर्वकालीन सैंधव युग से ही तक्षशिला और नालंदा विश्व के प्रख्यात विद्याकेंद्र थे। ऋषभदेव ने बाहुबलि को पूरा पश्चिमोत्तर प्रदेश बंटवारे में दिया था। उसकी राजधानी तक्षशिला थी।

–' ततो भगवं विहरमाणों बहली विसयं गतो । तत्थ बाहुबलीस्स रायहाणी तक्खसिला णामं।आवश्यक सूत्र निर्युक्ति, पृ. 180/8

– उस्सभणिजस्स भगवो पुत्तसयं चदसूरसरिसाणं, समणत्तं पडिवन्नं सए य देहे निखयक्खं

तक्खसिलाए , महप्पा बाहुबली तस्स निच्चपडिकूलो, भरहनरिंदस्ससया न कुणइ आणा पणामंसो ।

अहरुद्वो चक्कहरो तस्सुवरिं सयण साहण समग्गो, नयरस्स तुरियचवलो विणिग्गओ सयल बल सहिओ

पत्तोत्तक्खसिलपुरं जयसद्दुणुघुद्व कलयलारावो, जुज्झस्स कारणत्थं सन्नध्दो तक्खणं भरहो।

बाहुबली वि महप्पा भरहनरिंदं समागयं सोउ, भडचडयरेण महया तक्खसिलाओ विणिज्जाओ ।पउमचरियं विमलसूरि 4/37/41

ब्राम्ही का भी अधिकांश तपस्यारत जीवन वहीं बीता। गदियारो के केंद्र स्थान भरमौर से एक मील ऊँचाई पर काष्ठ का बना ब्रम्हाणी देवी का मंदिर है। **कनिंघम** ने पूर्ण विश्वास और प्रामाणिकता से उस मंदिर के नीचे से खुदाई में मिली वेदी को जैन धर्म की बतलाया है। जैनागमानुसार –

–"सा च बाहुबलिने भगवता दत्ता प्रव्रजिता प्रवर्तिनी भूत्त्वा चतुरशीतिपूर्व शत सहस्त्राणि सर्वायुःपालयित्त्वा सिध्दा "। कल्पसूत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

डी.डी. कोसाम्बी के अनुसार सम्राट सिकंदर ने 326 ई.पू.रावी के तट पर दिगंबर / जैन साधुओं को देखा था। **थामस** के अनुसार वह एक जैन साधु को अपने साथ यूनान भी ले गया था। **डॉ. प्राणनाथ** ने मोहन्जोदड़ो हड़प्पा की खुदाइयों से प्राप्त मोहरों और फलकों पर खुदे लेख प्राचीनतम भारतीय लिपि के चिन्ह माने हैं। उन पर अंकित आकारों की कायोत्सर्गी मुद्रा को उन्होंने तीर्थंकर मुद्रा माना है और उन पर खुदे लेखों को जैन लेख । एक लेख को उन्होंने " **ॐ जिनाय नमः** " पढ़ा है। राय बहादुर प्रो. **के. रामप्रसाद चंदा** के अनुसार मोहन्जोदड़ो और मथुरा की मूर्तियों में हू बहू साम्य है। अर्थात वैसी ही कायोत्सर्गी मुद्रा, वैसी ही ध्यानावस्था और वैसी ही वैराग्य दृष्टि। यद्यपि मिस्र और ग्रीक की प्राचीन मूर्तियों की भी कायोत्सर्गी मुद्रा है किंतु वैराग्यपूर्ण ध्यानावस्था नहीं।यह बात केवल जैन मूर्तियों में ही प्राप्त होती है अन्यत्र नहीं।

डॉ. मोहनलाल गुप्ता ने प्रश्न उठाया था कि यदि श्रमण विचारधारा इस क्षेत्र में प्राचीन समय से थी तो बाद में स्पष्टतः उसके दर्शन क्यों नहीं हुए ? सहज उत्तर था कि उसे देखने से पहले ही पलकें झपका ली गई किंतु इतिहास की भाषा में अब यहाँ प्रस्तुत की गई कुछेक सचित्र कुंजियाँ उन्हें उत्तर स्वरूप हैं जिन्हें कोई उत्तर देने के प्रयास में मैने नहीं खोजा उल्टे वे ही मेरे सामने आ आकर मेरी दृष्टि को उलझा गई हैं। जैन मान्यतानुसार यह सब **काल** का प्रभाव है मैं तो अदृष्ट आशीर्वादों के प्रभाव में मात्र एक **निमित्त** बनी हूँ। वे तो सभी अपनी अपनी जगह उपस्थित थीं उन्हें अज्ञानतावश अनदेखा छोड़ *दिया गया था। अभी और कहाँ कहाँ वे छिपी पड़ी हैं वह आगामी समय बताऐगा।* बस उसी **सत्य उदघाटन** हेतु अपनी इस शोध को समर्पित पुरा प्रेमियों के सम्मुख रख रही हूँ कि वे इसमें अपनी अपनी शोध का योगदान खुले हृदय से कर सकेंगे।

डॉ. डिरिंजर का अभिमत है कि 600 ई.पू. उत्तर भारत में ऐसी अद्भुत क्रांति हुई कि उसने भारतीय इतिहास को अत्यधिक प्रभावित किया। **डॉ. ब्युलर** का भी अभिमत है कि बौध्द आगमों की रचना से भी पूर्व लोग लेखन कला से सुपरिचित थे और उनमें लेखन का पर्याप्त प्रचार था। **डॉ. ब्युलर** और **डॉ विन्टरनिट्ज** ने **ऋषभदेव को वेदपूर्व कालीन ही माना** है। सैंधव सभ्यता इसीलिए जिन श्रमण परम्परा के प्रभाव में अभिव्यक्तियां देती है और जिन बिंबों एवं जिन संदर्भों में ही मात्र वह अब तक कुंजी रूप सर्वत्र देखने में आई है।

गौतम बुध्द के जन्म से पूर्व कालीन रचा साहित्य स्वाभाविक है कि वह पूर्व परम्परा के आचार्यों ने लिखा था जो जिन श्रमण कहलाते थे।महावीर से पूर्व के 23 तीर्थंकर उसी वीतरागी, लौकिकता से परे, आत्मसाधक, मोक्षपथी परम्परा के प्रवर्तक थे। महावीर और बुध्द दोनों ने ही पूर्व प्रचलित पार्श्वनाथ की परंपरा में चले आ रहे तपमार्ग को चुना था। जब तक गौतम, श्रमण रहे, वे **अनुगामी रहे**। छह वर्ष बाद मूल धारा को छोड़ उन्होने एक नई धारा, नए धर्म को जन्म दिया। भला ऐसी स्थिति में पूर्वागत परम्परा और पूर्व में रचे गए साहित्य पर उनका प्रभाव बतलाना कैसे सही है ? किंतु कतिपय विव्दानों ने ऐसा ही माना है।

दूसरी बात, आश्चर्य का विषय है कि गौतम बुध्द की चर्चा सुनते ही 'निकाय' और 'पिटक' रचे जाने लगे, वेद तो थे ही तब क्या जैनाचार्यों ने श्रावकों और अनुगामी श्रमणों के हितार्थ कुछ भी लिखित नहीं छोड़ा होगा ? वेदांग ज्योतिष, जिन्हें लगभग 1200 ई.पू. का और बौध्दायन सुल्व सूत्र 800–1000 ई.पू.का माना जाता है तब बौध्द साहित्य किस आधार से माने गए? जैनाचार्यो का रचा साहित्य न केवल जलाया गया बल्कि चोरी भी हुआ है क्योंकि त्यागी, विनयवान तपस्वी साहित्य रचकर उस पर अपना अधिपत्य नहीं रखते थे। जितना नष्ट करते बना अज्ञानियों ने उतना जैन साहित्य, जिनबिंबों, जिनमंदिरों, जिन क्षेत्रों, अप्रतिकारी जिन तपस्वियों और जिन भक्तों को क्षति पहुंचाई । अब प्रमाणों को आधार बनाकर देखना समुचित सावधानी से ही होना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभ राज के बतलाए षटकर्मो को अपनी अपनी येग्यतानुसार चुनकर जीवन यापन करने वाले वे " उत्तम खेती मध्यम बान, अधम नौकरी भीख निदान" विचारकर प्रथमया कृषक रहे। कृषि हेतु अनेक लोगों को अपने पास रोजगार देते हुए वे गौपालन, डेरी उद्योग, उपज भण्डारन हेतु नैसर्गिक जल स्त्रोतों के समीप बसे। उपज भण्डारन और जल सुरक्षा को ध्यान में रखकर ही तीन स्तरीय आवासीय बसाहट की। केंद्र में ऊँचाई बनाकर अन्न भण्डारन और पेयजल को सुरक्षा दी। धार्मिक, अहिंसक जीवन पद्यति के लिए कुओं के जल अथवा वर्षा जल का उपयोग उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गया। आवागमन के लिये बस्ती में पक्के पथ बनाकर जल प्रदूषण से बचाव हेतु किनारों पर नालियां रखीं जिनमें उफान रोकने के लिए प्रत्येक घर के सामने घर से निकले नालीजल हेतु ढंके कुंड बनाए। सामूहिक तौर पर सर्वसम्मति से अपना कर्त्तव्यनिष्ठ, जुझारू, ज्ञानी नेता चुना और उसे छत्र सौंपकर अपने उस जनसमुदाय को सुरक्षित किया। उस नेता को अपनी सुरक्षा का भार सौंपकर उसे केन्द्र में रखा। बाहरी घेरे में कृषकों ने अपनी कृषि और पशुओं के तथा अपने क्षुद्रों / सेवकों के लिये स्थान लिया किंतु इनके बीच कोई ऊँच नीच का भेद नहीं था। बीच के घेरे में बचे वाणिज्य में रुचि रखने वालों ने स्थान पाया। वे वाणिज्य कर्मी केवल अहिंसक व्यापार करते थे। जल और थल मार्गों से वे दूर दूर तक सामग्री और मुद्रा का विनिमय करते आगे बढ़ते जाते और वर्षों बाद लौटकर आते। कुछ सैंधव सीलों पर जलपोतों के अंकन भी दिखते हैं। उन पर भी अंकन जिन सैध्दांतिक ही दर्शाए गए हैं। इस प्रकार संपूर्ण सैंधव सभ्यता **जिन श्रमण प्रभावी सभ्यता** ही प्रमाणित होती है जिसमें लिपि का अपना विशेष मौन उपदेशात्मक महत्व भी था। हमारी वर्तमान भाषा में भी शब्द का अर्थ नहीं मात्र संकेतात्मक महत्व है जहाँ उन संकेतों के अर्थ की महत्ता है।

अब भी जिन धर्मियों में वही परंपरा चालू है जिसके अंतर्गत वे अहिंसक व्यापार, उद्योग व्यवसाय और नौकरी अथवा कृषि चुनते हैं। अल्पतमसंख्यक होने के बावजूद सर्वाधिक शिक्षित तथा सबसे कम अपराध प्रवृत्ति वाला, मूल सुदृढ़ संस्कृति वाला, कर्मठ समाज बनाते हैं। शुध्द आहारी, शाकाहारी होने के कारण जिनधर्मी भिक्षा को आजीविका नही बनाता। मितव्ययी आहार और धार्मिक प्रभाव में नशा प्रवृत्ति से दूर वह अल्प उपार्जन में भी संपन्न लगता और स्वेच्छा से दानादि करता है। कदाचित इसी कारण उसे जैनेतरों ने सदैव ईर्ष्या की दृष्टि से देखा है। व्यापारी और पाप भीरु होने के कारण समाज और देश की प्रत्येक हितकारी योजना में उसका सर्वाधिक तन मन धन से योगदान रहा है। फिर भी इतिहास साक्षी है कि कष्ट झेलते उपसर्ग मय होने पर भी **धर्म के प्रभाव में वह** आत्मकेन्द्रित और सहनशील रहा है।

मनुष्य मन से चंचल और प्रवृत्ति से असंयामी और स्वच्छंद है। अध्यात्मिक धरातल पर धर्म मानव को आत्मोन्नति की राह पर प्रगति कराता मुक्ति के व्दार तक ले जाता है तो सामाजिक धरातल पर वह उसे स्वसंयम में ढालकर नैतिक और करुणामय जीवन जीने को मार्ग प्रशस्त करता है। जैनधर्म दोनों दिशाओं में संपूर्ण खरा उतरा है।

प्रत्येक जैन परम्परागत उस प्राचीन काल से ही जब आवागमन के साधन सीमित थे तीर्थयात्री संघों और चतुर्विध संघों के साथ विहार करते निर्वाण स्थलियों की पावन रज माथे पर लेने जीवन में एक बार अवश्य जाना चाहता रहा है। वे यात्राऐं अंधविश्वास की नहीं पुरा युग से अब तक के समस्त तपस्वियों के प्रति भक्ति और उत्साह पूर्वक विनय की अभि व्यक्ति होती हैं और तपस्या का स्वाद चखने की दिशा में प्रथम चरण होती हैं जो उसकी सहनशीलता को संबल देती हैं। **जैनों की पापभीरुता को जैनेतरों ने अज्ञानतावश गुण ना मानकर अवगुण माना है** क्योंकि अवगुणी कभी गुणी को सहन नहीं कर पाता है। यह एक **गंभीर दृष्टिदोष और प्रजातंत्र के नाम पर कुत्सित कलंक** है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

❖समापन❖

चौदह गुणस्थानों की अत्यंत सरल व्यवस्था में जैनधर्म के गूढ़ सिद्धांतों को सहज बोधगम्य बनाने का प्रयास हुआ है। प्रत्येक जीव पैदा होकर सामान्य प्राणियों की तरह नौ भाव–पगे रसों के झूले में चढ़ता उतरता है। ये रस चारों कषायों का अलग–अलग गहनता में आस्वादन कराते हैं। इसके अनुसार प्रथम गुणस्थान में तो सारे ही जीव अनादिकाल से पड़े हैं जो अनंतानुबंधी कषायों में उलटते पलटते रहते हैं और मिथ्यात्व में जीते हुए हर मन पसंद वस्तु को अपने ही पास चाहते हैं। इसे हम सहज रूप में यों प्रस्तुत करते हैं।

'मेरा तेरा' करता हुआ प्रत्येक जीव/मानव कुंठित संसार में जीता क्रोध, मान, माया, लोभ के चारों कषायों के चार–चार प्रकारों में रहता आर्त रौद्र 'परिणाम' करता है। इससे उसे जो कर्मास्रव होता है उसका उसे ध्यान ही नहीं रहता। "मेरा" भी भ्रम है और किसी वस्तु को "तेरा" कहना भी मिथ्या है, क्योंकि यहाँ इस संसार में मेरी "स्व" आत्मा के सिवाय मेरा कुछ भी नहीं है, यह तो प्रत्येक अनुभव सदैव कहता है फिर भी भ्रम में व्यक्ति जीता है यही उसका "मिथ्यात्व" है। सोलह प्रकार के कषायों के सिवाय नौ नोकषाय भी सदैव घेरे ही रहते हैं : हास्य, विस्मय, रति, अरति, भय, जुगुप्सा, तीन वेद जिनमें पड़कर हम "कषाय" करते हैं अर्थात् अपनी "आत्मा" को जबरन सताते हुए कसते हैं और टेंशन में डालते हैं। सो वह "कसती" है–तड़पती है और स्वभाव से हटकर " दुर्भाव" करती है। तिस पर हम दोष दूसरों पर डालकर स्वयं को निर्दोष दिखलाने का छल करते हैं। इन पच्चीस कषायों से बचने के लिए गुरु उपदेश देते हैं। तीव्रतम कषाय प्रथम गुणस्थान में रहती है अर्थात् पच्चीसों रहते हैं। इनके सहयोगी 15 प्रमादी योग, 5 मिथ्यात्व और 12 अव्रत होते हैं जो अग्नि में घी अथवा कपूर का कार्य करते हैं।

प्रथम गुणस्थान में व्यक्ति 2 दुर्ध्यान (आर्त–रौद्र) अर्थात् चार कषाय 'अनंतानुबंधी' वाले करते हैं। उस समय उसके परिणाम संक्लेषी रहते हैं और कर्मास्रव होता है। इनसे बचने के लिए सारे दुर्ध्यान "त्यागने" पड़ते हैं। जैसे ही आत्मा अनंतानु बंधी कषायों को त्यागती और सत्य की अनुभूति करती है वह उछाल लेकर चतुर्थ गुणस्थान में पहुँचती है। वहाँ पात्र सत्य को उघड़ता देखता है ।यदि वह वहाँ पुरुषार्थ करे तो वहीं से "तीर्थंकर प्रकृति" को बांध सकता है। यहाँ उसकी भूमिका "श्रावक" की होती है। वह दो धर्मध्यानों आज्ञा विचय और विपाक विचय का स्वामी होता है। पुरुषार्थ करते अर्थात् व्रत लेते ही (प्रतिमा/अणुव्रत) वह पंचम गुणस्थानी हो जाता है। अब वह तीन धर्मध्यानों अपाय विचय का भी स्वामी होता है और "उच्च श्रावक" कहलाता है। उसके जीवन में रत्नत्रय आ जाता है और वह मोक्ष पथ पर अपने चरण बढ़ा चलता है। वह मोक्ष पथ उन भव्यात्माओं ने दिखलाया है जो उस पर चलकर स्वयं अरिहंत और सिद्ध हुए हैं। जैनधर्म में इन्हें ही भगवान् /इष्ट/God कहा जाता है। किन्तु वह कर्ता हर्ता नहीं है। आत्मा स्वयं ही स्वयं का उध्दारक अथवा दुःखों में गिराने वाला होता है। किंतु मुख्य बात ध्यान देने की है कि "जब जागे तब सबेरा" वाला सूत्र लागू होने से प्रत्येक जीव के स्वकल्याण का व्दार खुला रहता है।समस्त प्राणियों में मनुष्य ही सबसे सामर्थ्यवान है अतः उसे रक्षक मानते हुए सबका स्वामी कहा जाता है। जैनधर्म का सिद्धांत अत्यंत सहज और जीवन में उतारने से आत्मा की ओर उपयोग वाला सरल है अन्यथा तो पर्याय बुद्धि होने से उतना ही कठिन है। आज तक जिस–जिस भी व्यक्ति ने जैनधर्म का अज्ञानता वश विरोध किया है उसकी पर्याय बुद्धि रही है (वह मिथ्यादृष्टि है)। जैनधर्म निश्चय "आत्मा" और व्यवहार "शरीर" दोनों की ओर दृष्टि रखकर जीव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के उत्थान की बात करता है। चतुर्थ गुणस्थानी व्यक्ति जाग कर अनुयोगरत हो जाता है।

प्रथमानुयोग उसके चिंतन को खोलकर विस्तृत आयाम देता है। **करणानुयोग** उन सब पूर्वकारणों को बतलाता है जिससे घटनायें घटी। **चरणानुयोग** व्यक्ति को उसके आचरण की राह दिखाता है। **द्रव्यानुयोग** जैनसिद्धांत को स्पष्ट करता है। जैनाचार्य चारों अनुयोगी होते हैं। वे अध्यात्म, न्याय और व्याकरण तीनों में ही नरपुगंव रहे हैं। इसीलिए उनके लिखे ग्रंथ भाषा तथा तर्क पर अकाट्य हैं, प्रभावी हैं। व्दादशांगी जिनवाणी के धर्म में "कर्म" की सत्ता सर्वाधिक बुलंद मानी गई है और अत्यंत आश्चर्य की बात है कि इस काल में भी उसके प्रमाण हेतु शिलालेख भी मिलते हैं। सबसे सुंदर शिलालेख सिंधु लिपि का विन्ध्यगिरि पर मिला है (चित्र) जिसमें सैंधव लिपि के चार अक्षर एक खड़गासित जिनमुद्रा के साथ अंकित हैं। वे जैनधर्म का ठोस एवं सूक्ष्मतम उपदेश बायें से दाहिने देते हैं कि इच्छा निरोध द्वारा स्वसंयम के पश्चात् नरभव को ही संभावित मूल व्रत धारण करके रत्नत्रय का धारण एवं सप्ततत्व चिंतन करना उपादेय है।वह अंकन आत्म विनयी पुरुष को कर्मास्रव के विषय में चिंतन योग्य बनाता है कि आत्मा की विशुद्धि बढ़ाते हुए किस प्रकार से लक्ष्य की प्राप्ति (मोक्ष) हो । आत्मा अपने निज स्वरूप में आवे । यही जैनधर्म का सार है। इस अंकन को श्री महादेवन की विधि से पढ़ने पर दाहिने से बाऐं अर्थ "सामने की जिन मुद्रा सप्त तत्त्व चिंतन और रत्नत्रय की साधना करते हुए महाव्रती के स्वसंयम धारण करने का परिणाम है" मिलता है। इस अंकन से यह संकेत मिलता है कि जीवन की यात्रा मृत्यु से बालपने की ओर नहीं बल्कि बालपने से बृद्धपने और मृत्यु की ओर होती है । अतः महादेवन की लिपि पाठन की दिशा इस प्रकरण में दाहिने से बायें नहीं बायें से दाहिने ही सही प्रतीत होती है । बालपने में अथवा प्रारंभ में असंयमी ने संयम धारकर आत्मोन्नति का पथ पकड़ा और लक्ष्य की प्राप्ति की है । यही "जैन धर्म का सार" इस पुरालिपि के कुंजी अंकन से सामने आया है । जो संकेत देता है कि संपूर्ण लिपि को **L-R** भी पढ़ा जाना सही है भले ही हमने इस ग्रंथ में संपूर्ण लिपि को महादेवन की ही पाठन दिशा प्रयोग करके प्रस्तुत किया है । एक धूमिल मछली भी खड़ी दिखाई देती है । पुरालिपि के इस लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका एक-एक संकेताक्षर प्रस्तुत सीलों में इस प्रकार क्रम से अंकित किया गया है कि वह जैन सिद्धांत को अक्षरशः **बिना किसी अनुमान और खींचतान के** स्पष्ट कर देता है । जैन अध्यात्म, आगम और भावना ग्रंथ तीनों की सुंदर अभिव्यक्ति इस लिपि में प्राप्त अंकनों में स्पष्ट झलक रही है जो यह दर्शाती है कि अध्यात्म की इस वीतराग भाषा को संसारी नहीं मात्र मोक्षमार्गी ही समझ सकता था । इसलिए उपेक्षा वश संसारियों ने इसे छोड़ दिया । उस प्राच्य काल में भी लिपि थी परंतु वह लौकिकता के लिए कुछ अलग ही रही होगी । हमारी यह पुरालिपि तो मोक्षमार्ग की अनमोल संपदा है जो चारों अनुयोगों और निश्चय--व्यवहार पक्ष से अनुप्राणित है । "अस्ति पुरुष चिदात्मा" ही इसका आधार है । जीवन का लौकिक सुख भी इसमें आस्रव बंध रूपी रोग है। संवर, निर्जरा पथ्य और मोक्ष, शुद्धात्म-स्वस्थता का सोपान है। यही इस पुरालिपि का लक्ष्य है ।जिन भव्यों ने इसे धरती की गहन गोद में लंबी नींद से उत्खननों द्वारा निकालकर विश्व के सामने लाकर रखा वे धन्य हैं । उन्होंने अथक परिश्रम से पूरी शताब्दी लगभग इन अवशेषों को संजोने, सुरक्षित करने, पठन योग्य बनाने में अरबों--खरबों डॉलर और अपने समूचे जीवन के क्षणों को अर्पित करके हमारे सामने रखा है। वे तपस्वी भी पुण्य के भागी हों और उन्हें भी इस अनमोल आत्मधर्म का मर्म समझ आ जावे ताकि उनका जीव जहाँ भी हो उन्नति पाकर जाग जाए, हमारी तो यही भावना है । उनके उस संपूर्ण महत् परिश्रम के लिए हम आत्मा की गहराई से उनके आभारी हैं । भले उन्होंने इसका मूल्य जानकर भी नहीं समझा किंतु हमारी इस पंचम कालीन पीढ़ी पर वे अनजान में बहुत बड़ा उपकार कर गए हैं उन्हें कोटिशः धन्यवाद । **इसी भाषा में पंचगुरुभक्ति है** जिसे सैंधव लिपि में भी लिखा जा सकता है। —

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"मणु यणा इंद सुर धरिय छत्ततया. पंच कल्लाण सोक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं , ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ।।1।।
जेहिं झाणग्गि ।।।। बाणेहिं अइदड्ढयं जम्म जर मरण णयरत्तयं दड्ढयं ।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ।। 2।।
पंच आचार पंचग्गि संसाहया, बार संगाइ सुअजलहि अवगाहया
मोक्खलच्छी महंती महंते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खं गयासंगया ।।3।।
घोर संसार भीमाण वीकाणणे तिक्ख वियराल णह पाव पंचाणणे
णट्ठ मग्गाण जीवाण पहदेसिया वंदिमो ते उवज्झाए अम्हे सया ।। 4।।
उग्ग तव चरण करणेहिं झींणं गया धम्म वर ।।।। झाण सुक्केक्क झाणं गया
णिब्भरं तव सिरीए समा लिंगया साहवो ते महं मोक्ख पह मग्गया ।। 5।।
एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए गुरुय संसार घणवेल्लि सो छिंदए

उस शैलांकित पुरालेख को देखकर ऐसा आभास हुआ कि श्रवणबेलगोला में तो सदैव से ही साधु संघ रहते रहे हैं । उनके संघों को भी इन्हीं संकेतों में से उनके योग्य लिपि चिन्ह पहचान स्वरूप दिए गए होंगे। आरंभ में तो उन संघों को बहुत असुविधा, आवास संबंधी भी होती रही होगी किंतु धर्म पथ पर लगने से वे सभी व्यवस्थित रहे। नवागन्तुक साधु उन्हीं के अनुगामी होने से ही आज्ञा पाकर सम्मिलित होते रहे होंगे। ये संकेताक्षर नहीं उन्हीं श्रमणों के लिए सूत्रात्मक उपदेश थे जो स्मृति हेतु यात्री गण भी अपने साथ ले जाते रहे होंगे । हड़प्पा मोहन्जोदड़ो एवं अन्य स्थानों पर वही अवशेष रूप अब मिले हैं । यही वह अनमोल संस्कृति थी जो तब के विशाल भारतवर्ष की पावन भूमि पर सर्वत्र स्पंदित थी ।

पुरालिपि के ये छोटे–छोटे सूत्रात्मक संदेश बड़े ही मार्मिक, सटीक और जीवन को बदलने वाले हैं । मात्र एक सूत्र ही जीवन भर याद रखने से जीवन तार देगा । ये लौकिकता के नहीं मात्र जैन सिद्धांत, आगम और अध्यात्म को दर्शाते हैं । इनकी संख्या इतनी अधिक होने से पाठकों को लगता होगा कि ये सब एक से संदेश होने के कारण मन उबाते होंगे। हाँ संसार प्रेमियों को ये मन उबाऊ लगेंगे किन्तु जैन धर्म के मर्मज्ञों को ये अत्यंत रुचिकर लगेंगे । सबको भी नहीं किंतु भव्य पाठक इन्हें पढ़कर इतना तो समझ ही लेंगे कि अनादि काल के अनुभव रूपी समुद्र से गोते खाकर ये मोती हमारे पूर्वाचार्यों ने लाकर हम तक पहुंचाऐ हैं। ये भव्यों के तथा "एकदेश" स्वसंयमी भव्यों के लिए ही हैं । वे भव्य हर काल में गिनेचुने ही होते हैं । जिस प्रकार हमारी एक अरब जनसंख्या में ढूढ़कर निकालें तो हजार ही वीतरागी तपस्वी होंगे ? अथवा पूरे संसार की जनसंख्या में कितने मोक्षमार्गी होंगे ? इसी से हम कल्पना कर सकते हैं कि हर काल में वो एक सूत्र ही बहुत प्रभावी, पूज्य और पवित्र रहा होगा । प्रत्येक, एक–एक सूत्र सामने रख कर ही सम्यक्दर्शन प्राप्त कराने को सक्षम रहा है । इसे पढ़ने, मनन करने और राह पकड़ने हेतु धर्म सेवियों के हाथों में एक तुच्छ कड़ी बनकर निमित्त होने का सौभाग्य पाकर इसे आगे की पीढ़ी को सौंपती हूँ क्योंकि मैं तो अभी प्रारंभिक स्थिति में ही हूँ जहाँ मेरे कितने कदम सही पड़े और कितने लड़खड़ाए मैं स्वयं भी नहीं जानती । इतिहास तो सदा ही अपावन रहा है अन्यथा हम यहां पड़े ना रहते, सिध्द होते ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुराविदों और इतिहासकारों ने अध्ययन हेतु मानव सभ्यता के काल का विभाजन निम्नलिखित रूपरेखा में किया है।

पेलियोलिथिक काल

आरंभिक पाषाण औजार युग	लगभग 20 लाख से 7 लाख वर्ष पूर्व तक
गहन पेलियोलिथिक काल	लगभग 7 लाख वर्ष से 1 लाख वर्ष पूर्व तक
मध्य पेलियोलिथिक काल	लगभग 1 लाख वर्ष से 30 हजार वर्ष पूर्व तक
उपर पेलियोलिथिक काल	लगभग 30,000 से 10,000 वर्ष पूर्व तक
ऐपी / सतही पेलियोलिथिक काल	10,000 से 1,000 वर्ष पूर्व तक
मीसोलिथिक बदलाव काल	10,000 से 6500 ई. पूर्व तक
सैंधव युग	
आरंभिक कृषि काल (नियोलिथिक / चालकोलिथिक)	लगभग 6500 से 5000 ई. पू. तक
क्षेत्रीय आवास काल (आरंभिक हड़प्पा काल)	लगभग 5000 से 2600 ई. पू. तक
इनटीग्रेशन / सामूहिक गठन (हड़प्पा सभ्यता का) काल	लगभग 2600 से 1900 ई. पू. तक
बसाहट काल (अर्वाचीन हड़प्पा काल)	लगभग 1900 से 1300 ई. पू. तक,
उत्तर सैंधव काल / सैंधव गंगा सभ्यता काल	
क्षेत्रज सभ्यता काल (रंगे गए भूरे मृद पात्रों वाला युग)	लगभग 1200 से 800 ई. पू.
उत्तर भारत के काले पालिश वाले मृदं पात्रों का काल	700 से 500–300 ई. पू.
आरंभिक ऐतिहासिक काल लगभग 600 ई. पू. से	
सिध्दार्थ गौतम बुध्द	563–483 ई. पू. / 440 –360 ई. पू
पाणिनि	500: 400 ई. पू.
सिकंदर	360 ई.पू.

इस प्रकार इतिहासकारों ने श्रमण परम्परा में मात्र बौध्द श्रमणों को ही मान्यता दी है और **जिनधर्मी मूल श्रमण परम्परा की न केवल उपेक्षा की बल्कि उसे भुलाने की हठधर्मी की** है। पिछली शती में 1893 के शिकागो में हुए प्रथम विश्व धर्म सम्मेलन के बाद कुछ जर्मन विव्दानों अलब्रेख्ट वेबर, व्हीलर, ब्युलर, हर्मन जैकोबी, लोयमन, शूब्रिंग, जेम्स टॉड, हेल्मुट फॉन ग्लस्नप्प, लुडविग ऐशडॉख आदि ने उपलब्ध प्राचीन जैन साहित्य को पढ़ने समझने में बहुत परिश्रम किया और इसे मूल श्रमण धर्म भी प्रकाशित किया किंतु भारतीय इतिहासकार अपनी ढपली बजाने में लीन पार्श्वनाथ से अधिक इतिहास की गहराई में नहीं झांक सके बस इसी कारण सैंधव जैसी सहज लिपि को अपने चारों ओर बिखरी पुरा निधि के अंबार के बावजूद, **रेबस** जैसी सहज विधि के उपयोग के बाद भी एक पूरी शताब्दी खोकर भी नहीं समझ सके, यही विडम्बना रही। वे सब मर्म नहीं, उस लिपि में एक नई भाषा खोजते रह गए। इतिहासकारों का सारा प्रयास जिस प्रकार ईस्वी शती को केन्द्र बना आगे बढ़ा है उसी प्रकार वे भारतीय इतिहास को वैदिक धेरे में बांधकर देखना चाहते हैं जबकि सैंधव लिपि युग **पूर्व वैदिक, नियोलिथिक युग** से सिकंदर / मौर्यकाल तक जाना जाता है तथा वैदिक मान्यताओं से संपूर्ण हटकर है। सारे भारतीय धर्मों की मूलाधार सैंधव श्रमण परम्परा को **वैदिक नहीं उसके मौलिक आधार से ही आंकना होगा।** पुरालिपि अंकित क्षेत्रों को नष्ट होने से बचाना होगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोहानीपुर का कायोत्सर्गी जिन धड़

मथुरा से प्राप्त कायोत्सर्गी जिन घड़

सैंधव पुरा जिन धड़

बोधि गया मंदिर स्तूपों में यव्दा तव्दा जड़े खंडित जिनसहस्त्रकूट.

पुराकालीन कूप 1

पुरा कालीन कूप 2

नालंदा स्तूप में दबा पंचशिखरी जिनमंदिर

दैनिक जिन पूजा में सांकेतिक अभिव्यक्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुंजी – 1

कुंजी –2 चतुर्दिक त्रिआवर्त्ति

कुंजी –3 लोकपूरणी चकरी

कुंजी –4 दिगम्बरत्व

कुंजी–5 वृम्ब स्केच

कुंजी –6 तीन सिर वाला पशु

कुंजी–7 और 8 **"ॐ" और पंचम गति**

कुंजी–9 पांच गतियां दर्शाता स्वरितक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुंजियाँ 23 और आगे विंध्यगिरि पुरा अंकित जिनालय अब आहत और विनष्ट

चार घेरों का पुराकालीन मंदिर पथ

चंद्रगिरि पर दृष्ट पुरा वैभव 1 दिगम्बरत्व और चरण

2 लोकपूरण

3 वैय्यावृत्य और सैंधव पशु

उदयगिरि खण्डगिरि पुरा वैभव

1

सैंधव लिपि अंकन

2

3 पाषाण युगीन भीमबेठिका जैसा शैलांकन 4

5 दिगम्बरत्व

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण बेलगोला का पुरावैभव विस्तार और पर्वत शिला को तराशकर उभारे गये सैंधव तपस्वी बाहुबलि

सैंधव पुरालिपि अंकित

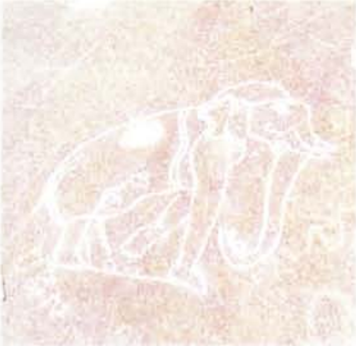

पुरा कालीन जिनालय की सीढ़ियां

1 जिन श्रमण शायिका

2 गुणस्थानारोहण

3 मानस्तंभ दर्शन

4 युगल निकट भव्य तपस्वी

इन स्थलों पर चामुण्डराय पूर्व काल से ही प्रतिदिन हजारों पर्यटकों ने आकर धूमा, इन्हें रौंदा तो है किंतु संभवतः इन्हें देखा नही । कदाचित देखा भी है तो पहचाना नही अन्यथा ये पूर्व मे ही प्रकाशित हो जाते। कुछ मतिभृष्ट पर्यटकों ने पुरातत्त्व संरक्षित पहरे में रहते हुए भी इन्हें नष्ट किया है और अब भी उपेक्षित ये नष्ट हो रहे हैं। अतः पाठकों के ध्यानाकर्षण हेतु इन्हें यहाँ दर्शाया जा रहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चंद्रगिरि पर भद्रबाहु गुफा की लावा जन्य बोल्डर पर दिखती
कायोत्सर्गी मनुष्याकृति और चार सिरों में से दिख रहे दो सिर ।

श्रमण बेलगोला के पुरा युगीन जिन बिम्ब और

पदमासित समाधि चरण

पुरातत्त्व की खोज मे बढ़ते कदम
चंदाप्रभु टोंक, तीर्थराज शिखरजी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धाराशिव गुफाओं के चूने गारे निर्मित 1. पार्श्वनाथ और 2. पैर पर उघड़ते वज्रलेपित पुराजिन आदिनाथ

3. उपेक्षित, खिरती, धंसकती लयणी, खंभे और

4. गुफा 1 के अंधेरे, सूखे, भूगर्भित जलकुंड में कभी फेंके खंडित उत्तरकालीन पाषाण निर्मित जिनबिंब

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एलोरा गुफा चित्र – नीचे का दृश्य : जिन श्रमणों पर हुए हिंसक भाला प्रहारों का वीभत्स शैलचित्रण
कि सो हुआ उस संघर्ष सभ्यता का दमन, गुफाओं में रौंदे गए निरीह, कायोत्सर्गी, अप्रतिकारी जिनश्रमण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरालिपि अभिलिखित पार्श्वनाथ जिनबिंब

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पठनीय संदर्भ सूचीः

1 सूर्य प्रज्ञप्ति – मलय गिरि व्दारा विवेचन, निर्णय सागर प्रेस,बम्बई,1919

2 चंद्र प्रज्ञप्ति – सुत्तगम भाग–2, पुप्प भिक्खु, पंजाब, 1957

3 त्रिलोक सार – नेमिचंद्राचार्य विरचित माणिकचंद्र दिगंबर जैन प्रांतीय प्रेस

4 ऋग्वेद संहिता – एस, डी, सतवालेकर, औंध, 1940

5 सामवेद – जे, स्टीवेन्सन, लंदन, 1892

6 यजुर्वेद,वाजसेनीय संहिता – ए.बी, कैथ, केम्ब्रिज, मेसाचुसेटस, 1914

7 अथर्ववेद – विलियम डी,व्हिटने, केम्ब्रिज, मेसाचुसेटस, 1905

8 सत्पथब्राम्हण – भाग–1 चंद्रधर शर्मा, अच्युत ग्रंथमाला, वाराणसी, 1937 / भाग–2 वंशीधर शर्मा, 1940

9 मनुस्मृति – जी, ब्युलर , जी,एन, झा व्दारा संपादित, 1886

10 अभिधर्मकोष – राहुल सांकृत्यायन,

11 एन्सिएंट सिटीज ऑफ द इंडस, – जी, एल, पोसेल; विकास पब्लि, हा, नई दिल्ली, 1979

12 द कोलेप्स ऑफ द इंडस – एस, आर, राव

13 ए हिस्ट्री आफ राइटिंग – अल्बर्टाइन गौर

14 द नेशनल कल्चर ऑफ इंडिया – सै. आबिद हुसैन, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1978

15 जैनिज्म, एन इंडियन रिलीजन ऑफ साल्वेशन – हेल्मुट फान ग्लास्नप, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1999

16 ग्लीनिंग्स ऑफ इंडियन आर्केयॉलाजी हिस्ट्री एंड कल्चर – डॉ, आर, एन, मेहता स्मृति ग्रंथ, जयपुर,2000

17 ए माइल स्टोन ऑफ जैन हिस्ट्री – डा, बी, के, तिवारी 1996

18 सिंहभूम क्षेत्र की सराक संस्कृति – अभय प्रकाश जैन, अर्हत वचन, 3/4,2004

19 ओपन बाउन्ड्रीज, जैन कम्यूनिटीज एंड कल्चर्स इन इंडियन हिस्ट्री – जॉन ई, कोर्ट

20 इट्रूस्कन और पेलास्गियन सभ्यताओं के अवशेष – कोएन वांक, सनराइज, पसादेना, केलिफोर्निया, 54/7, 2004

21 द वन्डर दैट वॉज इंडिया – ए, एल, बाशम, नई दिल्ली, 1981

22 एन्सिएंट इंडिया – डी, एन, झा; पीपुल पब्लि, हा,; नई दिल्ली, 1983

23 प्राचीन भारत का इतिहास, – वी, डी, महाजन, एस, चंद एंड कंपनी,रामनगर, नई दिल्ली, 1991

24 एक्सकेवेशन्स एट हड़प्पा – माधो सरूप वत्स, प्रशासनिक प्रकाशन,नई दिल्ली 1940

25 फर्दर एक्सकेवेशन्स एट मोहन्जोदड़ो – ई,जे,एच, मैके, प्रशासनिक प्रकाशन,नई दिल्ली, 1938

26 मोहन्जोदड़ो एंड द इंडस सिविलाईजेशन – सर जॉन मार्शल, लंदन,1931

27 डेसीफरिंग द इंडस स्क्रिप्ट – एस्को पारपोला, केम्ब्रिज यूनि, प्रेस, 1994

28 हड़प्पन सिविलाइजेशन – जी, एल, पोसेल, आक्सफोर्ड पब्लि, 1993

29 द इंडस स्क्रिप्ट – इरावथम महादेवन, आर्के, सर्वे, इं, नई दिल्ली, 1977

30 अर्ली तमिल एपीग्राफी – इरावथम महादेवन चेन्नई और हार्वर्ड वि, वि, संयुक्त प्रकाशन, 2003

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

31 द हड़प्पन सिविलाइजेशन एंड इट,स राइटिंग – वा. ए. फेयरसर्विस नई दिल्ली, 1992

32 इंडस स्क्रिप्ट इवोल्यूशन – एस. आर. राव

33 हिंदू सभ्यता – राधा कुमुद मुखर्जी

34 द हरप्पन ग्लोरी ऑफ जिनाज – स्नेह रानी जैन , शोध ग्रंथ, 2001

35 जैन संस्कृति का मोहन्जोदरो – एल. एल. खरे अर्हत वचन, 11/4, 1999,

36 मोहन्जोदरो सील्स रेड एंड आइडेन्टीफाइड – शंकर मोकाशी, कंक्सटन पब्लि, दिल्ली 1984

37 द ईथिकल मैसेज ऑफ इंडस पिक्चोरियल स्क्रिप्ट – स्नेह रानी जैन,शोध ग्रंथ, 2002

38 गाइड टू श्रावण बेलगोला – एस. शेट्टार, 1981

39 इंसक्रिपशन्स आफ श्रावण बेलगोला – बी,लूइस राइस , 1889

40 जैनिज्म द ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन – ज्योति प्रसाद जैन, द वर्ल्ड जैन मिशन, एटा,

41 द सीड इंडस रॉक ऑफ कर्नाटका – स्नेह रानी जैन शोध ग्रंथ 2003

42 इंडस स्क्रिप्ट अमंग द्रविडियन स्पीकर्स – आर. माधीवनन, मद्रास, 1995

43 इनट्रोडक्शन टू जैनिज्म – रूडी जन्समा और स्नेह रानी जैन, प्राकृत भारती एकाडेमी, जयपुर, 2006

44 मथुरा के जैन साक्ष्य – रमेश चंद्र शर्मा, तित्थयर, 1999

45 जैनेन्द्र सिध्दांत कोश – जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1944

46 सागा ऑफ द गेटी कूरोज – राबर्ट स्टीवेन बियांची, आर्कयालाजी, मई 1994

47 भारतीय संस्कृति का रुपहला कलश कटवप्र,चंद्रगिरि – स्नेह रानी जैन, अर्हत वचन, 2003

48 भारतीय दर्शन – वाचस्पति गैरोला

49 ईकोज ऑफ इंडस वैली – ए. पाठक और एन.के. वर्मा, जानकी प्रकाशन , पटना, 1993

50 फ्रॉम इंडस टू संस्कृत – डॉ मधुसूदन मिश्रा, युगांक पब्लि, दिल्ली, 1996

51 भारतीय प्राचीन लिपि माला – जी. एस. हीराचंद ओझा

52 एन्शियेन्ट ज्याग्रफी इन इंडिया – ए. कनिंघम, संपादक एस. एन. मजुमदार शास्त्री; कलकत्ता; 1924

53 जैन दर्शन – डॉ. मंगलदेव शास्त्री, वर्णी ग्रंथमाला, वाराणसी, 1955

54 श्रमण एवं ब्राम्हण – बी.सी. जैन , जैन संदेश, 1981

55 मुरुक्कन इन द इंडस स्क्रिप्ट – इरावथम महादेवन, चेन्नई, 1999

56 अमितगति श्रावकाचार – पं. वंशीधर, सोलापुर, वि.सं. 1979

57 अनगार धर्मामृत – पं खूबचंद, सोलापुर, 1927

58 कषाय पाहुड़ – दिगंबर जैन संघ, मथुरा, वि.सं. 2000

59 बोध पाहुड – माणिकचंद्र ग्रंथ माला, बंबई, वि. सं. 1977

60 भाव पाहुड़ – माणिकचंद्र ग्रंथ माला, बंबई, वि. सं. 1977

61 मोक्ष पाहुड़ – माणिकचंद्र ग्रंथ माला, बंबई, वि. सं. 1977

62. जैन साहित्य का इतिहास – डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, अहिंसा वाणी, प्रस्तावना, पृष्ठ 8

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

63 कार्तिकेयानुप्रेक्षा – राजचंद्र ग्रंथमाला, 1960

64 गोम्मट्टसार जीवकाण्ड – जैन सिध्दांत प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता

65 ज्ञानार्णव – राजचंद्र ग्रंथमाला, 1977

66 चारित्र पाहुड़ – माणिकचंद्र ग्रंथ माला, बंबई, वि, सं, 1977

67 भगवती आराधना – आचार्य शिवार्य

68 मूलाचार – अनंतकीर्ति ग्रंथमाला, वि.सं, 1996

69 धवला, – अमरावती प्रकाशन

70 सर्वार्थ सिध्दि – भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस ,1955

71 द्रव्य संग्रह टीका – दिल्ली 1935

72 तिल्लोय पण्णत्ति – जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर , वि, सं, 1999

73 चारित्रसार – महावीरजी , वि.सं , 2488

74 परमात्म प्रकाश – राजचंद्र ग्रंथमाला, वि, स, 2017

75 पंचसंग्रह,प्राकृत – ज्ञानपीठ, बनारस, वि, सं, 2008

76 पद,मनन्दि पंचविंशतिका – जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर, 1932

77 योगसार – जैन सिध्दांत प्रकाशिनी संस्थान, कलकत्ता, 1918

78 महापुराण – भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, 1951

79 पंचास्तिकाय – परम श्रुत प्रभावक मंडल, मुंबई, वि.सं, 1972

80 समाधि शतक – वीर सेवा मंदिर , दिल्ली , वि, सं, 2021

81 राजवार्तिक – भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, वि.सं, 2008

82 स्टडी ऑफ द इंडस स्क्रिप्ट – एस्को पारपोला टोकियो सिम्पोजियम, 2005

83 नो वैदिक रूट्स हियर – सूरजभान, टाइम्स ऑफ इंडिया, 22, 7, 2006

84 डिस्कवरी ऑफ ए सेन्चुरी इन तमिल नाडु – टी, एस, सुब्रामनियन, द हिंदु, 1, 5, 2006

85 सागार धर्मामृत और अन्य जैन ग्रंथ

86 जैन साहित्य का इतिहास – गणेश प्रसाद वर्णी ग्रंथमाला, वी.नि, 2481

87 जैन कला और स्थापत्य – भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1974

88 जैनिज्म – कुर्ट टिटजे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1998

89 सैंधव पुरा प्रतीक एक शाश्वत अभिव्यंजना – स्नेह रानी जैन एवं जिनेन्द्र कुमार, भोपाल, 2002

90 कर्म, द मेकेनिज्म – हर्मन कून, कॉस विंड पब्लिशिंग, यू.एस.ए, 1999

91 विश्व की मूल लिपि ब्राम्ही – डॉ प्रेमसागर जैन, वीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन समिति, इंदौर, 1975

92 द लाइफ ऑफ बुध्दा – ई, एल, थामस, 1927

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

93 एन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री – डी.डी.कौशाम्बी, बंबई, 1959

94 एन्टीक्विटीज – कनिंघम, ए, एस, आर 1902

95 वही – वोगल, ए, एस, आर, 1903

96 भारतीय इतिहास और संस्कृति – डॉ. विशुध्दानन्द पाठक एवं पं जयशंकर मिश्रा,

97 शिल्पों की जुबानी, जिन इतिहास की कहानी – प्रो. राम प्रसाद चन्दा एवं अन्य , जन जन के महावीर

98 वर्ध्दमान महावीर से पूर्वमान – प्रो. रामप्रसाद चंदा, माडर्न रिव्यू, 1932

99 भारतीयों का लिपि ज्ञान – पं. राहुल सांकृत्यायन, पुरातत्वांक, 1933

100 एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एंड ईथिक्स – जान हेस्टिंग्ज, 6 भाग

101 हेबीटेंट, इकानेमी एंड सोसायटी इन गद्दियार्स – **डॉ. मोहन लाल गुप्ता**

102 हिंदी भाषा उदगम और विकास – डॉ. उदय नारायण तिवारी,

103 इंडियन सिस्टम्स ऑफ राइटिंग – डॉ सुनीति कुमार चटर्जी, भारत सरकार, 1966

104 अवर सेक्रेड बॉक्स ऑफ ईस्ट, विनयपिटक – गोलडेनबर्ग,

105 द अल्फाबेट – डॉ, डिरिंजर,, लंदन; 1949

106 हड़प्पा सभ्यता एवं संस्कृति – अंशुमान व्दिवेदी, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1977

107 जैनिज्म इन बिहार – पी, सी, रे, चौधरी, पटना, 1956

108 ज्यॉग्रफी ऑफ एन्शियेंट इंडियन इंन्स्क्रिप्शन्स – परमानंद गुप्ता; बी, के. पब्लि. हा.; दिल्ली ; 1973

109 खारवेल – श्री सदानंद अग्रवाल; कटक; 1993

110 द ए.बी.सी. ऑफ अवर अलफाबेट – टी, थाम्पसन; लंदन, 1942

111 द स्क्रिप्ट ऑफ हरप्पा एंड मोहनजोदड़ो – जी. आर, हंटर; लंदन, 1934

112 एन्शियेंट हिस्ट्री ऑफ इंडिया – आर, एस, त्रिपाठीय वाराणसी

113 अलबरुनीज इंडिया, भाग 1, 2 – सकाउ व्दारा अनुवादित, 1888

114 संस्कृति – ए, कनिंघम, वाराणसी, 1962

115 मेंगस्थनीज इंडिका – सं.ई.ए. श्यानबेक, बॉन, 1846

116 हिस्ट्री ऑफ एन्शियेंट संस्कृत लिटरेचर, -- मैक्सम्युलर

117 तिरुपरुत्तिकुन्रम एंड इट,स टेम्पिल्स – टी, एन, रामचन्द्रन; बुलेटिन ऑफ द मद्रास गव्हर्मेंट म्यूजियम, 2002

118 इंडियन पेलियोग्राफी – डॉ. ब्युलर; 1904

119 ललित विस्तार – एस, लेफमन, हाले, 1902

120 टाउन प्लानिंग इन एन्शिएंट इंडिया – बी बी. सुत्रा, ठक्कर; स्प्रिंक एंड को, 1925,

121 इमर्जेंस ऑफ हिंदुइज्म एंड ह.यूमन फेस ऑफ गॉड-- कल्याणव्रत चक्रवर्ती, फर्म केएलएम प्रा. लि.कलकत्ता, 2006

122 पूजन पाठ प्रदीप-- हीरालाल जैन, कौशल, सूरजमल विहार दिल्ली, 2001

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीवत्स की हड़प्पा संबंधी सीलें

1

2

3

4

5

6

7

8

9

10

11

12

13

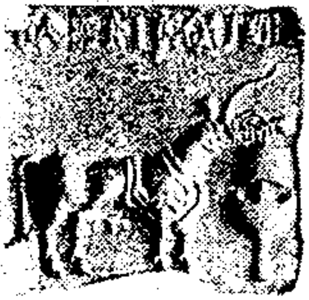
14

15

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

16

17

18

19

20

21

22

23

24

25

26

27

28

29

30

31

32

33

34

35

36

37

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

38

39

40

41

42

43

44

45

46

47

48

49

50

51

52

53

54

55

56

57

58

59

60

64

61

62

63

65

66

67

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

68

69

70

71
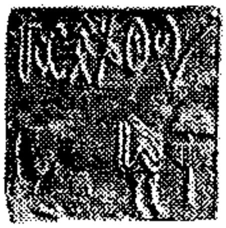
72

73

74

75

76

77

78

79

80

81

82

83

84

85

86

87

88

89

90

91

92

93

94

95

96

97

98

99

100

101

102

103

104

105

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

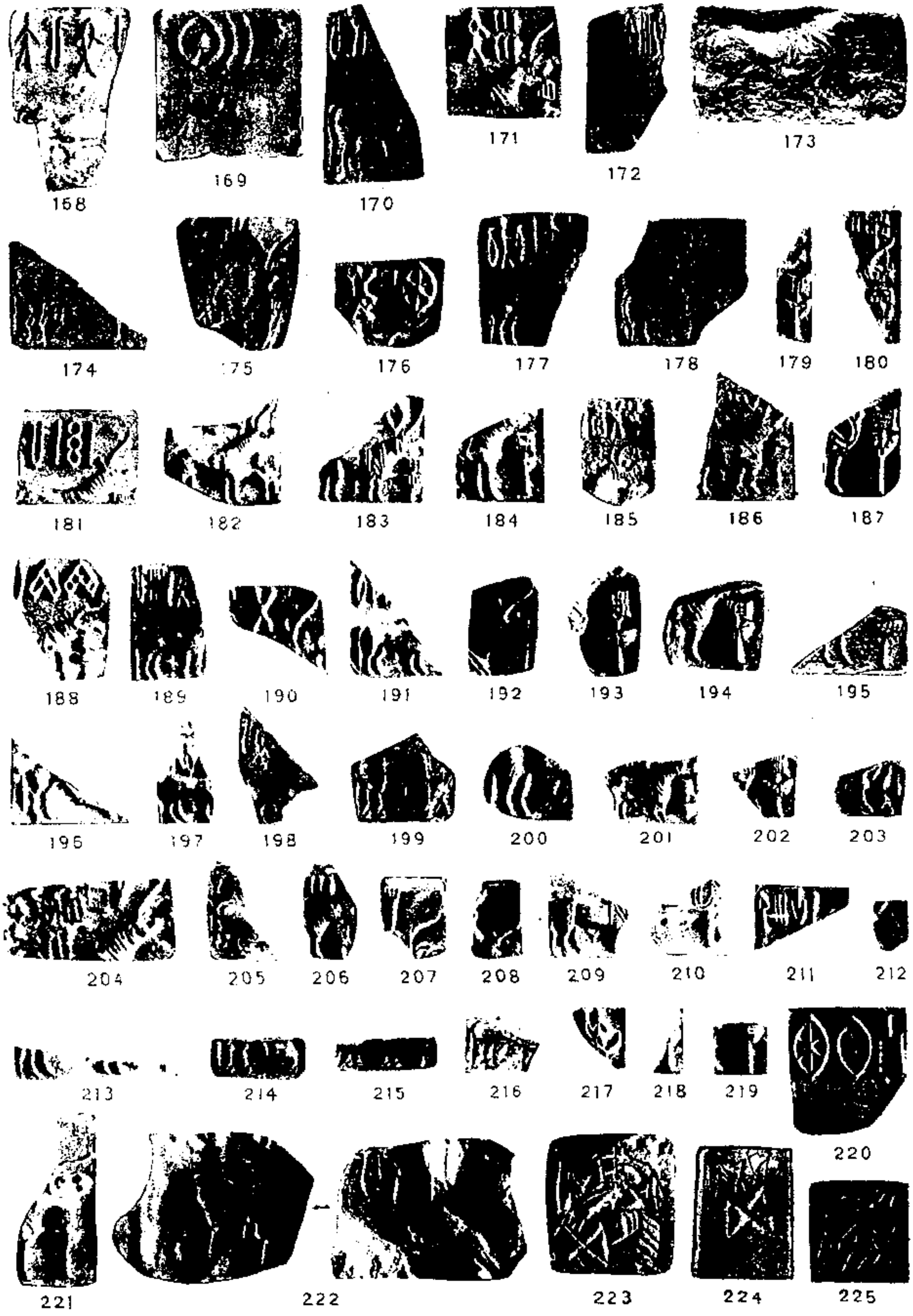

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

226

227

228

229

230

231

232

233

234

235

236

237

238

239

240

241

242

243

244

245

246

247

248

249

250

251

252

253

254

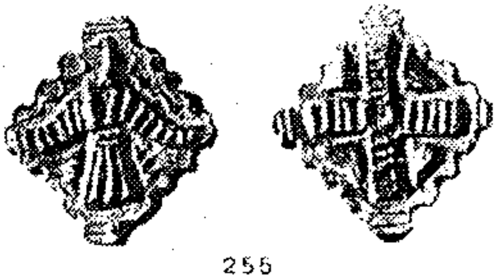

255

256

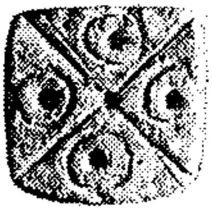

257

258

259

260

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

261 262 263 264

265 266 267 268

269 270 271

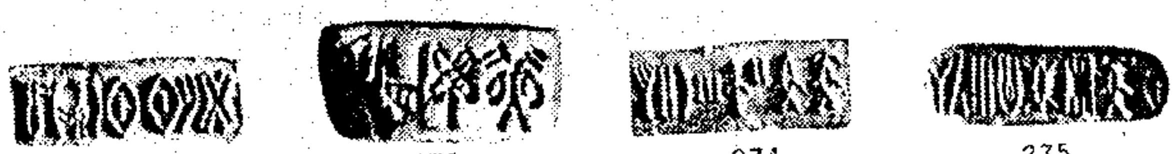

272 273 274 275

276 277 278 279 280

281 282 283 284 285

286 287 288 289 290 291

292 293 294 295 296 297

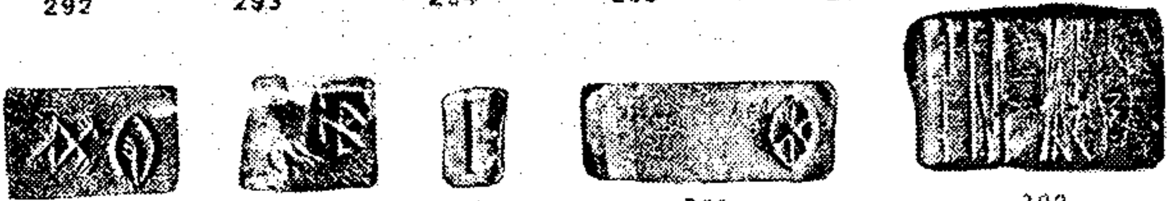

298 299 300 301 302

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

303
304
305
306
307
308
309
310
311
312
313
314
315
316
317
318
319
320
321
322
323
324
325
326
327
328

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

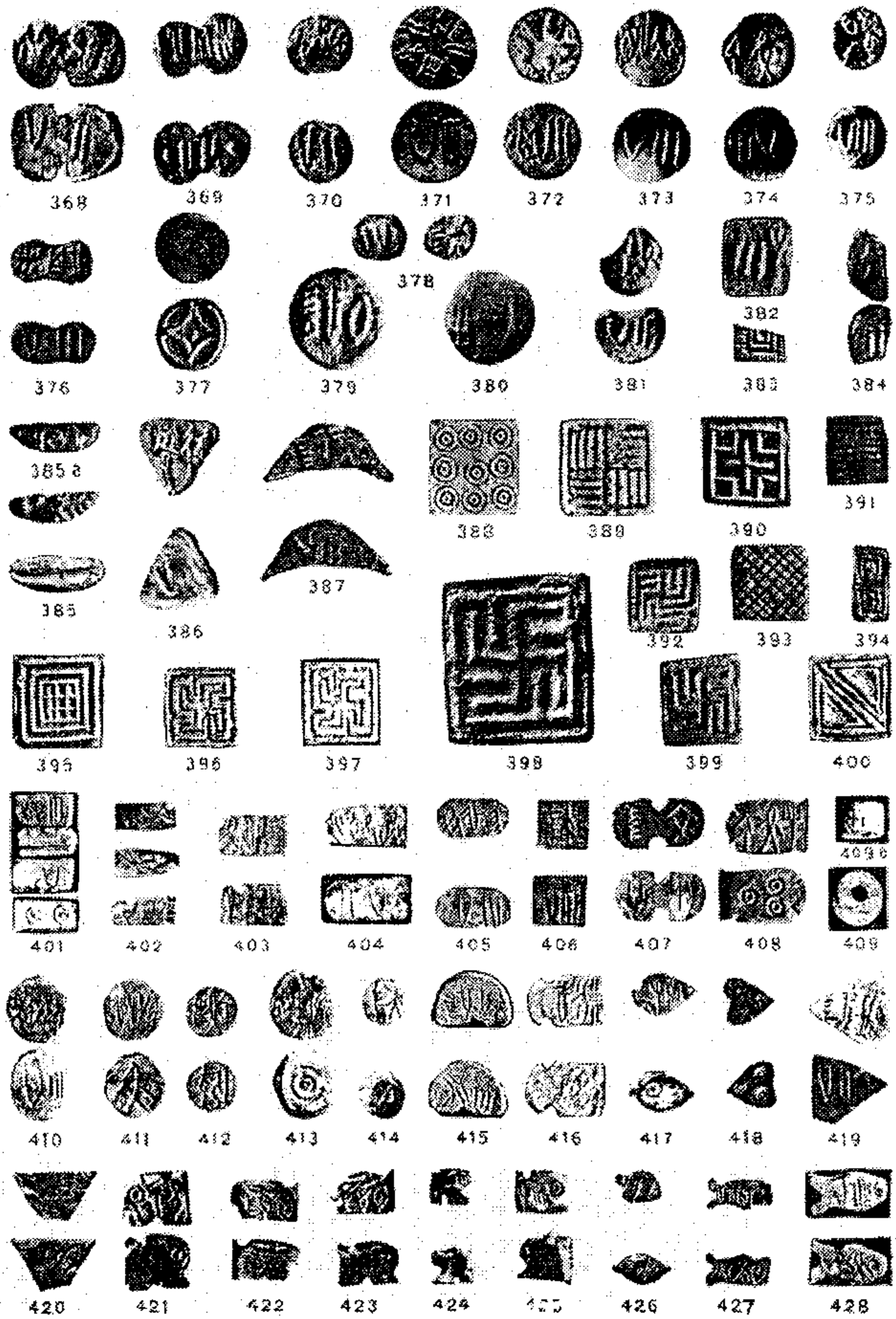

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

581

582

583

584

585

586

587

588

589

590

591

592

593

594

595

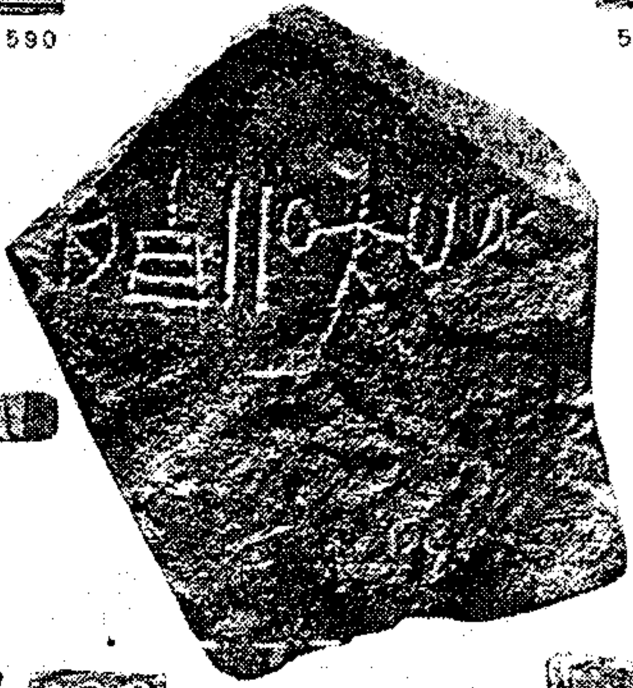
599

596

597

598

600

601

602

603

604

605

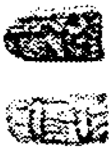
606

607

608

609

610

611

612

613

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

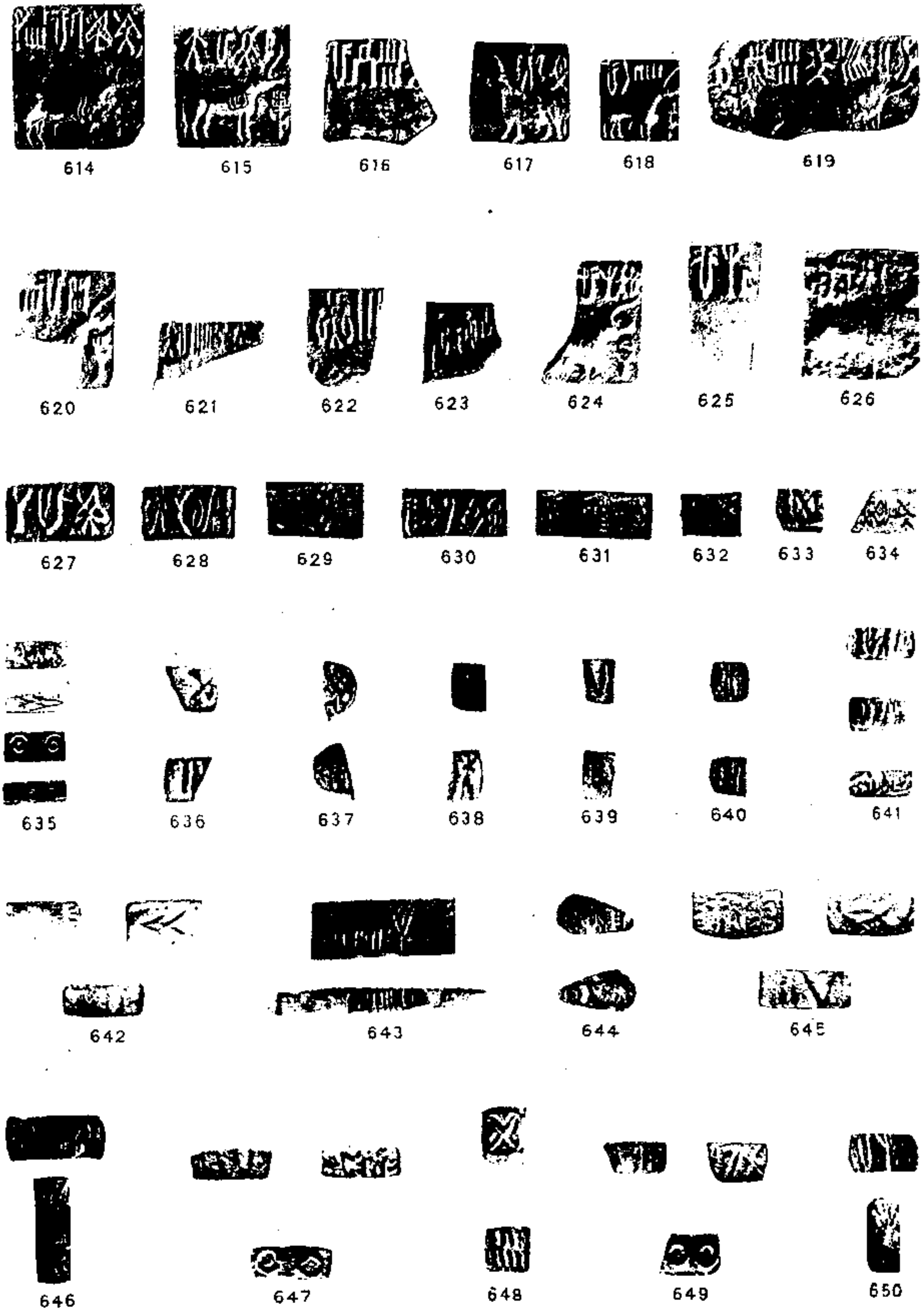

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

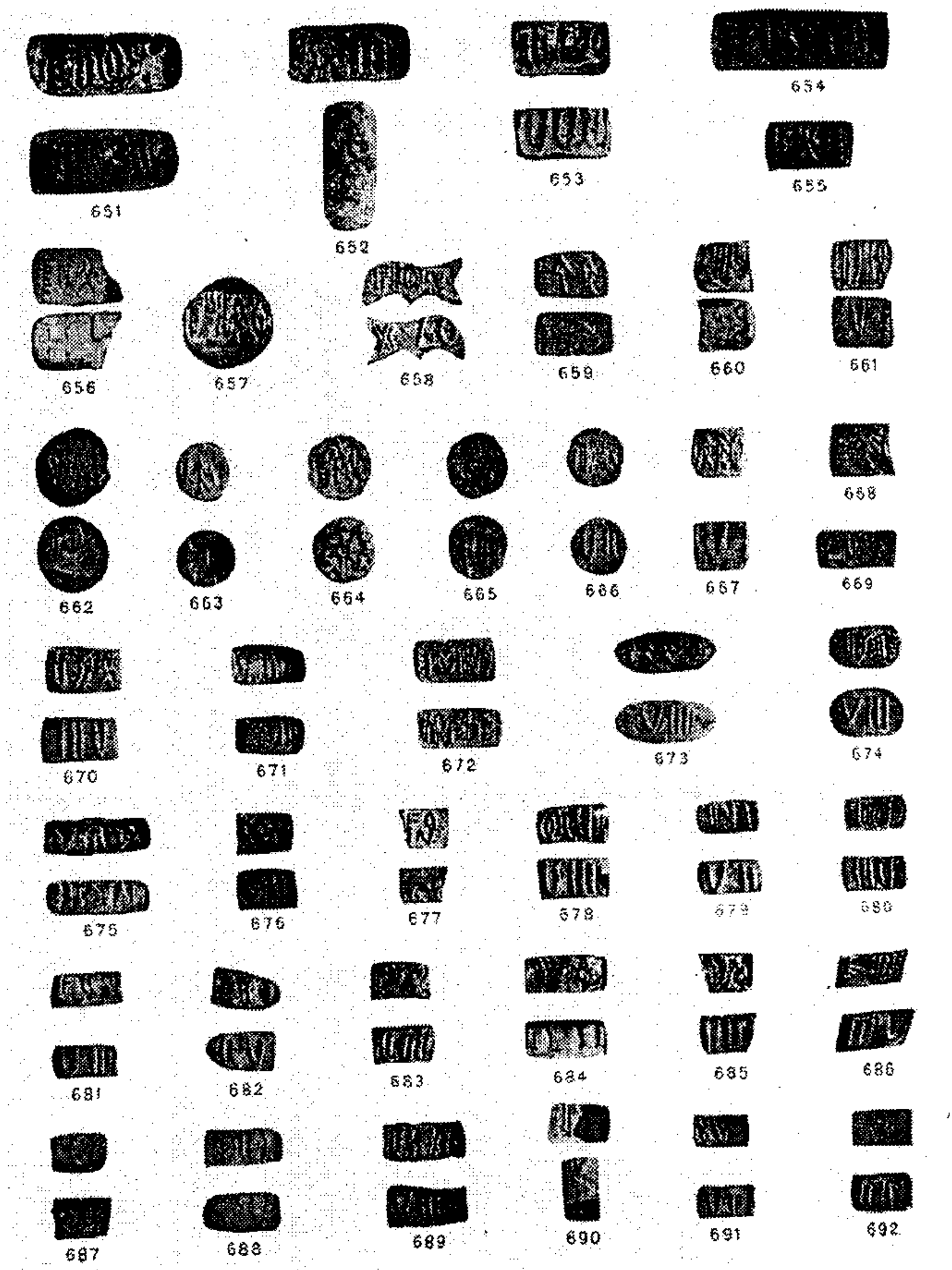

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

693

694

695

696

697

698

699

700

701

702

703

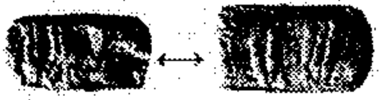

704

705

706

707

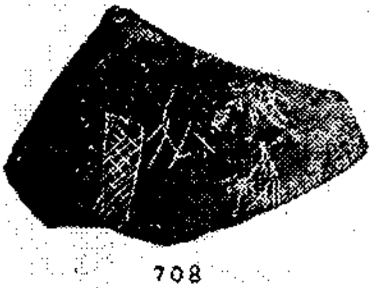

708

709

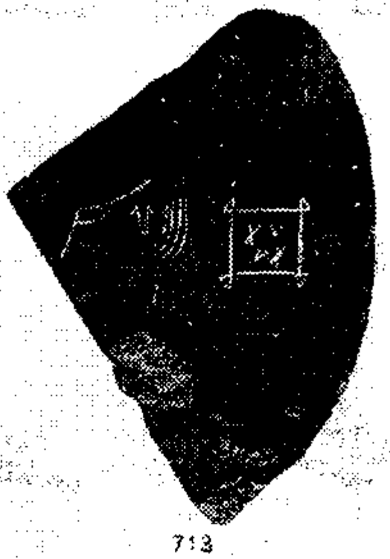

713

710

711

712

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वत्स की सीलों के अभिलेख

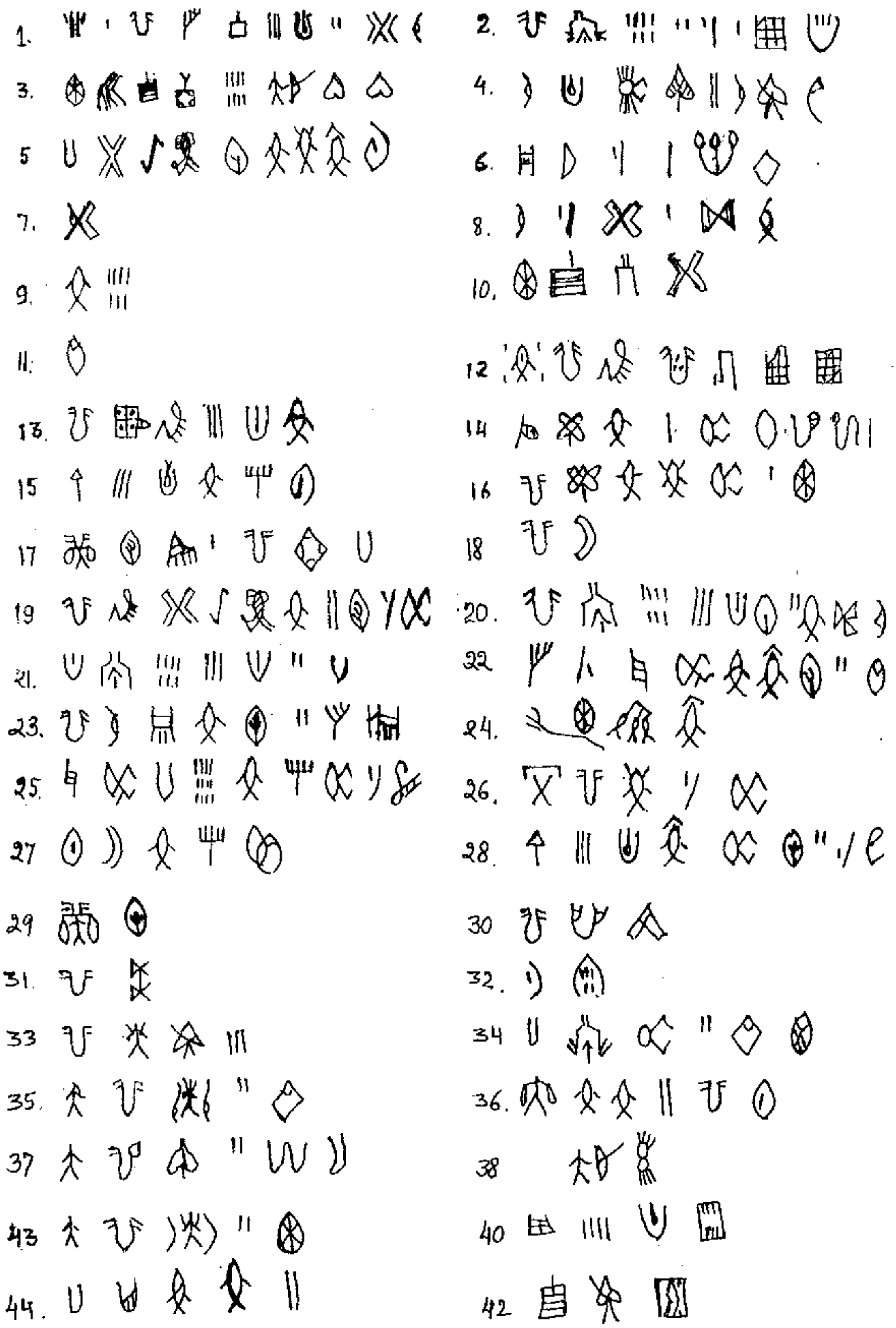

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

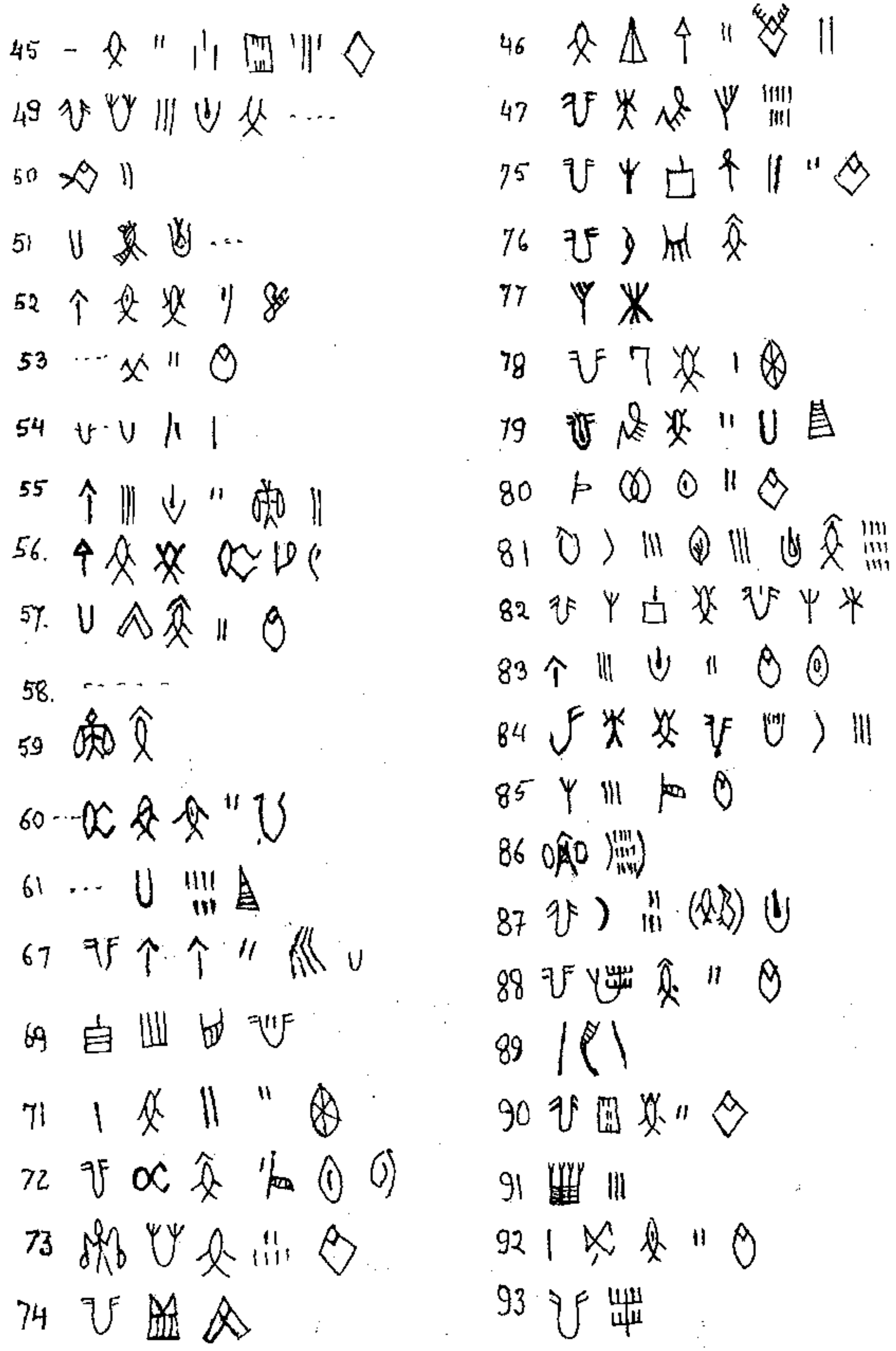

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

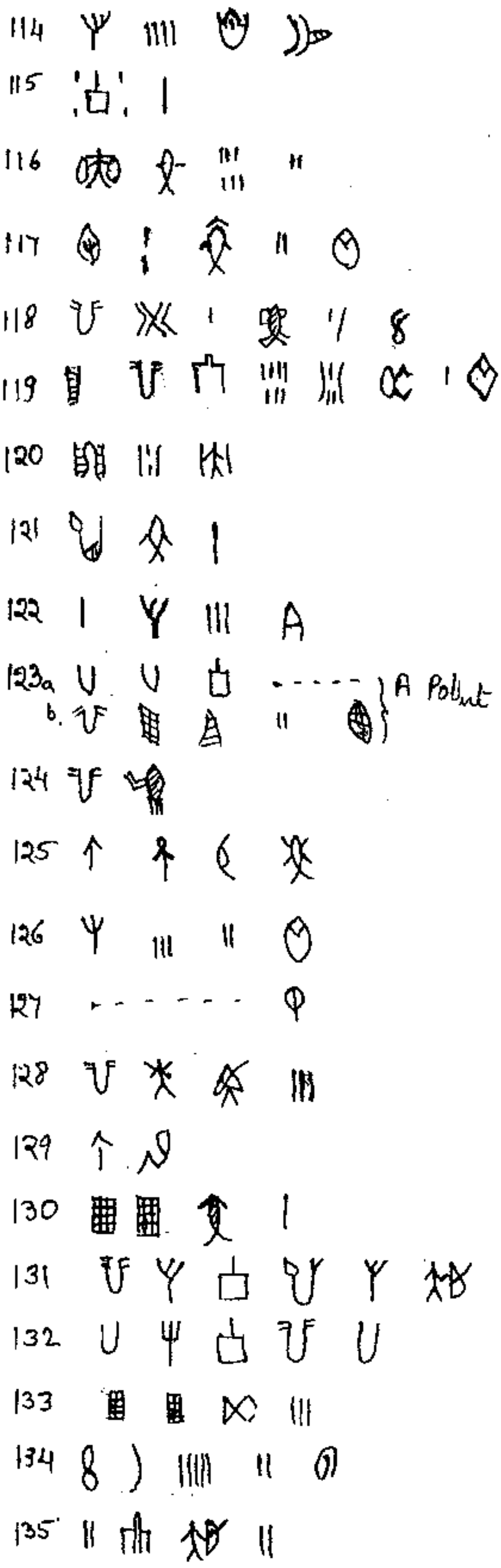

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

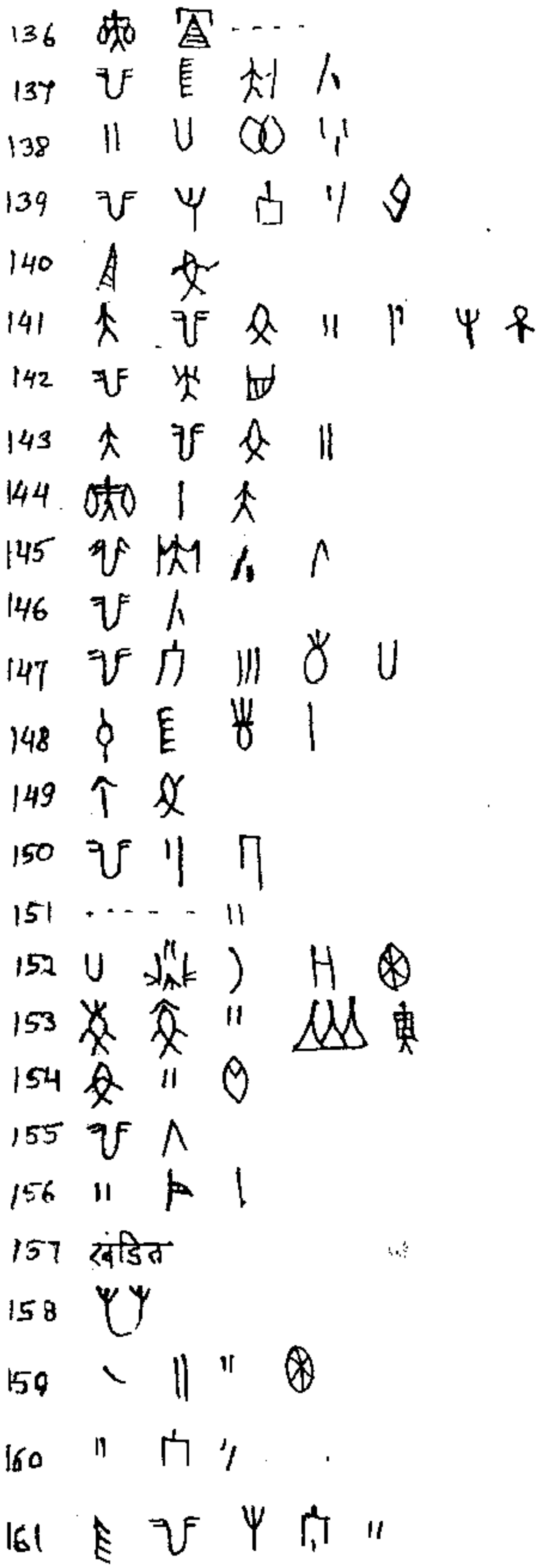

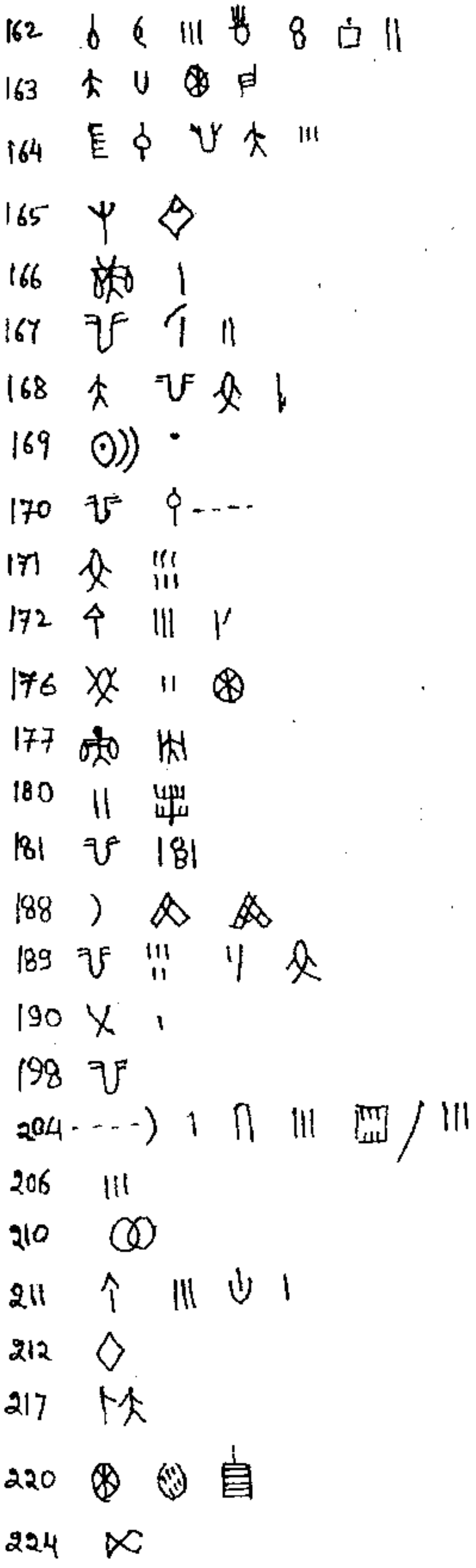

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सैंधव युगीन पावन तीन शिखरें

सैंधव मुहरों पर अंकित अभिलेखों में जहाँ तहाँ तीन शिखरें दिखाई पड़ती हैं जिन्हें पुराविदों ने अपनी काल्पनिक विदेशी उड़ान में डेरी की चोटियाँ कहना चाहा है। इस प्रकार वे संभवतः सिंधुघाटी सभ्यता में गौ पालन को महत्ता देने का प्रयास कर रहे थे किंतु भारतीय परिप्रेक्ष्य में वह बेहद अटपटी कल्पना है। यहाँ के गोपुर तो नैसर्गिक वातावरणी होते थे । शिखरों का संबंध तो सदैव मंदिरों से ही रहा है जो एक और दो तो बहुधा दिखी हैं, किंतु तीन शिखरों का एक साथ होना **जिन वैभव** को ही दर्शाता है। तीन शिखर मंदिर ही नहीं रत्नत्रय के भी द्योतक होते हैं।

शिखर तीर्थ जैनियों का एक ऐसा तीर्थ है जिसे **शाश्वत तीर्थ** कहा जाता है। **जिन धर्म** में किसी क्षेत्र का महत्त्व तभी माना गया है जब वहाँ किसी तपस्वी के चरण पड़े हों, किसी तपस्वी ने तप किया हो, या जहाँ से तपस्वी मोक्ष गए हों। इस दृष्टि से भरत क्षेत्र के इस भारत का कण कण पवित्र रहा है क्योंकि सदैव ही यहाँ तपस्वी रहे। उन्होंने तप किया, भ्रमण किया, तीर्थंकरों के समवसरण लगे। बड़े बड़े संघों में तपस्वियों ने वैभव को त्यागकर वनों की राह ली, पर्वतों की गुफाओं कंदराओं को अपना ठौर बना नैसर्गिक आपदाओं को सहन किया और हारे नहीं। पर्वत के शिखरों पर गहन ध्यान चिंतन किया और वहीं अपनी नश्वर देह अविचलित हो ध्यानस्थ त्यागी। ऐसे पर्वत और उनकी शिखरें आज भी प्रतिदिन जैन धर्मियों व्दारा तीर्थयात्रा का केन्द्र बनी हुई हैं किंतु किसी नदी को मात्र नदी होने से ना तो पवित्र माना है ना ही उसकी पूजा की है। किसी भी पत्थर, शिला, शैल, शिखर, वृक्ष, यक्ष, पशु, देव, दानव, नदी, घाट, समुद्र आदि को ना तो पवित्र कहा है ना ही पूजा है । शिखर तीर्थ को **तीर्थराज** कहा जाता है क्योंकि वहाँ से न केवल 20 तीर्थंकरों ने तप करते हुए देह त्यागी हैं बल्कि करोड़ों केवल ज्ञानियों ने भी वहाँ से तप करते हुए मोक्ष प्राप्त किया है। सैंधव युग में भी वे शिखर वैसी ही प्रसिध्दि प्राप्त थे जैसी आज। इसे कुछ सीलांकनों में देखा जा सकता है। वत्स 153,233,648 मैके 159,174,202,290,405,407,499,511,548,680, मार्शल 20, 54, 102, 130, 139, 186, 197, 201,247, 276, 253,289 322, 343, 346,416,420,459,526ब आदि जिनमें हाइन्ज मोडे और मित्रा की यहाँ प्रदर्शित सील सर्वा

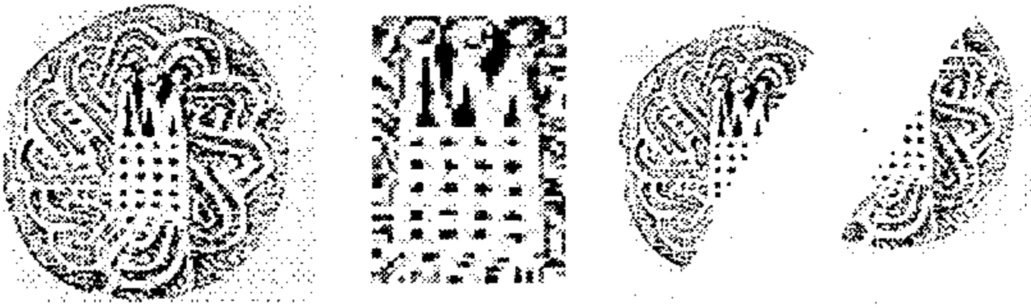

धिक विशेष है। इसमें सैंधव युगीन एक ऐसे मंदिर को दिखलाया है जिस में तीन शिखरों के साथ साथ गर्भगृह में 21 आराध्यों को भी प्रस्थित दर्शाया गया है। साथ ही तीन लकीरें वहीं आगामी आराध्यों के भविष्य में होने का संकेत देती हैं। इस प्रकार कुल 24 इष्टों अथवा आराध्यों का संकेत उस **वेदपूर्व काल** में मात्र तीर्थंकरों की ओर संकेत करता है क्योंकि शेष सब धर्म तो अर्वाचीन हैं। अर्थात वह **21वें तीर्थंकर नमिनाथ का काल** था। इसका दूसरा प्रमाण बाहरी घेरे की छल्लियाँ दर्शाती हैं जो एक ओर तीन तो दूसरी ओर चार हैं। अर्थात वे जैन मान्यता के **तीसरे** और **चौथे** काल को दिखलाती हैं जब **तीर्थंकर जन्मे** थे। उन शिखरों पर जाकर सभी ने तप किया, गुण स्थान बढ़ाए और कायोत्सर्ग में लीन होकर मोक्ष गए। वे सीलें इस प्रकार हैं, देखें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ नीचे दिखलाई गई सारी ही सीलों के संदर्भ डेरी के नही ध्यान से देखें, तीर्थराज शिखरजी के ही हैं।

वत्स

मैके

मार्शल

20 54 102 130 197

201 180 186 247 139

253 289 322 459

343 139 526 b 495

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थराज शिखर जी पर तीर्थ यात्रियों को एक भजन अवश्य यदा कदा सुनाई दे जाता है जो वहाँ के आदिवासी गाते हैं :

"' बाबा भला बिराजा जी, बाबा भला बिराजा जी !
सँावरिया पारसनाथ शिखर पर भला बिराजा जी !
ऊँचा नीचा पर्वत सोहे जहाँ देव का वासा
चार खण्ड पर आन बिराजे तीन लोक के दाता
बाबा भला बिराजा जी, बाबा भला बिराजा जी !

माताऐं भी इसे लोरी के रूप में बच्चों को गा गाकर सुलाती हैं।

इसके शब्दों पर गौर करने से हमारी तीन पावन टोंकों का रहस्य खुलता सा दिखता है। चार खण्ड अर्थात चौथी टोंक अथवा शिखर। अर्थात पार्श्वनाथ चौथी टोंक से मोक्ष गए और उनसे पूर्व काल में वह वहाँ की तीन टोंकों के लिये प्रसिध्द था। पार्श्वनाथ से पूर्व तीर्थंकर नेमिनाथ गिरनार से मोक्ष गए प्रसिध्द हैं । तब पार्श्वनाथ से पूर्व कालीन तीन खण्ड अथवा तीन शिखर स्वयमेव इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ के काल तक के होना अभिव्यक्त हो जाते हैं। तभी से इन तीन टोंकों की प्रसिध्दि है यह संकेत हमें मिल जाता है। मुख पृष्ठ पर दर्शाया गया चित्र पार्श्वनाथ टोंक की सीढ़ियों से लिया गया शिखर जी तीर्थ क्षेत्र का विहंगम दृश्य है जिसे सैंधव तीर्थ यात्रियों ने पर्वत की चढ़ाई पार करते हुए अथवा उतरते समय अवलोकित किया होगा। उस युग के कलाकार ने वे श्रृंग उसी की स्मृति में उकेरे हैं ऐसा आभास देते हैं।

उन श्रृंगों पर श्रमणों ने तपस्या की है जिसे श्रृंग की चोटी पर रखी पिच्छी से दर्शाया गया है। ,
197.

जापें की हैं उन्होंने अपने गुणस्थान उन्नत किए हैं
680

और समाधि मरण किये हैं
64 139 343

ऐसा शाश्वत तीर्थ सदैव स्मरणीय है और रहेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सैंधव यक्ष

चित्रों में दिखलाया गया तीन अथवा अनेक सिरों वाला यह प्राणी कोई नया जन्तु नहीं, जैन ज्योतिष्क का यक्ष है जो अपना क्षेत्र नियत करके उसकी सुरक्षा करता है। यहाँ इसके तीन सिर दिखलाए गए हैं जो अधिक होना भी संभव हैं।

382

383

386

387

इन सीलों पर लिखी पुरालिपि इस बात का प्रमाण है कि जैन ज्योतिष्क की मान्यता उस सैंधव काल में भी वैसी ही थी जैसी अब। ऐसा ही एक यक्ष अंकन हमें भारत सरकार के आर्केलाजिकल विभाग व्दारा सुरक्षित श्रमण बेलगोला की विन्ध्यगिरि पर उकेरित, किन्तु घोर उपेक्षित दिखा है जिसकी लंबाई चौड़ाई लगभग 1–1 मीटर है। वह निश्चित ही सैंधव युगीन है और आश्चर्य का विषय है कि पुराविदों ने उस पर अब तक भी ध्यान क्यों नहीं दिया। 387 नंबर की सील जैन अध्यात्म की सुंदरतम अभिव्यक्ति है। पीच्छी के ऊपर यूनिकार्न वाला रत्नत्रय है जिसके ऊपरी सिरे के 5 पत्र पंचपरमेष्ठी के द्योतक हैं। बाजू के दो पत्र मिलकर सप्त तत्व और नीचे के दो मिलाकर नौ पदार्थ का चिंतन कराते हैं। नीचे छिपे दो फल निश्चय व्यवहार धर्म के बोधक हैं। पूरा लेख: एक गृहस्थ ने स्वसंयम धारकर तप हेतु रत्नत्रय स्वीकारा और पंचपरमेष्ठी आराधन करते सप्ततत्व, नौ पदार्थ चिंतन निश्चय व्यवहार धर्म की शरण लेकर किया। सल्लेखना ली, और घातिया चतुष्कक्षय से भव चक के पार हुआ।

ये सीलें मूल जिनधर्म प्रभावी होने के कारण अन्य किसी विधि से पढ़ी नहीं जा सकती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

227
228
229
230
231
232
233
235
236
237
238
239
240
241
243
244
245
248
249
250
251
253
254
256
257
259
260

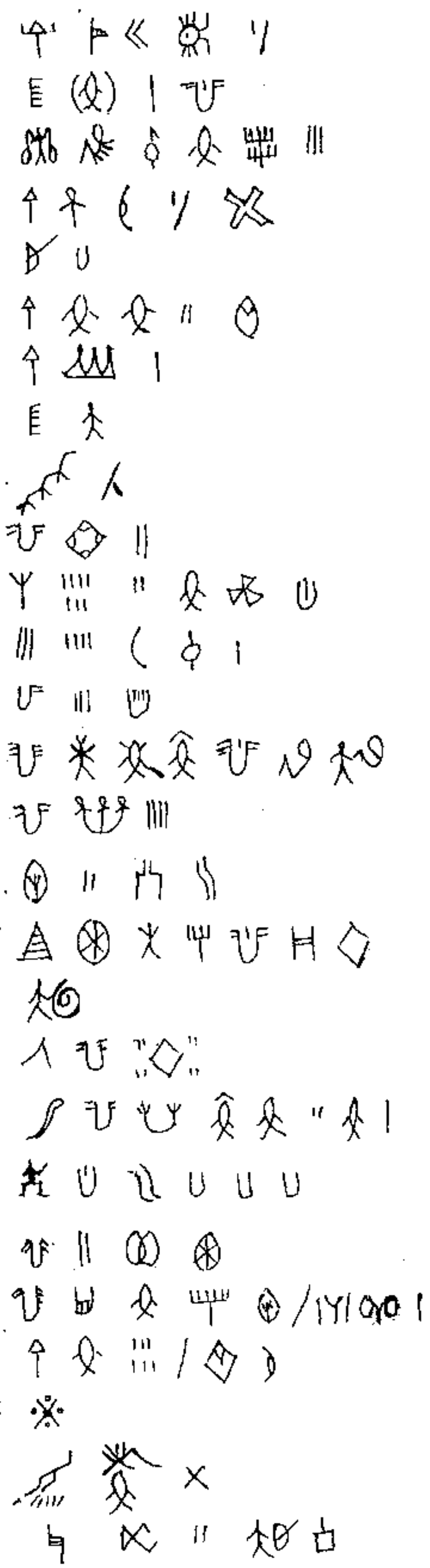

261
262
263
264
265
266
267
268
269
270
271
272
273
274
275
276
277
278
279
280
281
282
283
284
285
286
287

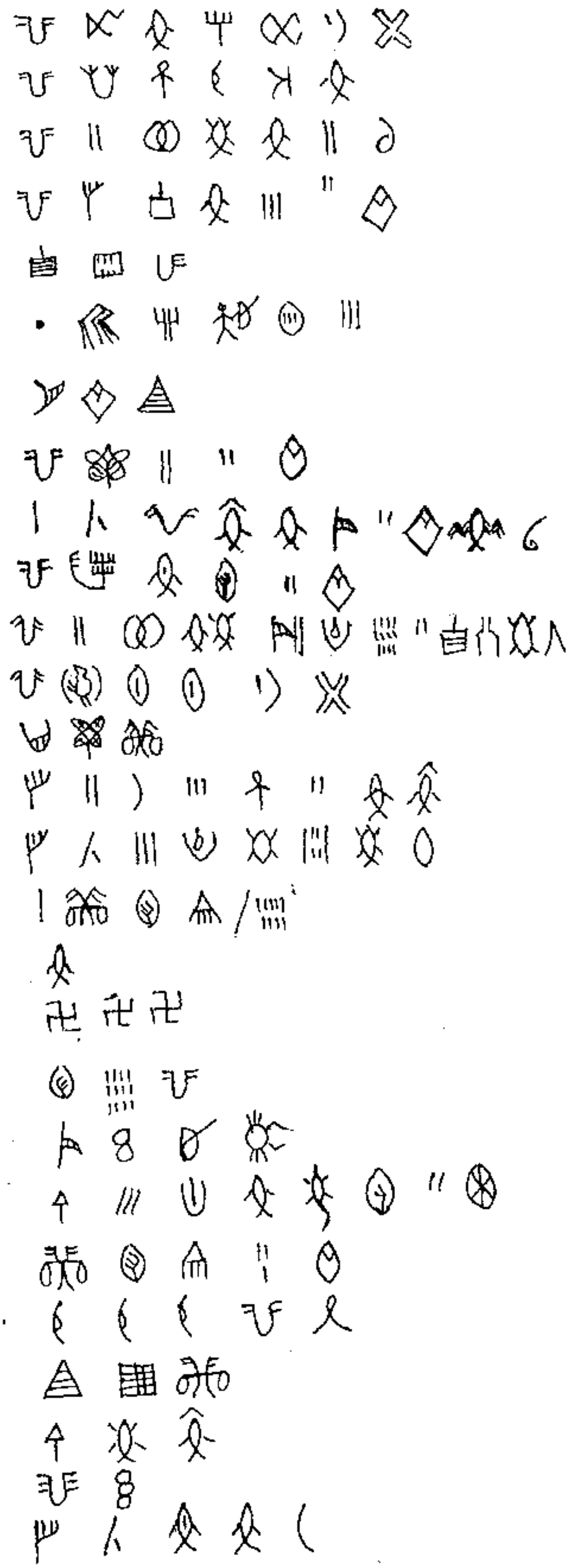

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

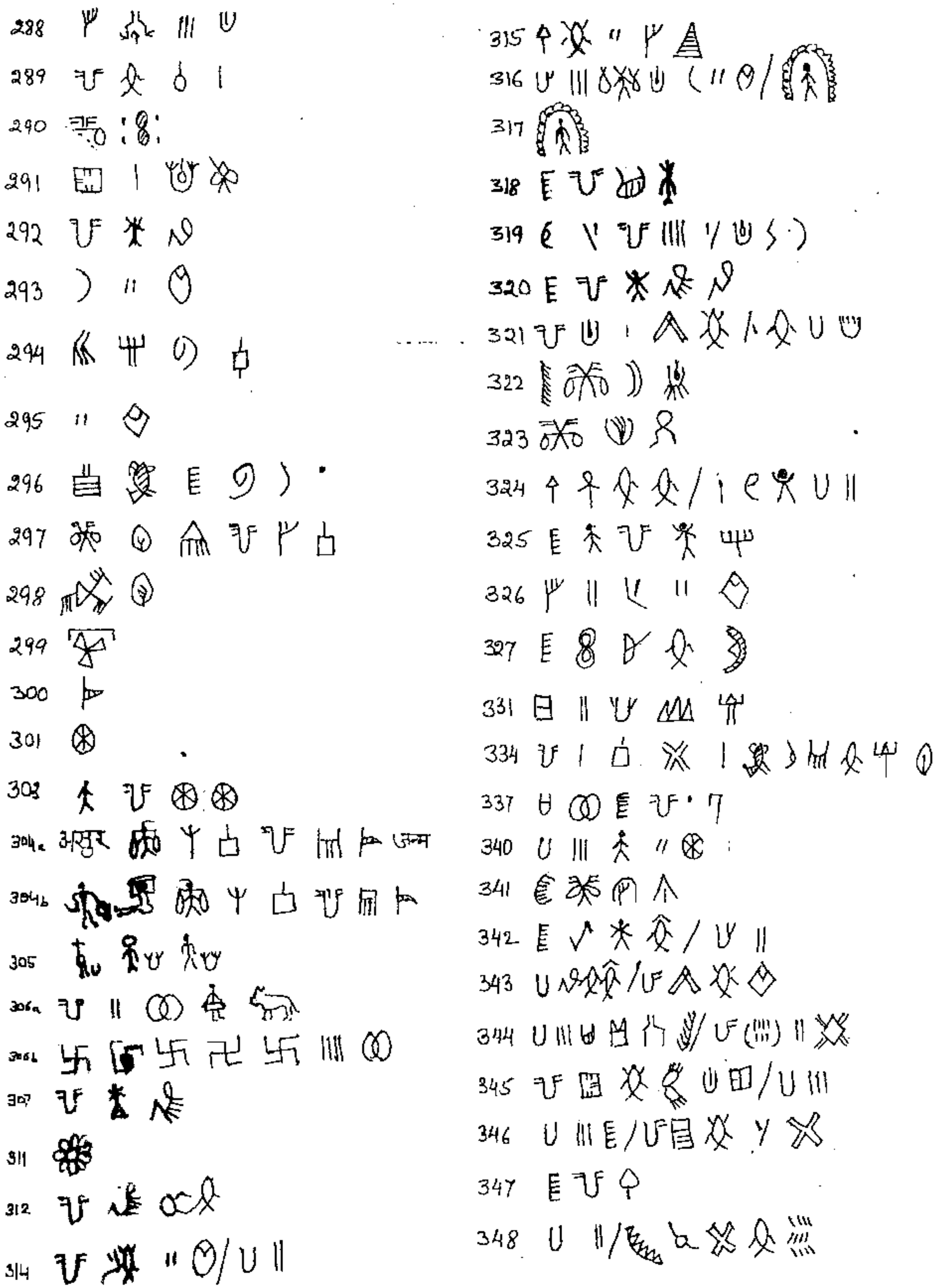

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

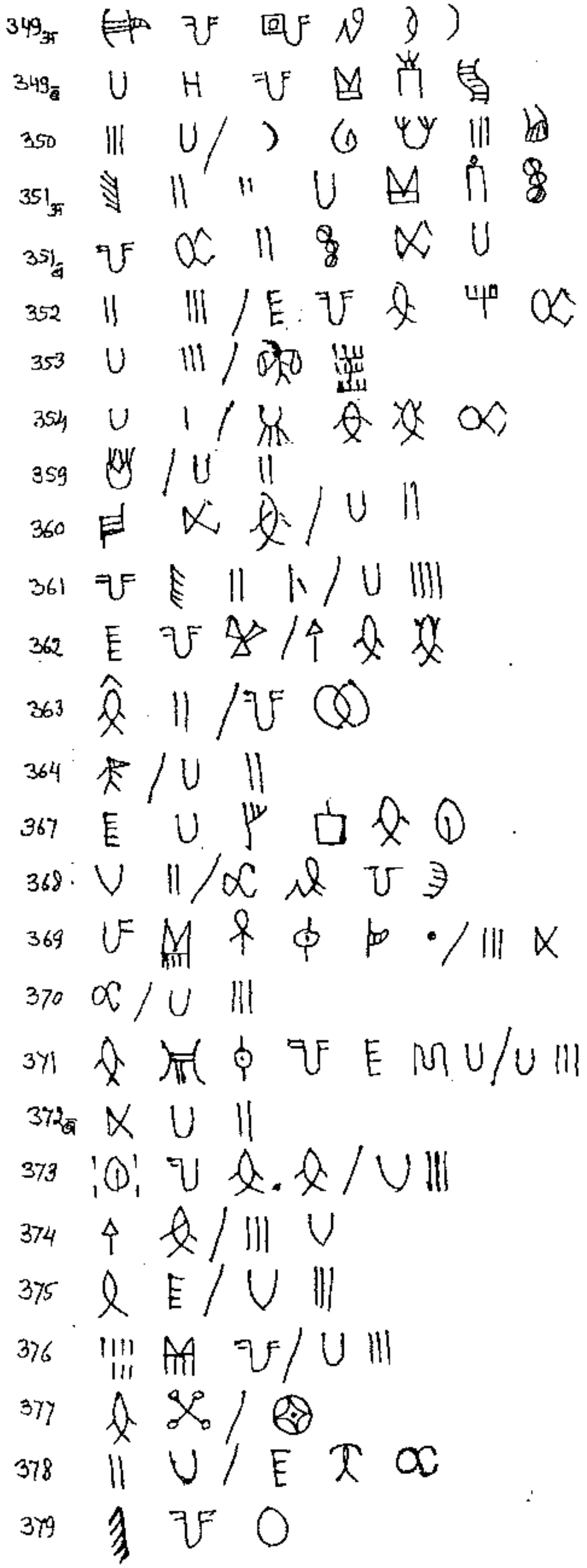

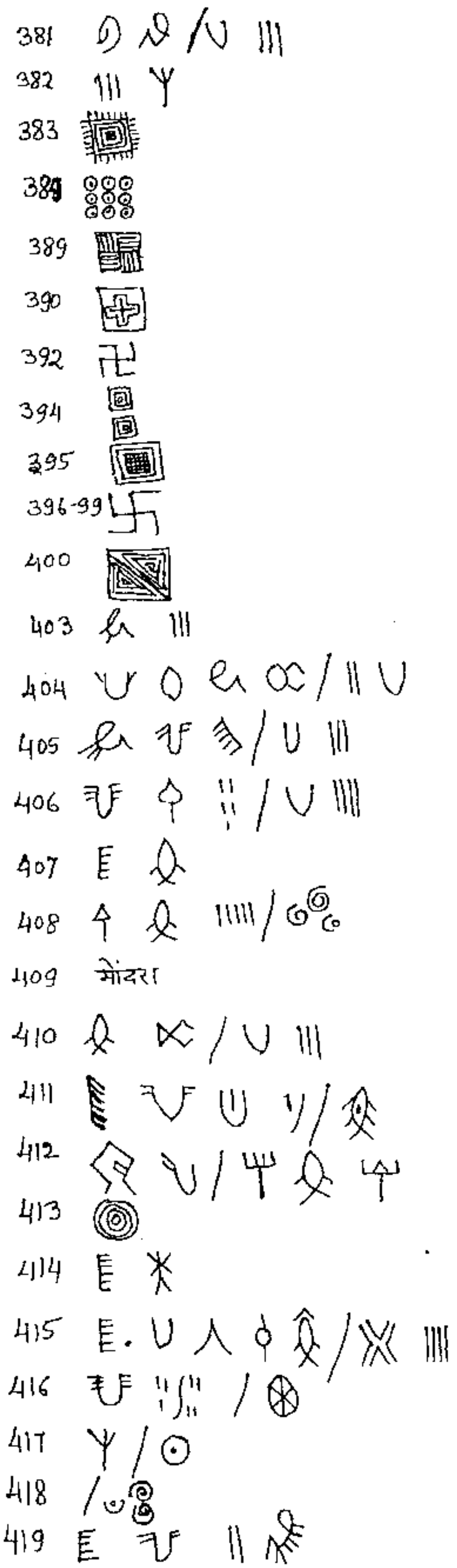

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

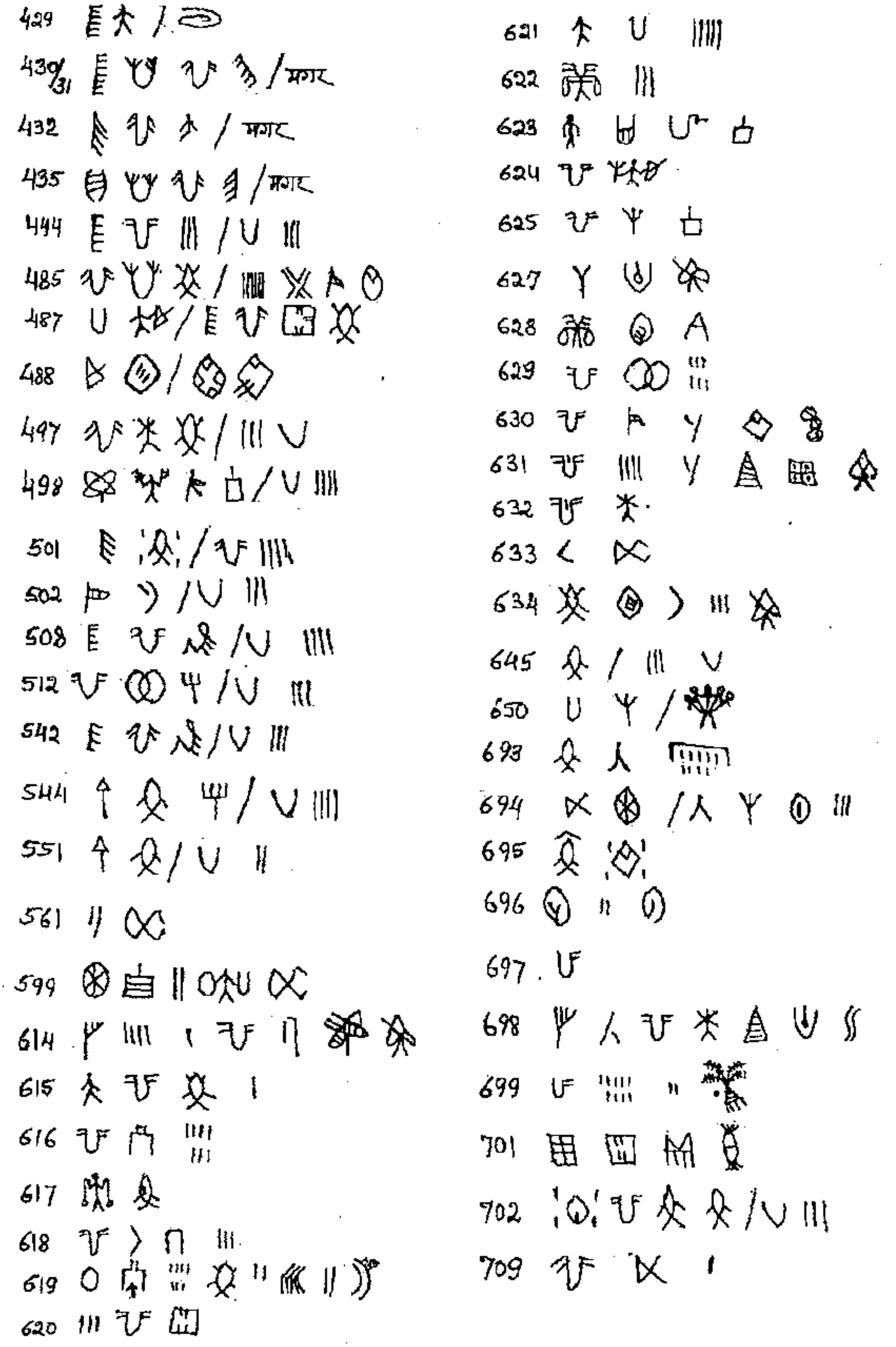

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैके की सीलें

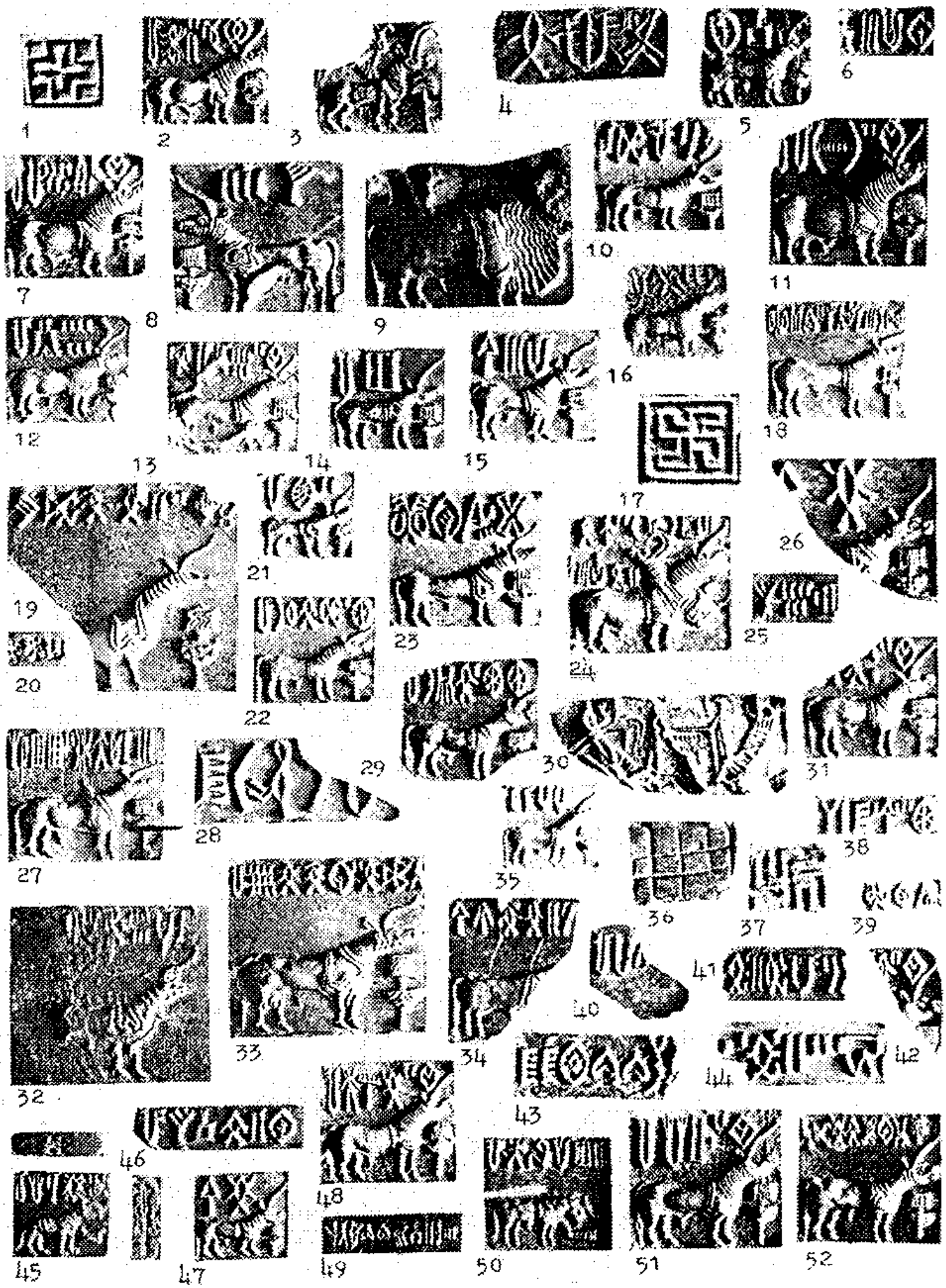

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

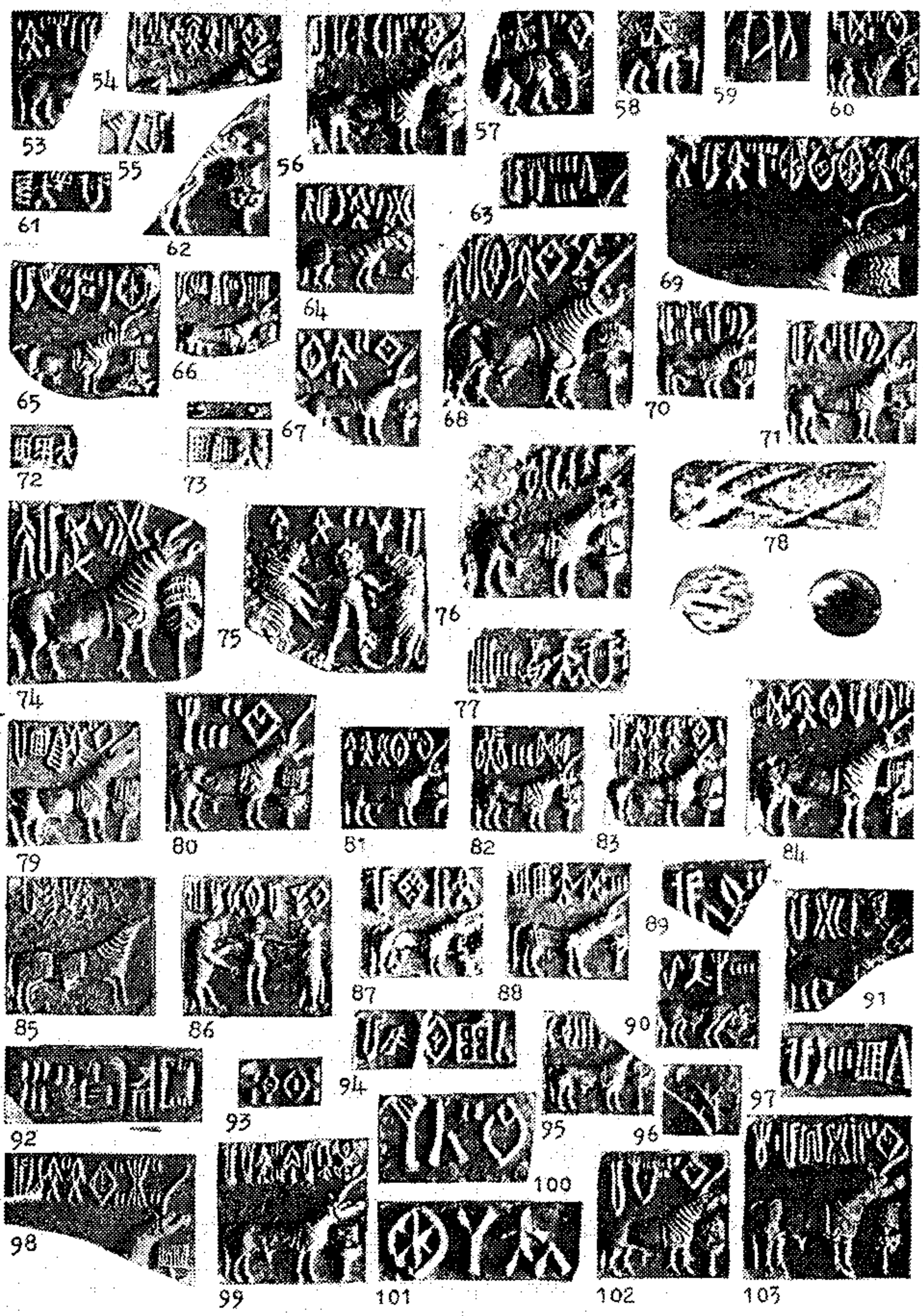

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

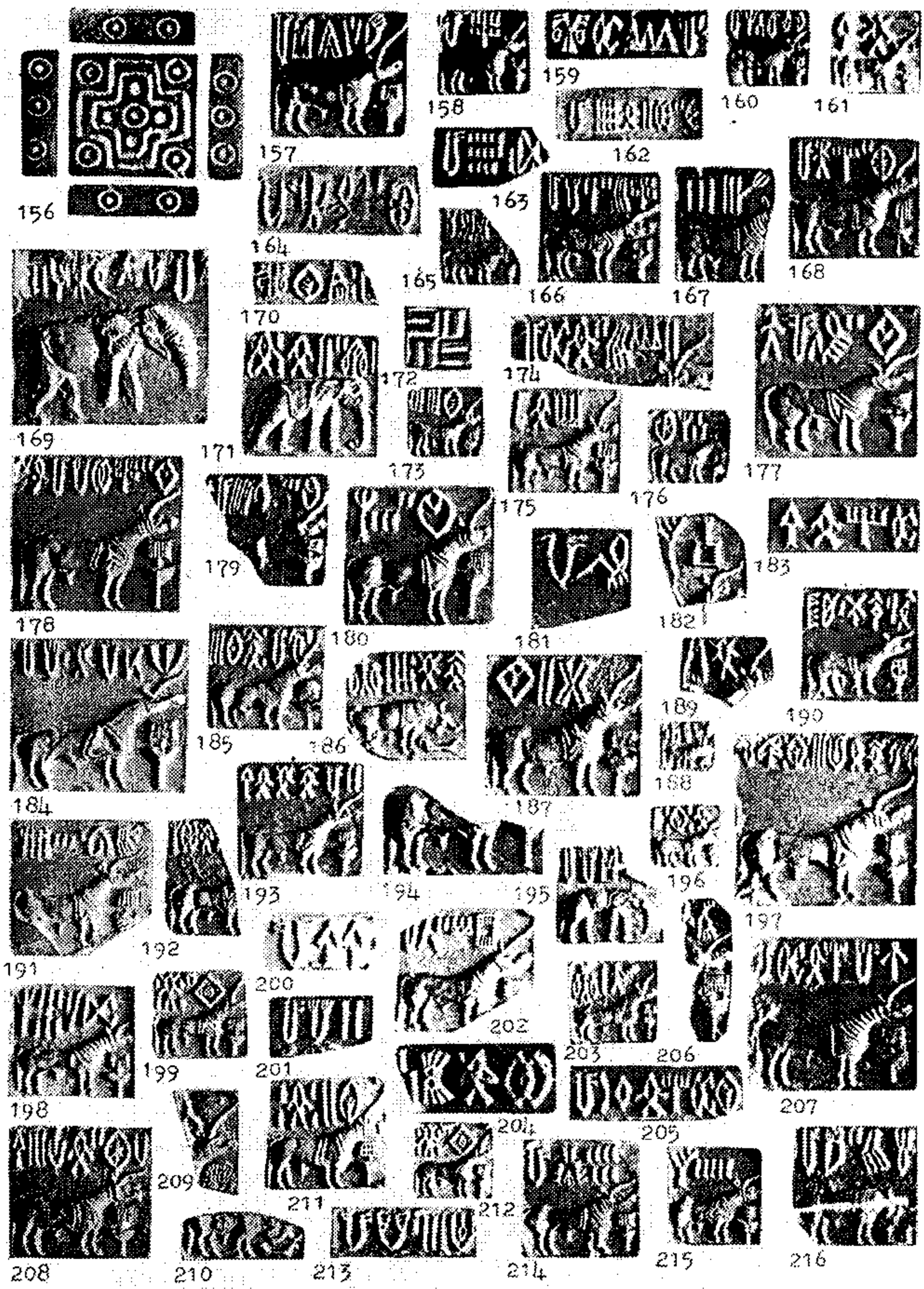

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

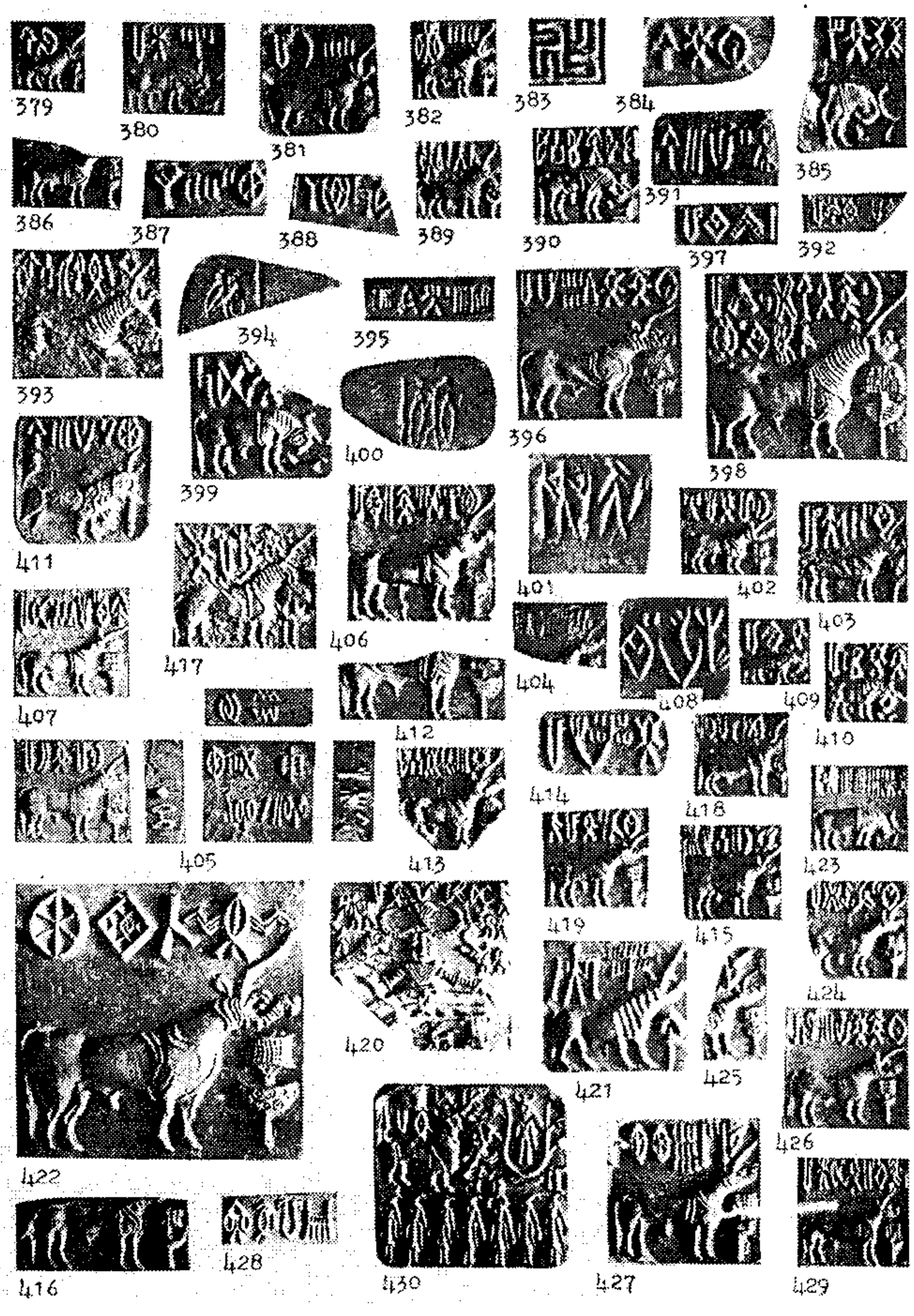

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

H. SECTION, DK. AREA

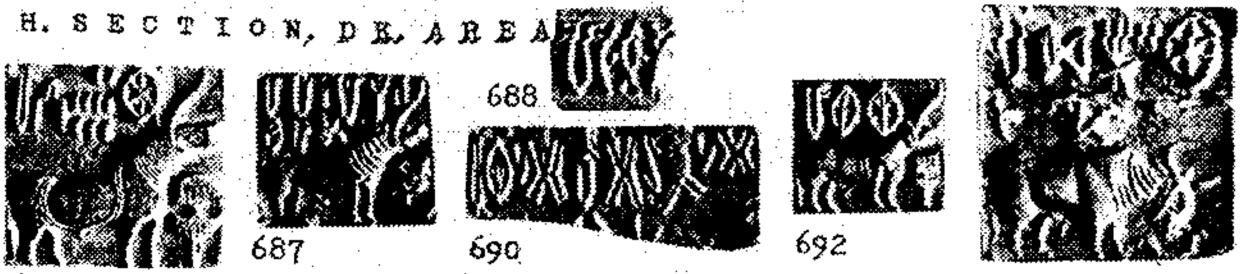

691 687 688 690 692 689

SD. SECTION, STUPA AREA

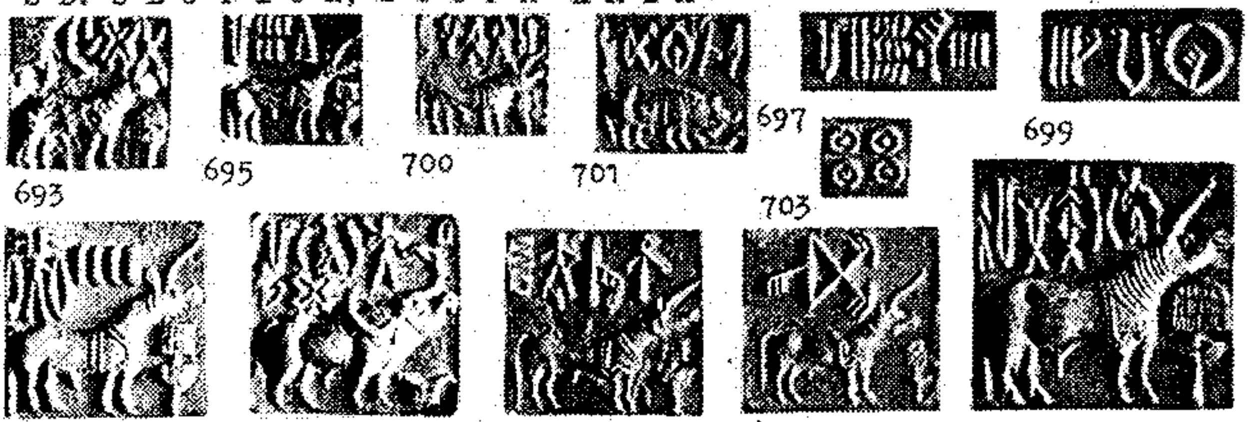

693 695 700 701 697 703 699

698 696 702 704 694

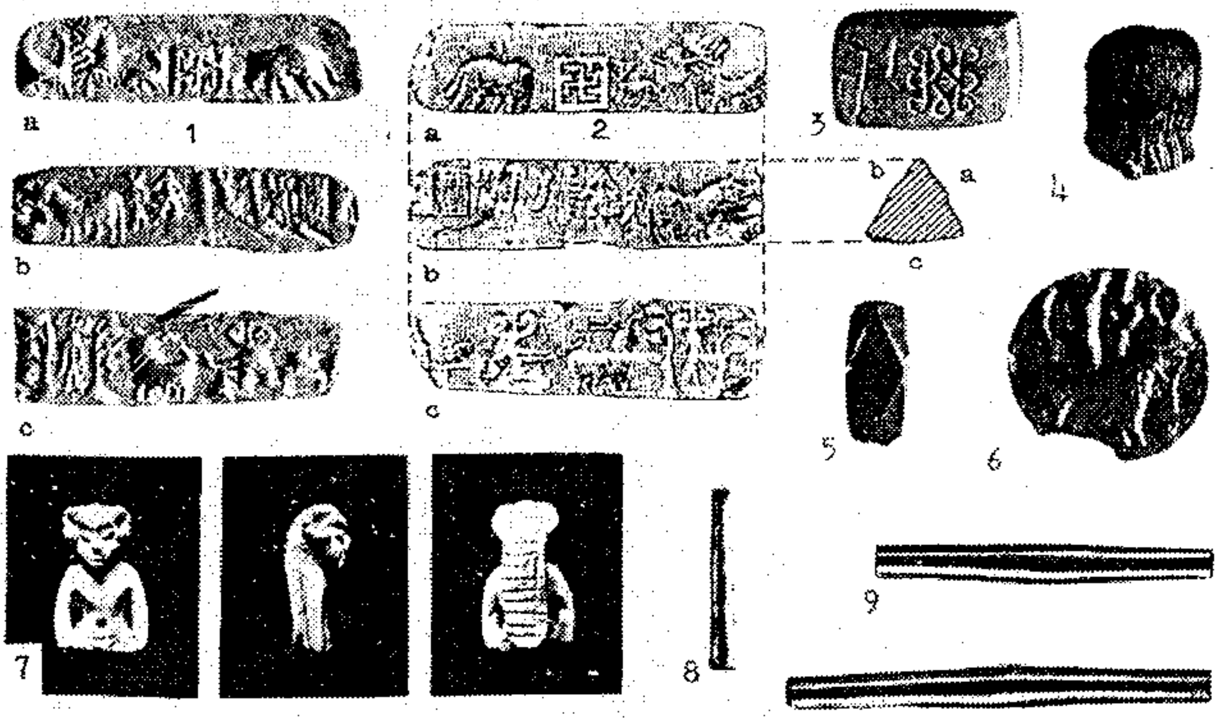

1 a b c 2 a b c 3 a b c 4 5 6

7 8 9 10

KUSHĀN COINS

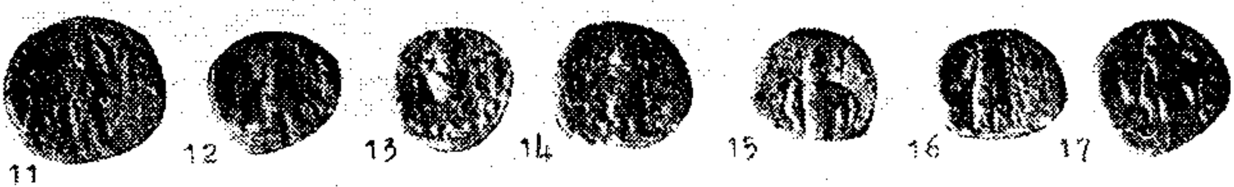

11 12 13 14 15 16 17

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

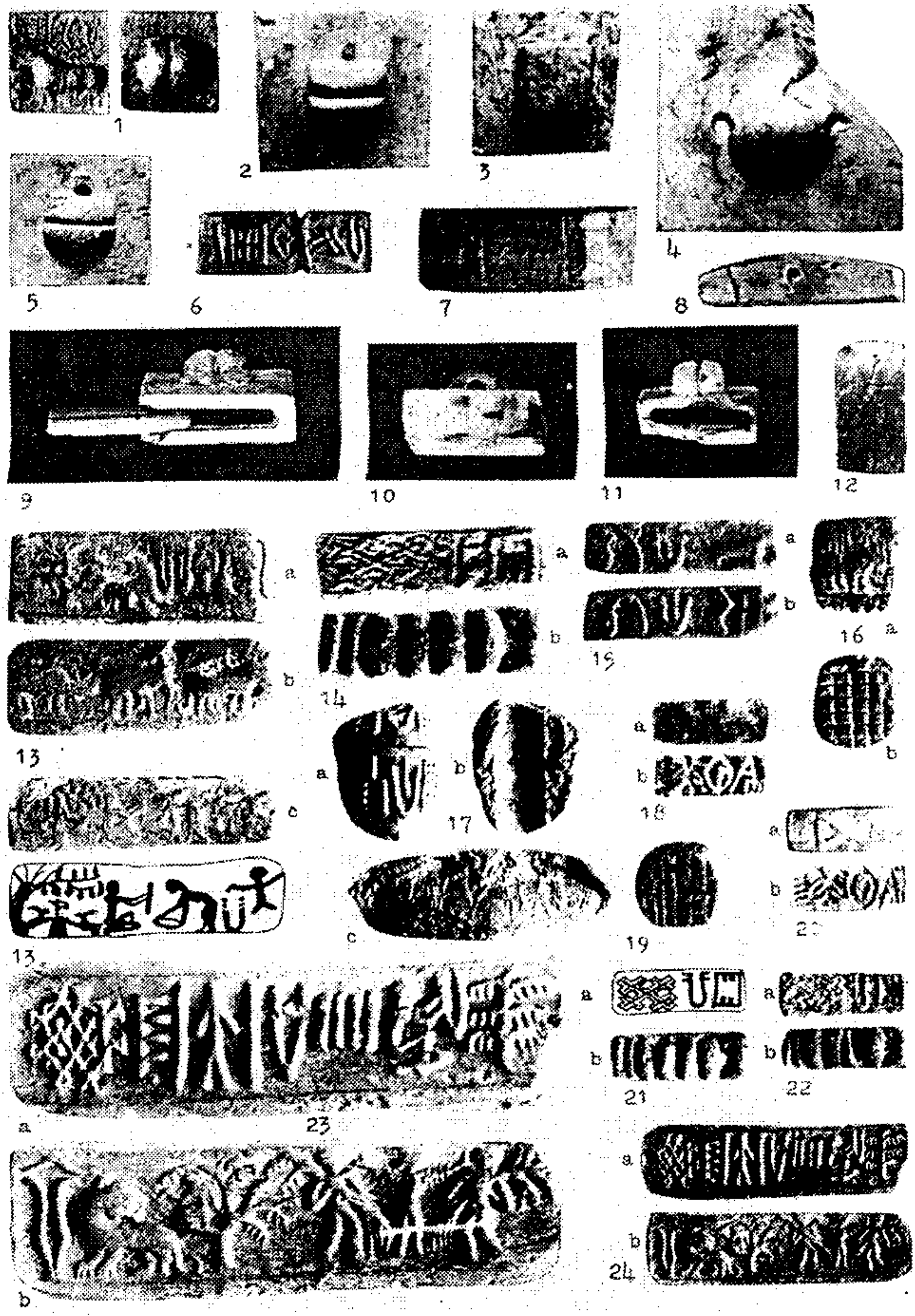

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

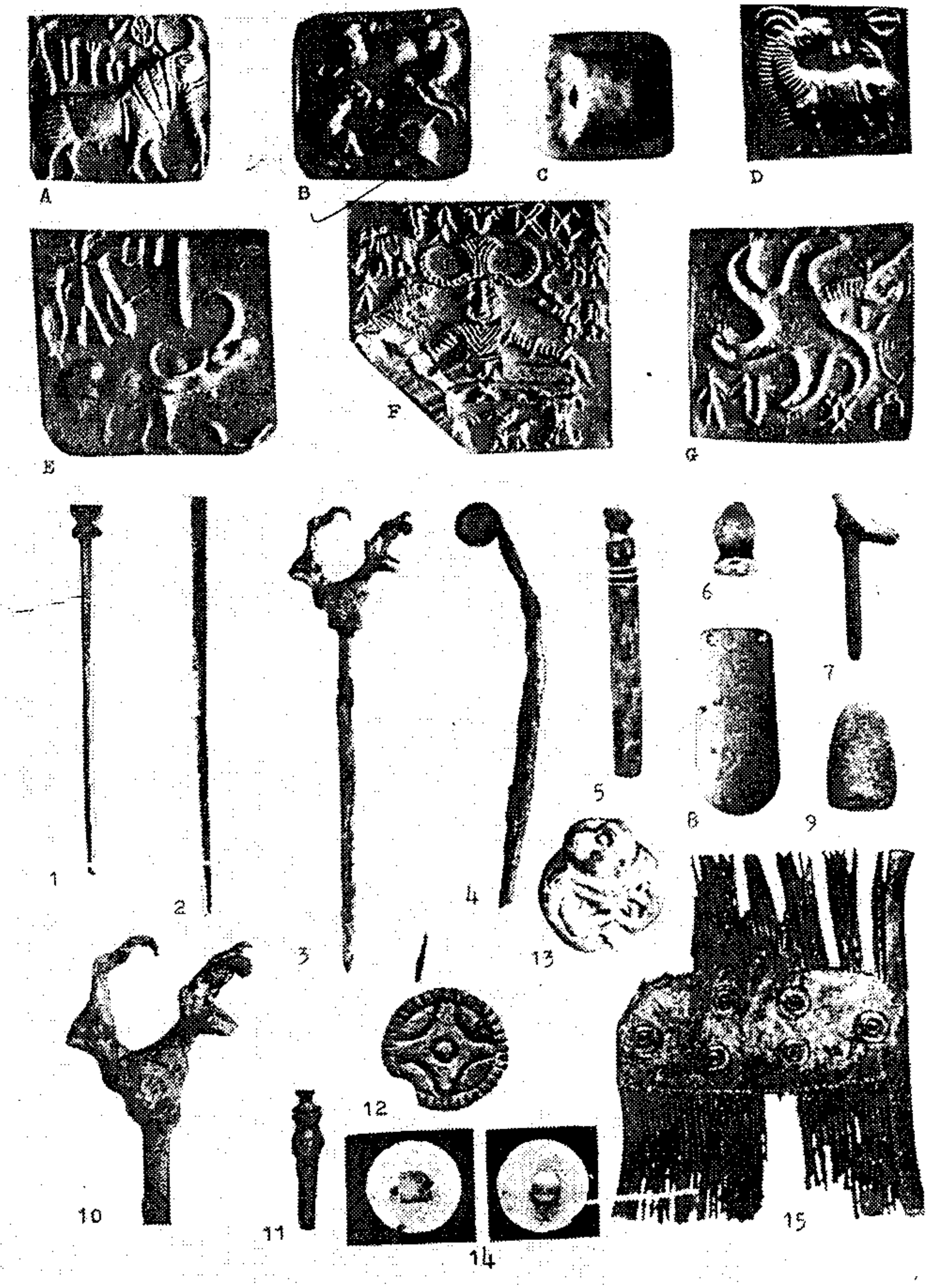

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

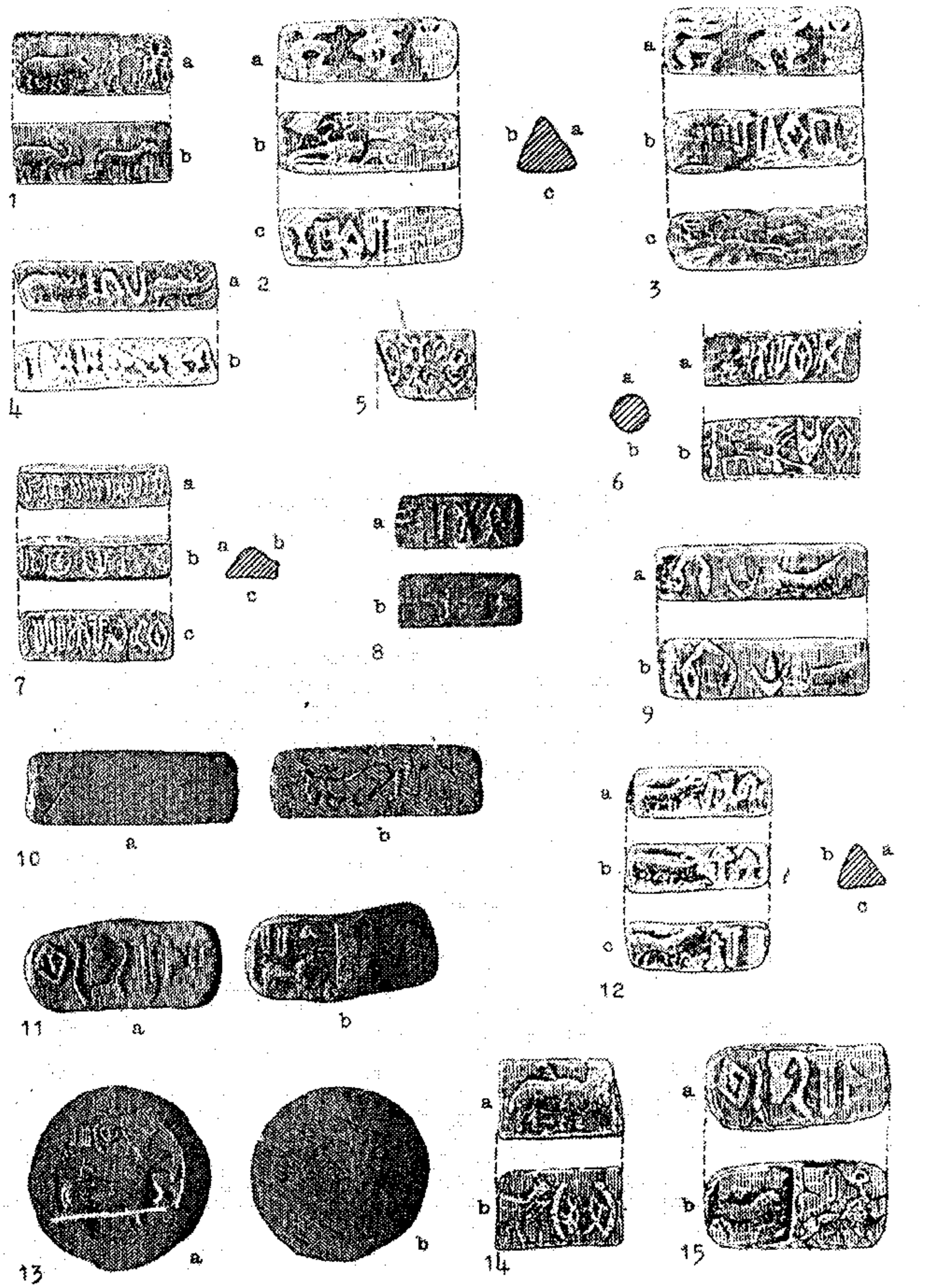

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

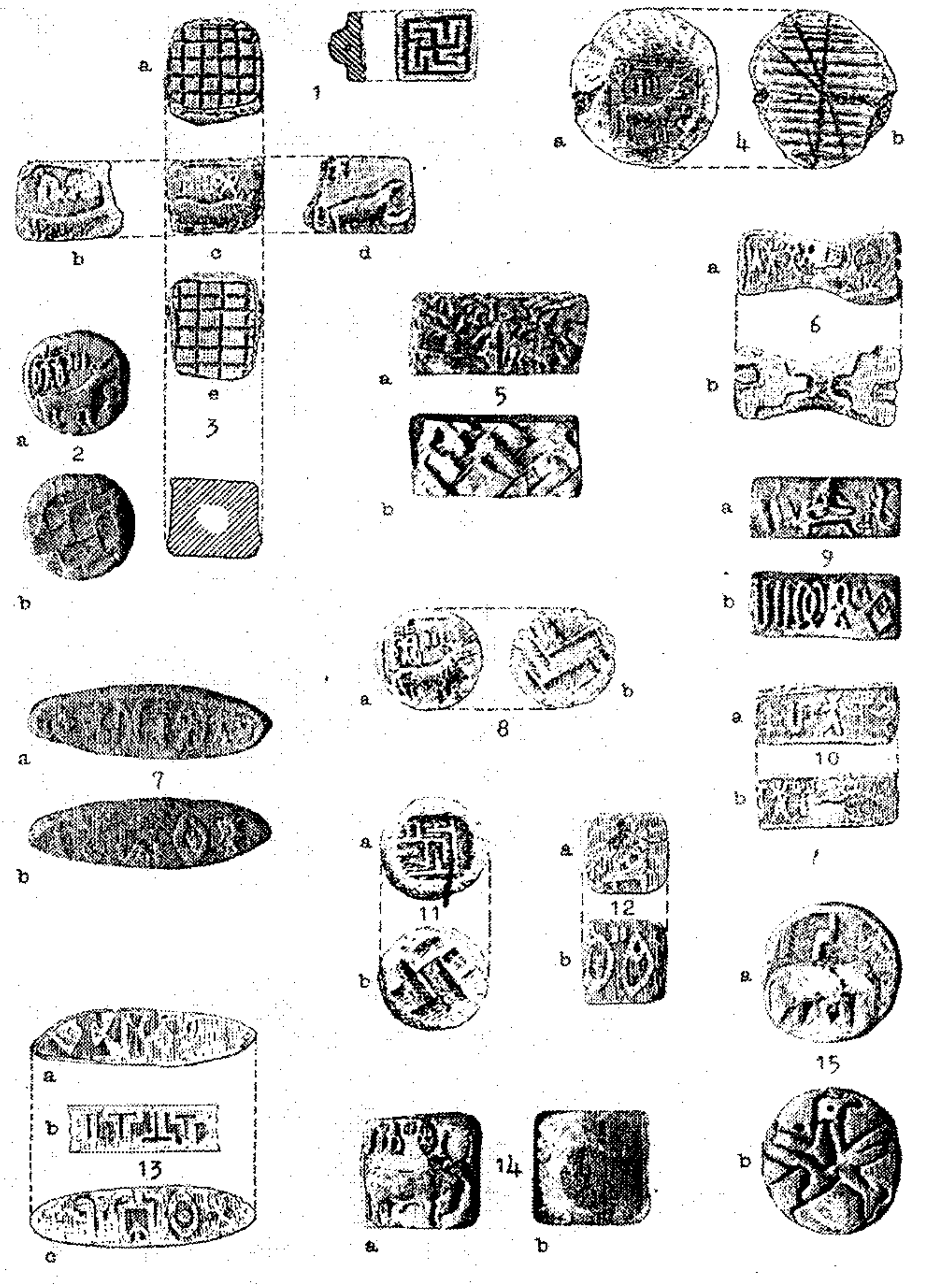

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1a

1b

2a

2b

3a

3b

4a

4b

5

a
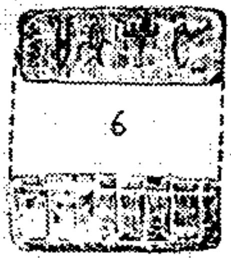
6
b

a

b
Section

7

8

9

10

a
b
c

11

b

a
c
Section

a
b
c

12

b

a
c
Section

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री मैके के सील केटेलॉग के पुरालिपि अभिलेख

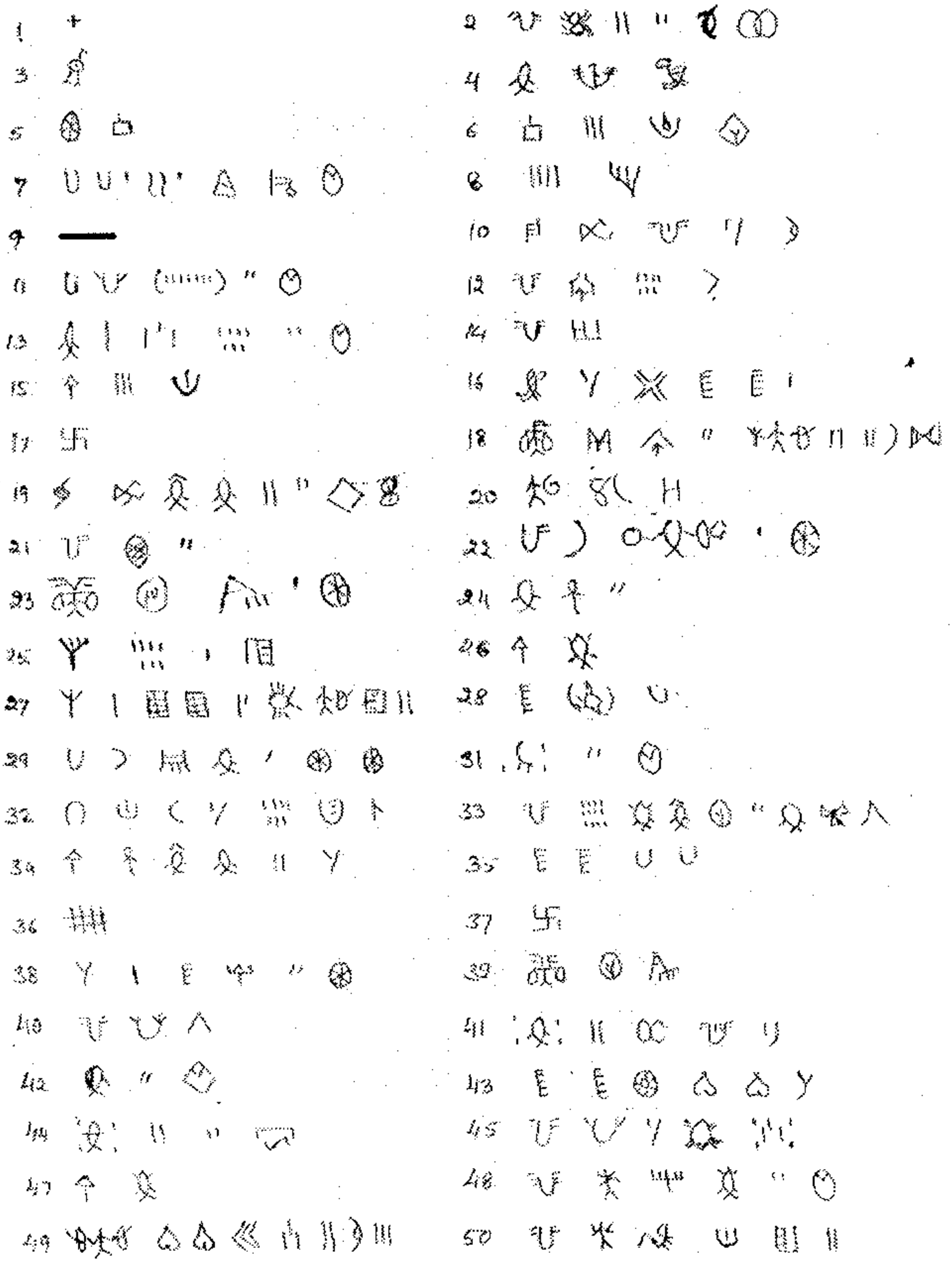

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

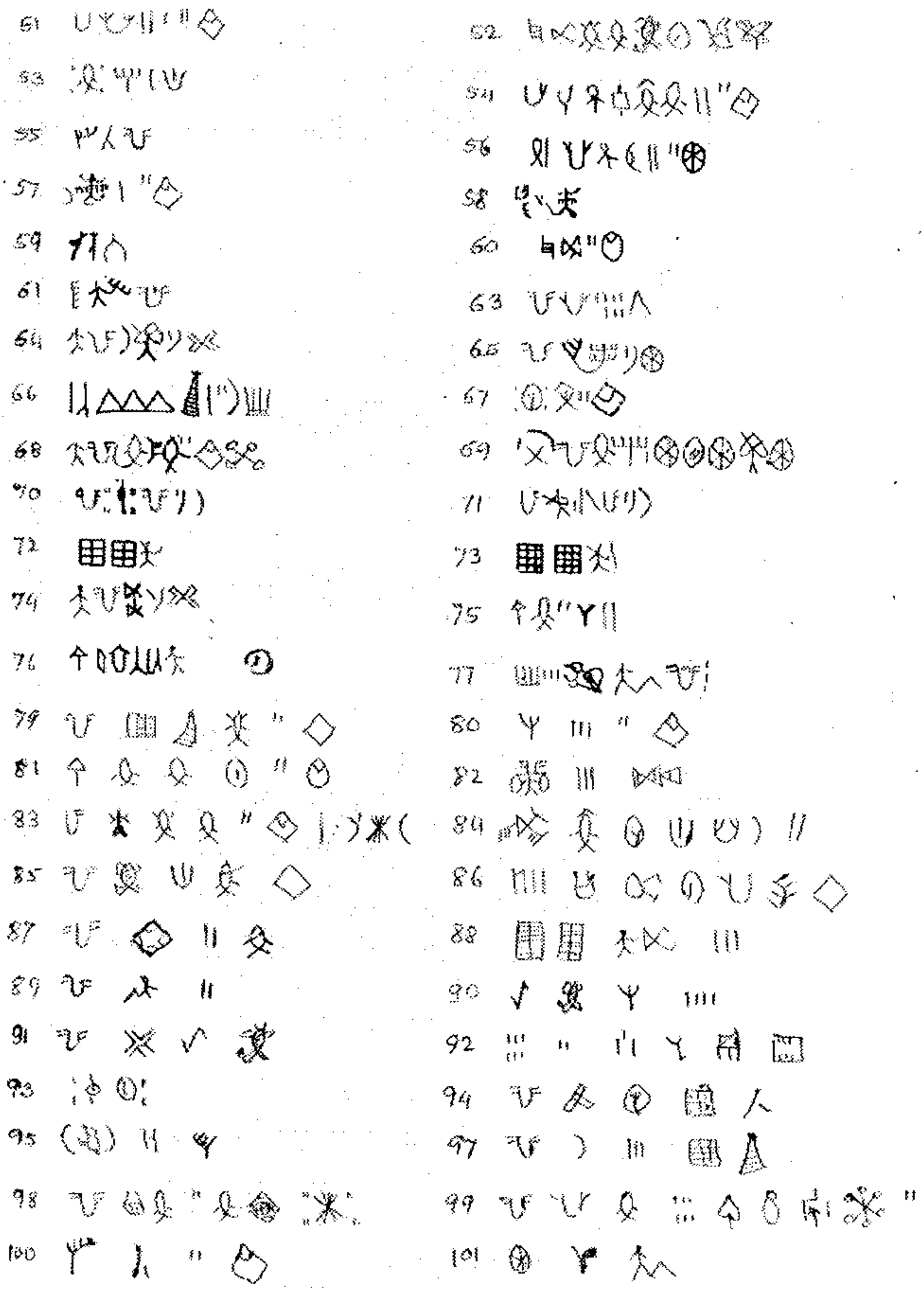

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

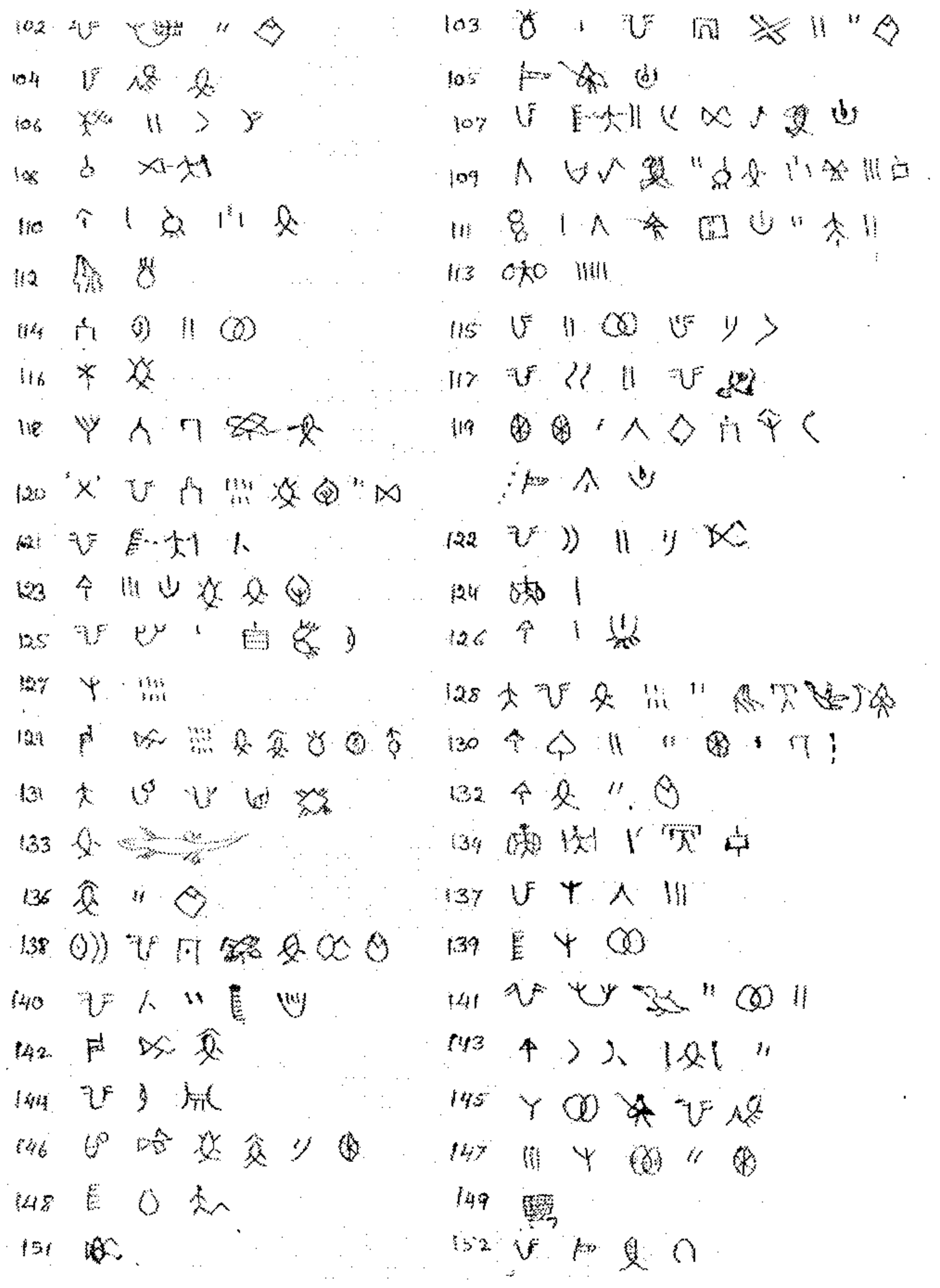

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

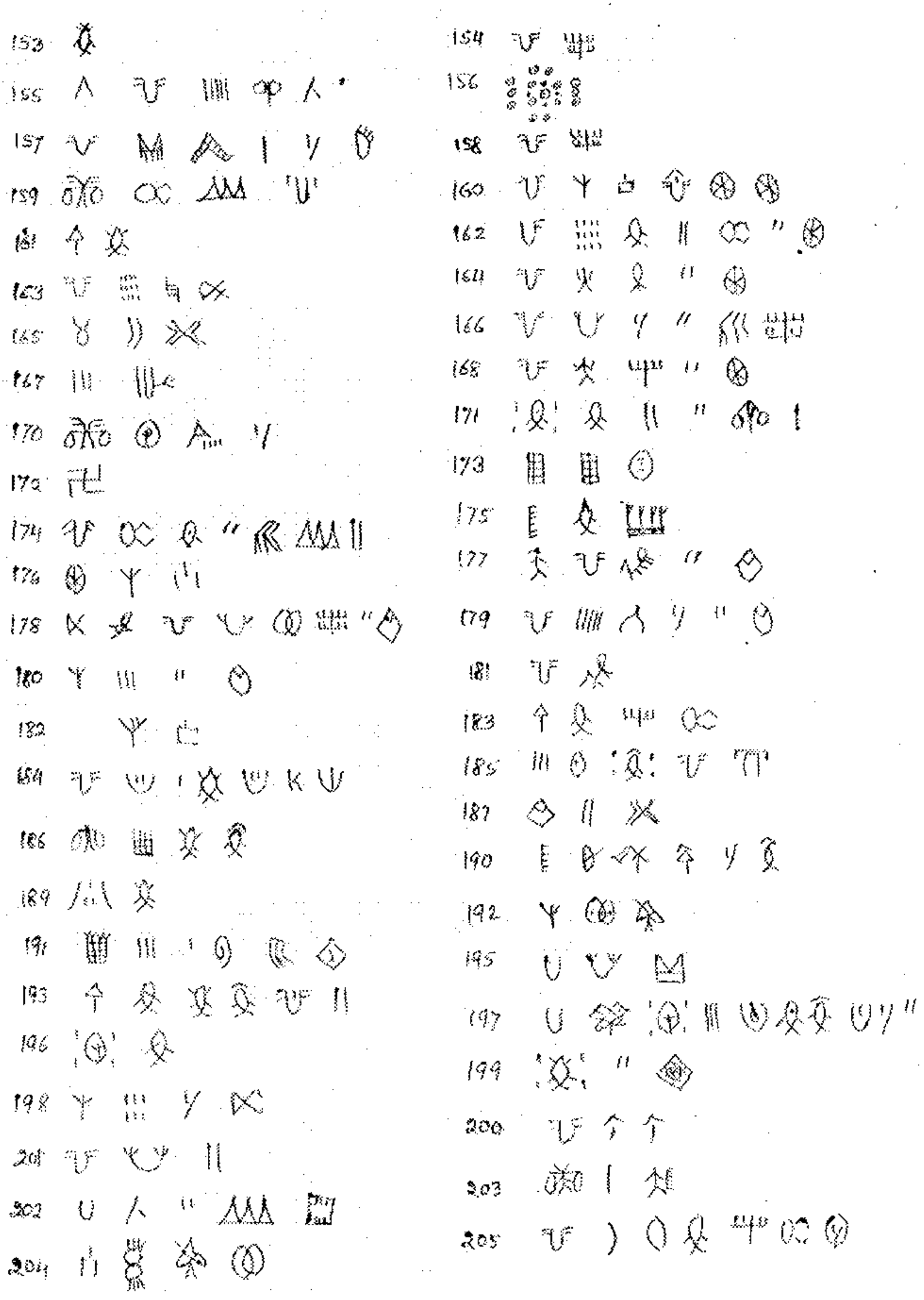

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

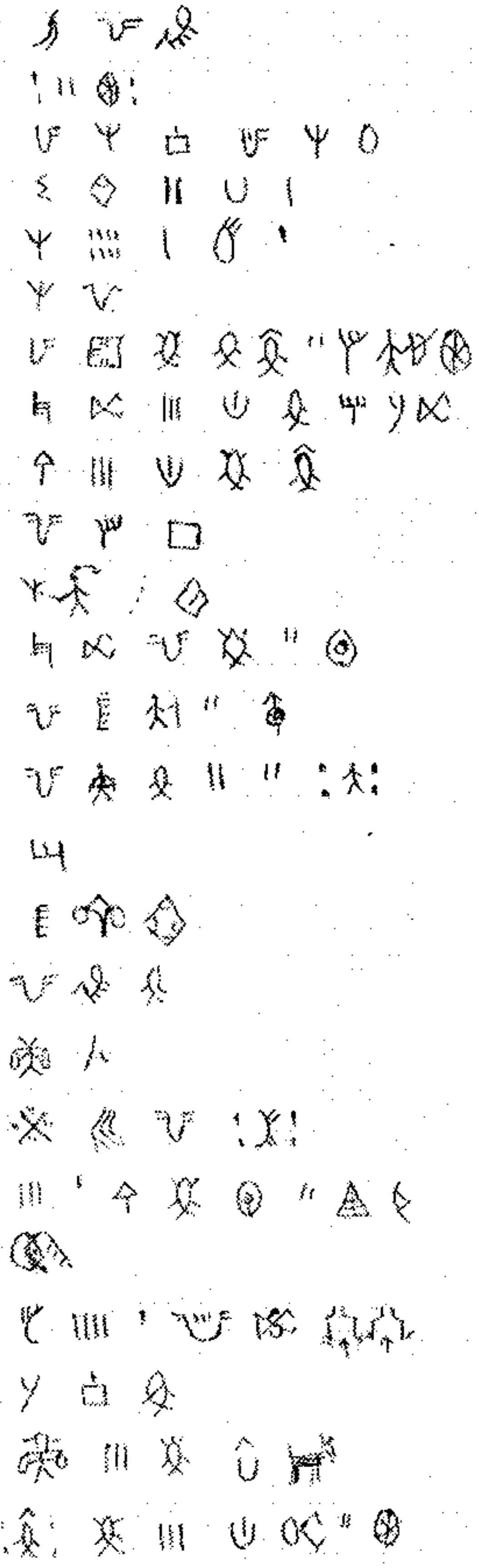

259
261
262
265
267
269
271
273
275
277
279
281
283
285
287
287
291
293
295
297
299
301
303
305
307

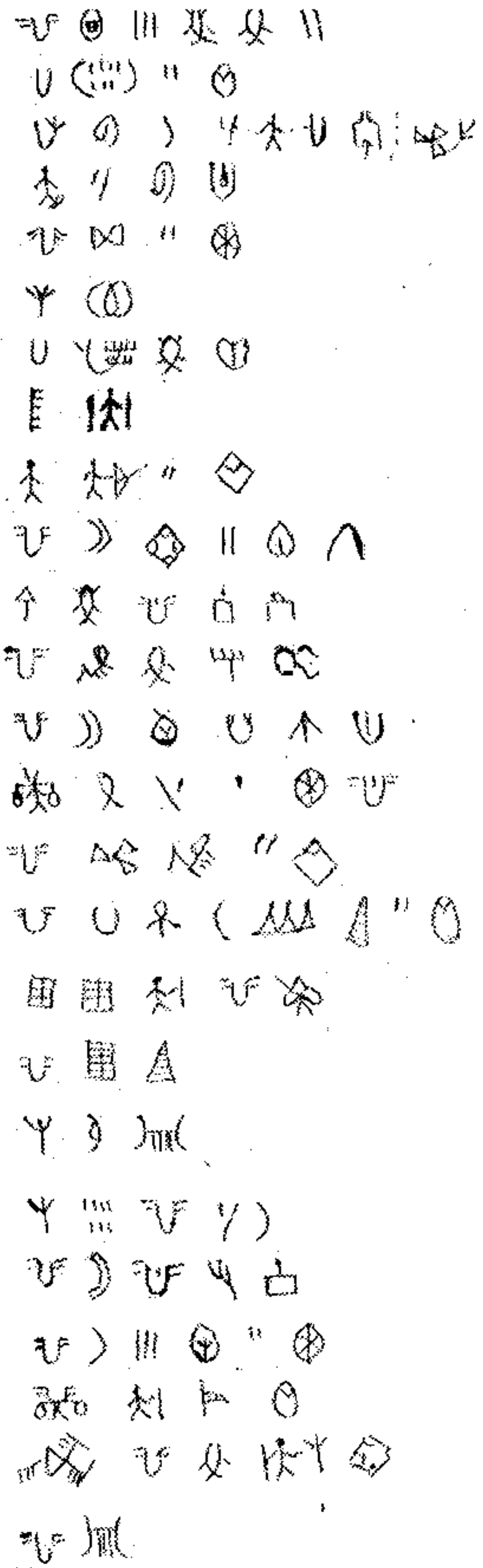

260
262
264
266
268
270
272
274
276
278
280
282
284
286
288
290
292
294
296
298
300
302
304
306
308

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

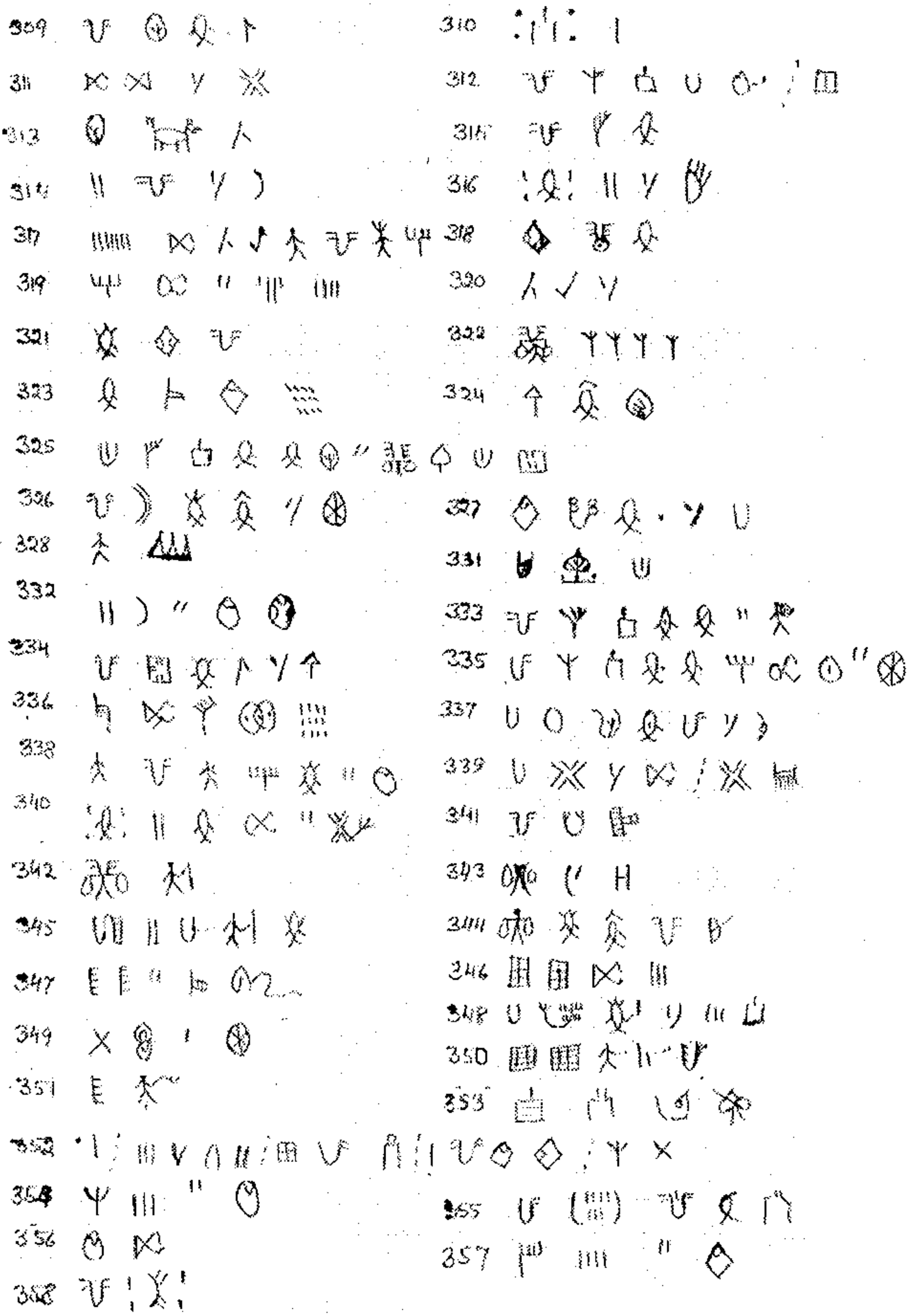

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

359

360

361

362

363

364

365

366

367

368

369

370

371

372

373

374

375

376 Nature and animal

377

378

379

380

381

382

383

384

385

387

388

389

390

391

392

393

394

395

396

397

398

399

400

401

402

403

404

405

406

407

408

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

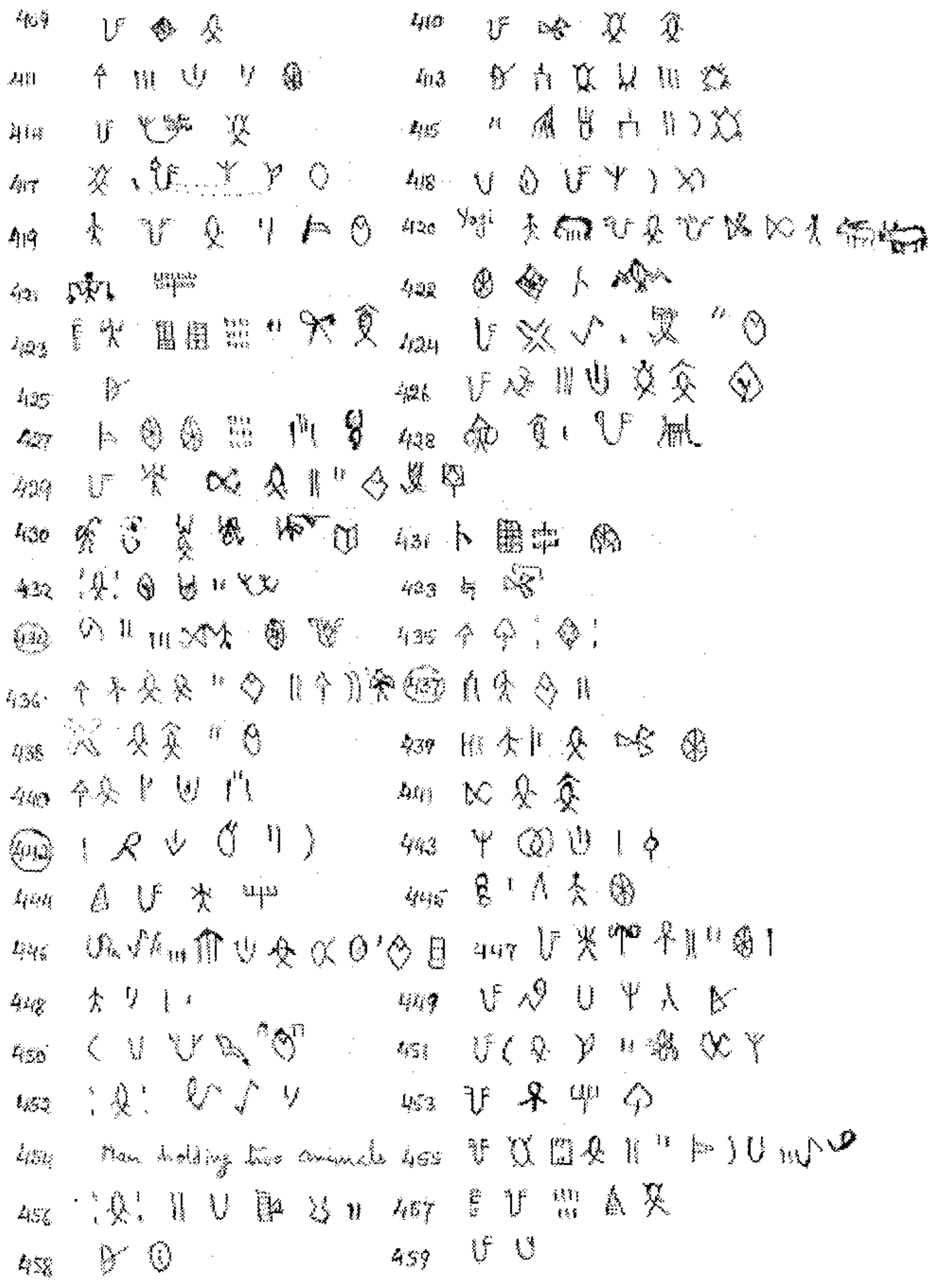

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

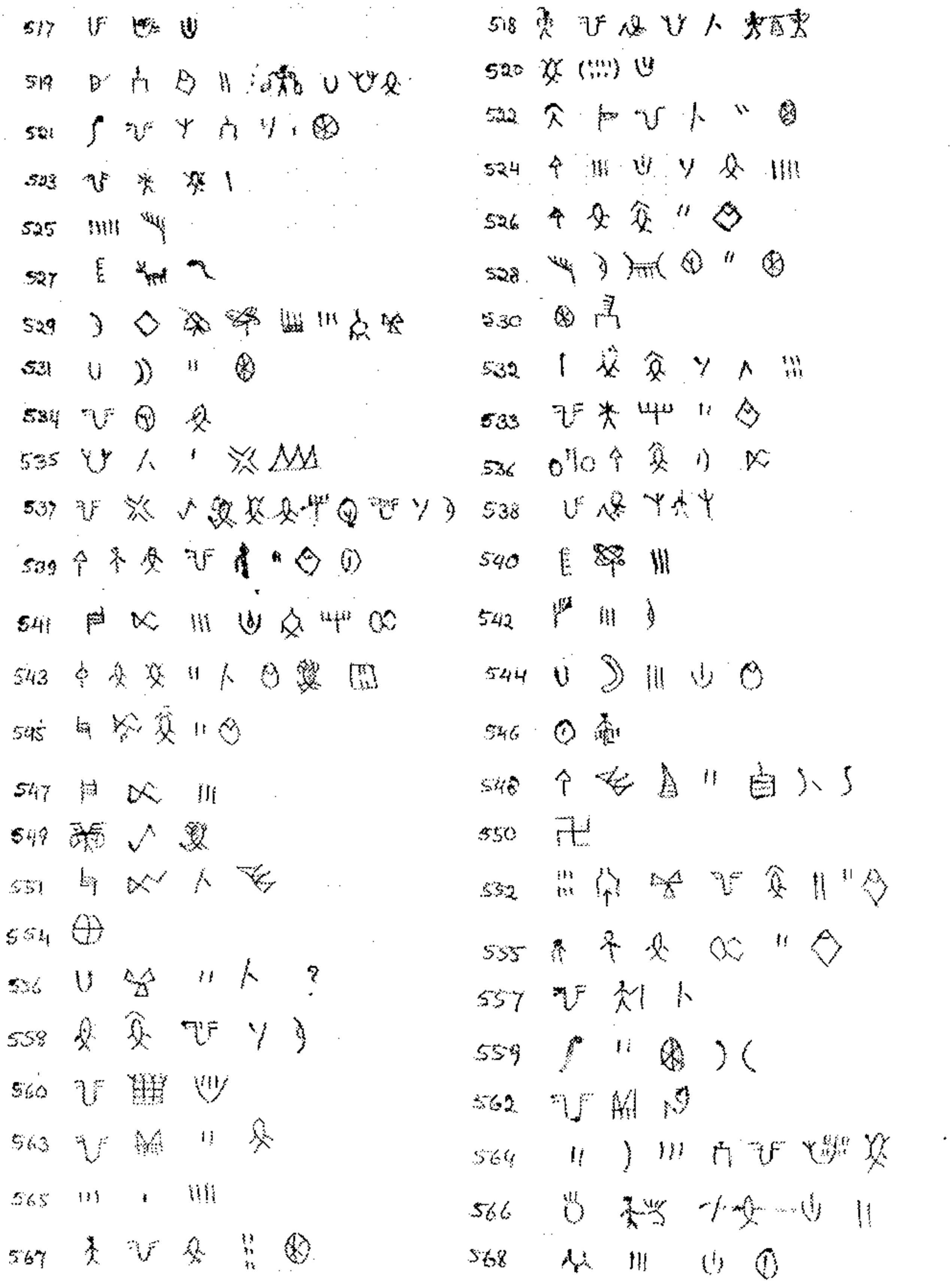

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

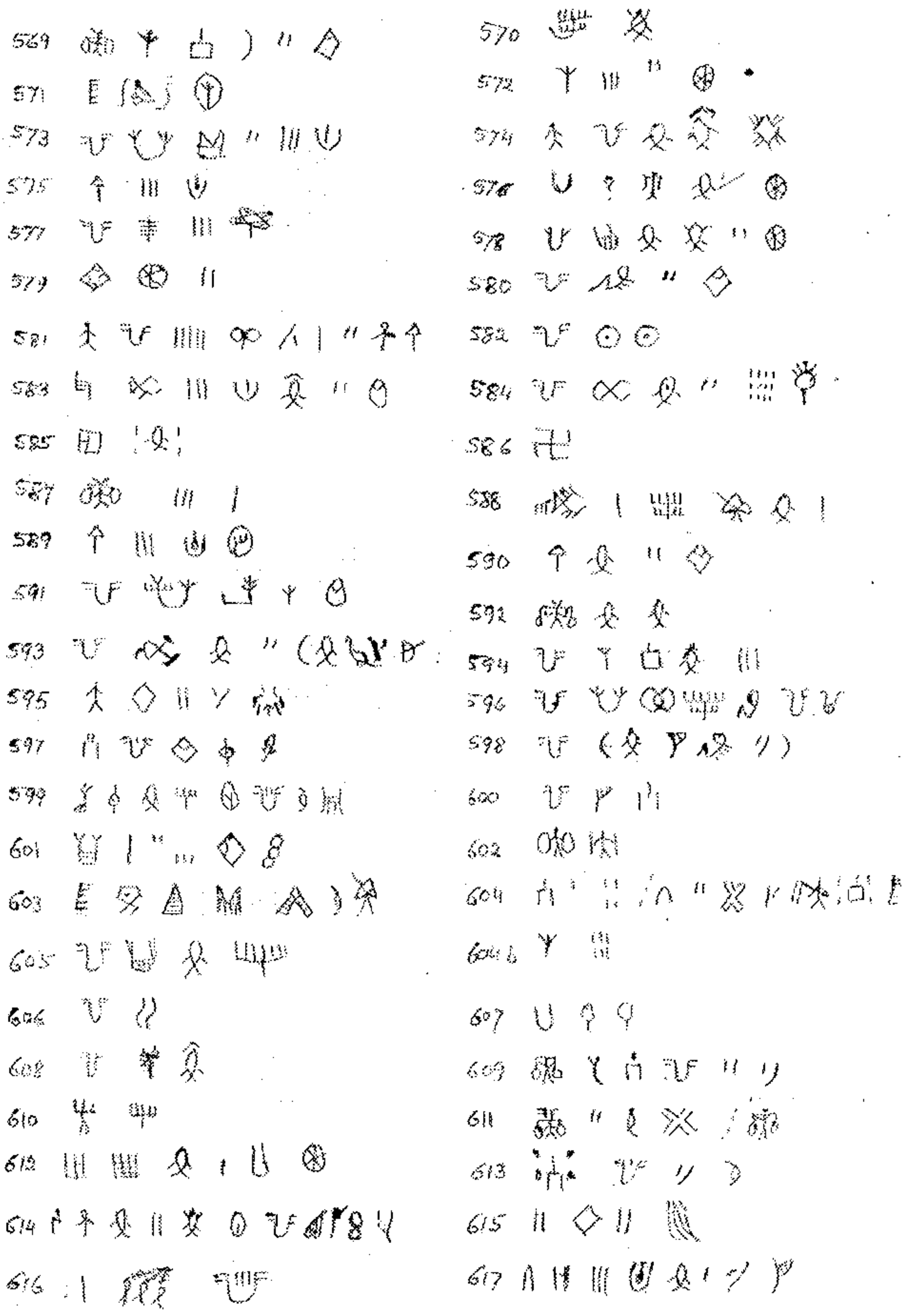

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

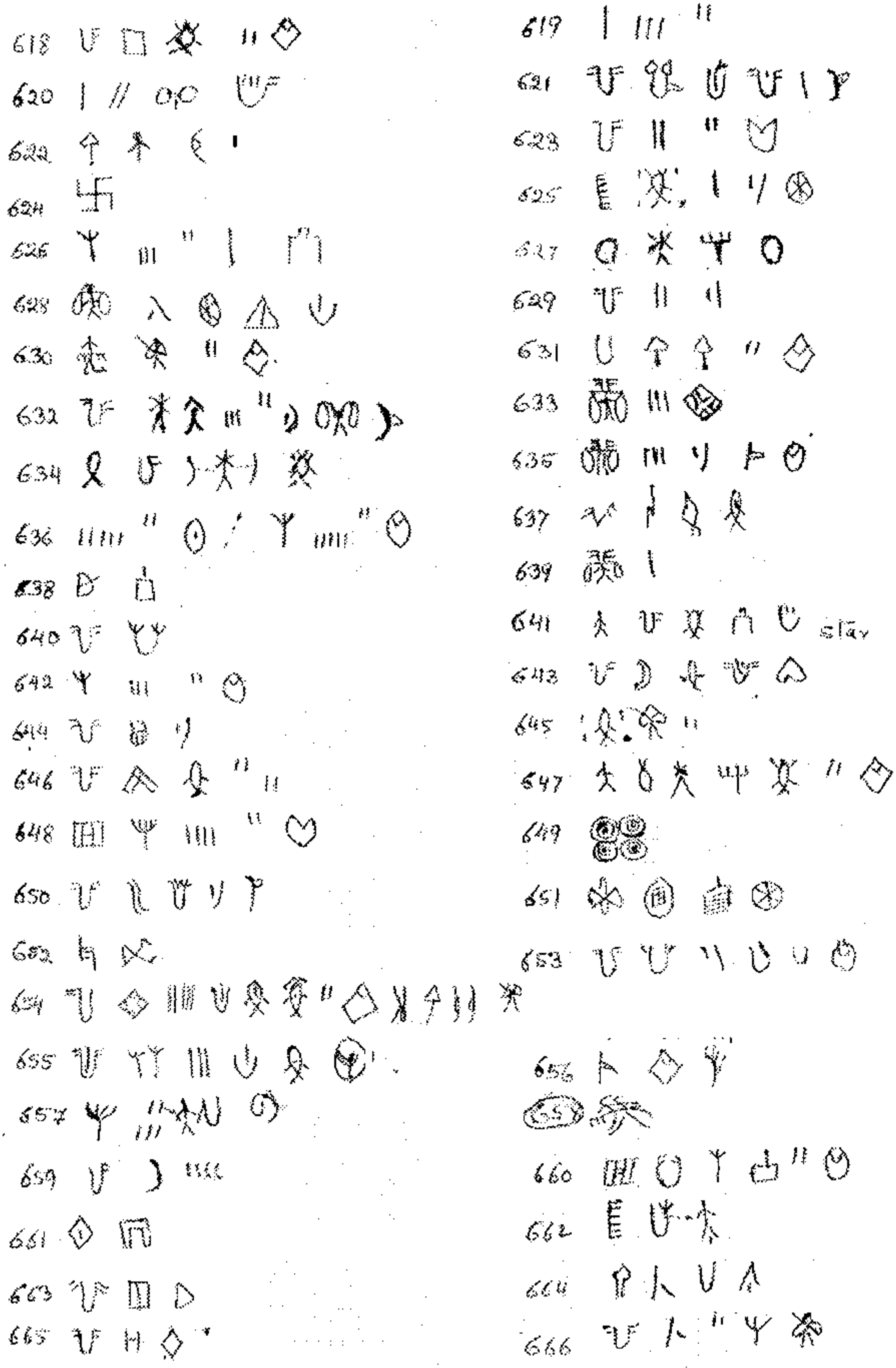

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

667

668

669

670 भैंसा तीर्थंकर वासुपूज्य का लांछन

671

672

673

674

675

676

677

678

679

680

681

682

683

684

685

686

A आदि तीर्थंकर का पूजन करते हुए भरत चक्रवर्ती

B तीन सिरों वाला पशुरूपी यक्ष

C

687

688

689

690

691

692

693

694

695

696

697

698

699

700

701

702

703 5 photos

704

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

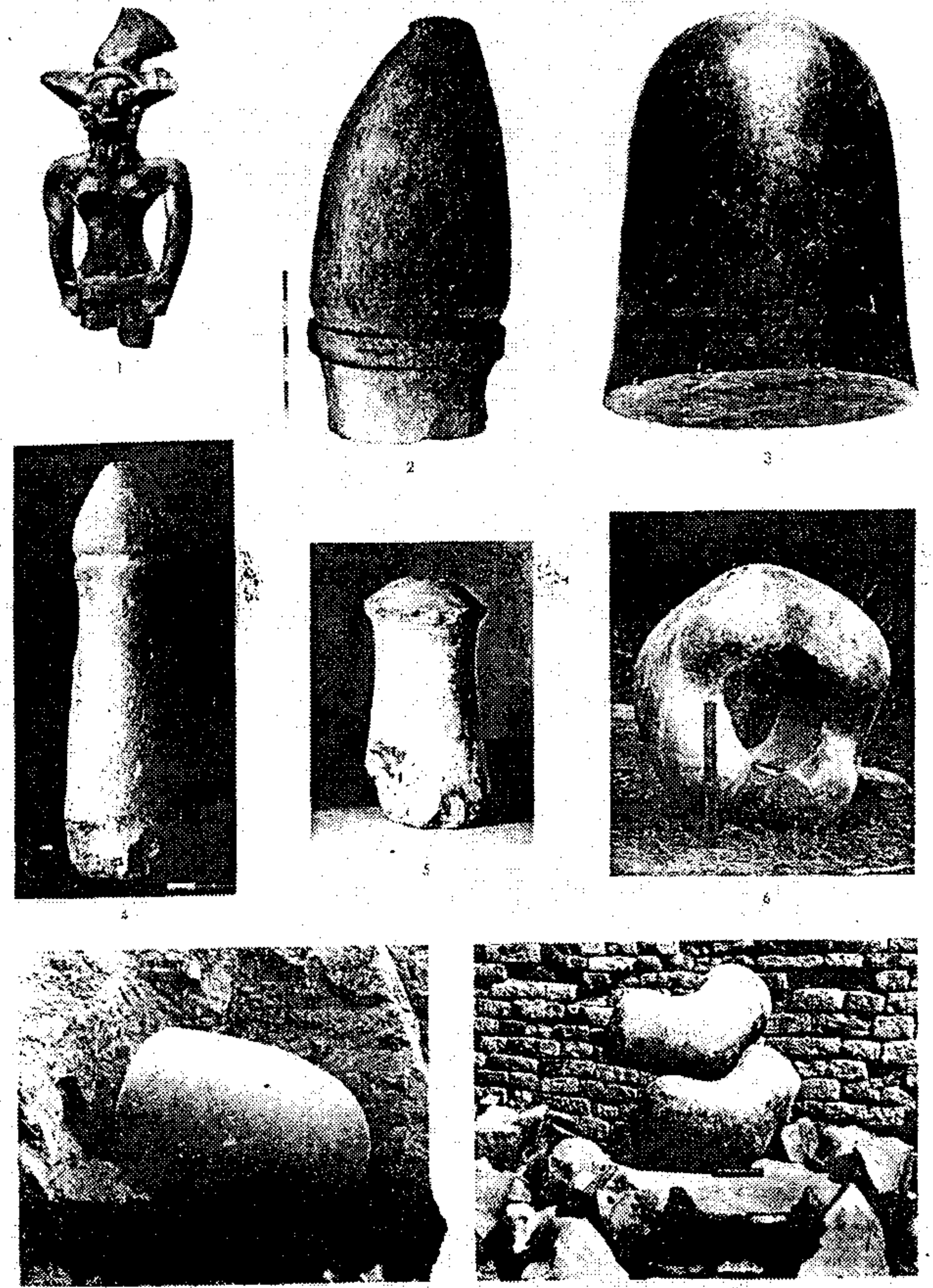

Lingas, Baetyls, Ringstones etc. illustrative of the Indus Religion.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

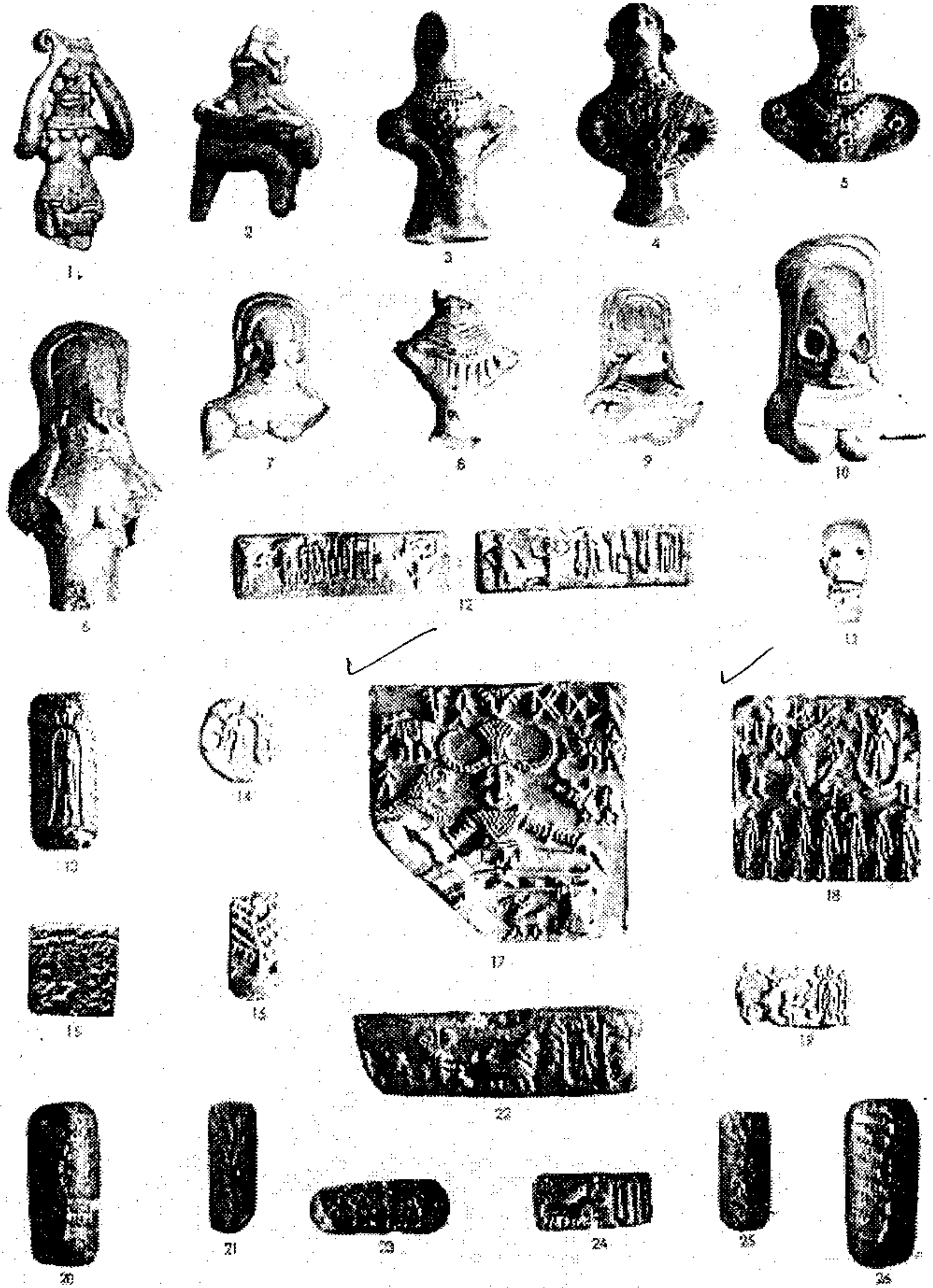

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मार्शल की सीलें

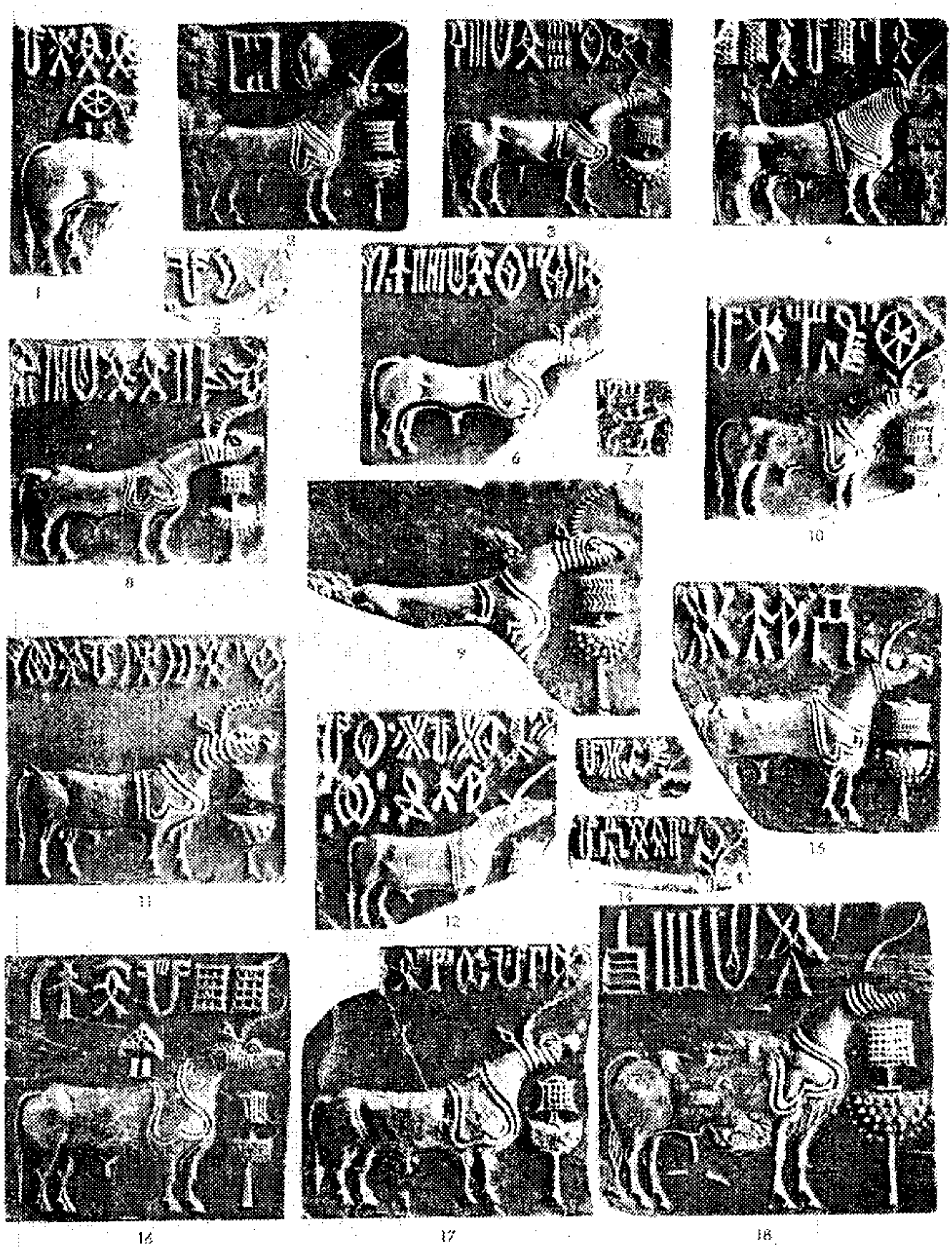

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

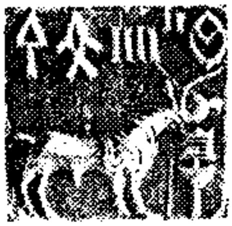
19

20

21

22

23

24

25

26

30

27

28

29

31

32

33

34

35

36

37

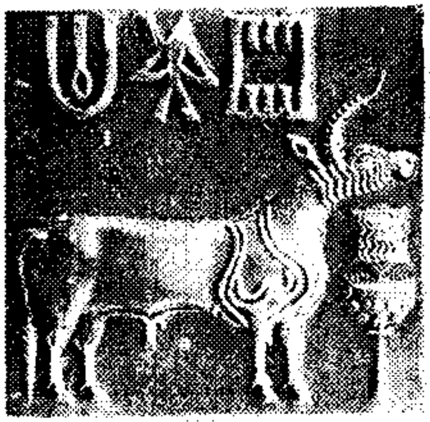
38

39

40

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

41

42

43

44

45

46

47.

48

49

50

51

52

53

54

55

56

57

58

59

60

61

62

63

64

65

66

67

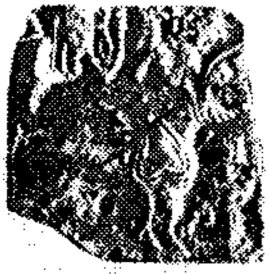
68

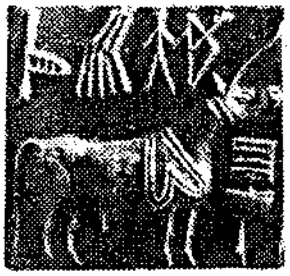
69

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

70

71

72

73

74

75

76

77

78

79

80

81

82

83

84

85

86

87

88

89

90

91

92

93

94

95

96

97

98

99

100

101

102

103

104

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

105

106

107

108

109

110

111

112

113

114

115

116

117

118

119

120

121

122

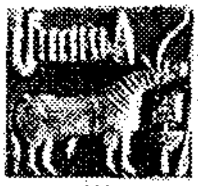
123

124

125

126

127

128

129

130

131

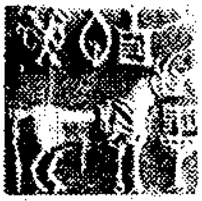
132

133

134

135

136

137

138

139

140

141

142

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

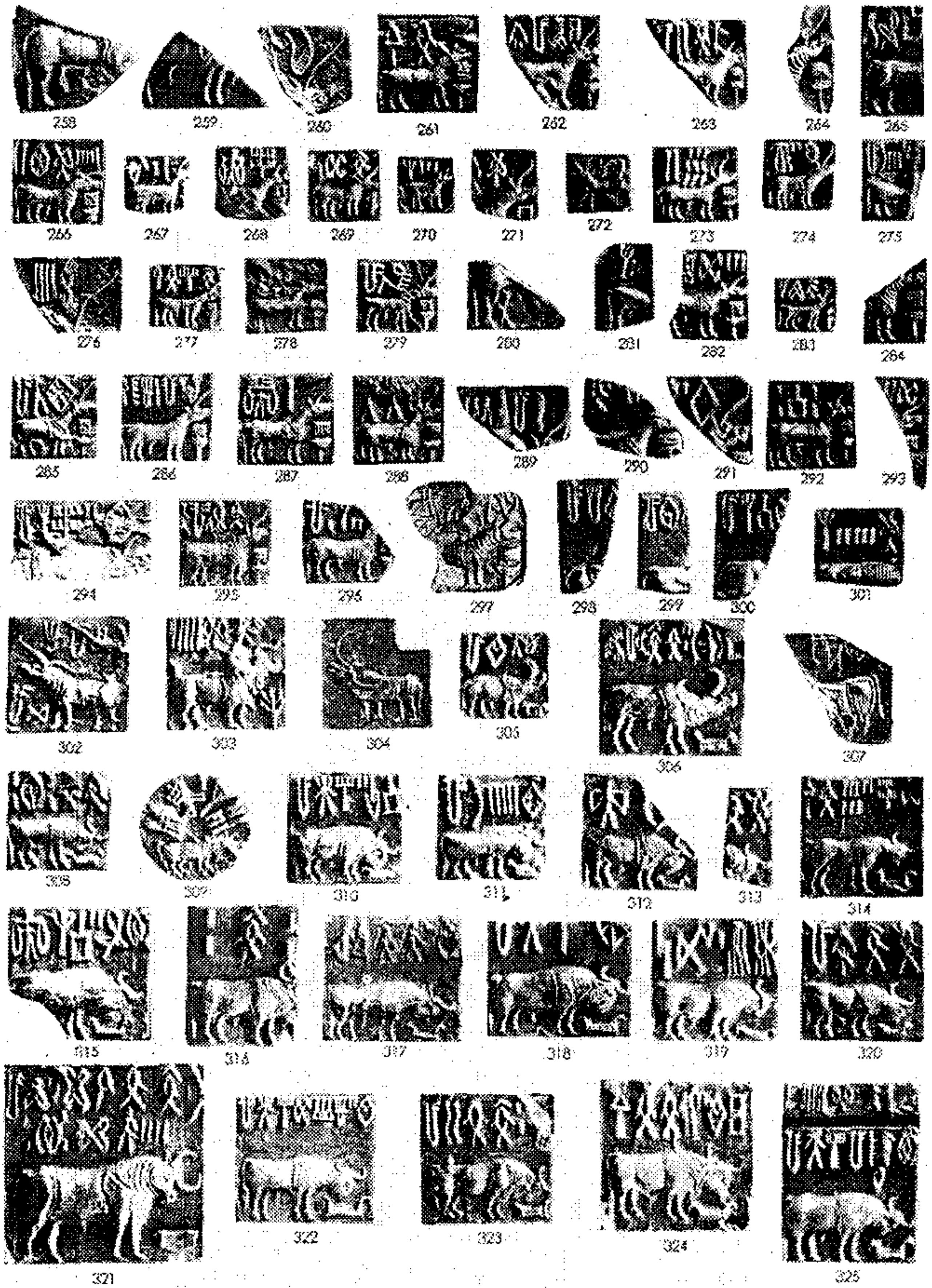

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

326 327 328 329 330 331 332 333 334 335 336 337 338 339 340 341 342 343 344 345 346 347 348 349 350 351 352 353 354 355 356 357 358 359 360 361

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

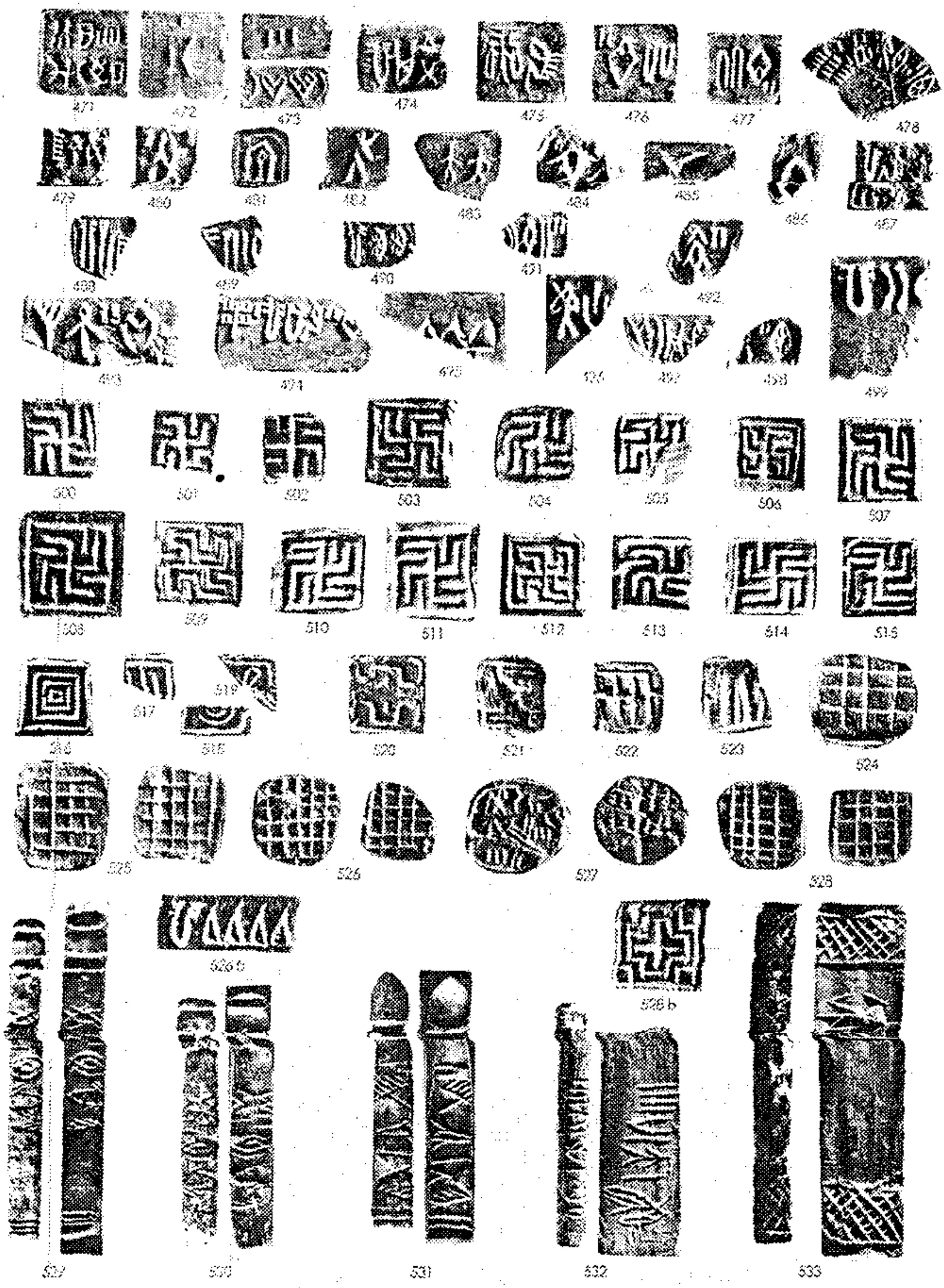

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर जॉन मार्शल की सीलों के पुरा अभिलेख

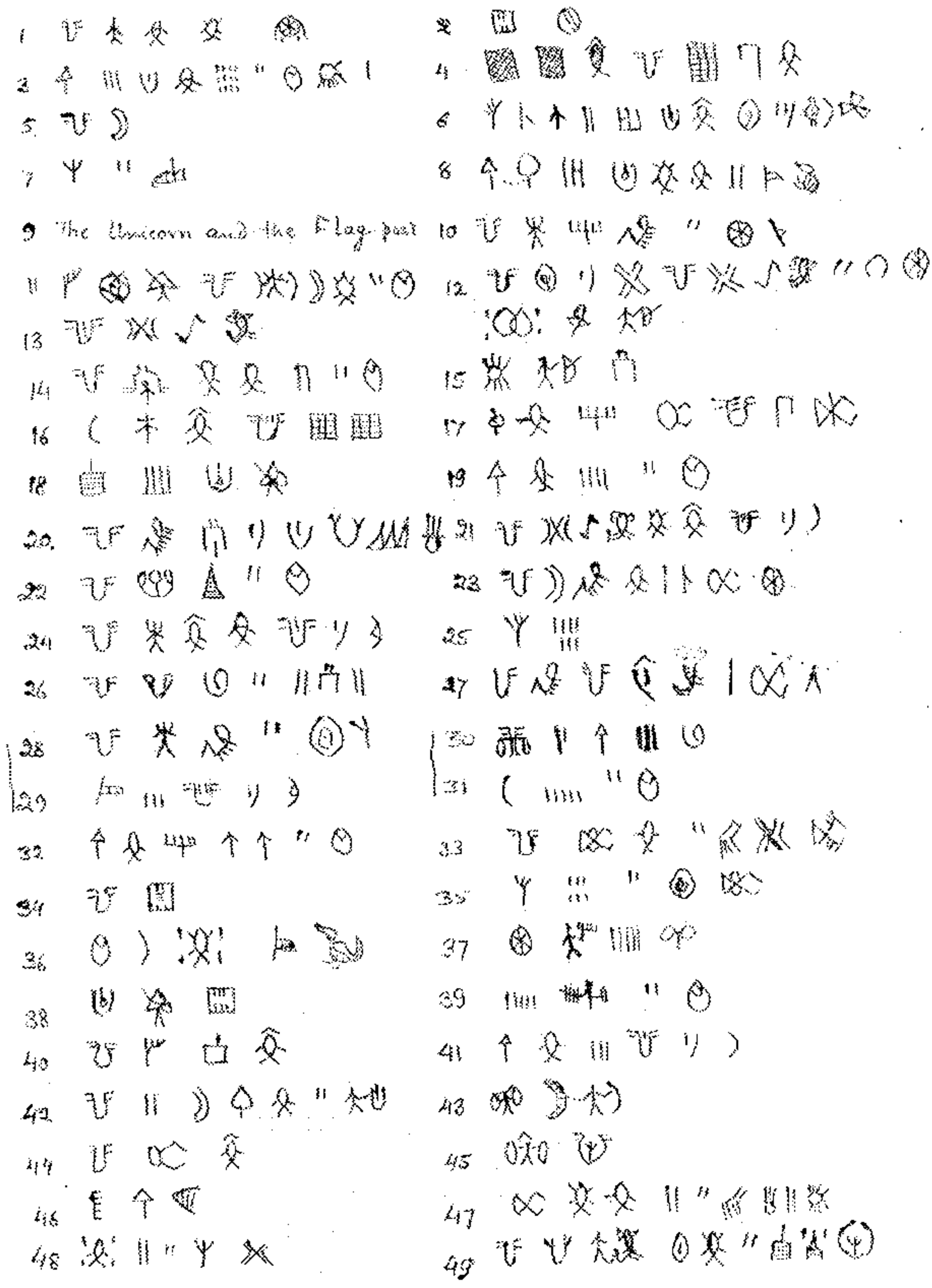

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

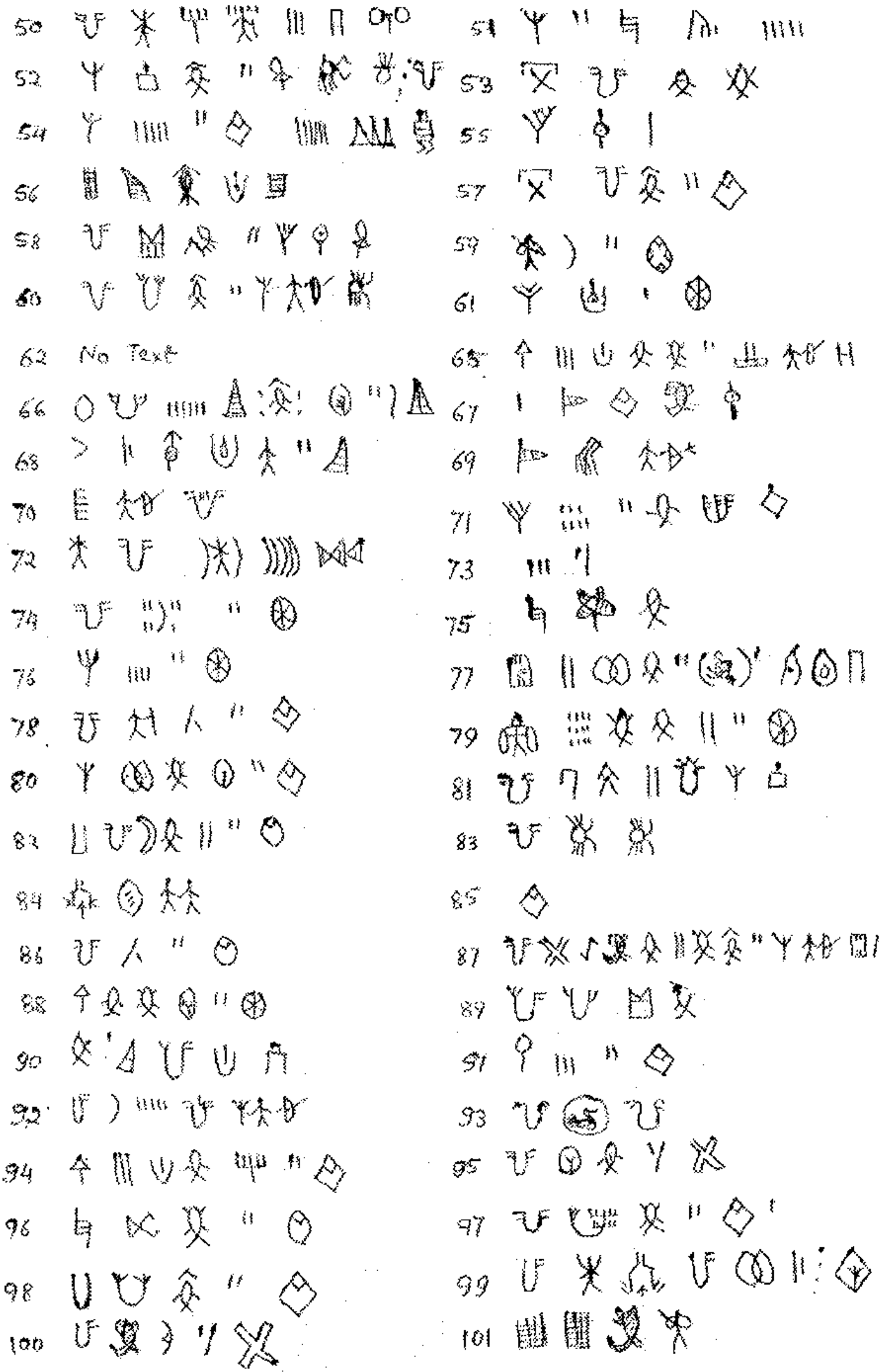

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

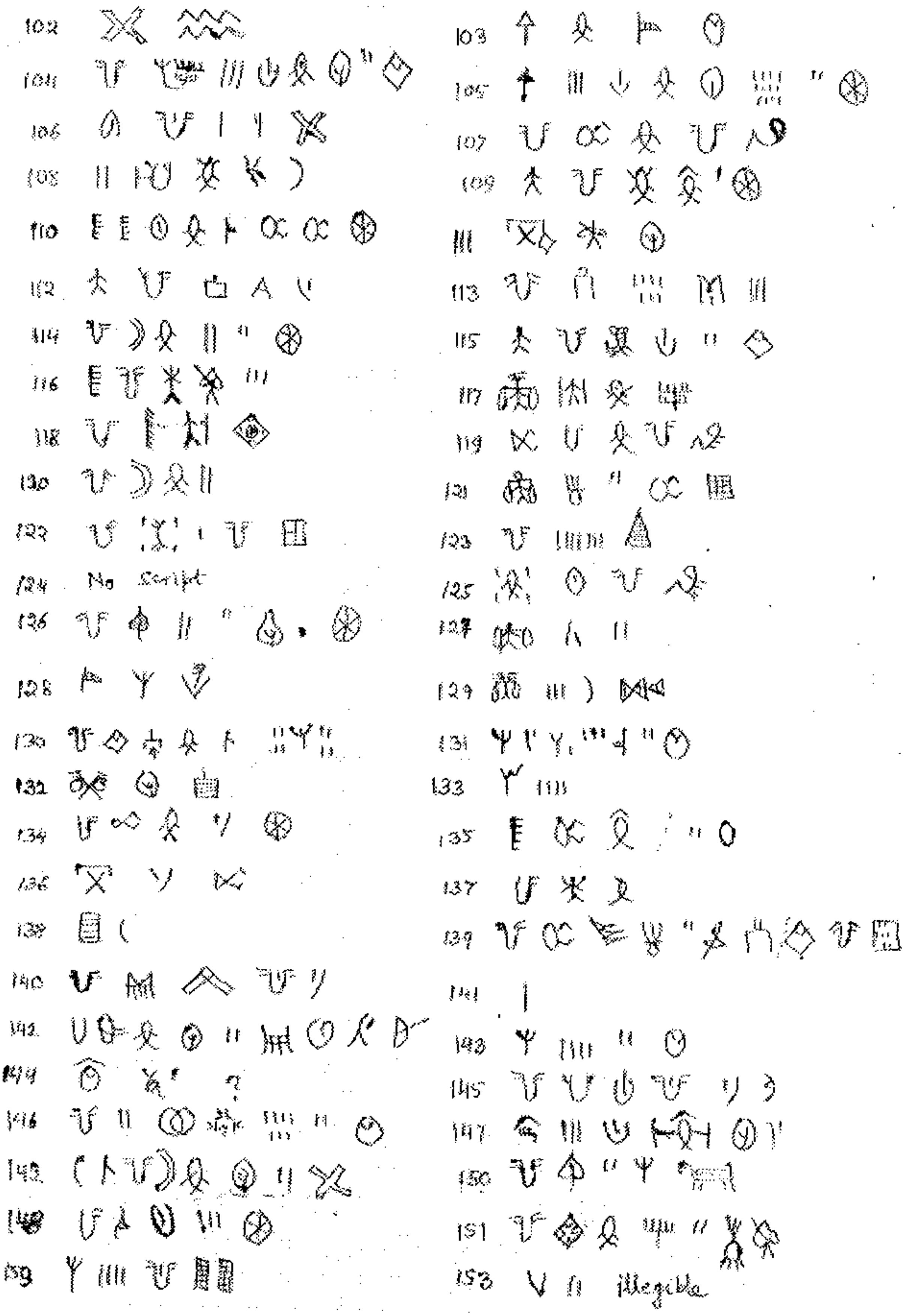

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

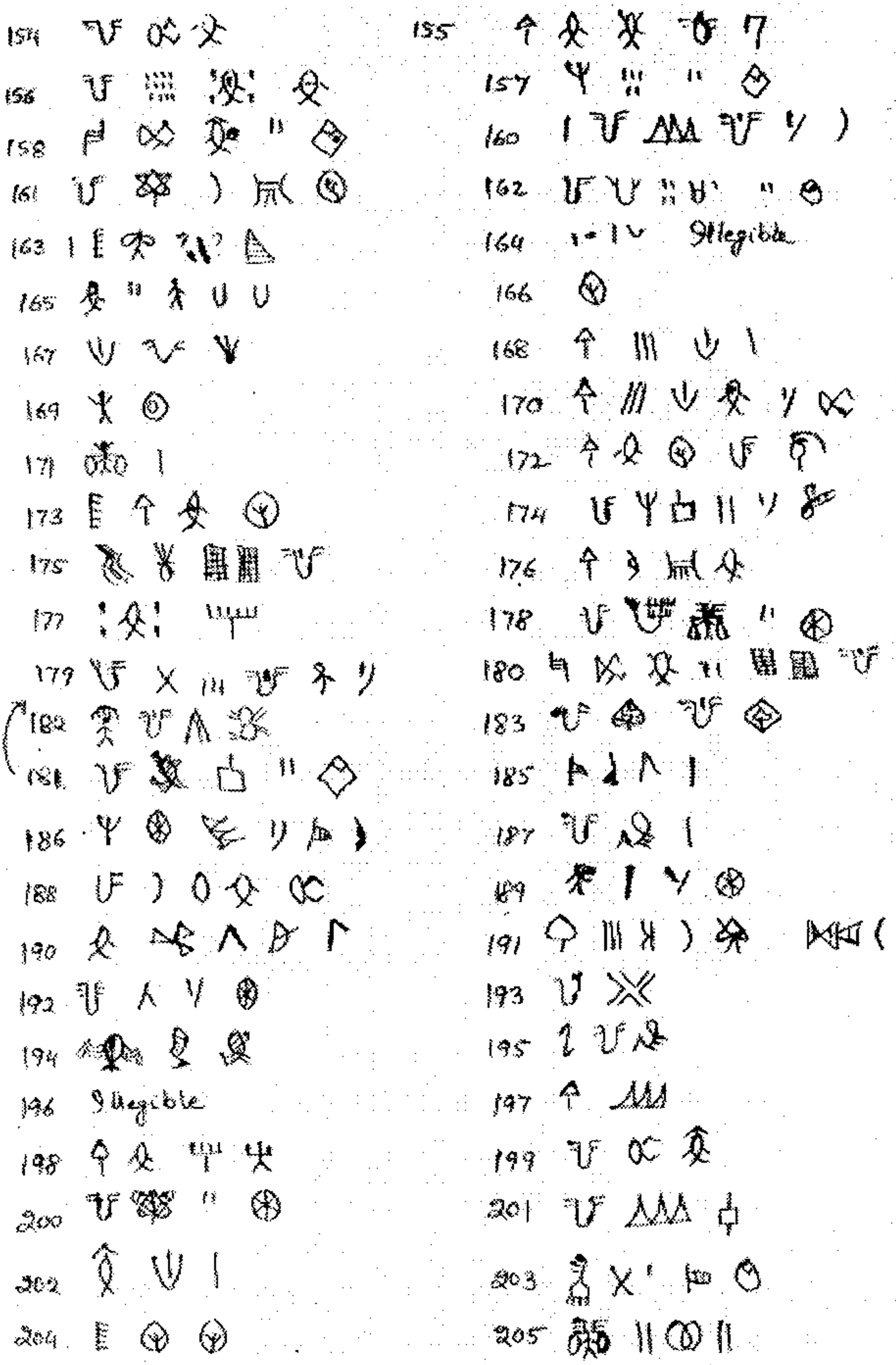

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

206

207

208

209

210 Camel back

211

212

213

214

215

216 No Text

217

218

219

220

221

222

223

224

225

226

227

228

229

230

231

232

234

235

236

237

238

239

240

241

242

243

244

245

246

247

248

249

250 No Text

251

252

253

254

255

256 No Text

257

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

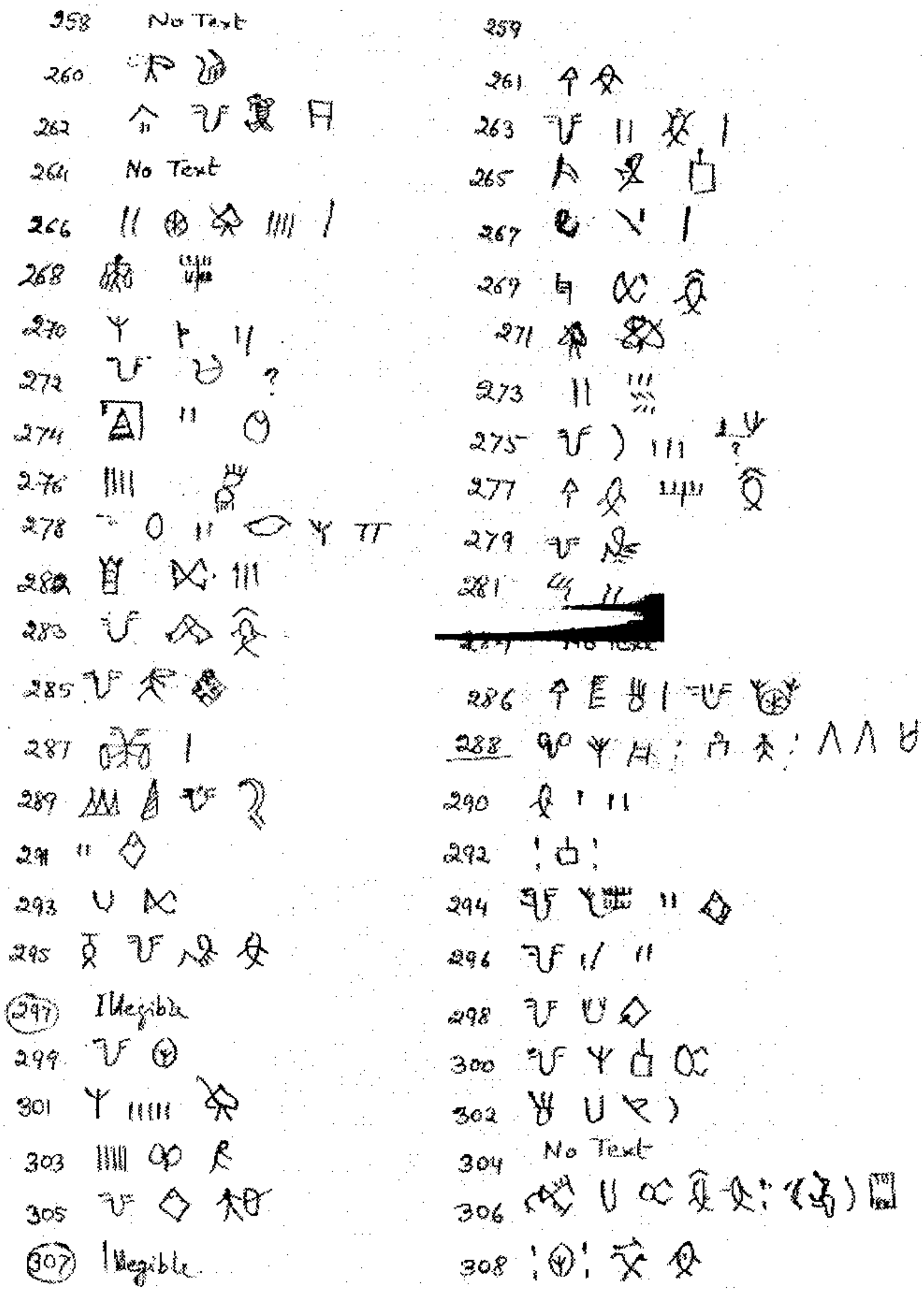

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

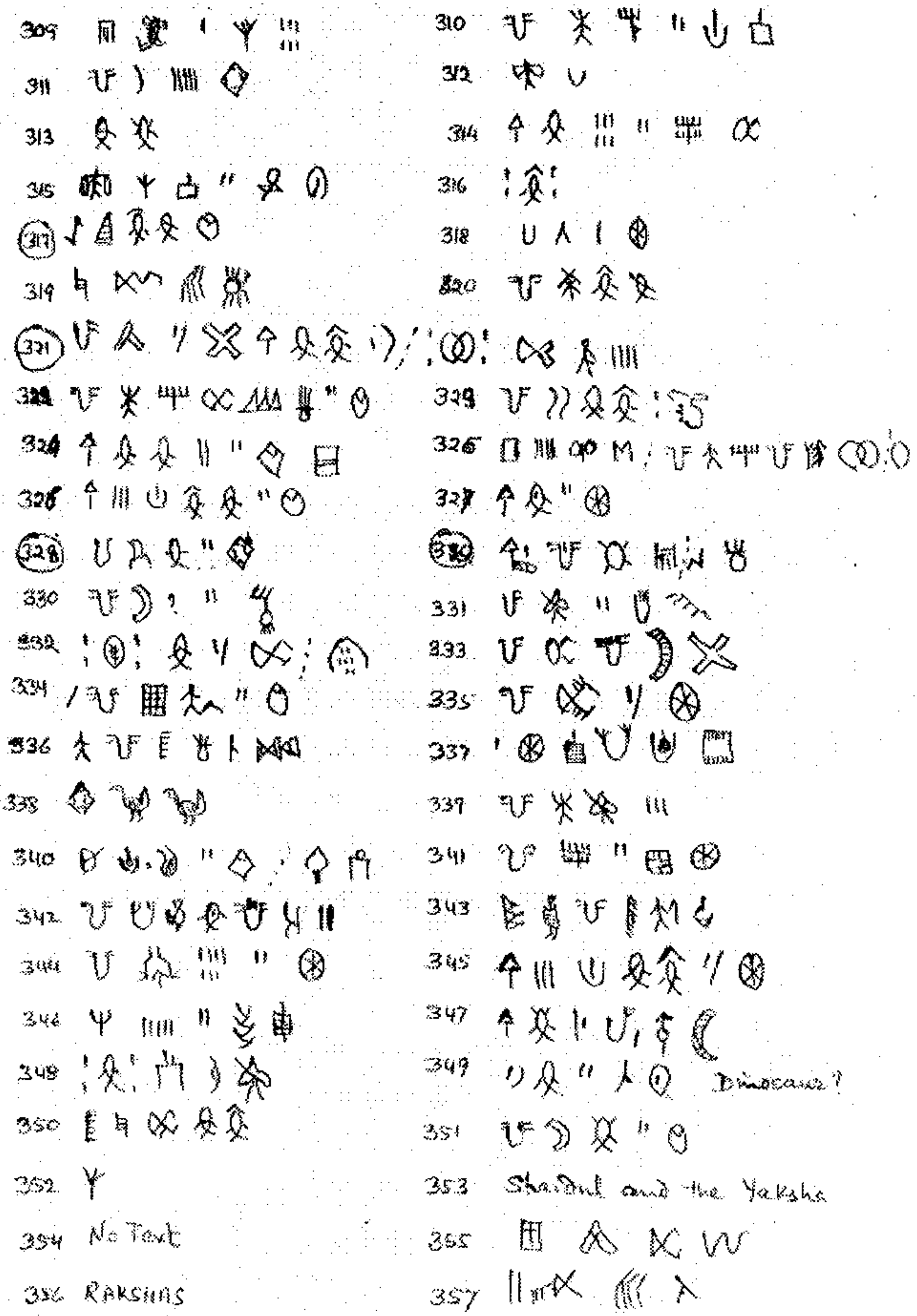

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

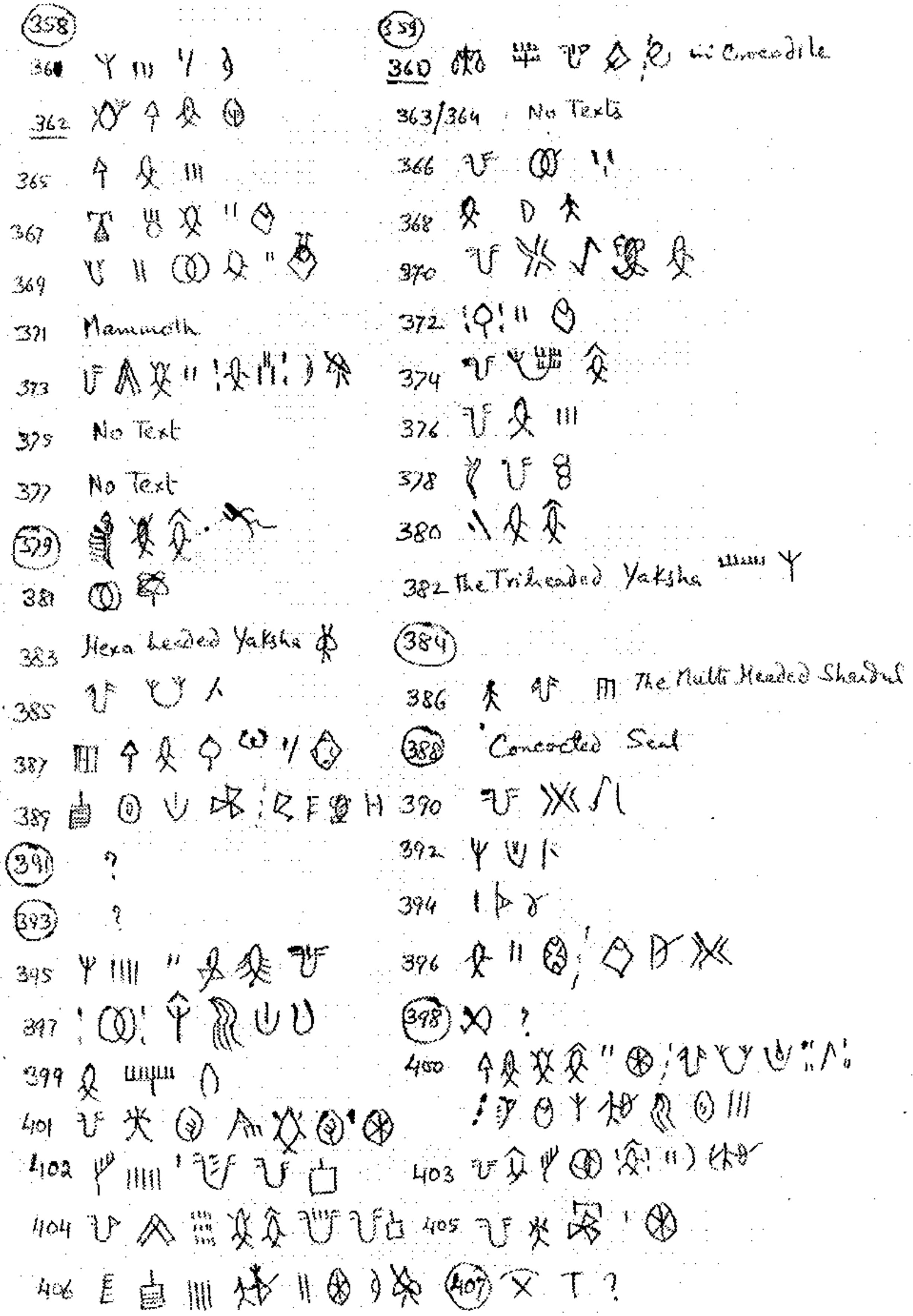

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुचर्चित बड़े बाबा और पुरातत्त्व की सुरक्षा

दीवार में जड़े जिनबिम्ब के पाषाण में खुलती दरारें !; ,अब उद्धरित जिन बिंब !

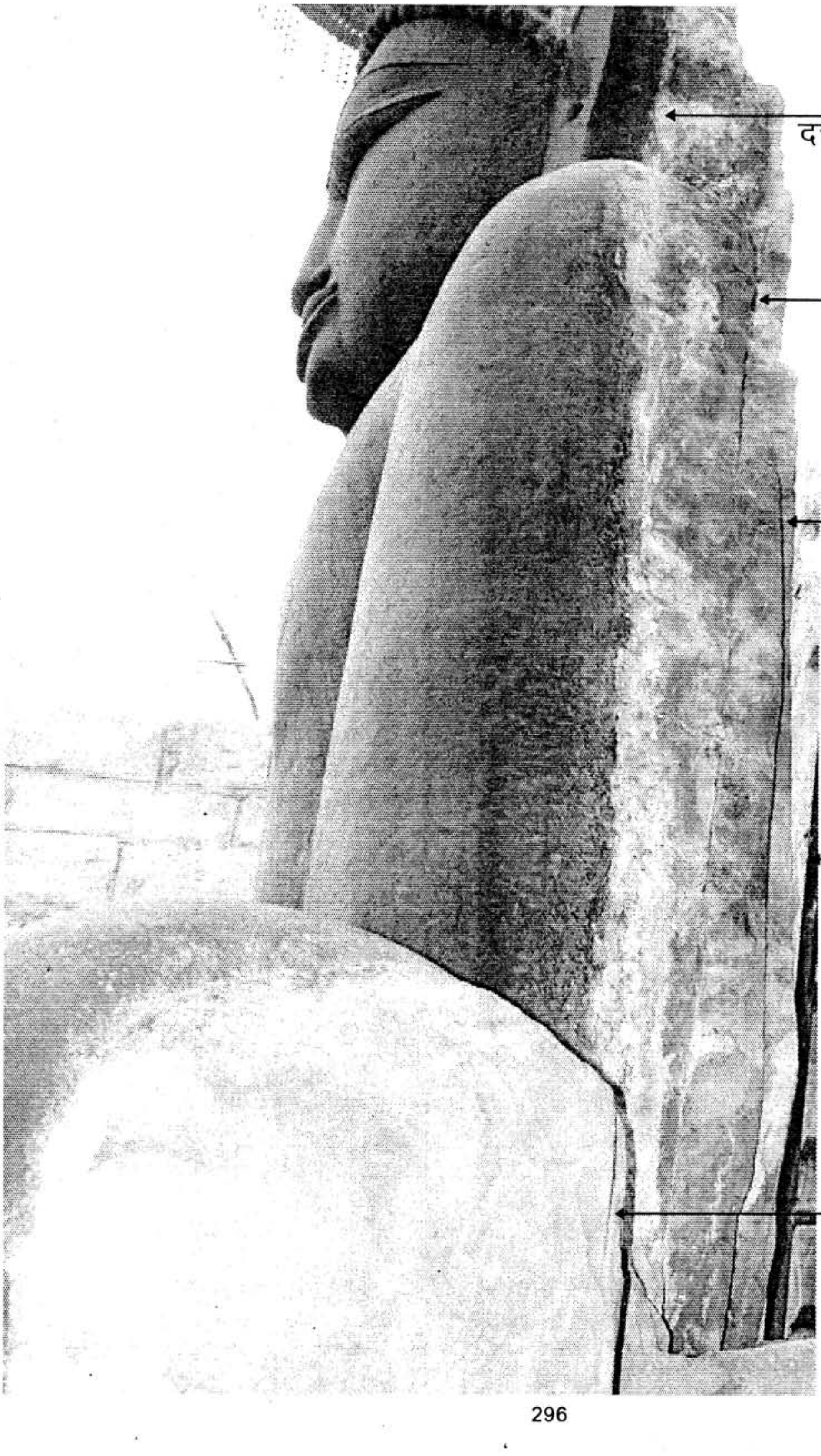

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेखिका

बरेली, उत्तर प्रदेश, में 1936 में लेखिका ब्र. डॉ. स्नेह रानी जैन, बी.एस.सी.; एम. फार्म.; पी.एच.डी. का जन्म एक अत्यंत शिक्षित एवं शिक्षा प्रेमी दिगंबर जैन परवार कुल में हुआ। सागर वि.वि. से ही संपूर्ण शिक्षा पू. क्षुल्लक वर्णी जी के आशीर्वचनों से विज्ञान की स्नातिका बन, गौरवांको सहित प्राप्त कर 21 वर्ष की उम्र में ही सागर वि. वि. में शैक्षणिक पद पर कार्यरत हो भेषजी में न केवल भारतीय प्रथम महिला शोधार्थी होने का श्रेय प्राप्त किया बल्कि जर्मनी की डी.ए.ए.डी. सीनियर फैलोशिप व्दारा उत्तरोत्तर शोध कार्य हेतु चुने जाने पर म्युन्स्टर विश्व विद्यालय में शोध कार्य 1966.1968 में संपूर्ण करने का भी गौरव प्राप्त किया। भारतीय संस्कारों के प्रति समर्पित शिक्षिका ने 39 वर्ष अपनी कर्मठ सेवाऐं सागर विश्व विद्यालय को देते हुए वेस्ट वर्जीनिया वि.वि.; यू.एस.ए. से आधुनिकतम विषयों में विशेषज्ञता प्राप्त करके भेषजी के आधुनिकतम क्षेत्रों में उच्चतम शोधकार्य दक्षता प्राप्त की। जर्मन तथा रूसी भाषाओं का ज्ञान होने के कारण अनेक वर्षो तक सागर विश्वविद्यालय में जर्मन भाषा की संध्याकालीन कक्षाऐं तथा तकनीकी प्रयोगशालीय ट्रेनिंग कोर्स भी चलाए। दिगंबराचार्य पू. विद्यासागर जी का 1978 से सान्निध्य पाकर धार्मिक अभिरुचि जागृत होने पर गुरु से ही धर्म का मर्म जाना और उनके ही आशीर्वाद से 1984 में ब्रह्मचर्य व्रत और 1986 में अणुव्रत धारण किए। इतिहास में अभिरुचि होने के कारण सिंधुघाटी सभ्यता में जैन साम्य पाकर इसी दिशा में खोज करने अंतर्राष्ट्रीय दिगंबर जैन सांस्कृतिक परिषद का गठन करके निजी अर्थ व्यवस्था से शोधकार्य प्रारंभ किया। दैनिकपूजा के संकेतों की परंपरा की खोज पुरालिपि के अनखुले पृष्ठों तक की सीढ़ी दिखला गई।

शिकागो में आयोजित 1993 के शताब्दी विश्वधर्म सम्मेलन में मूल जिनधर्म की प्रस्तुति की। तभी से प्रत्येक जैना सम्मेलन में शोधपत्रों की निरंतर प्रस्तुति की है। देश विदेश की अनेक पत्रिकाओं में लेख छपे हैं और कुछेक को पुरस्कृत भी किया गया है। जैन धर्म के संदेश को अंग्रेजी गानों के माध्यम से नानवायलेंस नामक पुस्तिका के व्दारा प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया है। अंतर्राष्ट्रीय तकनीकी, एपिग्राफी सेमिनारों मे अनेकों बार सक्रिय भाग लिया है।

एक वर्ष अखिल भारतीय दिगंबर जैन महिला संगठन की उपाध्यक्षा और पश्चात दो वर्षो तक अध्यक्षा चुनी गईं। वर्तमान में अंदिजैसप की अध्यक्षा हैं। अब तक लगभग 50 से अधिक लेख और कई किताबें पुरातत्व शोध संबंधी प्रकाश में आ चुकी हैं। वर्ष 2001 से लगातार इतिहास तथा पुरातत्व की कान्फ्रेंसों में शोधपत्र प्रस्तुति की तथा जैन विद्वत संगोष्ठियों में अपने आलेख प्रस्तुत कर चुकी हैं।

अब तक लिखी गई कृतियाँ – 'द हरप्पन ग्लोरी ऑफ जिनाज,' 2001, ; 'द इथिकल मैसेज ऑफ इंडस पिक्चोरियल स्क्रिप्ट,' 2002; 'सैंधव पुराअवशेष एक शाश्वत अभिव्यंजना', 2002; 'द सीड इंडस रॅाक ऑफ कर्नाटका', 2003; 'इतिहास बोलता है,' 2004; 'सैंधव पुरालिपि में दिशाबोध', 2004; 'गाइड बुक टू डिसीफर द इंडस स्क्रिप्ट' 2005; 'इन्ट्रोडक्शन टू जैनिज्म,' 2006 एवं 'इंडस कीज एंड सम इंडस जिनाज,' 2006 हैं।

पिछले दो वर्षो से प्राकृत शोध संस्थान, श्रवणबेलगोला; कर्नाटक में पुरातत्व शोधरत रहीं। सर्वेक्षण व्दारा विश्व को पुराकुंजियाँ दिखलाने तथा 'सैंधव लिपि को आद्योपांत सप्रमाण पढ़ने में अग्रणी' होने का श्रेय प्राप्त किया है। पुराकुंजियों की खोज अब भी निरंतर जारी है। विदेशों में प्रभावना हेतु जाती हैं।

यह प्रस्तुत कृति लेखिका के दीर्घकालीन पुरातात्विक अन्वेषण और सम्पूर्ण मौलिक चिन्तन का सुफल है।

ISBN 819061405-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org